ऋग्वेद संहिता
भाषा-भाष्य
भाग १

		ISSN
		7106 88
		7106 08
Foss C.F.	[illegible]e's Armour & Artillery 1986-87	7106 08
Foss C.F.	[illegible]'s Armoured Personnel Carriers	7106 03
Foss C.F.	[illegible]'s Light Tanks & Armoured Cars	7106 03
Foss C.F.	[illegible]'s Main Battle Tanks (N.E.)	7106 03
Freeman Allen G.	[illegible] World Railways 1986-87	7106 08
Freeman Allen G.	[illegible]eomans 59s (Jane's)	7106 04
Freeman R.	[illegible]ighty Eighth (NE) (Jane's)	7106 03
Freeman R.	[illegible]ighty Eighth War Diary (Jane's)	7106 00
Freeman R.	[illegible]ighty Eighth War Manual (Jane's)	7106 03
Freiden D.	[illegible]es of Naval Weapons Systems (NIP)	8702 15
Freiden D.	Pr[illegible]s of Naval Weapons Systems Workbook (NIP)	8702 15
Fuchida M. & Okumiya	Mi[illegible] [illegible]IP)	8702 13
Fuchs A.E.	Radar C[illegible]-Section Lectures (AIAA)	9159 92
Furniss T.	Manned [illegible]ceflight Log (Jane's)	7106 04
Furniss T.	Space Shu[illegible] Log (Jane's)	7106 03
Gander T.J. & Foss	Jane's Mil Veh & Ground Support Equipment 1987	7106 08
Gander T.J. & Foss	Jane's Mil Veh & Ground Support Equipment 1986	7106 0
Garzke W. & Dulin	Axis & Neutral Battleships in WWII (Jane's)	7106 0
Garzke W. & Dulin	British Soviet French Dutch Battleships WWII (Jane's)	7106 0
Garzke W. & Dulin	US Battleships of WWII (Jane's)	3540 1
Georgano N.	World Truck Handbook (Jane's)	7106 0
Gillmer T.C.	Modern Ship Design (NIP)	8702 1
Godson R.	Labor in Soviet Global Strategy (CR)	8448 1
Golan G.	131: Soviet Union & The PLO (IISS)	8607 9
Golden A.	Radar Electronic Warfare (AIAA)	9304 0
Goldrick J.	The King's Ships Were at Sea (NIP)	8702 1
Goodrich M.	Delilah (NIP)	8702 1
Greenman D.	Jane's Merchant Ships 1985-86	7106 0
Greenman D.	Jane's Merchant Ships 1987-88	7106 0
Gunston W.	Jane's Aerospace Dictionary (NE)	7106 0
Gutteridge L.F. & Smith	The Commodores (NIP)	[illegible]02 1
Gutteridge L.F.	Icebound (NIP)	8702 1
Haass R.	153: Congressional Power (IISS)	8607 9
Harrell G.	NROTC Supplement Principles (NIP)	8702 1
Hayes G.P.	History of Joint Chiefs of Staff (NIP)	8702 1
Heinl R.D.	Dictionary of Military & Naval Quotations (NIP)	8702 1
Heinl R.D.	Handbook for Marine NCO's (NIP)	8702 1
Hemsch M.J. & Nielsen	Tactical Missile Aerodynamics (AIAA)	9304 (
Henderson R.	Sail & Power (NIP)	8702 1
Henderson R. & Kotsch	Heavy Weather Guide (NIP)	8702 1
Herman D. & Bekey	Space Stations & Platforms (AIAA)	9304 0
Heyhoe D.C.R.	129: Alliance & Europe VI (IISS)	8607 9
Higginson J. & Rohrbough, Williams	Sea & Air: Marine Environment (NIP)	8702 1
Hobday G.	In Harm's Way (IWM)	9016 2
Hoffman M.A. & Sitler	Parent's Guide To Navy Life (NIP)	8702 1
Hogg I.V.	Jane's Infantry Weapons 1987-88	7106 0
Hogg I.V.	Jane's Infantry Weapons 1986-87	7106 0
Hogg I.V.	Jane's Military Review No. 6	7106 0
Hogg I.V.	Jane's Directory of Military Small Arms Ammunition	7106 0
Hogg I.V.	Jane's Military Review No. 5	7106 0
Holmes W.J.	Double-Edged Secret (NIP)	8702 1
Hughes W.P.	Fleet Tactics Theory & Practice (NIP)	8702 1
Hussain F.	165: Future of Arms Control (IISS)	8607 9

	TITLE	ISBN	PRICE
	Robert Fulton (NIP)	8702 1547 7	15.95
	150: Soviet Perspectives on Security (IISS)	8607 9027 4	4.00
	The Military Balance 1986-87 (IISS)	8607 9098 3	15.95
	The Military Balance 1985-86 (IISS)	8607 9094 0	12.00
	The Strategic Survey 1984-85 (IISS)	8607 9087 8	7.00
	The Strategic Survey 1985-86 (IISS)	8607 9097 5	8.00
	The Strategic Survey 1986-87 (IISS)	8607 9125 4	10.50
	173: America's Security in 1980s	8607 9058 4	4.00
	174: America's Security in 1980s	8607 9059 2	4.00
	189: Conduct of East West Relations	8607 9080 0	4.00
	190: Conduct of East West Relations	8607 9081 9	4.00
	191: Conduct of East West Relations	8607 9082 7	4.00
	182: Defence & Consensus	8607 [illegible] X	4.00
	183: Defence & Consensus	8607 9070 3	4.00
	184: Defence & Consensus	8607 9071 1	4.00
	216: East Asia, West & Int'l Security Part 1	8607 9113 0	4.00
	217: East Asia, West & Int'l Security Part II	8607 9114 9	4.00
	218: East Asia, West & Int'l Security Part III	8607 9115 7	4.00
	133: The Diffusion of Power I	8607 9007 X	4.00
	134: The Diffusion of Power II	8607 9008 8	4.00
	160: Future of Strategic Deterrence	8607 9041 X	4.00
	161: Future of Strategic Deterrence	8607 9042 8	4.00
	114: Middle East & Int'l System	9004 9282 1	4.00
	115: Middle East & Int'l System	9004 9283 X	4.00
	197: New Tech & Western Security Part I	8607 9088 6	4.00
	198: New Tech & Western Security Part II	8607 9089 4	4.00
	199: New Tech & Western Security Part III	8607 9090 8	4.00
	205: Power & Policy Doctrine Part I	8607 9099 1	4.00
	206: Power & Policy Doctrine Part II	8607 9100 9	4.00
	207: Power & Policy Doctrine Part III	8607 9101 7	4.00
	122: Power at Sea I	9004 9293 7	4.00
	123: Power at Sea II	9004 9294 5	[illegible].00
	124: Power at Sea III	9004 9295 3	4.00
	166: Third World Conflict and Int'l Security Part I	8607 9047 9	4.00
	167: Third World Conflict and Int'l Security Part II	8607 9048 7	4.00
	Imperial War Museum Review No. 1	9016 2737 2	5.95
	Maritime South Africa (Jane's)	7106 0351 7	19.50
	Armies of NATO'S Central Front (Jane's)	7106 0341 X	30.00
	All the World's Airships 1909 (Jane's)	7106 0471 8	50.00
	All The World's Fighting Ships 1898 (Jane's)	7106 0406 8	50.00
	180: Regional Security Role (IISS)	8607 9066 5	4.00
	209: South Africa & Its Neighbours (IISS)	8607 9103 3	4.00
	159: South Africa's Narrowing Security Options (IISS)	8607 9038 X	4.00
1, Alexiev	East European Military Establishments (CR)	8448 1405 9	13.95
ckett.	Elements of Applied Thermodynamics (NIP)	8702 1169 2	19.95
	Soviet Military Strategy in Space (Jane's)	7106 0449 1	20.00
	Preserved BR Diesel & Electric Traction Handbook (Jane's)	7106 0445 9	4.95
	Rail Portfolio 5: The 37s (Jane's)	7106 0363 0	4.95
	Rail Portfolio 7: The 47s (Jane's)	7106 0045 5	4.95
	Rail Portfolio 4: The Peaks (Jane's)	7106 0340 1	4.95
	Ship & Boat Models Ancient Greece (NIP)	8702 1628 7	23.95
	Naval Engineer's Guide (NIP)	8702 1415 2	6.95
h	Armies of NATO's Central Front (Jane's)	7106 0341 X	30.00
on.	Elements of Applied Thermodynamics (NIP)	8702 1169 2	19.95
on	Up Ship! (NIP)	8702 1738 0	22.95
	106: Nuclear Forces of Medium Powers 1 (IISS)	9004 9274 0	4.00
	107: Nuclear Forces of Medium Powers II (IISS)	9004 9275 9	4.00
	Naval Aviation Guide 4th Ed (NIP)	8702 1409 8	14 95

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषाभाष्य

(प्रथम खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा

विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ

प्रकाशक

आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

षष्ठावृत्ति } सं० २०२८ वि० { ३०..

शिरीश चन्द्र शिवहरे के प्रबन्ध
दी फ़ाइन आर्ट

ओ३म्

ऋग्वेद के प्रथम खण्ड की भूमिका

(षष्ठम-संस्करण)

—:०:—

वेद शब्द पर विचार

'वेद' शब्द दो प्रकार का है, एक आद्युदात्त 'वे॑द', दूसरा अन्तोदात्त [illegible]। पाणिनि ने उञ्छादि (६ । १ । १६०) और वृषादि (६।१।२०३) [illegible] गणों में वेद शब्द पढ़ा है। इनमें से उञ्छादि-पठित करण अर्थ में 'वे॒द' अन्तोदात्त है, और वृषादि गण का शेष सब अर्थों में आद्युदात्त है।

आद्युदात्त 'वेद' शब्द वेद-अर्थ में ऋग्वेद में एक स्थान पर भी नहीं [illegible]ाया। १४ स्थानों पर 'वे॑दः' पद है परन्तु वह सर्वत्र 'धनवाची' [illegible]ो॑दस्' शब्द है। अथर्ववेद में 'वे॑द' शब्द दो बार केवल 'वेद' (ज्ञान-[illegible]य, मन्त्रमय वस्तु) अर्थ में आया है। जैसे—

(१) एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते।

अथर्व० ७ । ५१ । १ ॥

(२) ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूँषि तिर्यञ्चः ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ अथर्व० १५ । ३ । ७ ॥

इन दोनों स्थलों पर ही ऋक्, साम, यजु आदि का भी प्रसङ्ग है। इसी प्रकार यजुर्वेद में एक स्थान पर है—

वे॑देन रूपे व्य॑पिबत् सुतासुतौ प्र॒जाप॑तिः । यजु० १९ । ७८ ॥

वेदों में अनेक स्थलों पर वेद-वाचक वाक्, गीः, वर्चस् आदि शब्दों [illegible] प्रयोग है।

'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति

'वेद' शब्द की प्राचीन विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति की है। जैसे—

(१) वेदेन वै देवा असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त । तद् वेदस्य वेदत्वम् ॥ तै० सं० १ । ४ । २० ॥

वेद से देवों ने असुरों का प्राप्य धन प्राप्त किया, यही वेद को 'वेद' कहने का निमित्त है।

(२) वेदिर्देवेभ्यो निलायत तां वेदेनान्वविन्दन् । वेदेन विविदुः वेदिं पृथिवीम् ॥ तै० ब्रा० ३ । ३ । ९ । ६९

देवों से वेदि छिप गई। उसको वेद से प्राप्त किया।

(३) आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दति, इत्यायुर्वेदः सुश्रुत सू० १ । १४ ॥

(४) आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः ॥ चरक सू० ३० । २० ॥

इनही सब आशयों को लेकर बाद के भाष्यकारों ने भी 'वेद्' क अनेक व्युत्पत्तियां लिखी हैं। जैसे—श्री स्वामी दयानन्द ऋग्वेद भाष भूमिका में—**विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति..., अथवा 'विन्दन्ते लभन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्य-विद्या यैर्येषु वा ते वेदाः।'**

इस प्रकार 'विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद्लृ लाभे, विद विचारणे' आदि चार धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में प्रत्यय करके 'वेद' शब्द सिद्ध किया है।

चारों वेदों का एक साथ आविर्भाव

चारों वेदों में से सबसे प्रथम ऋग्वेद गिना जाता है। ऋग्, य साम और अथर्व इन चारों में कौन वेद प्रथम उत्पन्न हुआ यह

करना निरर्थक है। वेद-ज्ञान नित्य है। क्योंकि उस ज्ञान का आश्रय परमेश्वर नित्य है। हमारे बोल-चाल के व्यवहार में ऋग्वेद के नाम को प्रायः प्रथम कहते हैं इससे ऋग्वेद का प्राथम्य है। वैदिक साहित्य में जहां कहीं भी वेदों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वहां चारों वेदों का एक साथ ही उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे पुरुष सूक्त में—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।
ऋ० १०।९०।९॥ यजु० ३१।७॥

यस्माद् ऋचोऽपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ अथर्व० १०।७।२०॥

स्तोम आत्मा छन्दांसि अंगानि यजूंषि नाम। साम तनूः०,
यजु० १२।४॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः॥ ६॥
वेद आस्तरणं ब्रह्म उपवर्हणम्।
साम आसद उद्गीथ उपाश्रयः॥ ७॥ अथर्व० १५।३।६॥

कालाद् ऋचः समभवन् यजुः कालादजायत।
अथर्व० १९।५९।२॥

उक्त सब उदाहरणों में सर्वहुत् यज्ञ, सुपर्ण, काल, स्कम्भ ये सब वेद-प्रतिपादित पदार्थ कोई भिन्न-भिन्न पदार्थ नहीं, प्रत्युत सभी परमेश्वर के नाम हैं। तब उस परम ज्ञानमय परमेश्वर के बीच में ओत-प्रोत इन वेदों की परस्पर अर्वाचीनता और प्राचीनता की विध बैठाना बड़ा हास्यजनक है। परमेश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और जीवों को भी उत्पन्न किया और साथ ही उनके लिये ज्ञानमय वेदों का भी प्रकाश किया।

वेद कैसे प्रकट हुए ?

वेद-मन्त्र कैसे प्रकट हुए ? यह प्रश्न सभी विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से सरल किया है। वेदों को अनादि काल का ईश्वरीय ज्ञान मानने वालों ने ऋषियों को वेदमन्त्रों का कर्त्ता नहीं माना, प्रत्युत मन्त्रों का द्रष्टा स्वीकार किया है। जैसा निरुक्त में यास्काचार्य ने लिखा है कि—

साक्षात्-कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। ते अवरेभ्योऽसाक्षात्-कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः ॥ निरु० अ० १।६।४॥

ऋषियों ने धर्म को साक्षात् किया। उन्होंने दूसरे लोगों को, जिन्होंने मन्त्रों को साक्षात् नहीं किया था, उपदेश-द्वारा मन्त्र प्रदान किये।

सबसे प्रथम किसने साक्षात् किया ?

ब्राह्मण-ग्रन्थों में लिखा है—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ श० ११। अ० ५॥

अग्नि, वायु और आदित्य तपस्या-युक्त इन तीनों से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीनों प्रकट हुए। इसी का मनु ने अनुवाद किया है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्-यजुः-साम-लक्षणम् ॥

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदि इनसे सनातन 'त्रय' अर्थात् ऋग्, यजुः, साम इनका दोहन किया अर्थात् इनको उनसे प्राप्त किया। ये अग्नि आदि जड़ पदार्थ नहीं, प्रत्युत लक्षण से वे सजीव पुरुष हैं। क्योंकि पुरुषों को ही ज्ञान होना सम्भव है, जड़ों को नहीं।

शांखायन श्रौत सूत्र में ऋग्वेद के सम्बन्ध में सबसे प्रथम प्रवक्ता 'अग्नि' को ही स्वीकार किया है।

नमो अग्नय उपदेष्ट्रे, नमो वायव उपश्रोत्रे, नम आदित्यायानुख्यात्रे।

इस संकल्प में अग्नि को उपदेष्टा, वायु को उपश्रोता और आदित्य को अनुख्याता स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सम्प्रदाय-परम्परा से ऋग्वेद का प्रथम उपदेष्टा अग्नि नामक ऋषि है।

क्या ऋषि मन्त्रों को रचनेवाले हैं ?

प्रथम आक्षेप

वेद पर ऐतिहासिक आपत्तियें तब आती हैं जब ऋषियों को वेद-मन्त्रों का कर्त्ता मान लिया जाता है। इसलिये प्रथम इसी पर कुछ विचार करना चाहिये कि क्या जिन ऋषियों का मन्त्रों के साथ नाम लिखा मिलता है, वे उसके द्रष्टा हैं या कर्त्ता हैं।

मन्त्रकृत्, मन्त्रकार आदि शब्दों का प्रयोग

(१) चारों वेदों में (ऋ० ९। ११४। २) केवल एक स्थान पर 'मन्त्रकृत्' शब्द का प्रयोग है। यथाः—

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधांपतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव।
ऋ० ९। ११४। २॥

इसी प्रकार—

शिशुर्वा आङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्। स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत्। तां० ब्रा० १३। ३। २४॥

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः मन्त्रपतिभ्यो मा मामृषयो मन्त्र-कृतो मन्त्रपतयः परादुः। माऽहम् ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम्॥ तै० आ० ४। १। १॥

मन्त्रकृतो वृणीते। यथर्षि मन्त्रकृतो वृणीत इति विज्ञायते॥ आप० श्रौ० २४। ५। ६॥

तान् होवाच काद्रवेयः सर्प ऋषिर्मन्त्रकृत् ॥ ऐ० ब्रा० ६ । १ ।

अथ येषामु ह मन्त्रकृतो न स्युः स पुरोहितप्रवरास्ते प्रवृणीरन् ॥ आप० श्रौ० २४ । १० । १३ ॥

इत ऊर्ध्वान्मन्त्रकृतोऽध्वर्युर्वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतो वृणीत इति विज्ञायते ॥ सत्या० श्रौ० २ । १ । ३ ॥

दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः ॥ मा० गृ० सू० १।८।२॥

दक्षिणतस्तिष्ठन् मन्त्रवान् ब्राह्मण आचार्यायैकाञ्जलिं पूरये ॥ खा० गृ० सू० २ । ४ । १० ॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ पाणिनि अ० ३ । २ । ८९ ॥

कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् ॥

इन उद्धरणों में 'मन्त्रकृत्' और 'मन्त्रकार' शब्द का प्रयोग आया है।

इन उद्धरणों में ऋषि शब्द के साहचर्य से 'कृत्' का अर्थ द्रष्टा ही है।

स्वयं आचार्य सायण को यह बात खटकी कि जब वेद अपौरुषेय हैं तो ऋषि 'मन्त्रकृत्' अर्थात् मन्त्र बनाने वाले कैसे हैं ? सायण ने ऋषि शब्द के साहचर्य से स्पष्टार्थ कर दिया है कि—

यद्यप्यपौरुषेये वेदे कर्त्तारो न सन्ति तथापि कल्पादावीश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्रकृदित्युच्यन्ते ॥ तै० आ० सा० भा० ४ । १ । १ ॥

अपौरुषेय वेद में मन्त्रों के बनाने वाले नहीं होते तो भी कल्प के आदि में, ईश्वर के अनुग्रह से, मन्त्रों के पाने वाले 'मन्त्रकृत्' कहाते हैं। इसमें सायण ने 'कल्प के आदि में' यह शर्त्त व्यर्थ ही लगाई है। मन्त्रों का लाभ करना और उनका अर्थ-दर्शन करना आगे भी हो सकता है। ईश्वर के अनुग्रह के अतिरिक्त गुरु के अनुग्रह से भी मन्त्रों का लाभ या दर्शन होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण के भाष्य में सायण ने अपना अभिप्राय ठीक प्रकार से खोल दिया है।

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत् । करोतिधातुस्तत्र दर्शनार्थः ॥

ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों को देखने वाला 'मन्त्रकृत्' है । 'करोति' धातु का यहां अर्थ देखना है । मन्त्र का दर्शन अर्थात् मन्त्रार्थ का साक्षात्कार करने वाला 'मन्त्रकृत्' है, परन्तु इस शब्द का अर्थ-विस्तार और भी अधिक है । सुवर्ण आदि उपपद लगकर 'कृ' धातु से बने अन्य प्रयोगों पर भी दृष्टि डालनी चाहिये । सुवर्णकार, चर्मकार, लोहकार आदि शब्दों से सुवर्ण, चर्म, लोह आदि के नाना विकृत पदार्थ बनाने वाले पुरुष ही सुवर्णकार (सुनार), चर्मकार (चमार) और लोहकार (लोहार) कहाते हैं । ठीक उसी प्रकार 'मन्त्रकार' शब्द का भी अर्थ मन्त्र बनाने वाला नहीं, प्रत्युत मन्त्र के विकार अर्थात् विविध रूप उत्पन्न करके उन द्वारा कल्पोक्त यज्ञादि विधान करने में कुशल पुरुष ही 'मन्त्रकृत्' या 'मन्त्रकार' शब्द से कहा जाता है । वही 'मन्त्रवान' ब्राह्मण भी कहा गया है ।

वैदिक साहित्य में ऋषि आदि शब्द का प्रयोग बिलकुल उसी अर्थ में होता रहा है जिस अर्थ में अर्वाचीन साहित्य में 'आचार्य' शब्द का प्रयोग हुआ है । गुरु या आचार्य के अर्थ में 'मन्त्रकृत्' शब्द का भी प्रयोग होता रहा है ।

महर्षि दयानन्द ने भी ऋषि शब्द का वैदिक प्रयोग विद्वान् गुरु शिष्यों में ही होता हुआ बतलाया है । जैसे ऋग्वेद मण्डल १।सू० १।मंत्र२।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि—

"विद्या को पढ़े हुए, अब के और पुराने मन्त्रार्थ देखने वाले, अध्यापक, तर्क, कारण पदार्थों में विद्यमान प्राण ये 'पूर्व ऋषि' का अर्थ है । निरुक्तकार का यह कथन है कि—ऋषियों की इसी में प्रशंसा है कि नाना प्रकार के अभिप्रायों से ऋषियों को मन्त्रदृष्टियां होती हैं । इसका

अभिप्राय यह है कि—न्यून वा अधिक अभिप्राय से मन्त्रार्थों के ज्ञानों से वे प्रशंसा के योग्य होते हैं। ऋषियों की मन्त्रों में नाना दृष्टि का तात्पर्य यह है कि उनको बड़े पुषार्थ से मन्त्रों के अर्थ ठीक-ठीक प्रकार साक्षात् हो जाते हैं।"

"जो लोग मन्त्रार्थों को जान लेते हैं वे धर्म और विद्या का प्रचार करते हैं, सत्योपदेश से सब पर अनुग्रह करते हैं, छल-रहित, मोक्ष धर्म की साधना के लिये ईश्वर की उपासना करते हैं और इच्छानुरूप फल प्राप्त करने के लिये भौतिक अग्नि आदि के गुणों को जानकर कार्य साधते हैं वे मनुष्य भी 'ऋषि' शब्द से ग्रहण किये जाते हैं।"

"नूतन ऋषि' वेद के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, नवीन तर्क, कार्य-पदार्थों में स्थित प्राण हैं। फलतः महर्षि दयानन्द ने ऋषि शब्द से अध्यापक, आचार्य, गुरु तथा उत्तम तपस्वी शिष्य और वेदाध्यायी ब्रह्मचारी का भी वास्तविक अर्थ दर्शाया है।

कात्यायन ऋषि की जिस सर्वानुक्रमणी की पंक्तियों को योरोपियन लोग अपने पक्ष के पोषण में उद्धृत करते हैं कात्यायन की वही सर्वानुक्रमणी उनके मन्तव्य का खण्डन कर देती है, उसमें प्रत्येक मण्डलद्रष्टा ऋषि के विषय में स्पष्ट लिख दिया है—

गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत्। वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत्। बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्। सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत्। इत्यादि ॥

अर्थात् गृत्समद ने दूसरा मण्डल देखा। गाथिन विश्वामित्र ने तीसरा मण्डल देखा। वामदेव गौतम ने चौथा मण्डल देखा। बार्हस्पत्य भरद्वाज ने छठा मण्डल देखा। सातवां मण्डल वसिष्ठ ने देखा। इत्यादि सर्वत्र 'दृश्' धातु का ही प्रयोग है। किसी स्थान पर भी ऋषियों का प्रतिपादन करते हुए कात्यायन ने 'चकार', 'कृतवान्' इत्यादि 'करना' अर्थवाले शब्दों का प्रयोग नहीं किया।

जैसे लोक में 'राजकृत' आदि शब्दों का प्रयोग राजा को नियत करने के अर्थ में हैं, वैसे ही वेदमन्त्रों को नियत रूप से स्थिर, सुरक्षित रखने वाले विद्वान् 'मन्त्रकृत्' थे।

दूसरा आक्षेप

विद्वानों का कथन है कि जिन ऋषियों का नाम मन्त्रों पर लिखा मिलता है वे ही मन्त्रों के रचने वाले हैं। आर्य लोगों ने वेद को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिये मन्त्र रचने वाले ऋषियों का नाम 'मन्त्रद्रष्टा' रख दिया है। उनही की बनाई स्तुतियों का संग्रह करके पीछे से 'ऋग्वेद' बना है।

उत्तर—बहुत से वेदमन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि न होकर कई ऋषि हैं। जैसे गोपथ में लिखा है—

तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्। एवात्वामिन्द्र वज्रिन्० (ऋ० ४। १९)...तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवो असृजत ॥ गो० ब्रा० ६। १॥

सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा। इस उद्धरण में दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि मन्त्र (ऋ० ४। १९) पहले विद्यमान थे, उनको प्रथम विश्वामित्र ने देखा अर्थात् उसने उनका क्रियाकाण्ड सबसे प्रथम साक्षात् किया और फिर वामदेव ने पुनः उनको ही देखा। दो ऋषि एक ही सूक्त-मन्त्रों के कर्ता नहीं हो सकते। दूसरे 'सम्पात' यह मन्त्रों द्वारा किये कर्मकाण्ड का संकेत है। उस कर्मकाण्ड के नाम से ही मन्त्रों का नाम भी 'सम्पात मन्त्र' हुआ। वह विशेष कर्मयोग का देखना ही विश्वामित्र और वामदेव का ऋषि-वेदमन्त्रद्रष्टा होने का कारण है। अनुक्रमणीकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के देखने वाले ऋषियों को ब्राह्मण ग्रन्थों से देख कर ही मन्त्रों के ऋषि आदि का निर्णय किया है।

प्राचीन विद्वानों के मन्तव्यानुसार ऋषियों का आप्त होना भी इसी आधार पर था कि वे वेदमन्त्रों के भीतर सत्य धर्मों का साक्षात् करके सत्यार्थों का प्रवचन करते थे। जैसा कि गोतम-प्रणीत न्याय दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन ने लिखा है—

आप्तः खलु साक्षात्-कृतधर्मा। न्याय० १।१।७॥ य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च। न्याय० २।२।६७॥

धर्म का साक्षात् करने वाले आप्त हैं। वे आप्त ही वेदार्थों के देखने और प्रवचन करने वाले होते हैं।

वेद में ऐसे सूक्त हैं जिनके दो-दो (ऋ० ८।१४) तीन-तीन, पांच-पांच (ऋ० १।१००) ऋषि हैं। एक सूक्त (ऋ० ९।६६) के सौ ऋषि हैं। अनुक्रमणी के सूत्रों में 'वा' का लिखना सन्देहजनक नहीं है, प्रत्युत पूर्व कहे ऋषि की अनुवृत्ति को दिखाता है। अर्थात् प्रयोग काल में किसी भी एक ऋषि का स्मरण होना चाहिये।

तीसरा आक्षेप

मन्त्रों में भी उन कर्त्ता ऋषियों के नामों का उल्लेख है जैसा प्रायः कवि लोग अपना संकेत नाम देते हैं।

उत्तर—यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। अर्वाचीन सोरठे आदि में कवि का नाम अनर्थक, असम्बद्ध सा रहता है। वेद के सूक्तों में वे पद जो ऋषि-नाम हैं विशेष अभिप्राय को लिये होते हैं। यदि उनका वास्तविक अर्थ लुप्त कर दिया जाय तो वेद-मन्त्र का सत्यार्थ समझ में नहीं आ सकता। सत्य बात तो यह है कि द्रष्टा ऋषि का नाम भी उन विशेष पदों के कारण ही पड़ा है। ऋजिष्वा, वृषागिर, भयमान आदि वेद के रहस्य भरे शब्दों वाली ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि भी उपचार से उन्हीं नामों से पुकारे गये। ऐसा ही एक दृष्टांत हमने अथर्ववेद भाषा-भाष्य चौथे खण्ड की भूमिका में दर्शाया है। वहां कुन्ताप सूक्तों के द्रष्टा

ऋषि 'एतश' हैं। यह नाम उनका सूक्त के प्रथम पद 'एता अश्वा०' इन दो पदों का विकृत रूप है।

चौथा आक्षेप

वेदमन्त्रों में मन्त्र, ब्रह्म, स्तोम आदि बनाने की सूचना प्राप्त होती है।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
ऋ० ५ । १ । १२ ॥

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
ऋ० ५ । २९ । १५ ॥

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।
ऋ ४ । १७ । २१ ॥

उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व। ऋ० ४ । ३ । १५ ॥

आ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ् उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ॥
ऋ० १ । १७७ । ५ ॥

अकारि ते इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माणि० ॥ ऋ० १ । ६३ । ९ ॥

इन सभी स्थानों पर नये ब्रह्म अर्थात् वेद-मन्त्र बनाये जाकर इष्टदेव को अर्पित किये गये प्रतीत होते हैं।

उत्तर—थोड़ा सा भी विचार करें तो आक्षेप-कर्त्ता भ्रम में प्रतीत होते हैं। वे 'अकारि' आदि प्रयोगों को भूत काल का कैसे मान लेते हैं? वेद में जितने भी लकार प्रयुक्त हैं उनके लिये काल का कोई अवधारण नहीं। वेद में केवल लकारों को देखकर काल का निर्णय करना बड़ी गहरी भूल है। धातुसम्बन्धाधिकरण में पाणिनिसूत्र है—छन्दसि लुङ्-लङ्लिटः ॥३।४।६॥ इस सूत्र से सब कालों में लुङ्, लङ्, लिट् होते हैं। ये तीनों ही लकार लौकिक संस्कृत में भूतकाल में ही होते हैं। धातु-

सम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो वहां काल की विना अपेक्षा किये वर्त्तमान या अपेक्षित काल का अर्थ प्राप्त होगा। इस प्रकार से '**अकारि ते इन्द्र गोतमेभिः**' इस वेदवाक्य का अर्थ है—हे इन्द्र ! गोतम जन तेरी स्तुति करते हैं, या करें। यहां हे इन्द्र ! गोतमों ने तेरी स्तुति की। ऐसा अर्थ वेद के व्याकरण को न समझ कर किया जाता है। साथ ही इसमें कोई कारण नहीं कि 'गोतम' का अर्थ यहां गोतम के सन्तान या शिष्य ऋषि ही लिये जावें और इन्द्र का अर्थ कोई कल्पित देव ही लिया जावे। जिस रीति से 'ब्रह्माणि' का अर्थ स्तुतियां या वेदमन्त्र है क्या उसी रीति से 'गोतम' का अर्थ विद्वान् जन और 'इन्द्र' का अर्थ परमेश्वर नहीं होता है ? तब वेद मन्त्र का सरल स्पष्ट अर्थ यह है कि उत्तम वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष परमेश्वर के विषयक वेद मन्त्रों का ज्ञान करें। यहां लुङ् लकार केवल धातुसम्बन्ध में कालों की अपेक्षा विना किये ही हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र जहां भी 'ब्रह्म', 'ब्रह्माणि' आदि पद और 'ततक्ष' आदि पदों का प्रयोग है वहां-वहां इसी प्रकार निरुक्त के अनुसार अर्थ लेना चाहिये। ऐसा न करने से निरुक्त तथा छन्दोविषयक व्याकरण सूत्र निरर्थक हो जायेंगे।

ऋग्वेद संहिता, प्रकृति और विकृति

शौनकीय चरण-व्यूह में ऋग्वेद के सम्बन्ध में नीचे लिखा परिचय दिया गया है—

(१) तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति †।

ऋग्वेद के आठ स्थान हैं (१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) ऐतरेय ब्राह्मण, (४) ऐतरेयारण्यक, (५) शांखायन, (६) माण्डूक, (७) कौषीतकी-ब्राह्मण और (८) कौषीतकि-आरण्यक। अथवा वेद

† ऋग्वेदस्याष्टौ भेदा भवन्ति इति पाठभेदः।

संहिता की आठ प्रकार की विकृतियें जैसे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन ये ८ भेद कहाते हैं ।

(२) चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीयपारः ॥

चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीयपार ये ऋग्वेद के चार पाद कहाते हैं । ऋग्वेद के ये चार पाद अनुबन्ध-चतुष्टय के समान हैं । केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना 'चर्चा' है । उस अध्ययन वा उपदेश करने वाला गुरु 'श्रावक' कहाता है । उसका अध्येता शिष्य 'चर्चक' कहाता है । श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना 'श्रवणीयपार' कहाता है । इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है ।

(३) क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम् ।

क्रमपार, क्रमपद, क्रमजटा, क्रमदण्ड ये चार प्रकार के पारायण कहे हैं । जिस क्रम से संहिता पढ़ी गयी है उसको 'क्रमपार' कहते हैं । संहितानुसार पद पाठ 'क्रमपद' कहाता है । **अग्निम् ईळे । ईळे अग्निम् । अग्निम् ईळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितम् ईळे०** इत्यादि क्रम से पारायण करना 'क्रमजटा' कहाती है । इसी प्रकार **अग्निमीळे, ईळेग्निम् । अग्निमीळे ईळे पुरोहितमीळेऽग्निमीळे पुरोहितम् ।** इस प्रकार 'क्रमदण्ड' कहा जाता है । जटा, माला, शिखा आदि आठ प्रकार के विकार भी केवल विद्यार्थियों को संहिता के स्मरण करने में उपकारक होने से बाद के अध्यापकों ने नाना भेद कर लिये हैं । उनको अनावश्यक विस्तार होने से यहां नहीं लिखते ।

क्या एक वेद के चार वेद बनाये गये ?

वायुपुराण में लिखा है—

"युग बदलने पर युग के दोष से ब्राह्मण स्वल्प वीर्य हो गये हैं । सब कुछ न्यून होता चला जा रहा है । थोड़ा सा रह गया है । कृतयुग

की अपेक्षा दस हज़ार मन्त्र भाग बचा है। वेद का विनाश न हो जाय इसलिये वेद के भेद करने हैं। वेद का नाश हो जाने से यज्ञ और देव आदि सब नष्ट हो जावेंगे। पहला वेद चार चरण का था। उसका परिमाण 'शतसाहस्र' (१ लाख मन्त्र) था उससे दस गुना यज्ञ (कर्मकांड प्रयोग) था। ऐसा सुनकर मनु ने चतुष्पाद् वेद को चार भागों में बांट दिया।''

ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। केवल व्यासजी की बड़ाई करने के लिये व्यासजी के नाम पर जैसी कल्पना सूझी, वैसा कर दिया। इसी प्रकार पहले एक लक्ष मन्त्रों का होना और युग-दोष से मन्त्रों का नष्ट हो जाना और केवल दस सहस्र मन्त्रों का रह जाना यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि स्वयम्भू से लेकर ब्राह्मणकार तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। वेद के मन्त्रों, पदों और अक्षरों तक की गणना नियत है, फिर उनके लोप हो जाने और संग्रह करने आदि की सब कपोल-कल्पित बातें उन लोगों की जो वेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, गढ़ी हुई हैं और वे मनमाना, ऊटपटांग बातें योरोपीयन लेखकों और उनके अनुयायियों के समान गढ़ लेते थे। इन पुराणों की फैलाई निराधार बातों पर योरोपीयन विद्वानों ने अपनी विचित्र विचित्र कल्पनाओं का जाल फैलाया है।

पुराणों की इस कल्पना के असत्य होने में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि एक वेद होने की कल्पना वेद और ब्राह्मणों में कहीं नहीं है। उनमें आदि काल से ही चारों वेदों की सत्ता का वर्णन है। जैसा कि निम्नलिखित प्रमाणों से ज्ञात होगा—

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ॥ ऋ० ४। ३५। ६॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः॥

अथर्व० १९। ९। १२॥

इस पर सायण ने लिखा है—**वेदाः साङ्गाश्चत्वारः।**

वेद में स्पष्ट है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः० ॥ ऋ० ४।५८।३॥

कठ ब्राह्मण व निरुक्त में अर्थ किया है 'चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः ।

अतएव ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है:—

'जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को वेदव्यासजी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है। क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे।'

इसके अतिरिक्त हमारा इतिहास भी सब कालों में चारों वेदों की पृथक् सत्ता को स्वीकार करता है, जैसे—

महाभारत द्रोणपर्व । अ० ५१ ॥

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः०'

आदिपर्व में, दुष्यन्त के वर्णन में, वेदों की पृथक् पृथक् संहिताओं का वर्णन किया है—

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः ।............

अथर्ववेदप्रवराः पूगयाज्ञिक-संमताः ।

संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते । इत्यादि ॥

सम्भव है व्यास ने वैदिक साहित्य को व्यवस्थित रूप दिया हो, उसने ब्राह्मणग्रन्थों व संहितादि के पाठभेद का खूब विचार करके अपने शिष्यों को पढ़ाया हो। इससे वह अपने काल का 'चतुर्वेद-व्यास' प्रसिद्ध हुआ हो।

ऋग्वेद की २१ शाखाएं

पतंजलि ने महाभाष्य में लिखा है:—

एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् ॥

'वह्वृच् अर्थात् ऋग्वेद की २१ शाखाएं हैं। प्रपञ्च हृदय के 'वेद प्रकरण' में साम और बाह्वृच् की १२। १२ अवशिष्ट शाखा गिनाई हैं। जैसे—

ऐतरेय-बाष्कल-कौषीतकी-जानन्ति बाहवि-गौतम-शाकल्य-बाभ्रव्य-पैङ्ग-मुद्गल-शौनकशाखाः—

परन्तु चरणव्यूहकार महिदास ने शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकेय ये पांच प्रकार की शाखाएं बतलाई हैं। वस्तुतः ये पांच 'चरण' हैं।

प्रथम चरण—शाकल शाखाएं

(१) मुद्गल शाखा—वेदमित्र शाकल्य के पांच शिष्य हुए मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और शैशिरि, इनमें प्रथम मुद्गल का नाम 'बृहद्देवता' में शौनक ने स्मरण किया है—

मन्यते शाकपूणिस्तु भार्म्यश्वश्चैव मुद्गलः ॥ अ० ४। ४६ ॥

मुद्गलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकटायनः ॥ अ० ९। ९० ॥

यह मुद्गल सम्भवतः शाकल्य का शिष्य रहा। इसके पिता का नाम भृम्यश्व होगा।

मुद्गलानामाङ्गिरसभार्म्यश्वमौद्गल्येति। तार्दयं हैके ब्रुवते अतीत्याङ्गिरस-तार्दय-भार्म्यश्व-मौद्गल्येति ॥

इस लेख से प्रतीत होता है कि भृम्यश्व के सन्तान मुद्गल ही ऋग्वेद के चरणकार थे, वे अर्थद्रष्टा होने से ऋषि हैं, और उनका आम्नाय 'ऋग्वेद' मुद्गल शाखा थी। आङ्गिरस उनके त्रिप्रवर में से एक हैं। इस एक दृष्टान्त से एक गुत्थी यह भी सुलझती प्रतीत होती है कि शाखा व चरण ऋग्वेदाम्नाय के अति प्राचीन काल से रहे होंगे, पैल के शिष्यों के नाम से उनका शाखा मानना कुछ असंगत होगा।

(२) गालव शाखा—की संहिता अप्राप्त है। यह पांचाल देश

(रोहेलखण्ड के समीप) का वासी था। इसका दूसरा नाम बाभ्रव्य था। कामसूत्र में इसको बाभ्रव्य पाञ्चाल कहा गया है। ऋग्वेद के क्रम-पाठ का निर्माता यही था। चरक में कही ऋषि-सभा में 'गालव' विद्यमान हैं। युधिष्ठिर की दिव्य धर्मसभा में 'गालव' उपस्थित थे। यही बाभ्रव्य गोत्री पांचाल देश के महामन्त्री पद पर रहे हैं। जैसे—मत्स्य पुराण में दक्षिण पाञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का मन्त्री सुबालक बाभ्रव्य था। बाभ्रव्य को ही मत्स्य में ऋग्वेद का क्रमपाठ-कर्त्ता माना है। इस सम्प्रदाय का आम्नाय पूर्वकाल से ही पृथक् रहा और यज्ञादि कर्मकाण्ड में भी इनका अन्य देशीय आचार्यों से मतभेद रहा है। जैसे ऐतरेय (५। ३) में महाव्रताध्ययन के पाठ समाप्त करने में चातुकर्ण्य और गालव का मतभेद दर्शाया है।

(३) शालीय शाखा—तीसरी शालीय शाखा है। वैयाकरणों ने आश्वलायनादि के साथ इस शाखा को भी स्थान दिया है।

(४) वात्स्य शाखा—चतुर्थ शाखा 'वात्स्य' है। गोत्रचरणाद्वुञ् (पा० ४। २। १०४) पर पतंजलि ने 'वात्सकम्' उदाहरण देकर इसका चरण स्वीकार किया है।

उव्वट ने ऋक्प्रातिशाख्य का भाष्य करते हुए भूमिका में लिखा है—

चम्पायां न्यवसत् पूर्वं वत्सानां कुलमृद्धिमत्।
यस्मिन् द्विजवरा जाताः बाह्वृचाः पारमोत्तमाः॥
देवमित्र इति ख्यातस्तस्मिञ्जातो महामतिः।
स वै पारिषदे श्रेष्ठः सुतस्तस्य महात्मनः॥
नाम्ना तु विष्णुमित्रः स 'कुमार' इति शब्द्यते।

अर्थात्—चम्पा में वत्सों का सम्पन्न कुल था जिसमें बाह्वृच् ब्राह्मण उत्पन्न हुए। उनमें देवमित्र पार्षदों का श्रेष्ठ विद्वान् था, वह 'कुमार,' 'विष्णुमित्र' आदि नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(५) शैशिरि शाखा—पांचवीं शाखा 'शैशिरि' शाखा है। अनुवाकानुक्रमणी में स्पष्ट है।

ऋग्वेदे शैशिरीयायां संहितायां यथाक्रमम्।
प्रमाणमनुवाकानां सूक्तै शृणुत शाकलाः॥

यहां शाकल के शिष्यों को शैशिरि संहिता के सूक्त अनुवाकादि का उपदेश किया है।

ऋक् प्रातिशाख्य के प्रारम्भ श्लोकों से विदित होता है कि यह पार्षद सूत्र शैशिरियों से ही लिया है जिसका शाकलों को उपदेश किया है। जैसा लिखा है—

छन्दो-ज्ञानमाकारं भूतज्ञानं
छन्दसो व्याप्तिं स्वर्गामृतत्वप्राप्तिम्।
अस्य ज्ञानार्थमिदमुत्तरत्र
वक्ष्ये शास्त्रमखिलं शैशिरीये॥

आचार्य व्याडि ने विकृतिवल्ली में शैशिरीय शाखा की ही विकृति दर्शाई है।

शैशिरीये समाम्नाये व्याडिनैव महर्षिणा।
जटाद्या विकृतीरष्टौ लक्ष्यन्ते नातिविस्तरम्॥

सायण भाष्य भी प्रायः शैशिरीय शाखा पर ही है। शिशिर आचार्य चन्द्रवंशी राजा शुनहोत्र के कुल में राजा शल का पौत्र व आर्ष्टिषेण का पुत्र था।

यह आर्ष्टिषेण स्वयं याज्ञिक रहा, ऐसा इतिहास में स्पष्ट है।

इन पांच शाखाओं के अतिरिक्त शाकल नाम से भी एक शाखा थी—

पतंजलि मुनि ने व्याकरण-महाभाष्य में लिखा है—

शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत्......। शाकल्येन सुकृतां संहितामनु निशम्य देवः प्रावर्षत्॥

शाकल्य संहिता का पाठ सुनकर मेघ बरसा।

कात्यायन सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में—
'अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके' ऐसा उल्लेख है।

द्वितीय चरण—बाष्कल शाखाएं

(१) द्वितीय चरण की प्रथम शाखा बाष्कल है।

दिति पुत्र हिरण्यकशिपु का एक पुत्र 'बाष्कल' था। भगदत्त चीन का राजा उसी का अवतार कहा गया है। परन्तु कदाचित् यह संहिता-कार न था। ब्रह्माण्डपुराण में लिखा है—

चतस्रः संहितः कृत्वा बाष्कलो द्विजसत्तमः।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हि तान्।
बोध्यां तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम्।
पाराशरीं तृतीयां तु याज्ञवल्क्य (जातूकर्ण्य) मथापराम्।

इस आचार्य से यह चरण शिष्यानुसार अनेक शाखाओं में बंटा।

पाणिनि ने—कपिबोधादाङ्गिरसे। ४।१।१०७॥ आंगिरस बोध के पुत्र को 'बौध्य' कहा है। महाभारत में राजा नहुष के पुत्र ययाति के काल में 'बौध्य' ऋषि का पता चलता है। (महा० शा० प० १७६। ५७) यह वेद का पदकार रहा है।

(२) द्वितीय शाखा—'माठर' या 'अग्निमाठर' है। बृहद्देवता (८।८४।८५) के श्लोकों में माठर और बाष्कलों का मतभेद दर्शाया है। सम्भवतः पाठ भ्रष्ट होने से ८४वें श्लोक में बौध्य का मत है।

(३) तृतीय शाखा—पराशर की है। कुमारिल ने 'अरुण पराशर' के शाखा-ब्राह्मण का उल्लेख किया है। अष्टा० सूत्र ४।२।६० पर पतंजलि ने महाभाष्य "पाराशरकल्पिकः" उदाहरण दिया है। पाराशर शाखा के कल्प, ब्राह्मण अवश्य विद्यमान थे।

(४) जातुकर्ण्य शाखा—बाष्कलों की चतुर्थ शाखा ह। शांखा-

यन श्रौत सूत्रों में काशिराज, विदेहराज, कोशलराज आदि के पुरोहित 'जल' या 'जड' जातुकर्ण्य का पुरोहित होने का उल्लेख किया है।

वायु पुराण में लिखा है कि व्यासदेव ने जातुकर्ण्य से वेदाध्ययन व धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था।

बृहदारण्यक वंश-ब्राह्मण में लिखा है—पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्।

इस प्रकार शाकलों के समान ही बाष्कल आम्नाय था। इनमें सूक्तों का क्रम-भेद था, वेद 'ऋग्वेद' दोनों का एक ही था। इनमें से कुछ सूक्तों की न्यूनाधिकता भी थी। जिसका उल्लेख महीदास ऐतरेय ने चरण-व्यूह परिशिष्ट में किया है।

तृतीय चरण—आश्वलायन शाखाएँ

प्रश्न उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि के पास कौसल्य आश्वलायन शिष्य होकर आया। बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक की सभा में ऋग्वेदज्ञ 'अश्वल' होता ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये, इसके शिष्य व पुत्र आश्वलायन कहे गये। चरक संहिता की प्रोक्त ऋषिसभा में आश्वलायन थे। बौद्ध मज्झिम सूत्र (२।५।३) में आश्वलायन ब्राह्मण का नाम आया है। ये सभी शाखाकार हो नहीं सकते, हां, शाखाकार अवश्य प्रथम अश्वल गोत्री हो। आश्वलायन शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र मिलते हैं। बीकानेर, पंजाब यूनिवर्सिटी आदि के पुस्तकालयों में इस शाखा की संहिता के अंशों के पदपाठ मिलते हैं। कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के ग्रन्थालय में 'आश्वलायन ब्राह्मण' नाम से एक पुस्तक है। वह ऐतरेय ब्राहमण से भिन्न नहीं है। दोनों शाखाओं का एक ब्राह्मण प्रतीत होता है। इसी प्रकार देवस्वामी, देवत्रात आदि आश्वलायन श्रौत-सूत्र के भाष्यकारों ने बाष्कल, शाकल आदि सब शाखाओं का एक ब्राह्मण ऐतरेय और सबका एक सूत्र आश्वलायन ही माना है। इससे सम्बद्ध अन्य शाखाओं का पृथक् ज्ञान नहीं है।

चतुर्थ चरण—शांखायन शाखाएँ

इस शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र मिलते हैं। शांखायन संहिता में भी कुछ मन्त्रों का अन्यों से भेद होना सम्भव है जिनका इसके कल्प में प्रतीक पाठ है अन्यों में सकल पाठ है। इसी से इस शाखा की संहिता सिद्ध है। शांखायनों के चार भेद हैं।

(१) **शांखायन शाखा**—कौषीतकि शाखा शांखायनों का ही एक अवान्तर भेद है। शांखायन शाखा के अनेक ग्रन्थ और उन पर भाष्य भी हैं। जैसे शांखायन श्रौतसूत्र पर आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त के पुत्र और अग्नि स्वामी ने भाष्य किये हैं। इसी सम्प्रदाय के ब्रह्मदत्त भी कोई आचार्य हुए। शायद यही वरदत्त के पुत्र हों।

'शांखायन' शाखा के मूल पुरुष 'शंख' ऋषि होंगे। कापिष्ठल कठ शाखा में 'कौष्य शंख' को स्मरण किया है।

एतद्ध वा उवाच शंखः कौष्यः (अ० ३४)। उवाच दिवा-जातः शाकायन्यः शंखं कौष्यम्। (अ० ३५। १) इत्यादि।

महाभारत अनुशासन पर्व में (अ० २००) राजा ब्रह्मदत्त पाञ्चाल का शंख को बहुत दान देने का वर्णन है। शंख और लिखित दो भाई देवल के पुत्र थे (महाभारत आदि पर्व ६०। २५)। स्कन्द पुराण में इनके पिता का नाम शांडिल्य दिया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में सुयज्ञ शांखायन का नाम लिखा है। आ० श्रौ० सू० भाष्यकार ने इसी 'सुयज्ञ' को श्रौतसूत्रकार माना है।

(२) **कौषीतकि शाखा**—इस शाखा का ब्राह्मण और गृह्यसूत्र मिलता है। यह शाखा शांखायन चरण के अन्तर्गत ही उपशाखा प्रतीत होती है। 'कौषीतकि के पिता 'कुषीतक' थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहोड़ (ल) कौषीतकि का नाम आता है। महाभारत वनपर्व (अ० १३४।८) में कहोल को उद्दालक का शिष्य लिखा है। कहोल के पुत्र

अष्टावक्र थे और उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु थे। वे परस्पर मामा-बहनोई थे। उद्दालक ने अपनी कन्या कहोल को ब्याह दी थी। वे दोनों बहुत बड़े वेदज्ञ ब्रह्मवेत्ता थे।

(३) महाकौषीतकि शाखा—आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त ने शांखायन श्रौतसूत्र के अन्तिम तीन अध्याय महाकौषीतकि से लिये बतलाये हैं।

(४) शाम्बव्य शाखा—जैमिनीय श्रौतसूत्र-भाष्य में भवत्रात ने शाम्बव्य के कल्प का उल्लेख किया है, २४ पटलों में उसने यज्ञ तक कहा है। शाम्बव्य गृहस्थकारिका में शाम्बव्य को सूत्रकार माना है। इसके पाँच अध्याय के गृह्यसूत्र की सूचना दी है। महाभारत आश्रम-वासिक पर्व (अ० १०) में—

साम्बाख्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रिरे।

सम्भवतः 'शांबाख्य' न हो, 'शाम्बव्य' बह्वृच का नाम है। यह ऋग्वेद और अर्थ-शास्त्र (नीतिशास्त्र) का बड़ा विद्वान् था। उसने धृत-राष्ट्र को उपदेश किया। वह अवश्य शाम्बव्य-शाखी ब्राह्मण होगा।

पञ्चम चरण—माण्डूकेय शाखाएँ

ऋग्वेदीय शाखाओं का पांचवाँ चरण 'माण्डूकेय' है। बृहद्देवता का आम्नाय माण्डूकेय है। इस आम्नाय में भी कुछ सूक्त अन्यों से विशेष थे। जैसे 'ब्रह्म जज्ञानं०' सूक्त उस आम्नाय में पठित था। सूक्त क्रम में कहीं भेद है। मण्डूक का पुत्र माण्डूकेय था। इसको शांखायन आरण्यक में 'शूरवीर' नाम से कहा है। उसके पुत्र ह्रस्व, मध्यम व ज्येष्ठ (या दीर्घ) थे। मध्यम की माता का नाम 'प्रतिबोधी' था। वह मगध का निवासी था। गोत्र नाम मातृनाम से भी चलते थे। बृहदारण्यक के अन्तिम गुरु-वंश में मांडुकायनीपुत्र को माण्डूकीपुत्र का शिष्य कहा है। बृहद्देवता में माण्डूकेय के ३७ सूक्त शाकलों से विशेष दिये हैं। इसी चरण में सब से अधिक ऋचा होने से यथार्थ बह्वृच माण्डूकेय आम्नाय ही था। 'बह्वृच' आम्नाय भी पृथक् कोई रहा। जिसका उल्लेख माध्य-

न्दिन शतपथ ११ । ५ । १ । १ में किया है । इसमें भी सूक्त ऋचाओं में यत्किञ्चित भेद था, क्योंकि पुरुष सूक्त (१० । ९५) में बह्वृच १५ ऋचा पढ़ते हैं, वर्त्तमान शाकल शाखा में १८ मन्त्र हैं । आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में बह्वृच ब्राह्मण के उल्लेख उद्धृत हैं, जो ऐतरेय, कौषीतकि आदि में उपलब्ध नहीं हैं । आदित्यदर्शन ने कठ-गृह्य के भाष्य में बह्वृच सूत्र लिखा है जो आश्वलायन, शांखायन गृह्यों में नहीं है, प्रतीत होता है कि बह्वृच सूत्र भी पृथक् ही था । कुमारिल ने (तन्त्र वार्तिक १ । ३ । ११) में बह्वृचों के वासिष्ठ सूत्र का उल्लेख किया है । वाजसनेयियों के लिये शंख-लिखितोक्त सूत्र की व्यवस्था ही है । प्रतीत होता है कि बह्वृच आम्नाय पृथक् एक चरण है जिसके अन्तर्गत अनेक शाखायें होंगी । भागवत (१ । ४) में शौनक को 'बह्वृच' कहा है । पूर्व महाभारत में शाम्बव्य को बह्वृच कहा है । सम्भवतः शौनक का बृहद्देवता वा ऋक्-प्रातिशाख्य बह्वृच शाखा का हो, अन्य सब ऋग्वेदियों ने इसे समान रूप से अपनाया हो ।

चरण-व्यूह के ये पांच चरण इस प्रकार वर्णित हो गये, पुराणकारों ने शाकपूणि और बाष्कलि भारद्वाज ये दो विभाग और कहे हैं, उनका भी उल्लेख यहां अप्रासंगिक नहीं है ।

(१) **शाकपूणि विभाग**—ब्रह्माण्ड पुराण (अ० १ । ३४) में लिखा है कि—

(१) माण्डूकेय शाखा की शाकपूणि ने तीन शाखाएं कीं, और निरुक्त बनाया । उसके ४ शिष्य थे, पैल, इक्षलक, शतबलाक और गज । ब्रह्मांड पुराण के ये नाम बहुत संदिग्ध हैं । ये पैल इक्षलक न होकर शायद 'पैङ्ग्य, शैलालक' प्रतीत होते हैं । बृहद्देवता (१ । २४) में पैङ्ग्य मधुक का मत लिखा गया है । शतपथादि में इसका मत मिलता है । शतपथ की वंश-परम्परा में भी 'मधुक पैङ्ग्य को याज्ञवल्क्य का शिष्य कहा है ।

(२) **औद्दालिक शाखा**—उद्दालक गोतम कुल का था, यह

अरुण का पुत्र था। गोतम शाखा को आरुणेय शाखा कहा गया है। आरुणेय ब्राह्मण भी प्रसिद्ध है।

(३) **शैलालक शाखा**—पाणिनि ने अ० ४। पा० ३। सू० ११० में शैलालक की ओर संकेत किया है।

(४) **शतबलाक्ष**—पुराणों में इस नाम के भ्रष्ट रूप श्वेतबालाक या व्यलीक आदि हैं। निरुक्त ने 'श्वेतवलाक्ष मौद्गल्य' का उल्लेख किया है, वह निरुक्तकार भी हुआ है।

(५) **चतुर्थ शिष्य**—शाकपूणि का चतुर्थ शिष्य कौन था, गज था वा कोई और, नहीं कहा जा सकता।

मीमांसा के शाबर भाष्य (१। ३। ११) में शबर स्वामी ने एक कल्प 'हास्तिक' लिखा है।

(६) **बाष्कलि भारद्वाज**—के सम्बन्ध में—ब्रह्माण्ड पुराण में जो नाम लिखे हैं उनमें—

त्वायनीय के स्थान में आपनाय, नन्दायनीय, कालाभूति, बालायनि आदि पाठ मिलते हैं। "पन्नगारि' सम्भवतः शुद्ध है, पाणिनि ने (२। ४। ६१) में इसको प्राच्य देश का विद्वान् माना है। तृतीय नाम आर्जव है। जिसके भ्रष्ट पाठ कथाजव, तथाजप, कासार आदि पाठ हैं।

ऋग्वेदीय अन्य शाखाएँ

कुछ शाखाएँ पूर्व लिखित चरणों के अन्तर्गत नहीं हैं जैसे—

(१) **ऐतरेय शाखा**—इस शाखा का ब्राह्मण और आरण्यक उपलब्ध हैं, आश्वलायन गृह्य सूत्र की टीका में पं० हरदत्त ने लिखा है—

"ऐतरेयिणां च वचनं भवादिर्लर्वत्रसमानम्।"

प्रतीत होता है कि इनके श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्रादि भी होंगे। ऐतरेय में अनेक मन्त्र-प्रतीक ऐसे हैं जो वर्तमान ऋग्वेद में उपलब्ध नहीं हैं।

(२) **वासिष्ठ शाखा**—ऋग्वेदियों का वासिष्ठ सूत्रों से सम्बन्ध ऊपर कह चुके हैं। वसिष्ठ का पुत्र शक्ति, शक्ति का पुत्र पराशर। पराशर की शाखा पूर्व लिख आये हैं। इसी परम्परा से व्यासदेव के पास ऋग्वेद आया होगा। चरण व्यूह में वासिष्ठों की पद संख्या का भेद बतलाया है, 'चतुर्दश वासिष्ठानाम्' जिस पर टीका में महीदास ने लिखा है कि वासिष्ठ गोत्रियों की संहिता में 'इन्द्रोतिभिः०' वर्ग के ७१ पद नहीं हैं। इसी प्रकार के भेद से यह भिन्न शाखा प्रतीत होती है।

(३) **सुलभ शाखा**—सौलभ ब्राह्मण उपलब्ध है। इस सम्बन्ध में और कुछ विदित नहीं है! 'सुलभा' नाम की राजकन्या बड़ी विदुषी थी, उसका सम्बन्ध इससे था या नहीं, नहीं कह सकते।

(४) **शौनक शाखा**—'प्रपंच-हृदय' में एक शौनक शाखा का उल्लेख है। इसका ऋग्वेदीय शौनकीय सूत्र भी उल्लिखित है। नेमिषारण्य-वासी शौनक 'बह्वृचसिंह' कहाते थे। बृहद्देवता और ऋक्प्रातिशाख्य शौनक नाम से ही हैं। अथर्ववेदीय शौनक शाखा में जो ऋग्वेदीय सूक्त मिलते हैं उनका क्या सम्बन्ध ऋग्वेद से या ऋग्वेदीय शौनक शाखा से है, नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार हमने २७ शाखाओं के नाम लिखे हैं। ६ नाम या तो अन्य किन्हीं शाखाओं में अन्तर्गणित करके २१ शाखा मान लेनी चाहिये।

इनके अतिरिक्त पाणिनि ने ाष्टिक स्वरप्रकरण में 'कार्तं कौजपादि गण' का पाठ किया है जिसमें अनेक शाखाकारों का उल्लेख है। जैसे—

सावर्णि-माण्डुकेय, पैल-श्यापर्णेय, कपि-श्यापर्णेय, शैतिकाक्ष-पांचालेय, कटुक-वार्चालेय, शाकल-शुनक, शाकल-सणक, सणक-बाभ्रव, आर्चाभिमौद्गल, बाभ्रव शालंकायन, बाभ्रव-दानच्युत, कठ-कालाप, कौथुम-लौकाक्ष, मौदपैप्पलाद, सौश्रुत-पार्थव।

इन द्वन्द्व समस्त पदों में प्रायः समान समान कोटि के पदों का

द्वन्द्वसमास है अर्थात् सौश्रुत-पार्थव, ये दोनों आयुर्वेद के दो सम्प्रदाय प्रतीत होते हैं, मौद पैप्पलाद ये दो अथर्ववेदीय आम्नाय हैं, कौथुम-लौकाक्ष सामवेदी दो सम्प्रदाय हैं। शेष जितने द्वन्द्व नाम हैं सब में एक एक पूर्व परिचित ऋग्वेदीय सम्प्रदाय स्पष्ट है, अवश्य उसके साथ पठित दूसरा भी ऋग्वेदीय सम्प्रदाय ही हैं, ऐसा निश्चय होता है। जैसे 'माण्डूकेय' के साथ 'सावर्णि' है। सावर्णि मनु का कोई ऋग्वेदीय आम्नाय होगा, ऐसा प्रतीत होता है, मानव गृह्यसूत्र मिलता है। श्रौतसूत्र भी सम्भव है, और आम्नाय भी सम्भव है। 'कपि-श्यापर्णेय' द्वन्द्व पद में 'कपि', 'कापेय' को पाणिनि ने 'बौध्य' आङ्गिरस के साथ पढ़ा है। कापेय को पौराणिकों ने 'शापेय' कहा है।

'श्यापर्ण' आम्नायविदों का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के (अ० ३५) में आया है, वे प्रसिद्ध याज्ञिक थे, परन्तु उनकी उस समय मान-मर्यादा कुछ कम हो गई थी।

'शैतिकाक्ष-पांचालेय' में पांचालेय और बाभ्रव्य एक हैं, इनके साथ 'शैतिकाक्ष' सम्प्रदाय अनुसंधान का विषय है। 'कटुक-वार्चालेय' दोनों ही अभी अपरिचित से हैं। 'शाकल-शुनक' द्वन्द्व में दोनों ऋग्वेदीय सम्प्रदाय हैं, शाकल शाखा का वर्णन ऊपर किया है, शौनकीयों के बृहद्देवता और ऋक्-प्रातिशाख्य हैं।

'शाकल-सणक' और सणक 'बाभ्रव' में 'सणक' शब्द अपरिचित है, सनत्कुमार के भ्राता 'सनक' ऋषि का वर्णन पुराण में है, यदि यह ऋग्वेद-आम्नाय प्रवर्त्तक हुए तो यह एक गौरव की बात होगी। 'आर्चाभि-मौद्गल' द्वन्द्व में 'मौद्गल' के सम्बन्ध में पूर्व लिख आये हैं। आर्चाभि आम्नाय का वर्णन निरुक्त में यास्क ने किया है। 'आर्चभ्याम्नाये' (निरु०) 'आर्चाभियों का अन्यत्र कई स्थलों पर उल्लेख है। 'बाभ्रवशालंकायन' में बाभ्रव पांचाल का पूर्व वर्णन कर दिया है। 'शालंकायन' इतिहास प्रसिद्ध गोत्र रहा है, इस गोत्र के महामन्त्री रहे हैं।

तो भी ऋग्वेदीय आम्नायों में सालंकायन अनुसन्धान के योग्य है। इसी प्रकार 'बाभ्रव-दानच्युत' पद में 'दानच्युत' आम्नाय खोज की अपेक्षा करता है।

शाखा-प्रवर्त्तक ऋषियों और शाखाओं का अनुसन्धान कर हम नीचे ऋग्वेदीय शाखाओं का अवधारण करते हैं—

१. शाकल, २. बाष्कल, ३. आश्वलायन, ४. शांखायन, ५. माण्डूकेय [माण्डूकायन], ६. साध्यायन [शाख्यायन], ७. औदुम्बर, ८. ऐतरेय, ९. कौषीतकी, १०. शाकपूणि, ११. यास्क, १२. मुद्गल, १३. वात्स्य [वात्स्यासन], १४. शैशिरीय, १५. बाभ्रवीय, १६. पान्नगारि, १७. राथीतर, १८. बलाक (बालाकिः), १९. इन्द्रप्रमति (वासिष्ठ), २०. पैल, २१. अग्निमाठर, २२. जातुकर्ण्य, २३. गार्ग्य। इनमें से मुख्य मुख्य २१ शाखाओं का प्रायः उल्लेख होता है।

वर्त्तमान शाकल शाखा

वर्त्तमान में जो ऋग्वेद संहितायें प्रचलित हैं उनमें से एक बम्बई में छपी है, दूसरी मैक्समूलर द्वारा संपादित है। दोनों के सूक्तक्रमों में भेद है। पं० उमेशचन्द्र विद्यारत्न के कथनानुसार मुम्बई से प्रकाशित ऋक्-संहिता आश्वलायन और मैक्समूलर प्रकाशित बाष्कल शाखा है, बंगदेश में भी आश्वलायन शाखा का विशेष प्रचार है। वहां ऋग्वेद शाखाध्यायी विद्वानों को प्राप्त ताम्रलिपि दान-पत्र प्राप्त हुए हैं। परन्तु अधिक लोगों के विचार से प्रचलित वेदसंहिता शाकल शाखा है। इसी ऋग्वेद संहिता को सामान्य रूप से 'शाकल संहिता' वा 'शाकलक' कहते हैं। जैसा—

ऐतरेय ब्राह्मण में शाकल का उल्लेख है। अग्निष्टोम की स्तुति में लिखा है—

स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यदग्निष्टोमः। तस्य यथैव प्रायणम् तथा उदयनम्। तदेषा अभि यज्ञगाथा गीयते।

**यदस्य पूर्वमपरं तदस्य यद्वस्यापरं तद्वस्य पूर्वम् ।
अहेरिव हि सर्पणं शाकलस्य न विजानन्ति यतरत् परस्तात् ॥**

अर्थात् यज्ञक्रतु अग्निष्टोम प्रारम्भ और समाप्ति रहित प्रतीत होता है, जैसे रथचक्र। जैसे रथचक्र में, नहीं कह सकते, कौनसा भाग प्रारम्भ और कौनसा अन्त का है उसी प्रकार अग्निष्टोम यज्ञ का जैसा 'प्रायण' अर्थात् प्रारम्भ की इष्टि है उसी प्रकार 'उदयन' अर्थात् समाप्ति की इष्टि है। इसी ही आशय की यज्ञ-सम्बन्ध में एक गाथा अर्थात् श्लोक गाया जाता है, जो ही इसका पूर्व भाग है वही इसका पिछला भाग है। जो इसका पिछला भाग है वही इसका पूर्व भाग है। (अहेः) सांप की गति के समान शाकल की गति है, विद्वान् जन नहीं जानते कि उसका कौनसा भाग अगला और कौनसा भाग पिछला है।

आचार्य सायण के मत में शाकल सर्प-विशेष का नाम है। शाकल नाम का सांप चलने के समय अपनी पूंछ को मुख से पकड़ कर कुंडल सा बन जाता है, उस समय उसकी पूंछ और मुख नहीं पहचाना जाता। उसी प्रकार का यह यज्ञ है।

अन्य विद्वान् † इस स्थान पर शाकल का अर्थ सर्प विशेष न जान कर शाकल प्रोक्त ऋग्वेद या शाकल्य की शिक्षा, सूत्र आदि मानते हैं और अहि का अर्थ सूर्य, मेघ आदि मानते हैं। हमें इस स्थान पर सायण का कथन युक्तिसंगत प्रतीत होता है। और श्लेषवृत्ति से यहाँ शाकल्य-प्रोक्त यज्ञ कर्मकाण्ड भी प्रतीत होता है, इसमें भी सन्देह नहीं।

पाणिनि सूत्र **शाकलाद्वा** (पा० ४ । २ । १२८) से भी 'शाकल' ऐसा सिद्ध होता है। शाकल शास्त्र, शाकल संघ आदि प्रयोग गतार्थ होते हैं। इस स्थान पर महर्षि दयानन्द ने **'शाकलात् वा'** पाठ माना

† १. श्री हरिप्रसादजी, २. श्री भगवद्दत्तजी बी० ए०

महाभाष्य (४ । १ । १८)

है। यञन्त शकल शब्द से वैकल्पिक अण् करके 'शाकल, शाकलक' दो प्रयोग साधते हैं। दूसरे वैयाकरण गर्गाद्यन्तर्गत कण्वादि गण में पढ़े अञन्त शकल शब्द से कण्वादिभ्यो गोत्रे (४। २। ११। १) से अण् करके 'शाकलाः' साधते हैं।

अब प्रश्न यह है कि ऋग्वेद के सर्वानुक्रमणीकार ने जो 'ऋग्वेदाम्नाये शाकलके' यह प्रयोग दिया है इसका क्या अभिप्राय है शाकल्य प्रोक्त ऋग्वेद या कुछ और पदार्थ ?

शकलाद् वा ॥ सूत्र के व्याख्यान से 'शाकल' से शाकल्य का प्रोक्त लक्षण या शास्त्र ही सूचित है। शाकल्य ने कौनसा शास्त्र कहा ? वेदमन्त्र तो नित्य ही हैं। उनको वह क्या रचेगा ? प्रत्युत उस पर पद-पाठादि का उपदेश प्रवचनादि कर सकता है। फलतः शाकल्य ने ऋग्वेद के पदपाठ तथा उच्चारण आदि के जो विशेष नियम निर्धारित किये वही समस्त 'शाकल' या 'शाकलक' कहाया, इसके ही उपचार से ऋग्वेद संहिता भी उसी नाम से कही जाती है। जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने लिखा है—

तत्राम्नाये सम्यगभ्यासयुक्ते खिलरहिते शाकलके। शाकल्यस्योच्चारणं शाकलकम्। † शाकल्य ने संहिता को नहीं बनाया। प्रत्युत पदपाठ का अन्यों से भिन्न उपदेश किया है। अन्य शाखाप्रवर्त्तकों के पदपाठों और व्याख्यानों से शाकल्यकृत पदपाठ और व्याख्यान अवश्य भिन्न-भिन्न रहे हैं, जैसा कि शौनकीय ऋक्-प्रातिशाख्य में भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतों को दर्शाया है। और वह मतभेद प्रायः पदपाठ और उच्चारण-योग्य संहिताध्ययन में हैं। जैसे—शौनकोक्त ऋग्वेदीय प्रातिशाख्य में—

१. **उकारश्चेतिकरणेन युक्तो रक्तोऽपृक्तो द्राघितः शाकलेन।** १।१।२८॥

† शाकल्येन दृष्टः शाकलः शाकल एव शाकलकः इति क्वचित्।

शाकल आचार्य ने 'उ' इस निपात को पदपाठ में इति के योग में प्राय: अनुस्वारसहित दीर्घ कर दिया है।

संहिता में है 'अवेद्विन्द्र जल्गुलः' (ऋ० १। २८। ४)। पदपाठ है अव। इत्। ऊँ इति। इन्द्र। जल्गुलः। यहां 'ऊँ इति' ऐसा पद-शाकल्य-सम्मत है। यही बात पाणिनि ने स्वीकार की है उञः ऊँ॥ पा० १। १। ८॥ उ को ऊँ आदेश हो शाकल्य के मत में।

२. तत् त्रिमात्रे शाकला दर्शयन्ति।
आचार्यशास्त्रापरिलोपहेतवः। १। १। २६॥

शाकल्य के शिष्य, आचार्य-शास्त्र की रक्षा के लिये, अन्तिम विप्लुत को सानुस्वार कर देते हैं, जैसे 'नत्वा भीरिव विन्दँती'। ऋ० १०। १४६। १॥

३. क्वचित् स्थितौ चैवमतोऽधिशाकलाः
क्रमे स्थितोपस्थितमाचरन्ति। २। ५। ५॥

संहिता-क्रम से पदपाठ 'स्थिति' कहाती है। पद के पीछे 'इति' लगाना 'उपस्थिति' है। शाकल सम्प्रदाय के विद्वान् क्रम से पढ़े हुए पद-पाठ के साथ ही साथ 'इति' सहित पद भी पढ़ देते हैं।

इत्यादि निदर्शनों से हमने स्पष्ट कर दिया कि ऋग्वेद की शाकल आदि शाखाओं के प्रवर्तक पदपाठ आदि के विशेष प्रवक्ता थे। वेद को बनाने या स्वयं मनमाना वेद-संहिता को विकृत करने वाले नहीं थे। संहिता के पदपाठों में भिन्न-भिन्न आचार्य के मतों में भेद होना स्वाभाविक है। जैसा कि निरुक्तकार यास्क [निरु० ६। २८] ने शाकलकृत पदपाठ (ऋ० १०। २९। १) का स्वयं खण्डन किया है।

'वनेन वायो न्यधायि चाकन्।' वा इति च य इति च चकार शाकल्यः उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यदसुसमाप्तश्चार्थः।

अर्थात् शाकल्य ने 'वायो' पद का 'वा और यः' ऐसा छेद किया,

सो ठीक नहीं है। इसी प्रकार शाकल्य के अतिरिक्त अन्य शाखाप्रवर्त्तकों के विषय में जानना चाहिये कि वे वेद की संहिता को बनाने या रूपान्तर करने वाले नहीं थे, प्रत्युत मन्त्र के ऊपर विचार करके पदपाठ, तदनुसार निर्वचन और व्याख्या प्रकट करने वाले और मन्त्रों में नाना सत्य तत्वों का साक्षात् करने वाले ही ऋषि जन, शाखा-प्रवर्त्तक थे। उनके ही उपदिष्ट व्याख्यागत पर्याय शब्दों को पिछले शिष्यों ने संहिता का रूप देकर स्थान स्थान पर पाठभेद कर दिया है। पाठभेद होने के और भी बहुत से कारण हैं जिनमें लेखक का प्रमाद तथा वक्ता और श्रोता जनों का मुखोच्चारण और श्रवण में दोष होना भी है। जहां जहां भी पाठभेद दिखाई देते हैं वहां वहां इस प्रकार के कारणों की खोज होनी चाहिये और शुद्ध वेद-संहिता का स्वरूप निर्धारित कर लेना चाहिये।

श्री महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में नाना स्थलों पर प्रायः वेद मन्त्र की संहिता को साम्प्रदायिक पाठ-विकृति से बचाया है। परन्तु वैदिक यन्त्रालय के कर्त्ता-धर्त्ता जन मूल संहिताओं में महर्षि दयानन्द के इस स्तुत्य कार्य की रक्षा नहीं कर सके। यह तथ्य मुझे भी बहुत देर बाद पता लगा है, अतः हमारी प्रकाशित मन्त्र-संहिता में भी हम उसका पालन नहीं कर सके। उदाहरणार्थ, बह्वृच-शाखाध्यायी प्रायः ड, ढ को ळ और 'ह्ळ' पढ़ते हैं। परन्तु महर्षि के वेदभाष्य के साथ छपी मन्त्र-संहिता में स्थान स्थान पर ढ का ही प्रयोग किया है, ळ, ह्ळ का नहीं। जैसे—**प्रौढः समुद्रमव्यथिः०** (ऋ० १।१७।१५)। ऐसे तथ्यों पर अभी और अनुशीलन होना चाहिये, तभी शुद्ध वेद की संहिता का स्वरूप प्राप्त होगा, अस्तु।

ऋग्वेद का मन्त्र-परिमाण

यह एक विवादास्पद एवं विचारणीय विषय है। शाखाओं के विवेचन से हमने बतलाया है कि उनमें सूक्तों के क्रम में भेद है, कहीं सूक्तों की मन्त्र-संख्या में भी भेद होना प्रमाणित होता है, कइयों में कोई सूक्त

हैं, कोई नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वेद की शाखाओं की मन्त्र-संख्या में भी भेद होगा, सूक्त-संख्या में भी भेद होगा तो पूर्ण ऋग्वेद कितना होना चाहिये ? इसका सामान्य समाधान तो यही है कि वेद का स्वतः एक स्थिर परिमाण होना उचित है। उसको किसी ने घटाया बढ़ाया नहीं, गुरु वा आचार्यों ने शिष्यों को उपदेश किया। वे उसको याद कर लेते थे। इस प्रकार स्मृति-शक्ति न्यूनाधिक हो जाने से सूक्तों और मन्त्रों की संख्या का भेद होना संभव है। पुराणकारों ने जो स्थान स्थान पर लिखा है कि अमुक ने तीन संहिता कीं, चार संहिता कीं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने संहिता में गड़बड़ कर दी, प्रत्युत उसका अभिप्राय केवल यह है शिष्य-भेद से जो कुछ भेद हो गया, उससे संहिता का शाखा-भेद हो गया अर्थात् शाखा में शिष्य की विशेषता कारण थी, न कि संहिता-भेद करने में गुरु की भेदकारिणी विशेष बुद्धि। वस्तुतः वेद तो एक ही था। तब उसका परिमाण भी सर्वत्र एक समान नियत होना आवश्यक है।

इसी सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि—

बृहतीसहस्राण्येतावत्यो हर्चः प्रजापतिसृष्टाः।

अर्थात् प्रजापति ने ऋचाओं का व्यूहन किया तो १२ सहस्र बृहती परिमाण समस्त ऋचाएँ थीं। अर्थात् ऋचाओं का पूर्ण परिमाण १२००० × ३६ = ४३२००० अक्षर थे।

तदनुसार ही अनुवाकानुक्रमणी में लिखा है—

चत्वारि शतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि।

अर्थात् ऋचाओं के समस्त अक्षर ४३२००० हैं और ऋचाओं की संख्या बतलाई है—

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पंच शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्त्तितम्॥

ऋग्वेद पारायण—पाठ में कुल १०५८० ऋचा और एक पाद है। यह पारायण समस्त शाखा ऋग्वेद का है। यही पारायण चरण-व्यूहकार ने भी माना है। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद-भाष्य के प्रारम्भ की भाषा-भूमिका में ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना १०५८९ दी है। साथ ही समस्त मण्डलों की संख्या दी है उनको जोड़ने से संख्या केवल १०५२१ ही आती है। यह भेद किस प्रकार है ?

आर्थर मेकडानल्ड का कथन है कि ऋषि दयानन्द ने ८ वें मण्डल के २० वें सूक्त में २६ के स्थान पर भूल से ३६ मन्त्र गिने हैं और ९ वें मण्डल में ११०८ के स्थान पर १०९७ संख्या लिखी है। इस प्रकार ११ कम गिनी है, एक ऋचा का भेद रहता है। अर्थात् कुल मन्त्र १०५२२ होने चाहियें। यदि द्विपदा ऋचाएं १२७ और भी जोड़ ली जायं तो सब मिला कर १०५६९ हो जाती हैं। तब अनुवाकानुक्रमणी ने १०५८० मन्त्र और १ पाद संख्या कैसे लिखी।

इस सम्बन्ध में ए० मेकडानल्ड की भूल तो यह है कि ऋग्वेद के (८ । २०) सूक्त की संख्याओं को दो वार दुगुना किया। इस प्रकार ४ संख्या कम करने पर मैकडानल्ड की संख्या १०५६५ रह जाती है, अस्तु।

स्वा० दयानन्द सरस्वती के गणित-संख्या १०५२१ में से १४० द्विपदा की आधी ऋचाओं में से (५ । ५४) की दो कम करके ६८ और जोड़ी जावें तो समस्त संख्या १०५२१ + ६८ = १०५८९ हो जाती हैं। इस प्रकार के संख्या-वैषम्य पर अभी बहुत सी बातें विचारणीय हैं, मैं अभी किसी नियत निश्चय पर नहीं हूँ।

कश्यप-दृष्ट लुप्त वेद

बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी तथा सायण और स्कन्द स्वामी आदि ने १ । ९९ सूक्त की भाष्य की उत्थानिका में लिखा है कि उक्त सूक्त से

आगे १००० सूक्त थे, उनमें क्रम से एक २ मन्त्र बढ़ता जाता था। षड्गुरुशिष्य के लेखानुसार ये ऋचाएँ :—

ऋचस्तु पंचलक्षा स्युः सैकोनशतपंचकम्।

संख्या में ५००४९९ थीं। स्कन्द के कथनानुसार इनका अध्ययन छूट गया है, अतः ये लुप्त हो गईं। परन्तु इनकी सत्ता सुनी जाती है, देखी नहीं है। इन १००१ सूक्तों का आदि मन्त्र १ ऋचा वाला 'जातवेदसे०' (मं० १। सू० ९९) वेद में विद्यमान है।

यदि इन पाँच लक्ष चार सौ उनतीस मन्त्रों को लुप्त वेद मान लें तो एक लक्षात्मक वेद मानने वालों का मन्तव्य भी कट जाता है। परन्तु जिन ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठ करके रक्खा, उन्होंने इस 'काश्यप वेद' की उपेक्षा कर दी हो, ऐसा विदित नहीं होता। अवश्य वे ऋचाएँ वर्तमान वेद का मूलभाग न थीं, प्रत्युत व्याख्यान रूप से थीं। तभी षड्-गुरु-शिष्य ने लिखा है "खिलसूक्तानि चैतानि" ये खिल सूक्त थे। ऋग्वेद के अनेक सूक्त हैं, परन्तु उनको संहिता में स्थान नहीं मिला। इसी लिये उनका अध्ययन छूट गया है। वे मन्त्र उसी प्रकार थे जैसे उपनिषदों, ब्राह्मणों में अनेक ऋचाएँ हैं जो मूल संहिता में नहीं पढ़ी जाती हैं।

दाशतयी

ऋग्वेद संहिता के दश मण्डल होने से इसको 'दाशतयी' कहते हैं। अध्याय, वर्ग, क्रम से इसमें ६४ अध्याय थे और मण्डल-अनुवाक-सूक्त क्रम से दश मण्डल रहे, सब शाखाओं में यह समान विभाग था।

छन्द, ऋषि और देवता

छन्द के विषय में ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त प्रतीत होता है कि—

अक्षराण्येव सर्वत्र निमित्तं बलवत्तरम्।
विद्याद् विप्रतिपन्नानां पादवृत्तान्तरे ऋचाम् ॥ ऋ० प्रा० १७।३५ ॥

छन्दों के पाद, छन्द और अक्षरों द्वारा यदि परस्पर विप्रतिपत्ति अर्थात् मतभेद उपस्थित हो तो सर्वत्र अक्षरों को ही निमित्त मान कर छन्द निर्णय कर लेना चाहिये। तदनुसार ही ऋषि दयानन्द ने सर्वत्र छन्दों का प्रतिपादन किया है। जहाँ छन्दों में विविध मत हैं वहां सन्धि-युक्त स्थलों में व्यूहादि का विचार करके या पूरणार्थक 'इत्यादि' का निर्देश करके मतान्तर का निर्देश कर दिया है। छन्दोज्ञान के लिये पिंगल तथा ऋक्-प्रातिशाख्य में १७वां पटल उत्तम है।

ऋषि और देवता विषय में ऋषि दयानन्द का मत है कि जड़ पदार्थ ऋषि नहीं हो सकते, इसलिये संवाद सूक्तों में नदी आदि जड़ पदार्थों को ऋषि मानना असंगत है। इसी प्रकार संवाद-सूक्तों में ऐतिहासिक व्यक्ति देवता नहीं हो सकते, वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। इनके अतिरिक्त स्थलों में देवता का इतना मत-भेद नहीं देवता-सम्बन्ध में आर्य वेदज्ञों को बृहद्देवता के समान देवता-प्रदर्शक पृथक् एक ग्रन्थ बनाना चाहिये।

प्रस्तुत भाष्य

प्रस्तुत भाष्य में हमने यथासम्भव सरल, सुबोध भाषा में वेदमन्त्र-गत ज्ञान को प्रकट करने का यत्न किया है। इन खण्डों में हम पाठकों की सेवा में वेदमन्त्रों में कल्पित इतिहासों की आलोचना स्थानाभाव से नहीं कर सके। केवल शाखा-भेद आदि की विवेचना कर सके हैं। ऋग्वेद के सम्बन्ध में अभी सहस्रों बातें ज्ञातव्य और विवेचना-योग्य हैं। जिनमें से सबसे मुख्य वेदमन्त्रों में कल्पित इतिहास हैं। इसकी विवेचना हम पृथक् ग्रन्थ में करेंगे। ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान विस्तृत विषय सूची से यथावत् हो जावेगा। भाष्य में भी स्थान-स्थान पर नाना रहस्यों को खोल दिया है, जिसकी सूचना विषय-सूची में ही दे दी गयी है। पाठक जन वहां ही देखें। ऋग्वेद पर हमें एक सायण भाष्य, दूसरा महर्षि दयानन्दकृत भाष्य के अतिरिक्त स्कन्द स्वामी, व्यंकटमाधव आदि के

खण्ड-भाष्य भी देखने को मिले, अंग्रेजी, बंगला और मराठी के अनुवाद भी देखे हैं। वे सब सायण को नहीं छोड़ सके। महर्षि दयानन्द ने अपने पदार्थ-भाष्य में बहुत अधिक कौशल दर्शाया है। जिसको भाषान्तरकार नहीं निभा सका। स्थान स्थान पर वाचक-लुप्तोपमा आदि की सूचनाओं को दृष्टि में रख कर ऋग्वेद का सरल अर्थ तथा उपमा के बल से प्राप्त पक्षान्तरों में नाना प्रकार के श्लेषमूलक अर्थों का चमत्कार देखना आवश्यक है, जिसको दर्शाने का थोड़ा सा यत्न प्रस्तुत आलोक-भाष्य में किया है। इसमें भी कितना ही लेख्य विषय जो मन्त्र के आशय को स्पष्ट करता है, विस्तार-भय से सर्वथा छोड़ दिया गया है।

महर्षि दयानन्द की बनाई 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' में बहुत से वेद-विषयक प्रश्नों को सरल कर दिया है, उनको पुनः दोहराना पिष्ट-पेषण जानकर इस भूमिका में स्थान नहीं दिया गया। वे ज्यों के त्यों वहां से ही देख लेने चाहियें।

तृतीय संस्करण

मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरे जीवनकाल में ऋग्वेद के प्रथमाष्टक के आलोक-भाष्य का तृतीय संस्करण हो गया है। इसकी भूमिका में कुछ अंशों की वृद्धि की गई है। नवीन अनुसन्धान व आवश्यक ज्ञातव्य बातें इसमें और जोड़ी गई हैं। शाखा आदि के सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्तजी बी. ए., वैदिक अनुसन्धान-विशेषज्ञ ने वेद-शाखाओं पर 'वैदिक वाङ्मय के इतिहास' के प्रथम भाग में बहुत अच्छा विवेचन किया है। मैं उनसे अनेक अंशों में सहमत हूँ। इसलिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ। शाखा सम्बन्ध में अभी अनेक अंश अस्पष्ट, विवादास्पद और अनिर्धारित हैं। जिनको हमने भूमिका में नहीं दिया, कालान्तर में उनकी सामग्री संकलित की जावेगी।

उस अपार ज्ञानमय प्रभु की परम रहस्यमय वाणी के सहस्रों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक रचनाओं और यज्ञों के रहस्यों का विवरण मुझ सा तुच्छ व्यक्ति क्या कर सकता है ? तो भी देवतुल्य विद्वान् जनों की सेवा में जो भी 'पत्र-पुष्प' रूप से निवेदन कर दिया है, हमें आशा है, वे उससे ही प्रसन्न होकर सन्तोष व हर्ष प्रकाश करेंगे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे वेदानुशीलनरूप यज्ञ में सफल करे।

सज्जनों को तो क्या कहूँ। केवल—

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते॥

विद्वानों का अनुचर—

जयदेव शर्मा

विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ,

आदर्श नगर, अजमेर।

प्रथम संस्करण—पौष शुक्ला दशमी, १९८७ वि०

द्वितीय संस्करण—चैत्र शुक्लाष्टमी, २००० वि०

तृतीय संस्करण—माघ शुक्ला पञ्चमी, २००८ वि०

चतुर्थ संस्करण—

पञ्चम संस्करण—संवत् २०१३

षष्ठ संस्करण की भूमिका

——:०:——

ऋग्वेद भाष्य का यह षष्ठ संस्करण वेद-स्वाध्यायी जनों के हाथों में पहुँचाते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। इस संस्करण का संशोधन आचार्य श्री रमेशचन्द्र शास्त्री, विद्या भास्कर ने बड़े परिश्रम से किया है। साथ ही उन्होंने प्रत्येक मन्त्र में प्रतिपादित विषयों की विस्तृत सूची भी तय्यार की है। अब पाठक इस सूची को देखकर मन्त्र में प्रतिपादित मुख्य विषय की जानकारी सरलता से कर सकेंगे।

वेद का विषय अपने आप में गहन है उसे सरल भाषा तथा भावों में स्वाध्यायी वेद जिज्ञासुओं के सामने उपस्थित करना हमारा मुख्य लक्ष्य है। इसी दृष्टि से इस संस्करण का संशोधन कराया गया है। आशा है वेद स्वाध्यायी ज्ञान पिपासु इससे पूर्ण लाभ उठायेंगे।

निवेदक—

शिरीश चन्द्र शिवहरे

मैनेजिंग डाइरेक्टर

❀

ओ३म्

ऋग्वेद-विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)
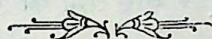
प्रथम-मण्डलम् । प्रथमोऽष्टकः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सूक्त १ (पृष्ठ १-४)—(१) परमेश्वर की स्तुति, पक्षान्तर में राजा एवं विद्वान्, भौतिक अग्नि, यज्ञाग्नि; (२) उपास्यदेव परमेश्वर; (३) परमेश्वर-स्तुति से वीर सन्तान-युक्त धन की प्राप्ति; (४) सृष्टिरूप यज्ञ में व्यापक ईश्वर; (५) सर्व-प्रकाशक; (६) दानशील उपासक का कल्याणकारी; (७) परमेश्वर एवं विद्वान्; (८) सृष्टि-रक्षक; (९) कल्याणदाता ईश्वर ।

सूक्त २ (पृष्ठ ४-८)—(१) ज्ञानस्वरूप ईश्वर; (२) विद्वानों द्वारा स्तुत्य ईश्वर; (३) वेदवाणी; (४) सूर्य एवं वायु के समान ईश्वर; (५) सूर्य एवं वायुरूप गुरु तथा आचार्य; (६) दोनों के द्वारा शिष्य का उपनयन; (७) मित्र-सूर्य और वरुण-वीर पुरुष की प्राप्ति; (८) मित्र-वरुण रूपी न्यायाधीश और राजा; (९) दोनों के द्वारा बल का धारण ।

सूक्त ३ (पृष्ठ ८-१२)—(१) स्त्री और पुरुषरूपी अश्वियों का वर्णन; (२) कर्मकुशल एवं नायक अश्वी; (३) दुःख तथा शत्रुनाशक अश्वी; (४) ऐश्वर्यवान् राजा; (५) सूर्य के समान तेजस्वी राजा; (६) इन्द्रतुल्य वीर पुरुष; (७) विश्वे देवा-समस्त विद्वान् पुरुष; (८) विद्वानों द्वारा ज्ञान-प्राप्ति; (९) यज्ञ सत्संग आदि का सेवन; (१०-१२) वेदवाणी का वर्णन ।

सूक्त ४ (पृष्ठ १२-१५)—(१) गौ के दृष्टान्त से विद्वान् और परमेश्वर की उपासना; (२) राष्ट्र का रक्षक राजा; (३) ज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट ईश्वर और राजा; (४) आत्मज्ञानी विद्वान् की प्राप्ति; (५) निन्दक जन दूर जावें; (६) विद्वान् तथा राजा की शरण में जाना; (७) अश्व के दृष्टान्त से राजा की नियुक्ति; (८) राजा द्वारा राष्ट्र की रक्षा; (९) ऐश्वर्यवान् की प्रार्थना; (१०) इन्द्ररूपी ईश्वर और राजा की स्तुति।

सूक्त ५ (पृष्ठ १५-१८)—(१) ईश्वर-स्तुति करना; (२) वरणीय ऐश्वर्य का स्वामी ईश्वर; (३) बुद्धिदाता ईश्वर; (४) ऐश्वर्यवान् राजा; (५) सदाचारी राष्ट्रकर्मी पुरुष; (६) ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ राजा; (७) सेनापतियों से युक्त राजा; (८) वाणियों द्वारा ईश्वर महिमा का गान; (९) पौरुष-युक्त राजा; (१०) ईशान राजा।

सूक्त ६ (पृष्ठ १८-२१)—(१) विद्वानों द्वारा ईश्वर का ध्यान; (२) प्राण और अपान को वश में करना; (३) परमेश्वर तथा राजा का वर्णन; (४) वायुओं द्वारा आकाश में जल का धारण;(५) राजा द्वारा नाना ऐश्वर्य-प्राप्ति; (६) स्तोता द्वारा ईश्वर-स्तुति;(७) राजा और सेनापति; (८) सेना-सहित सेनापति का वर्णन; (९) वायु; (१०) पदार्थों का संयोग-विभाग-कर्त्ता सूर्य।

सूक्त ७ (पृष्ठ २१-२४)—(१) ऐश्वर्यवान् ईश्वर की पूजा; (२) संवत्सर तथा तप से युक्त सूर्य; (३) ईश्वर द्वारा सूर्य की स्थापना; (४) परमेश्वर तथा राजा द्वारा प्रजा-रक्षा; (५) प्रजास्नेही राजा का स्मरण; (६) अभीष्टफल दाता परमेश्वर; (७) ईश्वर-स्तुति के मन्त्र श्रेष्ठ हैं;(८) वृषभ के दृष्टान्त से ईश्वर और राजा का वर्णन; (९) पञ्चों का राजा इन्द्र है, (१०) मोक्षमय ईश्वर।

सूक्त ८ (पृष्ठ २४-२७)—(१) राजा एवं परमेश्वर; (२) अश्वबल से शत्रु का विनाश; (३) शस्त्रास्त्रों का ग्रहण; (४) सेना की वृद्धि; (५) महान् राजा परमेश्वर; (६) आदर-योग्य पुरुष; (७) आदर-योग्य राजा; (८) पूजनीय

में विद्वानों की नियुक्ति; (९) इडा, सरस्वती और मही नामक तीन देविय; (१०) त्वष्टा परमेश्वर का स्मरण; (११) वनस्पति; (११) 'स्वाहा' का वर्णन।

सूक्त १४ (पृष्ठ ४७-५१)—(१) सर्वव्यापक ईश्वर; (२) विद्वान् पुरुष; (३) विद्वान् द्वारा उपदेश; (४) विद्वानों द्वारा वीरों का पालन; (५) विद्वानों द्वारा ईश्वर-स्तुति; (६) परमेश्वर; (७) अग्निरूप ईश्वर; (८) वषट्कार का वर्णन: (९) होता पुरुष: (१०) ज्ञानी पुरुष-जीव; (११) मनु होता: (१२) विद्वानों द्वारा शक्ति-संयोजन।

सूक्त १५ (पृष्ठ ५२-५६)—(१) सूर्य द्वारा जलपान; (२) विद्वान् का वर्णन; (३) आत्मतत्त्व का धारक; (४) अग्निरूप ज्ञानी; (५) इन्द्ररूप आत्मा; (६) राजा और मन्त्री; (७-१०) द्रविणोदा पुरुष; (११) पति-पत्नी रूप अश्वियों का वर्णन; (१२) दानी पुरुष।

सूक्त १६ (पृष्ठ ५६-५९)—(१) आत्मा और ईश्वर; (२) आत्मा को धारण करनेवाली नाड़ियां; (३) ऐश्वर्यशाली परमात्मा; (४) सूर्य के दृष्टान्त से परमात्मा का वर्णन; (५) मृग के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन; (६) ईश्वर द्वारा सूर्यादि का धारण; (७) ईश्वर द्वारा जीव को शरण में लेना; (८) वायु के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन; (९) परमेश्वर और राजा।

सूक्त १७ (पृष्ठ ६०-६२)—(१-३) राजा और सेनापति; (४) विद्वानों का सत्सङ्ग: (५-९) इन्द्र तथा वरुण रूपी परमात्मा।

सूक्त १८ (पृष्ठ ६२-६५)—(१) ब्रह्मणस्पति परमेश्वर; (२) वैद्य के समान सुखदाता ईश्वर; (३-५) ब्रह्मणस्पति परमेश्वर: (६) सभापति की प्राप्ति; (७) यज्ञसाधक ईश्वर; (८) सभापति के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन; (९) मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय ईश्वर।

सूक्त १९ (पृष्ठ ६५-६८)—(१) विद्वान् और ईश्वर; (२-३) भूतों सहित परमेश्वर का प्रकट होना; (४) सूर्य-समान तेजस्वी सम्राट्; (५) वीर पुरुषोंका वर्णन; (६) सूर्य के दृष्टान्त से नायक पुरुष का वर्णन; (७) सूर्य एवं विद्युत्; (८) मरुतों के साथ सूर्य का आगमन; (९) राजा का आगमन।

द्वितीयोऽध्यायः ।

सिंचाई द्वारा अन्न-प्राप्ति; (१९) अमृतमय जल; (२०) रोगनाशक जल, (२१) औषध-सेवन; (२२) असत्यवचन को दूर करना; (२३) जल तथा अग्नि; (२४) परमेश्वर और आचार्य।

सूक्त २४ (पृष्ठ ८८-९४)—(१) जीव द्वारा पिता-माता का दर्शन; (२) जीवों द्वारा प्रभु-नाम-स्मरण; (३) उत्पादक सविता; (४) परमेश्वर, (५) प्रभु एवं राजा; (६) प्रभु का अपारबल; (७) राजा वरुण-सूर्य; (८) राजा के कर्तव्य; (९) राजा और परमेश्वर; (१०) आकाश-स्थित नक्षत्रगण; (११) वरुण-ईश्वर; (१२-१४) शुनःशेप अर्थात् सुखाभिलाषी मुमुक्षु-बद्ध जीव की प्रार्थना; (१५) वरुण द्वारा पाशछेदन।

सूक्त २५ (पृष्ठ ९४-१०१)—(१) वरणीय परमेश्वर; (२) हम किसी पर आघात न करें; (३) सुख के लिये ईश्वर-स्तुति; (४) पक्षियों के दृष्टान्त से ज्ञानी पुरुष का वर्णन; (५) राजा की नियुक्ति; (६) गायक के दृष्टान्त से साधक का वर्णन; (७) राजा और परमेश्वर; (८) परमेश्वर और विद्वान्; (९) वरुण द्वारा वायु के मार्ग का ज्ञान; (१०) राज-नियमों का धारक राजा; (११) ज्ञानी पुरुष; (१२) परमेश्वर विद्वान् और राजा; (१३) सूर्य के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (१४) द्रोह के अयोग्य राजा और परमेश्वर; (१५) ईश्वर सूर्य और मेघ; (१६) गौ के दृष्टान्त से बुद्धियों का वर्णन; (१७) गुरु और शिष्य; (१८) परमेश्वर का दर्शन; (१९) परमेश्वर-स्तुति; (२०) विद्वान्, परमेश्वर और राजा; (२१) उत्तम, मध्यम, अधम, बन्धनों का नाश।

सूक्त २६ (पृष्ठ १०१-१०४)—(१) विद्वान् राजा और परमेश्वर; (२) विद्वान् द्वारा वेदवाणी का उपदेश; (३) पिता के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (४) न्यायाधीश; (५) विद्वान् द्वारा वेदवाणी का श्रवण; (६) विद्वान् का आदर ईश्वर का आदर; (७) विश्वपति राजा हमारा प्रिय हो; (८) सूर्य-किरणों के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (९) अमृत और मर्त्य; (१०) सेना-पति और राजा।

रईश्व (६) नायक सेनापति; (७) श्रेय और प्रेय का दाता ईश्वर; (८) कर्म-शील पुरुष की नियुक्ति; (८) जागरणशील परमेश्वर; (१०) आचार्य परमेश्वर और राजा; (११) राजा के समान ईश्वर भी प्रजापालक है; (१२) परमेश्वर, राजा और सभाध्यक्ष; (१३) चतुरक्ष ईश्वर; (१४) राजा, विद्वान् और सभाध्यक्ष; (१५) साधक का रक्षक ईश्वर; (१६) आप्त और व्यापक परमेश्वर; (१७) तेजस्वीजनों से युक्त ईश्वर; (१८) ईश्वर, विद्वान् और राजा।

सूक्त ३२ (पृष्ठ १३१-१४०)—(१-१५) राजा और सेनापति के पराक्रमों का इन्द्ररूप से वर्णन। सूर्य, वायु और मेघों के वर्णन से वृष्टि-विद्या का रहस्य, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के वध का रहस्य।

तृतीयोऽध्यायः।

सूक्त ३३ (पृष्ठ १४०-१४८)—(१) विद्वानों द्वारा प्रभु-शरण-प्राप्ति; (२) बाज के दृष्टान्त से ईश्वर के समीप जाने का वर्णन; (३) सेनाओं का स्वामी राजा; (४) अधर्मियों का नाशक राजा; (५) वायु के समान राजा; (६) ऐश्वर्यवान् राजा; (७) प्रजा के नाशक पुरुष का नाश; (८) राष्ट्र का तेजस्वी स्वामी; (९) सूर्य के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (१०) सूर्य के दृष्टान्त से राष्ट्रपति का वर्णन; (११) शत्रुहन्ता राजा; (१२) शुष्ण और इलीविश का रहस्य; (१३-१५) वीर योद्धा और वृषभ की तुलना।

सूक्त ३४ (पृष्ठ १४८-१५४)—(१) विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य; (२) मधुवाह त्रिचक्र रथ का रहस्य; (३) आत्मा, शरीर और मनका सेचन; (४) स्त्री-पुरुषों द्वारा बार-बार किये जाने वाले कर्त्तव्य; (५) सूर्य-पुत्री प्रभा के दृष्टान्त से राजपुत्री प्रजा का वर्णन; (६) स्त्री-पुरुषों द्वारा रोगनाशक उपाय करना; (७) आत्मा और वायु के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुषों का वर्णन; (८) आहुति-योग्य अन्नादि पदार्थों का सम्पादन; (९) त्रिवृत त्रिचक्र रथ; (१०-१२) स्त्री-पुरुषों को उत्तम जल, अन्न आदि ऐश्वर्य-प्राप्ति का उपदेश।

सूक्त ३९ (पृष्ठ १७६-१८१)—(१) विद्वान्, सैनिक एवं व्यापार-कुशल पुरुष; (२) वीरों के शस्त्र स्थिर हों; (३) वीरों का आक्रमण सर्वत्र हो; (४) वीरों द्वारा शत्रुनाश; (५) मरुत् के समान वेगवान् वीर; (६) वीरों के प्रयाण से लोग डरें; (७) संकट-ग्रस्तों की रक्षा; (८) विद्वान् पुरुष एवं सैनिक; (९) विद्युत् के दृष्टान्त से विद्वानों का वर्णन; (१०) वीर एवं विद्वान् का वर्णन।

सूक्त ४० (पृष्ठ १८१-१८४)—(१) वेदज्ञ विद्वान् के कर्त्तव्य; (२) पुत्रों और शिष्यों द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का धारण; (३) वेदज्ञ ब्राह्मण; सूनृता स्त्री और राजसभा; (४) नायक पुरुष; (५) राजा, विद्वान् और न्यायाधीश; (६) वेदोपदेश तथा वेदाभ्यास का उत्तम फल; (७) राजा को कौन प्राप्त होता है ? (८) राजा द्वारा शत्रुनाश कब होता है ?

सूक्त ४१ (पृष्ठ १८४-१८७)—(१) वरुण, मित्र, अर्यमा नामक राज्याधिकारी; (२) बाहुबल से सुरक्षित मनुष्य; (३) राजा द्वारा शत्रु के दुर्गों का नाश; (४) आदित्य ब्रह्मचारी विद्वान्; (५) राजा एवं राज-कार्य; (६) पुत्ररत्न की प्राप्ति; (७) न्यायाधीश; (८) पीडक तथा निन्दक से बात न करना; (९) चार भय स्थानों का वर्णन।

सूक्त ४२ (पृष्ठ १८७-१९०)—(१-९) पूषा, पृथ्वी के तुल्य पोषक, प्रजापालक राजा के कर्त्तव्य, नाना प्रकार के दुष्ट पुरुषों का दमन, ऐश्वर्यों की याचना और सञ्चय।

सूक्त ४३ (पृष्ठ १९०-१९२)—(१-४) रुद्र, मित्र वरुण आदि राज्याधिकारियों का वर्णन; (५) सूर्य-समान परमेश्वर; (६) परमेश्वर वैद्य और राजा; (७) राजा द्वारा प्रजा की सहायता; (८) राजा द्वारा युद्ध; (९) राजा द्वारा प्रजा-प्राप्ति।

सूक्त ४४ (पृष्ठ १९२-१९९)—(१) ज्ञानी पुरुष द्वारा विद्वानों का धारण; (२) दूतरूप से विद्वान् का वर्णन; (३) दूत का वरण-चुनाव, (४) ज्ञानी पुरुष की समस्त कार्यों में नियुक्ति; (५) विद्वान् की स्तुति;

चतुर्थोऽध्यायः।

सूक्त ४८ (पृष्ठ २११-२२०)—(१) 'दिवो दुहिता' का रहस्य; (२) उषा-प्रभात वेला, राज्य संस्था; (३) उषा के आगमन पर होने वाले कार्य; (४) उषा काल में परमेश्वर का नाम स्मरण; (५) स्त्री के समान उषा; (६) नववधू के समान उषा; (७) नववधू द्वारा पितृगृह प्राप्ति; (८) सूनरी और मघोनी उषा; (९) पूर्व तथा पश्चिम से आनेवाली उषा के दृष्टान्त से कन्या का वर्णन; (१०) कन्या द्वारा वृद्धों के वचनों का श्रवण; (११) कन्या द्वारा अन्नादि की प्राप्ति; (१२) कन्या द्वारा उत्तम गुणों का धारण; (१३) कन्या द्वारा सौभाग्य-प्रदान; (१४) स्त्रियों द्वारा उपदेश; (१५) स्त्री द्वारा ऐश्वर्य-प्रदान; (१६) विदुषी स्त्री द्वारा हमारा संवर्धन।

सूक्त ४९ (पृष्ठ २२०-२२१)—(१-४) उषा के दृष्टान्त से कान्तिमती कन्या के कर्त्तव्यों का वर्णन।

सूक्त ५० (पृष्ठ २२१-२२७)—(१) सूर्य के दृष्टान्त से उत्तम पति का वर्णन; (२) स्त्री-पुरुष ऋतुकालाभिगामी हों; (३) अग्नि के दृष्टान्त से पुरुष का वर्णन; (४) सूर्य के समान परमात्मा; (५) परमेश्वर और विद्वान्; (६) वरुण-परमात्मा; (७) जन्मों का द्रष्टा परमेश्वर; (८-९) सूर्य के सप्त अश्वों का रहस्य; (१०) आत्मज्योति की प्राप्ति; (११) हृदय-रोग का नाशक सूर्य; (१२) पाण्डु रोग चिकित्सा तथा उसका आध्यात्मिक रहस्य; (१३) शत्रु का विनाश।

सूक्त ५१ (पृष्ठ २२७-२३५)—(१) विद्वान् पुरुष की स्तुति; (२) शतकर्मा सेनापति; (३) सेनापति और राजा; (४) इन्द्र द्वारा वृत्रवध का रहस्य; (५) ऋजिश्वा की रक्षा; (६) कुत्स की रक्षा, अतिथि के लिये शम्बर का नाश; (७) विद्वान् राजा और सेनापति; (८) आर्य एवं दस्यु; (९) शत्रुहन्ता राजा; (१०) राजा को ऐश्वर्य की प्राप्ति; (११) उशना-राजमन्त्री; (१२) राजसभा में राजा; (१३) वृषणश्व की सेना का रहस्य; (१४) शत्रुहन्ता इन्द्र का रहस्य; (१५) स्वराष्ट्र वृषभ का रहस्य।

सूक्त ५९ (पृष्ठ २७५-२७९)—(१-७) अग्नि, वैश्वानर नाम से अग्नि, विद्युत् एवं सूर्य के दृष्टान्त से अग्रणी नायक, सेनापति, राजा के कर्त्तव्य तथा परमेश्वर की दिव्य महिमा का वर्णन। वैश्वानर शब्द के विविध अर्थ।

सूक्त ६० (पृष्ठ २७९-२८१)—(१) वायु के दृष्टान्त से विजिगीषु राजा का वर्णन; (२) सूर्य के समान मुख्य राजा का वर्णन; (३) मधुर-भाषी पुरुष; (४) मनुष्यों में वरेण्य शासक; (५) विद्वान् और राजा;

सूक्त ६१ (पृष्ठ २८१-२९०)—(१) इन्द्र-राजा को भेंट देना; (२) राजा और विद्वान्; (३) उत्तम पद के लिए राजा की प्राप्ति; (४) शिल्पी के उदाहरण से राजा का वर्णन; (५) अश्व के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (६) विद्वान् शिल्पी का कर्त्तव्य; (७) शत्रु-विजय की नीति; (८) गृह-पत्नियों के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य; (९) स्वराट् इन्द्र का स्वरूप; (१०) उसके प्रजा और शत्रुओं के प्रति कर्त्तव्य; (११) प्रजाजन के हाथ में शासन देना; (१२) वायु, मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से शत्रु-विजय का उपदेश; (१३) युद्ध-विद्या के नित्य अभ्यास का उपदेश; (१४) बलशाली सेनापति का स्वरूप; (१५) इन्द्र का लक्षण; (१६) हारियोजन इन्द्र का रहस्य।

पञ्चमोऽध्यायः।

सूक्त ६२ (पृष्ठ २९०-२९९)—(१) विश्रुत परमेश्वर की स्तुति; (२) विद्वानों के कर्त्तव्य। आङ्गिरस, विद्वान्; (३) माता-पुत्र के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य, सरमा का रहस्य; (४) शत्रु-विजय के लिये तोपों का प्रयोग; (५) राष्ट्र-संवर्धन एवं प्रजा का उपकार; (६) विद्युत् के समान राजा का कर्त्तव्य; (७) प्राण एवं सूर्य के समान राजा तथा सेनापति के कर्त्तव्य; (८) दिन-रात्रि के समान राजा तथा प्रजा का कर्त्तव्य; (९) सूर्य के समान पुत्र तथा राजा के कर्त्तव्य; (१०) अंगुलियों के समान

प्रजा एवं सेना का कर्त्तव्य; (११) स्त्रियों के समान विद्वान् का कर्त्तव्य; (१२) ऐश्वर्यवर्धक राजा; (१३) विद्वान् सुशासक का कर्त्तव्य।

सूक्त ६३ (पृष्ठ २९९-३०३)—(१) राजा, परमेश्वर एवं आचार्य का वर्णन; (२) राजा के हाथ में राज-दण्ड का समर्पण; (३) शत्रु-विनाश के उपाय; (४) दुष्टों का दमन करना; (५) हथौड़े से लोहे के समान शत्रु-बल को तोड़ने का आदेश; (६) मेघ के समान प्रजा-रक्षक का कर्त्तव्य; (७) सप्ताङ्ग राष्ट्रबल से सप्ताङ्ग शत्रु-बल का भेदन; (८) जल एवं अन्न के समान प्रजा का पोषण; (९) ऐश्वर्य का दान।

सूक्त ६४ (पृष्ठ ३०३-३१२)—(१) विद्वानों का कर्त्तव्य; (२) वीर पुरुषों के कर्त्तव्य; (३) रुद्र नामक वीर गण; (४) वीरों का वेश; (५-६) वायुओं के समान रुद्र वीरों का वर्णन; (७) पर्वतों और हाथियों के समान वीर योद्धा (८) सिंहों के तुल्य वीर; (९-१०) वीरों के मुख्य कर्त्तव्य; (११) रथ के समान वीर पुरुष का वर्णन; (१२) वेतनपर सैन्यों की नियुक्ति; (१३) वीर एवं विद्वान् का वर्णन; (१४-१५) प्रमुख नायकों की स्थापना।

सूक्त ६५ (पृष्ठ ३१२-३१५)—(१) अग्नि, परमेश्वर एवं विद्वान्; (२) आप्त विद्वानों के कर्त्तव्य; (३-५) विविध दृष्टान्तों से परमेश्वर; राजा, वीर पुरुष तथा नायक आदि का वर्णन।

सूक्त ६६ (पृष्ठ ३१५-३१८)—(१) नायक के गुण; (२) सेनापति के गुण; (३) अग्नि के दृष्टान्त से नेता पुरुष का वर्णन; (४) राजा के कर्त्तव्य; (५) गौ के दृष्टान्त से तेजस्वी पुरुष का वर्णन।

सूक्त ६७ (पृष्ठ ३१८-३२१)—(१-५) वीर, विद्वान्, आचार्य, परमेश्वर का वर्णन।

सूक्त ६८ (पृष्ठ ३२१-३२३)—(१) सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन; (२) जीवात्मा; (३) ईश्वर द्वारा ऐश्वर्य-प्रदान; (४) सुखदाता परमेश्वर; (५) विद्वान् पुरुष।

सूक्त ६९ (पृष्ठ ३२३-३२६)—(१) सूर्य के समान विद्वान्; (२)

गोस्तन के समान विद्वान्; (३) विद्वान्, सभापति या राजा; (४) राजा, सभाध्यक्ष; (५) राजा द्वारा प्रजा-कल्याण।

सूक्त ७० (पृष्ठ ३२६-३२९)--(१-६) अग्नि-तुल्य भोक्ता राजा, स्वामी और परमेश्वर का वर्णन।

सूक्त ७१ (पृष्ठ ३२९-३३५)--(१) बहिनों तथा गौओं के समान प्रजाओं का वर्णन; (२) वायु के समान वीरों तथा विद्वानों का वर्णन; (३) वैश्यों के समान स्त्रियों का वर्णन; (४) तीव्र वायु के समान वीर राजा के कर्त्तव्य; (५-६) योगी, गृहपति, सूर्य और आचार्य का समान वर्णन; (७) सागर के समान आचार्य, राजा और परमेश्वर; (८) स्त्री-पुरुषों द्वारा पुत्रोत्पादन; (९) राजा और विद्वान्; (१०) राजा और परमेश्वर।

सूक्त ७२ (पृष्ठ ३३५-३४०)--(१) विद्वान् का वर्णन; (२) विद्वानों का कर्त्तव्य; (३) ईश्वर और गुरु की उपासना; (४) ईश्वर और राजा का आश्रय; (५) आचार्य-विद्वान्, शिष्य एवं गुरुजन; (६) प्रभु और विद्वान्, २१ तत्त्व; (७) राजा और ईश्वर; (८) सप्त प्राणमय देह और सप्ताङ्ग राज्य; (९) मोक्षमार्ग, माता के समान परमेश्वर का वर्णन; (१०) मुक्तजन साधक।

सूक्त ७३ (पृष्ठ ३४०-३४५)--(१-२) विद्वान् एवं राजा; (३) प्रजा या सेना; (४) ईश्वर और राजा का आश्रय; (५) धनाढ्यों और ज्ञानवृद्धों के कर्त्तव्य; (६) नदियों और गौओं के समान विद्वानों का कर्त्तव्य; (७) गुरु एवं शिष्य; (८) राजा और ईश्वर; (९) परमेश्वर, सेनापति और राजा; (१०) परमेश्वर, नायक एवं ज्ञानवान्।

सूक्त ७४ (पृष्ठ ३४५-३४८)--(१-९) परमेश्वर की स्तुति, राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का उपदेश।

सूक्त ७५ (पृष्ठ ३४८-३४९)--(१-५) विद्वान्, ज्ञानी और परमेश्वर का वर्णन।

षष्ठोऽध्यायः।

सूक्त ८३ (पृष्ठ ३७४-३७७)—(१) राजा द्वारा प्रजापालन; (२) जलधारा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्य; (३) विद्वान् एवं परमेश्वर; (४) ज्ञानियों द्वारा ऐश्वर्य प्राप्ति; (५) प्रजापालक पुरुष; (६) ज्ञानोपदेष्टा द्वारा उपदेश।

सूक्त ८४ (पृष्ठ ३७८-३८६)—(१-३) वीर राजा तथा सेनापति के कर्त्तव्य; (४) अभिषेक द्वारा राज्यपद प्राप्ति; (५) राजा का आदर; (६) राजा सर्वाधिक बली एवं रथी; (७) राष्ट्र का अपराजित स्वामी; (८) ऐश्वर्यवान् राजा; (९) राजा का भयकारी बल; (१०) किरणों के दृष्टान्त से सेनाओं का वर्णन; (११) गौओं के दृष्टान्त से सेना की वृद्धि; (१२) स्वराज्य की वृद्धि; (१३) ८१० शत्रुओं का विनाश, दधीचि की अस्थियों का रहस्य; (१४) मेघ के दृष्टान्त से विजिगीषु का वर्णन, अश्व का सिर; (१५) चन्द्रमा में भी सूर्य रश्मियों का प्रकाश है; (१६) प्रश्नोत्तर रूप में राजा का वर्णन; (१७-१८) राजा द्वारा यथायोग्य विचार किया जाना चाहिये; (१९) राजा के लिये धर्मयुक्त वाणी; (२०) दीर्घदर्शी राजा द्वारा प्रजा का उपकार।

सूक्त ८५ (पृष्ठ ३८६-३९४)—(१) वायु (मरुत्) के दृष्टान्त से पदाभिषिक्त विद्वानों तथा वीरों का वर्णन; (२) उन्हें मातृभूमि का सेवक होना चाहिये, पृश्निमातरः का रहस्य; (३) गोमातरः का रहस्य, वीरों द्वारा शत्रु को परास्त करना; (४-५) मरुतों के रथ में पृषती नामक अश्वाओं का रहस्य, वायु का रहस्य; (६) वेगवान् यान तथा विशाल भवनों के उपयोग का वर्णन; बाहुबल से विजय का आदेश; (७) सूर्य के दृष्टान्त से वीरों का वर्णन; (८) विद्वानों तथा वीरों का प्राणों के समान कर्त्तव्य; (९) त्वष्टा द्वारा वज्र बनाने तथा इन्द्र द्वारा उससे वृत्रहनन का रहस्य; (१०) वृष्टि-विज्ञान का रहस्य, वीरों द्वारा अवनत राष्ट्रकी उन्नति करना; (११) प्रजा की रक्षा, मरुतों द्वारा प्यासे गौतम के लिये कूप को उखाड़ लाने की कथा का रहस्य; (१२) त्रिधातु गृह, विद्वानों को दान तथा 'त्रिधातुशर्म' का रहस्य।

वरुण का वर्णन; (४) सोम-राजा के विभिन्न धाम; (५-२३) राजा का सोमरूप से वर्णन, पक्षान्तर में, परमेश्वर तथा विद्वान् का वर्णन।

सूक्त ९२ (पृष्ठ ४२०-४३०)--(१) उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य; (२) कन्याओं का योग्य वर से साथ संयोग; (३) उत्तम नारी का आदर; (४) उषा के समान वधू के गुणों का प्रकाश; (५-९) उषा के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन; (१०) पुराण देवी का रहस्य; (११-१५) उत्तम गृहपत्नी का स्वरूप वर्णन; (१६-१७) वर-वधू के कर्त्तव्य; (१८) विद्वानों की प्राप्ति।

सूक्त ९३ (पृष्ठ ४२९-४३५)--(१) अग्नि और सोम--विद्वान् और पिता; (२) आचार्य और विद्वान्; (३) ज्ञानवान् ब्राह्मण और आज्ञापक राजा; (४) विद्वान् और राजा; (५) शिक्षक और आचार्य; (६) ब्राह्मण और क्षत्रिय; (७) भौतिक अग्नि और वायु का वर्णन; (८) परमेश्वर एवं विद्वान्; (९) अग्नि और वायु के दृष्टान्त से मन्त्री और राजा तथा आचार्य और शिष्य का वर्णन; (१०-१२) विद्वान् एवं राजा।

सूक्त ९४ (पृष्ठ ४३६-४४४)--(१) परमेश्वर की प्रार्थना; (२) विद्वान् राजा और परमेश्वर, (३) अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और राजा का वर्णन; (४) अग्नि के दृष्टान्त से नायक की वृद्धि; (५) सभापति, राजा और विद्वान्; (६) राष्ट्र का स्वामी विद्वान्; (७) अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (८) विद्वान् और नायक पुरुष; (९) नायक द्वारा दुष्टों को दण्डित करना; (१०) नायक का स्वरूप; (११) रणनायक से शत्रुओं को भय; (१२) राजा का मित्रभाव; (१३) राजा और परमेश्वर; (१४) विद्वान् और राजा; (१५-१६) अदिति-राजा, विद्वान् एवं परमेश्वर।

सप्तमोऽध्यायः।

सूक्त ९५ (पृष्ठ ४४४-४५१)--(१) दो स्त्रियों के दृष्टान्त से दिन-रात, आकाश-पृथिवी और ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ग का वर्णन; (२) दस

सूक्त १०१ (पृष्ठ ४६८-४७३)—(१-७) राष्ट्रपति को स्वीकार करना, वीर पुरुषों का मित्रता के लिये आह्वान, परमेश्वर का मित्रभाव से स्वीकार; (८) वीरों के अध्यक्ष से प्रार्थना; (९) राजा और सेनापति; (१०) राजा द्वारा राष्ट्र कार्यों का ग्रहण; (११) शत्रुहन्ता सेनापति ।

सूक्त १०२ (पृष्ठ ४७४-४७९)—(१-११) परमेश्वर की स्तुति, पक्षान्तर में राजा तथा सेनापति का वर्णन ।

सूक्त १०३ (पृष्ठ ४७९-४८३)—(१-८) परमेश्वर की स्तुति, उसके बल का वर्णन, पक्षान्तर में राजा तथा सेनाध्यक्ष का वर्णन, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर तथा शम्बरासुर को मारने का रहस्य ।

सूक्त १०४ (पृष्ठ ४८३-४८८)—(१) राजा का सिंहासन पर अभिषेक; (२) कर्मानुरूप वेतनादि देना; (३) स्वार्थ तथा अन्याय से धन हरने की निन्दा; (४) तेजस्वी की सेनाबल तथा ऐश्वर्य से वृद्धि; (५) बुरे राजा में अच्छे होने के भ्रम की सम्भावना; (६-८) राजा का प्रजा-पालन कर्त्तव्य; (९) राजा के आदर्श की प्रतिष्ठा ।

सूक्त १०५ (पृष्ठ ४८८-४९६)—(१) चन्द्रमा तथा अन्यान्य आकाशीय पिण्डों के सम्बन्ध में ज्ञान; (२) वृष्टि-जल के आदान-प्रतिदान में सूर्य-पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुष तथा राजा-प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन; (३) प्रजा तथा शिष्यों के राजा एवं आचार्य के प्रति आवश्यक विनय भाव; (४) ईश्वर-विषयक प्रश्न और प्रतिवचन तथा वेद ज्ञान के पुराने और नये धारण करने वालों का प्रतिपादन; (५) परममूल तथा सर्वाश्रय का निरूपण; (६) मूल कारण का अन्वेषण; (७) अमृत जीव का वर्णन; (८) जीवात्मा को रुलाने वाली व्याधियों को दूर करने की प्रार्थना; (९) युद्धार्थी वीर पुरुष की स्थापना, आप्तचित्त का रहस्य; (१०) देहगत प्राणों के समान पांच प्रमुख; पञ्चायत तथा पञ्चतत्त्वों का वर्णन; (११) नक्षत्रों तथा चन्द्र का वर्णन; (१२) ज्ञानियों द्वारा ईश्वर-दर्शन; (१३) ज्ञान

सूक्त १११ (पृष्ठ ५१५-५१८)—(१-५) ऋभु-शिल्पी के समान विद्वानों के कर्त्तव्यों का वर्णन।

सूक्त ११२ (पृष्ठ ५१८-५३०)—(१) राजा प्रजावर्ग तथा स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य; (२) राजा और अमात्य अथवा राजा और सेनापति; (३) राजा-रानी तथा राजा-सेनापति युगल; (४) द्विमाता तरणि का रहस्य; (५) आचार्य एवं शिक्षक; (६) राजा तथा प्रजावर्ग का पारस्परिक उपकार; (७) स्त्री-पुरुष तथा राजा एवं विद्वान् के कर्त्तव्य; (८) सभा एवं सेनाध्यक्ष के कर्त्तव्य; (९) प्राण और अपान; (१०) विश्पला का रहस्य; (११) मधुकोश का रहस्य; (१२) बिना अश्वों का रथ; (१३-२५) नायक, दो मुख्य जन, शिल्पी आदि के द्वारा रक्षा के नाना उपाय।

अष्टमोऽध्यायः।

सूक्त ११३ (पृष्ठ ५३१-५४०)—(१-२०) उषा के दृष्टान्त से नववधू गृहपत्नी, विदुषी स्त्री के कर्त्तव्यों का उपदेश, भौतिक देवता उषा के नाना रूपों तथा कार्यों का विविध दृष्टान्तों द्वारा सुन्दर वर्णन।

सूक्त ११४ (पृष्ठ ५४०-५४५)—(१) राजा के गुणों के वर्णन से लाभ; (२) आचार्य एवं प्रभु; (३) उपदेष्टा द्वारा प्रजाओं को सुखी करना; (४) दूरदर्शी पुरुष के सुख दुःख का निवेदन; (५) तेजस्वी पुरुष द्वारा साधन-प्रदान; (६) स्वादिष्ट भोगों का दान; (७) राजा और वैद्य; (८) राजा द्वारा हिंसा न करना; (९) पालक राजा और गुरु; (११) गौहत्यारों आदि को देश निकाला; (११) 'नमस्ते' का प्रयोग।

सूक्त ११५ (पृष्ठ ५४५-५४८)—(१-६) भौतिक सूर्य देवता के दृष्टान्त से परमेश्वर की स्तुति तथा तेजस्वी विद्वान् पुरुष के कर्त्तव्यों का उपदेश।

सूक्त ११६ (पृष्ठ ५४८-५६०)—(१-२) दो प्रमुख नायक तथा विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य; (३) तुग्र और भुज्यु की समुद्र यात्रा का

रहस्य; (४) विचित्र विमान का वर्णन; (५) शतारित्र नौ; (६-७) अघाश्व को श्वेत अश्व के खुर से सुरा के सैकड़ों कुम्भ आदि कल्पनाओं का रहस्य; (८) आकाश-पृथिवी, दिन-रात; (९) सूर्य और वायु; (१०-१२) विद्वान् स्त्री-पुरुष; (१३) मुख्य पद पर स्थित दो पुरुष; (१४) दो नायक पुरुष; (१५) दो विद्वान् पुरुष, विश्पला की दो लोहे की जांघों का रहस्य; (१६) भिषक् नासत्य-अश्विनीकुमारों का रहस्य; (१७) दो प्रमुख पुरुष; (१८) दिवोदास तथा शिशुमार का रहस्य; (१९) स्त्री-पुरुष; (२०-२१) दो मुख्य नायक; (२२) सेनाबल पर भूमि का विस्तार; (२३) सत्य-व्यवहारकर्त्ता दो पुरुष; (२४) सेना तथा सभा के नायक; (२५) स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्यों का वर्णन।

सूक्त ११७ (पृष्ठ ५६०-५७१)—(१) दो मनस्वी पुरुष, राजा और रानी; (२) दो नायक विद्वान् व्यक्ति; (३) राजदम्पती; (४) सुखवर्धक दो विद्वान् एवं राज्य के मुख्य अधिकारी; (५) दो पुरुष नायक; (६) सभा तथा सेना के अध्यक्ष; (७) दो नायक पुरुष; (८) दो राज्य के भोक्ता पुरुष; (९) दो विद्वान् शिल्पी; (१०) दो दानशील स्त्री-पुरुष; (११) दो विद्वान् स्त्री-पुरुष; (१२) हिरण्यकलश का रहस्य; (१३) अश्विनीकुमारों द्वारा वृद्धच्यवान को जवान बनाने का रहस्य; (१४-१५) अश्वियों द्वारा भुज्यु को समुद्रपार उतारने का रहस्य; (१६) सेना तथा सभा के अध्यक्ष (१७-१८) सौ मेषों का रहस्य, ऋज्राश्व की कथा का रहस्य; (१९) स्त्री-पुरुषों की रक्षण-शक्ति; (२०) सेना की सम्पन्नता करना; (२१) राष्ट्रभूमि की सम्पन्नता का उपाय; (२२) अश्वियों द्वारा दधीची को अश्वशिर के दान का रहस्य; (२३-२४) विदुषी स्त्री एवं विद्वान् पुरुष; (२५) सभाध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष, उनके पराक्रम।

सूक्त ११८ (पृष्ठ ५७१-५७६)—(१) दो प्रमुख पुरुष; (२) राष्ट्र के दो विद्वान् शिल्पी: (३) विद्वान् स्त्री-पुरुष; (४) अश्वियों द्वारा रथ-

वहन का रहस्य; (५) दो नायक पुरुष; (६) माता एवं पिता; (७) दो नायक पुरुष; (८) विश्पला की जंघा का रहस्य; (९) विद्वान् स्त्री पुरुष; (१०) सन्मार्गगामी दो नायक; (११) ऐश्वर्यभोक्ता स्त्री-पुरुष।

सूक्त ११९ (पृष्ठ ५७६-५८१)—(१-१०) विद्वान् स्त्री-पुरुषों तथा दो प्रमुख नायकों के कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन।

सूक्त १२० (पृष्ठ ५८१-५८५)—(१-१२) दो विद्वान् तथा पति-पत्नी भाव से रहने वाले स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश।

सूक्त १२१ (पृष्ठ ५८५-५९६)—(१) राजा द्वारा उपदेश श्रवण; (२) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी पुरुष का कर्त्तव्य; (३) तेजस्वी पुरुष द्वारा धर्मनीतियों का पालन; (४) राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्र-शासन; (५) राजा एवं विद्वान्; (६) प्रजा द्वारा राजा का अभिषेक; (७) सूर्य-समान तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य; (८) सभापति और सेनापति; (९) राजा और सेना-पति; (१०) वज्रधारक राजा का कर्त्तव्य; (११) राजवर्ग और प्रजावर्ग; (१२) ऐश्वर्यवान् पुरुष; (१३) राजा द्वारा योद्धाओं का सञ्चालन; (१४) राजा एवं परमेश्वर; (१५) सुमति दूर न हो।

इत्यष्टमोऽध्यायः।

इति प्रथमोऽष्टकः।

—:o:—

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता

प्रथमोऽष्टकः । प्रथमं मण्डलम् ।

प्रथमोऽध्यायः । प्रथमोऽनुवाकः ।

[१] मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः । २ पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ निचृद् । ८ यवमध्या विराड् । ९ विराड् । नवर्चं सूक्तम् ॥

ओ३म् ॥ अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर पक्ष में—मैं (यज्ञस्य) ब्रह्माण्ड सर्ग के (होतारम्) सम्पादक और धारक (पुरः-हितम्) पहले ही समस्त परमाणु, प्रकृति और सृष्टि को धारण करने वाले, (ऋत्विजम्) प्रति ऋतु, अर्थात् प्रत्येक सृष्टि-उत्पत्ति काल में सृष्टि के घटक पदार्थों को मिलाने हारे, (रत्न-धातमम्) समस्त रमण करने योग्य, पृथिवी आदि लोकों के धारक, (देवम्) सब पदार्थों के दाता और प्रकाशक (अग्निम्) सबसे पूर्व विद्यमान, ज्ञानवान्, प्रकशस्वरूप परमेश्वर की (ईळे) स्तुति करता हूँ ।

राजा और विद्वान् के पक्ष में—(यज्ञस्य होतारम्) प्रजापालन रूप सत्र, अर्थात् प्रजापति के कार्य को वश में करने वाले, (पुरः हितम्)

सबके समक्ष प्रमाण रूप से स्थित, एवं सबके पूर्व धारण करने वाले, (ऋत्विजम्) सभा के सदस्यों के प्रेरक, सभापति, (रत्नधातमम्) रमणीय गुणों एवं सुवर्णादि के धारक और प्रदाता (अग्निम्) अग्रणी, नायक, (देवम्) विजयशील राजा, सभापति पुरुष का मैं प्रजाजन (ईळे) सत्कार करता हूँ ।

(२) भौतिक पक्ष में—यज्ञ, शिल्पादि के कर्त्ता, (पुरोहितम्) पहले से ही छेदन, भेदन आदि गुणों के धारक, (देवम्) प्रकाशयुक्त, (ऋत्विजम्) गतिदाता साधनों, यन्त्रों एवं पदार्थों को सुसंगत कर वाले (रत्न-धातमम्) रमण योग्य रथ आदि यन्त्रों एवं किरणों के धारक (अग्निम् ईळे) आग को मैं प्रेरित करता हूँ ।

(३) यज्ञाग्नि पक्ष में—यज्ञ के आहुति ग्रहण करने वाले, ऋत्विक् के समान प्रति ऋतु यज्ञ करने वाले, पुरोहित के समान आगे आदर पूर्वक आधान किये गये प्रकाशयुक्त अग्नि को मैं प्रज्वलित करता हूँ ।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

भा०—वही पदार्थों का प्रकाशक परमेश्वर (पूर्वेभिः) पूर्व के, शास्त्रों के विज्ञ विद्वानों (ऋषिभिः) मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषियों, और तर्कों द्वारा (उत) और (नूतनैः) नये अर्थात् वेदार्थों के पढ़नेवाले ब्रह्मचारियों द्वारा (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है । (सः) वह ही (देवान्) सूर्य के समान ऋतुओं को आचार्य के समान विद्यादि दिव्य गुणों को (इह) इस जगत् में (आ वक्षति) धारण करता एवं सबको प्राप्त कराता है ।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

भा०—(दिवे दिवे) प्रतिदिन मनुष्य (अग्निना) परमेश्वर के

भजन से (पोषम्) पुष्टि द्वारा सुख देने वाले और बढ़ाने वाले, (यशसं) कीर्त्तिजनक, (वीरवत्-तमम्) बहुत अधिक वीर, विद्वान पुरुषों से युक्त (रयिम्) धन समृद्धि को (अश्नवत्) प्राप्त करता है ।

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वत॑: परि॒भूरसि॑ ।
स इद्दे॒वेषु॑ गच्छति ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक परमेश्वर ! तू (यं) जिस (अध्वरं) हिंसा आदि दोषों से रहित नित्य, (यज्ञं) कारण तत्वों के मिलने के सृष्टि, प्रलय आदि व्यवहारों से युक्त ब्रह्माण्डमय सर्ग को (विश्वतः) सब ओर से (परिभूः असि) व्याप्त रहा है, (सः, इत्) वह यज्ञ ही (देवेषु) समस्त दिव्य पदार्थों में सर्ग रूप से और विद्वानों में उपासना रूप से (गच्छति) होता रहता है ।

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः ।
दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः) सर्व प्रकाशक परमेश्वर, (होता) समस्त पदार्थों का दाता (कविक्रतुः) सर्वज्ञ होकर संसार को बनाने हारा, (सत्यः) सत् पदार्थों में व्यापक, (चित्रश्रवस्तमः) अद्भुत यश, कीर्ति वाला और ज्ञानोपदेशकों में सबसे बड़ा, (देवः) सर्वप्रकाशक है । वह (देवेभिः) विद्वानों और दिव्य गुणों सहित (आ गमत्) हमें प्राप्त हो ।

यद॒ङ्ग दा॒शुषे॒ त्वमग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑ ।
तवेत्तत् स॒त्यम॑ङ्गिरः ॥ ६ ॥

भा०—(अङ्ग अग्ने) हे सर्वप्रकाशक ! (यत्) जो भी (त्वम्) तू (दाशुषे) दानशील उपासक के लिये (भद्रं) सुख और ऐश्वर्य (करिष्यसि) देता है, हे (अंगिरः) ब्रह्माण्ड के अंग २ में व्यापक और अग्नि के समान प्रकाशक ! वह सब (तव इत्) तेरा ही है । (तत् सत्यम्) और वह सत् पदार्थों में सुखप्रद अथवा दोनों लोकों में सुखकर है ।

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम् ।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! परमेश्वर ! विद्वन् ! (दिवे दिवे) प्रतिदिन, (दोषा-वस्तः) दिन रात, (वयम्) हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि और क्रिया से भी (नमः भरन्तः) नम्र भाव धारण करते हुए तुझे (आ इमसि) प्राप्त होते हैं ।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम् ।
वर्ध॑मान॒ं स्वे दमे॑ ॥ ८ ॥

भा०—(अध्वराणाम्) नित्य पदार्थों के और (ऋतस्य) सत्य नियमव्यवस्था एवं सर्ग चक्र के (गोपाम्) रक्षक, (दीदिविम्) सबके प्रकाशक, (राजन्तम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप और (स्वे) अपने (दमे) दुःखहारी स्वरूप में (वर्धमानं) सबसे बढ़े हुए महान् परमेश्वर की शरण में हम (एमसि) प्राप्त हों ।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व ।
सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर और विद्वान् पुरुष (सूनवे पिता इव) पुत्र के प्रति पिता के समान परिपालक है । वह तू (नः) हमारे लिये पिता के समान ही (सु-उपायनः) सुख से प्राप्त होने योग्य होकर (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (भव) हो । और (नः सचस्व) हमें प्राप्त हो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[२] मधुच्छन्दाः ऋषिः ॥ १—३ वायुर्देवता । ४—६ इन्द्रवायू । ७—९ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः—गायत्र्यः । १, २ पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ निचृद् ।

नवर्चं सूक्तम् ॥

वाय॒वा या॑हि दर्शते॒मे सोमा॒ अरं॑कृताः ।
तेषां॑ पाहि श्रु॒धी हव॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्, वायु के समान जीवनप्रद ! हे (दर्शत) ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य परमेश्वर ! (इमे) ये (सोमाः) उत्पन्न पदार्थ आपके रचना-कौशल से (अरंकृताः) सुभूषित हैं। (तेषां) उनको आप (पाहि) पालन करते हो। आप (हवम्) हमारी स्तुति (श्रुधि) श्रवण करें। भौतिक पक्ष में—गतिमान् होने से 'वायु' है, स्पर्श से देखने योग्य होने से दर्शनीय है, वह सब जगत् के जीवों और वृक्षादि को जल और प्राण से सुशोभित करता है। उनको प्राण द्वारा पालन करता, शब्द का श्रवण करने का साधन है।

वाय॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॒ त्वामच्छा॑ जरि॒तारः॑।
सु॒तसो॑मा अह॒र्विदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) सर्वव्यापक ! ज्ञानवन् ! (सुतसोमाः) सोम आदि औषधियों का सेवन करने वाले, सोम अर्थात् विद्वान् पुरुषों का सत्कार करने वाले और (अहर्विदः) दिन आदि के कालज्ञ विद्वान्, अमृतलाभ करने वाले ब्रह्मवित्, (जरितारः) स्तुतिशील पुरुष (त्वाम्) तेरी (उक्थेभिः) स्तुति मन्त्रों से (अच्छ) साक्षात् (जरन्ते) स्तुति करते हैं।

वायो॒ तव॑ प्रपृञ्च॒ती धेना॑ जिगाति दा॒शुषे॑।
उ॒रू॒ची सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानप्रकाशक ईश्वर ! (तव) तेरी (धेना) वेद वाणी (प्रपृञ्चती) उत्कृष्ट अर्थों का ज्ञान कराकर समस्त विद्याओं का हृदय में प्रकाश करने वाली होकर (दाशुषे) दानशील, विद्याभ्यासी पुरुष को ही (जिगाति) प्राप्त होती है और वह वाणी (सोमपीतये) उत्पन्न पदार्थों के रस या ज्ञान को ग्रहण करने वाले को (उरूची) बहुत अधिक विद्याओं का ज्ञान कराती है।

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) सूर्य के समान प्रकाशक और वायु के समान जीवनप्रद ! (वां) तुम दोनों को (इमे सुताः) ये समस्त उत्पन्न (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ (हि) निश्चय से (उशन्ति) चाहते हैं। तुम (प्रयोभिः) अन्नादि उत्तम पदार्थों के सहित (आ गतम्) हमें प्राप्त होवो।

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! और (इन्द्रः च) हे ऐश्वर्यवन्! 'ज्ञानप्रद'! सूर्य के समान तेजस्विन्! तुम दोनों (वाजिनीवसू) उषः-काल में प्रकट होने वाले, उदयकालिक सूर्य और प्राभातिक वायु के समान तमोनिवारक तुम दोनों भी (वाजिनी वसू) अन्न से युक्त यज्ञ-क्रियाओं में अथवा ज्ञान-सम्पादन करने वाली शिक्षा आदि में बसने वाले होकर (सुतानां) शिष्यों और पुत्रों को (चेतथः) ज्ञान प्रदान करते हो। (तौ) वे दोनों (द्रवत्) शीघ्र ही (उप आयातम्) हमें प्राप्त होओ।

गुरु और आचार्य दोनों वायु और सूर्य के समान हों। वे वेद के धनी होकर पुत्रों और शिष्यों का उपनयन करें, शिष्यों को पढ़ावें। इति तृतीयो वर्गः ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मुक्षि्व[१] त्था धिया नरा ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) वायो! ज्ञानवन्! हे (इन्द्र) सर्वप्रकाशक! हे (नरा) शिष्यों को विज्ञान मार्ग में ले चलने हारे! तुम दोनों

(इत्था) ऐसी रीति से (मक्षु) शीघ्र ही (सुन्वतः) ज्ञान का सम्पादन करा देते हो, इसलिये (धिया) धारणवती बुद्धि और कर्म द्वारा (निष्कृतम्) भली प्रकार सर्वथा 'कृत' अर्थात् निश्चित बुद्धि वाले दृढ़ निश्चयी शिष्य को (उप आयाताम्) प्राप्त करो, उसका उपनयन करो।

मि॒त्रं हु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम् ।
धियं॑ घृ॒ताचीं॒ साध॑न्ता ॥ ७ ॥

भा०—(पूतदक्षं) जल के समान पवित्र करने वाले बल से युक्त सूर्य और प्राण के समान (मित्रम्) सबके स्नेही और (रिशादसम्) देहनाशक रोगों का नाश करने वाले अपान के समान, घातकों के घातक (वरुणं च) शत्रुओं के वारक पुरुष को (हुवे) प्राप्त करता हूँ। ये दोनों (घृताचीम्) जल का आकर्षण करने वाले सूर्य के समान ही दोनों 'घृत' अर्थात् पुष्टिकारक अन्न, बल और तेज को प्राप्त करने वाली (धियं) क्रिया शक्ति को (साधन्ता) सिद्ध करें।

ऋ॒तेन॑ मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
क्रतुं॑ बृ॒हन्त॑माशाथे ॥ ८ ॥

भा०—(मित्रावरुणौ) सबसे स्नेह करने वाला मित्र और सर्व श्रेष्ठ वरुण, न्यायाधीश और राजा दोनों (ऋतेन) सत्यस्वरूप वेद-ज्ञान से (ऋतावृधौ) सत्य व्यवहार को बढ़ाने वाले और (ऋतस्पृशौ) सत्य परिणाम तक पहुँचने वाले दोनों (बृहन्तम्) बड़े भारी (क्रतुम्) राष्ट्र-रूप कर्म, व्यवहार और ज्ञान को भी (आशाते) प्राप्त होते हैं, उसको अपने वश करते हैं।

मित्र और वरुण प्राण और अपान (ऋतेन) जल के बल से जीवन के वर्धक और प्राणों को प्राप्त होते हैं वे दोनों महान् आत्मा को भी व्याप्त हैं। सूर्य और वायु दोनों जल से जीवन और प्राण की वृद्धि करते हैं। वे महान् (क्रतुम्) क्रियामय संसार रूप यज्ञ को व्याप्त होते हैं।

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—(कवी) क्रान्तदर्शी विद्वान् (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण दोनों (तुविजाता) सामर्थ्यवान् एवं प्रसिद्ध (उरुक्षया) बहुत से निवास स्थान में रहने वाले (अपसम्) कर्म (दक्षं च) और बल (दधाते) धारण करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३] मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता। १–३ अश्विनौ। ४–६ इन्द्रः। ७–९ विश्वे देवाः। १०–१२ सरस्वती ॥ छन्दः—गायत्र्यः। २ निचृद्। ४, ११ पिपीलिकामध्या निचृद्। द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) शीघ्र जाने वाले रथ और अश्व के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (द्रवत्पाणी) शीघ्र गतिशील हाथों या व्यवहारों वाले, (शुभस्पती) उत्तम गुणों के पालक और (पुरुभुजौ) बहुत से भोग्य पदार्थों से युक्त होकर (यज्वरीः इषः) बल देने वाले, उत्तम अन्नों को (चनस्यतम्) प्राप्त करो।

द्युस्थान देवगण में अश्वि दोनों मुख्य हैं। चन्द्रमा रस से और सूर्य तेज से जगत् को व्यापता है। इसी से दोनों 'अश्वि' हैं। आचार्य और्णनाभ के मत में अश्वों, किरणों वाले सूर्य, चन्द्र, राजा, सेनापति 'अश्वी' हैं। द्यौ पृथिवी, दिन रात्रि, सूर्य चन्द्र और राजा रानी ये 'अश्वि' कहाते हैं। पृथिवी में अग्नि और द्यौलोक में सूर्य दोनों पुष्टिकारक होने से पुष्कर हैं। उनके धारक द्यौ और पृथिवी दोनों पुष्कर-स्रक् अश्वि हैं। देह में कान, नाक, आंख दोनों जोड़े 'अश्वि' हैं। दो मुख्य पुरुष भी 'अश्वि' कहाते हैं।

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) मुख्य २ अधिकार के भोगने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों! (पुरुदंससा) बहुत से कर्म करने में कुशल (नरा) सब प्रजाओं के नायक हो। आप दोनों (धिष्ण्या) शत्रु और प्रतिपक्षियों को दमन करने में समर्थ होकर (शवीरया धिया) ज्ञानयुक्त बुद्धि से (गिरः वनतम्) वाणियों का सेवन करो।

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

भा०—(युवाकवः) नाना पदार्थ संयोग और विभागों से युक्त, (सुताः) अभिषिक्त हुए (वृक्त-बर्हिषः) कुशों के समान ही प्रजाओं को शासन के लिये प्राप्त करने हारे हैं। इनके बीच में (दस्रा) दुःखों और शत्रुओं के नाशक (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले आप दोनों (रुद्रवर्त्तनी) नासिका-गत प्राणों के समान राष्ट्र में मुख्य पद पर विराजमान रहकर (आयातम्) आवें।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (चित्रभानो) अद्भुत दीप्तियों वाले! तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो। (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न पदार्थ (त्वायवः) तुझे प्राप्त हों और वे (तना) धनसम्पत्ति-युक्त, (अण्वीभिः) किरणों या तेजों से युक्त (पूतासः) पवित्र हैं। हे राजन्! (इमे त्वायवः सुताः) ये अभिषिक्त राजगण भी (अण्वीभिः पूतासः) किरणों के समान तेजस्विनी शक्तियों से पवित्र, आचारवान् एवं अभिषिक्त हैं। तू उनको प्राप्त हो।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य समान तेजस्वी और ऐश्वर्यवन् ! तू (धिया) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म से (इषितः) प्राप्त होने योग्य है। तू (विप्रजूतः) मेधावी पुरुषों से जाना जाता है। तू (सुतावतः) उत्तम ज्ञानवान्, (ब्रह्माणि) वेदज्ञ पुरुषों को (उप आयाहि) प्राप्त हो।

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ईश्वर ! वीर पुरुष ! (तू तुजानः) अति वेग से जाने वाला वायु जैसे (ब्रह्माणि) महान् कर्मों को करता है, वैसे ही तू भी (ब्रह्माणि) वेद के ज्ञानस्रोतों या ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त हो। हे (हरिवः) जलों का रस हरण करने वाली एवं तमोनाशक किरणों से युक्त, सूर्य के समान वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों के स्वामिन् ! तू (नः) हमें (सुते) अपने इस अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में (चनः) अन्न आदि संचय योग्य पदार्थों को (दधिष्व) धारण करा। इति पञ्चमो वर्गः ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत ।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वज्जनो ! दानशील, एवं युद्धविजयी पुरुषो ! आप लोग (ओमासः) रक्षक, तेजस्वी, शत्रुहिंसक, वृद्धिशील, उत्तम पदार्थों के प्रदाता एवं (चर्षणीधृतः) मनुष्यों को उत्तम व्यवस्था से धारण करने वाले हैं। आप लोग (दाश्वांसः) दानशील होकर (दाशुषः) करप्रद, एवं आत्मसमर्पक के (सुतम्) उत्तम पदार्थ, राष्ट्र या प्रस्तुत आदर सत्कार को प्राप्त करने के लिये (आ गत) आओ।

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒प्तुरः॑ सु॒तमा ग॑न्त॒ तूर्ण॑यः ।
उ॒स्रा इ॑व॒ स्वस॑राणि ॥ ८ ॥

भा०—(उस्राः) सूर्य के किरण (स्वसराणि इव) जैसे दिनों को प्रकाशित करने के लिये नित्य नियम से आते हैं, वैसे ही (विश्वे देवासः) विद्वान्, ज्ञान-प्रकाश से युक्त पुरुषो ! आप लोग (अप्तुरः) मेघों के समान मनुष्यों को जल वृष्टि द्वारा, अन्नादि बुद्धि और कर्मों का उपदेश देने वाले, (तूर्णयः) स्वयं अति शीघ्रता से प्राप्त होने में समर्थ होकर (सुतम्) ज्ञान प्राप्ति के लिये या समृद्ध राष्ट्र को (आ गन्त) प्राप्त होओ ।

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒स्रिध॒ एहि॑मायासो अ॒द्रुहः॑ ।
मेधं॑ जुषन्त॒ वह्न॑यः ॥ ९ ॥

भा०—(विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुष (अस्रिधः) अध्यक्ष विज्ञान और कोष से युक्त, (एहिमायासः) सब विषयों में चतुर बुद्धि वाले, (अद्रुहः) किसी के प्रति द्रोह बुद्धि न करने वाले, अहिंसक, (वह्नयः) राष्ट्र और समाज के कार्यों के धारक विद्वान् पुरुष (मेधं जुषन्त) यज्ञ, परस्पर के सत्संग और अन्न का सेवन करें ।

वेदवाणी का वर्णन

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती ।
य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः ॥ १० ॥

भा०—(वाजेभिः) बलों, ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अन्नों से (वाजिनीवती) बल ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि को सिद्ध करने वाली क्रिया से युक्त (पावका) सबको पवित्र करनेवाली (सरस्वती) शुद्ध जलों से युक्त नदी के समान ज्ञानमयी और गुरु परम्परा से बहनेवाली वेदवाणी और उसको धारण करनेवाले विद्वान् (धियावसुः) परस्पर संग, उत्तम कर्म और ज्ञान के ऐश्वर्य को धारण करने वाले होकर यज्ञ, शिल्प व्यवहार, विद्याभ्यास, आत्मा और राष्ट्र को (वष्टु) प्रकाशित करें ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञानों से युक्त वेदवाणी (सू-नृतानां) उत्तम सत्य ज्ञानों का (चोदयित्री) उपदेश करनेवाली और (सुमतीनां) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् पुरुषों को (चेतन्ती) ज्ञान देती हुई उनके (यज्ञं) श्रेष्ठ कर्म और देव-उपासना को (दधे) धारण करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(सरस्वती) वेदवाणी (केतुना) अपने ज्ञान से ही (महः अर्णः) बड़े ज्ञानसागर का (प्रचेतयति) उत्तम रीति से ज्ञान कराती है और (विश्वा) समस्त (धियः) ज्ञानों और कर्मों को (वि राजति) विविध प्रकार से प्रकाशित करती है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः।

[४] मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः। ३ विराड। १० निचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—(गोदुहे) दुग्ध दोहने के लिये (सुदुघाम् इव) उत्तम दूध देने वाली गौ को जैसे प्राप्त करते और पालते हैं वैसे ही (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम (द्यवि-द्यवि) प्रतिदिन (सुरूप-कृत्नुम्) रुचिकर पदार्थों के उत्पन्न करने में चतुर, विद्वान् पुरुष को या उत्तम गुणों के उत्पादक परमेश्वर को (जुहूमसि) प्राप्त करें।

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

भा०—हे (सोमपाः) उत्तम पदार्थों या राष्ट्रों के रक्षक राजन्! तू (नः) हमारे (सोमस्य) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (सवना) ऐश्वर्यों या राज्यकार्यों को (आगहि) प्राप्त हो और (सोमस्य पिब) ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का पान कर। (गोदाः) सूर्य जैसे चक्षु आदि को सामर्थ्य देता है वैसे ही वह भूमि और ज्ञानवाणी को देता है और (रेवतः) पुरुषार्थवान् पुरुष को (मदः) आनन्दित करता है।

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

भा०—(अथ) और हे परमेश्वर! राजन्! (ते) तेरे (अन्तमानां) अति समीप प्राप्त, (सुमतीनां) उत्तम ज्ञानयुक्त, धर्मात्मा पुरुषों के उत्तम उपदेश से तेरा (विद्याम) ज्ञान करें। तू (नः) हमारा (मा अति ख्यः) त्याग मत कर, (नः आगहि) हमें प्राप्त हो।

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य! तू (विग्रम्) विशेष विद्वान् (अस्तृतम्) दयालुस्वभाव के (विपश्चितम्) ज्ञान का सञ्चय करने वाले, (इन्द्रम्) आत्मज्ञान का साक्षात् करने वाले उस विद्वान् को (परा इहि) प्राप्त हो और उसी से (पृच्छ) सब प्रश्न पूछ। (यः) जो (ते) तेरे (सखिभ्यः) समान अन्य शिष्य गण को भी (वरम् आ) उत्तम उपदेश करता है।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और चाहे (नः) हमारे (निदः) निन्दा करने वाले जन भी (नः) हमें (ब्रुवन्तु) कहें कि (अन्यतः चित्) दूसरे स्थान में (निर्-आरत) निकल जाओ, तब भी हम (इन्द्रे इत्) उस परमेश्वर में

(दुवः) नाना स्तुति (दधानाः) करते रहें। अथवा (इन्द्रे, इत् दुवः दधानाः) परमेश्वर की ही परिचर्या करते हुए विद्वान् जन (नः ब्रुवन्तु) हमें उपदेश करें। (निदः) हमारे निन्दाजनक दुष्ट पुरुषो ! (अन्यतः चित्) तुम अन्यत्र देश में (निर्-आरत) निकल जाओ।

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्म) शत्रुओं और दुष्ट भावों के नाशक विद्वन्! राजन्! (उत) और (अरिः) हमारा शत्रु (कृष्टयः) और साधारण जन भी (नः) हमें (सुभगान्) कल्याणकारी (वोचेयुः) कहें। हम सदा (इन्द्रस्य शर्मणि इत्) ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर के शरण में (स्याम) रहें।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत् सखम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! शीघ्रता के कार्य करने के लिये जैसे वेगवान् अश्व को नियुक्त किया जाता है वैसे ही (आशुम्) आशु, शीघ्रकारी, (यज्ञ-श्रियम्) सुव्यवस्थित राष्ट्र के आश्रय, उसके शोभाजनक (नृमादनम्) समस्त प्रजाओं और नेता पुरुषों को सुप्रसन्न करने वाले और (मन्दयत्-सखम्) समस्त मित्रों को प्रसन्न रखने वाले (पतयत्) स्वामी होने योग्य पुरुष को (आशवे) शीघ्र कार्य सम्पादन के लिये (ईम्) इस पृथिवी पर (आ भर) नियुक्त कर।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सहस्रों प्रज्ञा और कर्म वाले ! तू (अस्य) इस राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पीत्वा) उपभोग करके, मेघों को सूर्य के समान (वृत्राणाम्) विघ्नकारी शत्रुओं को (घनः) मारने में समर्थ (अभवः)

हो और (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनम्) संग्राम करने में कुशल ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र या अश्ववान् पुरुष की (प्र अवः) उत्तम रीति से रक्षा कर।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों सामर्थ्यवान् राजन् ! (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनं) विजय प्राप्त कराने वाले (तं त्वा) उस तुझको हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धनानां सातये) धनों के प्राप्त करने के लिये हम (वाजयामः) आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं।

यो रायो३ वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर या राजा (रायः) ऐश्वर्य का (महान्) बड़ा (अवनिः) रक्षक है और जो (सुपारः) उत्तम पालन करने हारा, (सुन्वतः सखा) उपासना करने वाले, धर्मात्मा पुरुषों और अभिषेक करनेवाले प्रजाजन का (सखा) मित्र है। (तस्मै इन्द्राय) उस इन्द्र की (गायत) स्तुति करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[५] मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः। १ विराड। ३ पिपीलिकामध्या निचृद्। ५—७, ९ निचृद्। ८ पादनिचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

भा०—हे (स्तोमवाहसः) स्तुति मन्त्रों को धारण करने वाले (सखायः) मित्रजनो ! (आ एत) आओ, (तु) और (निषीदत) विराजो। (इन्द्रम् अभि) उस ईश्वर को लक्ष्य करके (प्र गायत) उसकी स्तुति करो।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

भा०—(पुरूणां) बहुत से (वार्याणाम्) वरण योग्य ऐश्वर्यों के (ईशानं) स्वामी, (पुरु-तमम्) दुष्ट स्वभाव के जीवों को कर्म फल से कष्ट देने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर की (सुते सोमे) इस संसार में स्तुति करो ।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

भा०—(सः घ) वह परमेश्वर ही (योगे) योगाभ्यास काल में (आ भुवत्) सब प्रकार से सुखदायी हो । (सः राये) वह उत्तम धनैश्वर्य के प्राप्त करने में सहायक हो । (सः पुरन्ध्याम्) वह शास्त्रों को धारण करने वाली बुद्धि के प्राप्त करने में सहायक हो । (सः) वह (नः) हमें (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों सहित (आगमत्) प्राप्त हो ।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

भा०—युद्धों में (यस्य हरी) जिसके अश्वों को (शत्रवः) शत्रु-गण (संस्थे) रथ में लगे देखकर (समत्सु) संग्रामों में (न वृण्वते) डट नहीं सकते (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के (गायत) गुणगान करो ।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(सुतपाव्ने) ऐश्वर्यों के रक्षा करने वाले राजा के (वीतये) उपभोग के लिये ही (इमे) ये (दध्याशिरः) प्रजाओं को धारण करने वालों के आश्रय योग्य (शुचयः) पवित्र, सदाचारी (सोमासः) राष्ट्र के पदाधिकारी गण (यन्ति) प्राप्त होते हैं । इति नवमो वर्गः ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले ! (त्वं) तू (सुतस्य पीतये) उत्तम ओषधि रस के समान जगत् के उत्पन्न ऐश्वर्य भोग तथा (ज्यैष्ठ्याय) सबसे उत्तम पद को प्राप्त करने के लिये (सद्यः) शीघ्र ही सब दिन (वृद्धः) सर्वश्रेष्ठ (अजायथाः) होकर रह ।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति योग्य ! (आशवः) तीव्र वेग से जाने वाले (सोमासः) सेनाओं के प्रेरक अधिकारीगण (त्वा आविशन्तु) तेरे में प्रविष्ट हों, तेरे अधीन होकर रहें और वे (ते प्रचेतसे) सबसे उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त तुझे (शं सन्तु) कल्याणकारी हों ।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) असंख्य ज्ञान और कर्मों के स्वामिन् ! परमेश्वर ! (त्वाम्) तुझको (स्तोमाः) स्तुति समूह (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं, तेरी ही महिमा गान करते हैं । (उक्था त्वाम्) वेद के सूक्त भी तेरा ही गान करते हैं । (नः गिरः) हमारी वाणियां भी (त्वां वर्धन्तु) तेरी महिमा का प्रकाश करें ।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥

भा०—(अक्षितोतिः) अक्षय रक्षा सामर्थ्य से युक्त, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (इमं) इस (सहस्रिणम्) सहस्रों बल, वीर्य और सुखों वाले (वाजम्) ऐश्वर्य को (सनेत्) प्राप्त हो (यस्मिन्) जिसमें (विश्वानि) समस्त प्रकार के (पौंस्या) पुरुषोपयोगी बल हैं ।

मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! हे (गिर्वणः) आज्ञा प्रदान करने वाले ! (मर्त्ताः) मरणधर्मा मनुष्य (नः तनूनाम्) हमारे शरीरों का (मा अभि द्रुहन्) द्रोह न करें । तू (ईशानः) सबका सामर्थ्यवान् स्वामी होकर (वधम्) घात या हिंसा कार्य को (यवय) दूर कर ।

इति दशमो वर्गः ॥

[६] मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ १-३ इन्द्रो देवता । ४, ६, ८, ९ मरुतः । ५, ७ मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्रः ॥ छन्दः—गायत्र्यः । १२ विराड् । ४, ८ निचृद् । दशर्चं सूक्तम् ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

भा०—विद्वान् जन (ब्रध्नम्) सबको व्यवस्था में बांधने वाले महान्, सर्वाश्रय, (अरुषम्) रोषरहित, अहिंसक, (तस्थुषः परि) समस्त स्थावर, अचेतन प्राकृतिक संसार में व्यापक परमेश्वर का (युञ्जन्ति) समाहित चित्त होकर ध्यान करते हैं । और वे ही (रोचनाः) ज्ञानमय प्रकाश और परम ज्योतिर्मय तप से तेजस्वी होकर (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर या मोक्ष में (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं, विराजते हैं ।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

भा०—(अस्य) इस आत्मा के प्राप्त करने के लिये (रथे) रमण करने योग्य इस देह में (काम्या) कामना करने योग्य (हरी) गतिशील, एवं इन्द्रियों को गति देने वाले (विपक्षसा) विविध पार्श्वों में स्थित,

(शोणा) गतिशील, (धृष्णू) दृढ़, (नृवाहसा) नेता आत्मा को वहन करने वाले प्राण और अपान दोनों को (युञ्जन्ति) योगी जन योगाभ्यास द्वारा वश करते हैं।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! हे (मर्याः) मनुष्यो ! तू (अकेतवे) अज्ञानी के अज्ञान को नाश करने के लिये उसको (केतुम्) विशेष ज्ञान और (अपेशसे) सुवर्णादि रहित धनहीन पुरुष के दारिद्रय को नाश करने के लिये (पेशः) सुवर्णादि धन (कृण्वन्) प्रदान करता हुआ (उषद्भिः) सूर्य जैसे उषाकालों सहित उदय को प्राप्त होता है वैसे ही (उषद्भिः) प्रजा के अज्ञान और पाप दोषों को नष्ट कर डालने वाले विद्वान् और वीर पुरुषों सहित (अजायथाः) सामर्थ्यवान् प्रबल और प्रसिद्ध हो। हे (मर्याः) मनुष्यो ! आप लोग भी उसका सत्संग करो।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

भा०—(आत् अह) सूर्य ताप के अनन्तर ही (स्वधाम् अनु) जल को प्राप्त करके, अथवा अपनी धारण शक्ति के अनुसार वायुएं (पुनः) बार २ (गर्भत्वम्) जल को ग्रहण करने वाले स्वरूप को (एरिरे) प्राप्त करते हैं और उसी समय (यज्ञियम्) परस्पर मिलने को संयोग से उत्पन्न होने वाले (नाम) जल को भी धारण करते हैं। सूर्योत्ताप के बाद वायुगण अपने भीतर जल को धारण करने के सामर्थ्य के अनुसार, परस्पर संयोग से उत्पन्न जल को धारण कर लेते हैं वही दशा 'गर्भ' रूप कहाती है। वृष्टि आदि के पूर्व वायु जलों से गर्भित हो जाते हैं।

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(आरुजत्नुभिः) तोड़ फोड़ करने वाले (वह्निभिः) बलवान्, उठाकर फेंकने वाले अग्नियों से जैसे (वीलु चित्) दृढ़, बलवान् दुर्ग को भी तोड़ डाला जाता है और (गुहाचित्) गुफा में (उस्त्रियाः) निकलने वाले रत्न आदि पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं वैसे ही (आरुजत्नुभिः) शत्रुओं का गढ़ तोड़ने वाले (वह्निभिः) सेना के मुख्य पदों को धारण करने वाले नायकों के साथ (गुहाचित्) पर्वतों के गुप्त भागों में भी (वीलु) दृढ़ता से (उस्त्रियाः) नाना ऐश्वर्य देने वाली भूमियों, गौवों-प्रजाजों को भी (अनु अविन्दः) प्राप्त कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (यथा) जैसे (देवयन्तः) परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं वैसे ही (गिरः) स्तोता विद्वान् पुरुष (विदद्-वसुम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (मतिम्) मननशील, (महाम्) बड़े भारी (श्रुतम्) बहुश्रुत, एवं प्रसिद्ध परमेश्वर की (अनूषत) स्तुति करते हैं ।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—हे वायु के समान तीव्र गति से शत्रु पर आक्रमण करने वाले निर्भय ! (इन्द्रेण) शत्रुहन्ता सेनापति के साथ (संजग्मानः) युक्त होकर हीं (सं दिदृक्षसे) तू शोभा पाता है । तुम दोनों (समान वर्चसा) समान रूप से, तेज को धारण करने वाले और (मन्दू) सदा प्रसन्न और एक दूसरे को आनन्दित करने वाले हो ।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

भा०—(मखः) यह महान् यज्ञ ही (अनवद्यैः) निन्दनीय दोषों से

रहित, (अभिद्युभिः) अति तेजस्वी, (गणैः) गणों सहित (इन्द्रस्य) शत्रु-हन्ता सेनापति के (सहस्वत्) शत्रुपराजयकारी सामर्थ्य का (अर्चति) वर्णन करता है ।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

भा०—हे वायो ! हे (परिज्मन्) सब दिशाओं में जाने में समर्थ ! एवं पदार्थों को ऊपर नीचे फेंकने में समर्थ ! तू (दिवः) सूर्य के प्रकाश से (वा) और (रोचनात्) मेघमण्डल से (अधि आगहि) आ । (अस्मिन्) इस तुझमें ही (गिरः) वाणियां (सम् ऋञ्जते) प्रकट होती हैं।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(इतः) इस (पार्थिवात्) पृथिवी लोक से, (वा) और (दिवः) द्यौ लोक से, (वा) और (रजसः) अन्तरिक्ष लोक से भी (महः) बड़े (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् और उनके (अधि) ऊपर शासकरूप से विद्य-मान् सूर्य को ही हम (सातिम्) सब पदार्थों के संयोग विभाग करने और प्रदान करने वाला (ईमहे) जानते हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

[७] मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः । २ निचृद् । ८, १० पिपीलिकामध्या निचृद् । ९ पादनिचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रम्) परमेश्वर का (इत्) ही (गाथिनः) सामगान करने हारे विद्वान् गान करते हैं । (अर्किणः) अर्चना योग्य मन्त्रों और विचारों से युक्त विद्वान् पुरुष (अर्केभिः) अर्चनाओं और सत्यभाषणादि व्यवहारों, शिल्पादि साधक कर्मों और वेदमन्त्रों से उस (बृहत् इन्द्रम्)

महान् परमेश्वर की स्तुति करते हैं और (वाणीः) वेदवाणियों से (इन्द्रम् अनूषत) ईश्वर की स्तुति करते हैं।

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥ २॥

भा०—(इन्द्रः इत्) वायु ही (वचोयुजा) वाणी या शब्द के साथ योग करने वाले (हर्योः) लाने और ले जाने के गुणों को (सचा) एक साथ (संमिश्लः) सब पदार्थों में युक्त करता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सूर्य भी (वज्री) संवत्सर और तप से और (हिरण्ययः) प्रकाश से युक्त है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि।
वि गोभिरद्रिमैरयत्॥ ३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (दीर्घाय) चिरकाल तक (चक्षसे) देखने के लिए और (दिवि) प्रकाश के लिए, आकाश में (सूर्यम् आरोहयत्) सूर्य को स्थापित करता है और वह सूर्य (गोभिः) किरणों से (अद्रिम्) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में गति देता है।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।
उग्र उग्राभिरूतिभिः॥ ४॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! तू (नः) हमें (सहस्र-प्रधनेषु) सहस्रों, उत्तम धनों के देने वाले (वाजेषु) संग्रामों में, हे (उग्र) बलवान्, तू (उग्राभिः) शत्रुओं को उद्वेग उत्पन्न करने वाले (ऊतिभिः) रक्षाकारी साधनों और सेनाओं से (नः अव) हमारी रक्षा कर।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥ ५॥ १३॥

भा०—(इन्द्रं) परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा को (वयं) हम (महाधने) बड़े संग्राम में (हवामहे) बुलाते हैं। (इन्द्रम्) उसी

शत्रुहन्ता को हम (अर्भे) छोटे युद्ध में भी स्मरण करते हैं। (वृत्रेषु) घेरने वाले मेघों पर प्रकाशमान सूर्य के समान (वृत्रेषु) नगरों को रोकने वाले शत्रुओं पर (वज्रिणम्) वज्र या शत्रुवारक घोर अस्त्रों को प्रयोग करने वाले (युजम्) प्रजा के स्नेही राजा का हम स्मरण करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृषन्) मेघ के समान सुखों के वर्षक ! हे (सत्रादावन्) अभीष्ट फलों को एक साथ ही देने वाले, तू सूर्य के समान (नः) हमारे लिए (अपावृधि) द्वार खोल दे, जिससे हमें ज्ञान-प्रकाश प्राप्त हो। (सः) वह तू ही (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (अप्रतिष्कुतः) कभी पराजित न होने वाला, वीर विजेता के समान रहने वाला है।

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(वज्रिणः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दान को लक्ष्य करके (ये) जो (उत्तरे) उत्तम २ (स्तोमाः) स्तुति मन्त्र हैं उनसे अतिरिक्त (अस्य) उसकी (सुस्तुतिम्) और अधिक उत्तम स्तुति को मैं (न विन्धे) नहीं पाता।

वृषो यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ सांड जैसे (यूथा इव) गो समूहों को (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (इयर्ति) प्राप्त होता है और वही जैसे (ओजसा) अपने पराक्रम से (कृष्टीः इयर्ति) क्षेत्र में हलादि के और मार्ग में रथ, शकट आदि के खींचने के कार्य करता है वैसे ही (वृषा) सुखों का वर्षक राजा और परमेश्वर (वंसगः) अति

सेवनीय स्वरूप, मनोहर, एवं धर्मात्माओं को प्राप्त होने वाला होकर (ओजसा) अपने बल, पराक्रम से (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्ति) प्राप्त होता, उनको सञ्चालित करता है और वही (अप्रतिष्कुतः) कभी प्रति-पक्षियों से विचलित न होने वाला, दृढ़ निश्चयी होकर (ईशानः) समस्त राष्ट्र और जगत् का स्वामी है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो राजा (एकः) अकेला, (वसूनाम्) राष्ट्र में बसने वाले (पंच क्षितीनाम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच में (इरज्यति) ऐश्वर्य भोगने में समर्थ है वह (इन्द्रः) राजा 'इन्द्र' कहाने योग्य है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

भा०—(जनेभ्यः) समस्त प्रजाजनों से (परि) ऊपर, (विश्वतः) सर्वत्र विद्यमान, (इन्द्रम्) राजा के समान परमेश्वर की हम (हवामहे) स्तुति करते हैं। वह (केवलः) अद्वितीय, मोक्षमय परमेश्वर ही (अस्माकम्, वः) हमारे और तुम्हारे लिए कल्याणकारी (अस्तु) हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[८] मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता। छन्दः—गायत्र्यः। १, ५, ८ निचृद्। २ प्रतिष्ठा। १० वर्धमाना। दशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! परमेश्वर! तू सदा (सानसिम्) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य, (सजित्वानम्) अपने बराबरी के

शत्रुओं का विजय करने वाले (सदासहम्) सदा शत्रुओं को पराजित करने और समस्त दुःखों के सहन कराने वाले, (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त अधिक (रयिम्) धनैश्वर्य को हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (आ भर) प्राप्त करा।

नि येन॑ मुष्टिह॒त्यया॒ नि वृ॒त्रा रु॒णधा॑महै।
त्वोता॑सो॒ न्यर्व॑ता ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिस ऐश्वर्य से हम (मुष्टिहत्यया) मुष्टिवत् संहार शक्ति से मार मार कर ही (वृत्रा) सम्पदाओं को रोक लेने वाले, शत्रुओं को (नि रुणधामहै) सर्वथा रोक दें और (त्वोतासः) हे राजन्! परमेश्वर! तेरे द्वारा सुरक्षित रहकर ही हम (अर्वता) अश्वबल से शत्रुओं को विनष्ट करें।

इन्द्र॒ त्वोता॑स॒ आ व॒यं वज्रं॑ घ॒ना द॑दीमहि।
जये॑म॒ सं यु॒धि स्पृधः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! परमेश्वर! (त्वा-उतासः) तेरे अधीन सुरक्षित रहकर (वयम्) हम (वज्रम्) शत्रु के वरण करने वाले शस्त्रास्त्र और (घना) उनको हनन करने वाले संहारकारी साधनों को (आददीमहि) ग्रहण करें। (युधि) युद्ध में हम (स्पृधः) स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को (जयेम) जीतें।

व॒यं शूरे॑भि॒रस्तृ॑भि॒रिन्द्र॒ त्वया॑ यु॒जा व॒यम्।
सा॒स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! परमेश्वर! (वयम्) हम (अस्तृभिः) शस्त्रास्त्रों के फेंकने में कुशल (शूरेभिः) शूरवीर पुरुषों और (त्वया युजा) तुझ सहायक से युक्त होकर (पृतन्यतः) सेनाओं को बढ़ा कर युद्ध में आने वाले शत्रुओं को (सासह्याम) बराबर पराजित करें।

म॒हाँ इन्द्रः॑ प॒रश्च॒ नु म॑हि॒त्वम॑स्तु व॒ज्रिणे॑ ।
द्यौर्न प्र॑थि॒ना शवः॑ ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(इन्द्रः) समस्त जगत् का राजा, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा ही (महान्) बड़ा है और वही (परः चन) सर्वोत्कृष्ट है। (वज्रिणे) न्यायानुसार बल से युक्त, वीर्यवान् पुरुष को ही (महित्वम्) पूजनीय बड़प्पन का पद (अस्तु) हो। वह ही (प्रथिना) अति विस्तृत (शवः) बल से (द्यौः न) सूर्य और आकाश के समान महान् और सर्वोपरि है। उसको ही (शवः) बल और ज्ञान भी प्राप्त हो।

स॒मो॒हे वा॒ य आश॑त॒ नर॑स्तो॒कस्य॒ सनि॑तौ ।
विप्रा॑सो वा धिया॒यवः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) नेता पुरुष (समोहे) संग्राम में (आशत) लगे रहते हैं (वा) और जो लोग (स्तोकस्य) पुत्र, पौत्र आदि सन्तानों के (सनितौ) प्राप्त करने में गृहस्थ होकर रहते हैं (वा) और जो (धियायवः) विज्ञान को प्राप्त करने और गुरुओं से ज्ञान लाभ करने के इच्छुक, (विप्रासः) मेधावी पुरुष हैं वे सब भी आदर के योग्य हैं।

यः कु॒क्षिः सो॑म॒पात॑मः समु॒द्र इ॑व॒ पिन्व॑ते ।
उ॒र्वीरापो॒ न का॒कुदः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो सूर्य के समान (कुक्षिः) समस्त पदार्थों से रस भाग लेने में समर्थ है, जो (सोमपातमः) मेघ के समान उत्तम ऐश्वर्य का पालक, अथवा जल का ग्रहणकर्त्ता होकर (समुद्रः इव) जलों को बरसाने वाले अन्तरिक्ष या सूर्य के समान ही प्रजाओं पर (काकुदः) गर्जन करने वाले मेघ के समान (उर्वीः) पृथ्वियों, उन पर बसने वाली प्रजाओं पर (आपः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों या जलधाराओं के समान आप्तों का (पिन्वते) सेवन करता है वही राजा आदरयोग्य है।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर की (एव हि) ही निश्चय से (सुनृता) उत्तम ज्ञान को प्रकाशित करने वाली, प्रिय और सत्य प्रकाशक अथवा अप्रियों का नाश करने वाली सत्यमयी वाणी (विरप्शी) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाली, अति विस्तृत, (गोमती) वेद-वाणियों से युक्त (मही) पृथ्वी के समान ही पूजनीय है । वह (दाशुषे) दानशील, एवं दूसरों को ब्रह्मविद्या का प्रदान करने वाले गुरु और अपने को भक्तिश्रद्धापूर्ण शिष्य रूप से सौंप देने वाले, नित्य विद्याभ्यासी पुरुष के लिए (पक्वा शाखा न) पके फलों से लदी वृक्ष की शाखा के समान नाना सुखप्रद होती है ।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—(एव) निश्चय से, हे (इन्द्र) ईश्वर ! (ते विभूतयः) तेरी ये ऐश्वर्यों से युक्त विभूतियाँ सब (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) आत्मसमर्पण कर देने वाले जीव की (ऊतये) रक्षा के लिए (सद्यः चित्) सदा ही, (सन्ति) होती हैं ।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के वर्णन करने वाले (एवा हि) ही (काम्या) मनोहर (शंस्या) और स्तुति योग्य (स्तोमः उक्थं च) मन्त्र समूह और सूक्त हैं । (सोमपीतये) सोम अर्थात् जगत् के पदार्थों को वश में लेने हारे (इन्द्राय) परमेश्वर के गुण वर्णन के लिए ही उनका उच्चारण करो ।

[६] मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः । १, ३, ७, १० निचृद् । ५, ६ पिपीलिकामध्या निचृद् । दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! सूर्य जैसे (विश्वेभिः) समस्त (सोमपर्वभिः) चन्द्र के पर्वों से और (अन्धसः) अन्धकार के नाश करने वाले प्रकाश से प्रतिदिन आता है और प्राणियों के हर्ष का कारण होता है और जैसे सूर्य (ओजसा) तेज से (अभिष्टिः) सर्वत्र व्यापक और (महान्) महान् सामर्थ्य वाला है, वैसे ही परमेश्वर (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) समस्त पदार्थों और प्राणियों के पोरु पोरु में स्थित, नाना उत्पादक और प्रेरक सामर्थ्यों से, (अन्धसः) सबको प्राण धारण कराने वाले अन्न और पृथिवी आदि तत्वों से (मत्सि) सबको तृप्त करता है । वह तू (आ इहि) हमें प्राप्त हो । तू (ओजसा) अपने संसार को धारक तेज से (अभिष्टिः) सब पदार्थों के अणु अणु में व्यापक होकर (महान्) बड़े भारी सामर्थ्यवान् है ।

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ईम् एनं आ सृजत) इस अग्नितत्त्व और जलतत्त्व को नाना प्रकार से प्रकाशित करो और साधो । (सुते) उत्पन्न हो जाने पर (मन्दिम्) हर्षदायक (चक्रिम्) क्रिया उत्पन्न करने वाले इस अग्नितत्त्व, विद्युत् को (विश्वानि) समस्त कार्यों और पुरुषार्थों के (चक्रये) करने हारे (इन्द्राय) ऐश्वर्य के इच्छुक जीव के सुख के लिए करो ।

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥

भा०—हे (सुशिप्र) उत्तम ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप ! हे (विश्वचर्षणे) समस्त संसार के द्रष्टः ! विश्व को अपने भीतर आकर्षण करने हारे परमेश्वर ! तू (मन्दिभिः) हर्षित करने वाले (स्तोमेभिः) गुणों के प्रकाशक वेद के स्तुति वचनों से (एषु सवनेषु) इन ऐश्वर्यों में, ध्यान वन्दनादि में, अथवा जगत् सर्गों में विद्यमान हमको (मत्स्व) हर्षित कर।

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी (गिरः) वेदवाणियां (वृषभम्) समस्त सुखों के वर्षक, (पतिम्) सबके पालक (त्वाम् प्रति) तुझको ही (उत् अहासत) सर्वोच्च बतलाती हैं। तूही उनको (अजोषाः) स्वयं सेवन करता, अर्थात् उनकी यथार्थता का विषय है। अतः मैं भी उनको (त्वाम् प्रति असृग्रम्) तेरे ही स्तुतिवर्णन के लिए प्रयोग करता हूँ।

सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम्।
असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! तू (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, अति श्रेष्ठ, (चित्रम्) सञ्चय करने योग्य, चक्रवर्ती राज्य, विद्या, मणि, सुवर्ण, हाथी आदि सम्पत्ति को हमें (सं चोदय) प्रदान कर। (ते) तेरा (विभु) व्यापक, सुखप्रद और (प्रभु) प्रभावजनक सामर्थ्य (असत्) है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ईश्वर ! हे (तुविद्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी ! तू (रभस्वतः) कार्य करने के सामर्थ्यवान् (अस्मान्) हम (यशस्वतः) यशस्वी एवं बलवीर्य से सम्पन्न पुरुषों को (राये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए (सुचोदय) उत्तम मार्ग में चला।

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अस्मे) हमें (गोमत्) उत्तम वाणी, गौ आदि पशु और पृथ्वी से युक्त, (वाजवत्) अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त (पृथु) विस्तृत, (बृहत्) बड़े भारी (अक्षितम्) अक्षय (श्रवः) यश और धन और (विश्वायुः) पूर्ण आयु सौ वर्षों की और उससे भी अधिक आयु (सं धेहि) प्रदान कर।

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! (अस्मे) हमें और हमारी रक्षा के लिए (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी अन्न और (सहस्रसातमम्) सहस्रों को और सहस्रों सुखोपभोग देने में भी अति अधिक (शुभम्) ऐश्वर्य और (रथिनीः) रथादि चतुरंग (ताः) नाना (इषः) आज्ञावर्तिनी सेनाएं (धेहि) प्रदान कर और राष्ट्र में रख।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

भा०—(वसोः) बसनेहारे प्रजाजन और उनके निवास हेतु ऐश्वर्य के स्वामी, (ऋग्मियम्) वेदमन्त्रों के बनानेहारे (गन्तारम्) सर्वव्यापक परमेश्वर की (गीर्भिः गृणन्तः) वाणियों से स्तुति करते हुए (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिए (होम) स्तुति करते हैं।

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—(अरिः इत्) शत्रु भी (सुते सुते) प्रत्येक अभिषेक में (नि ओकसे) नियत स्थान बनाकर रहनेवाले दृढ़ दुर्ग के स्वामी (बृहते)

अपने से शक्ति में बड़े (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति के बृहत् (शरणम्) बड़े भारी बल का (अर्चति) आदर करता है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

[१०] मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—अनुष्टुभः । १, ३, ५ विराट् । ४ एकोना विराट् । ६, ८ निचृद् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

भा०—(गायत्रिणः) साम के गान करने हारे (त्वा) तेरा ही (गायन्ति) गान करते हैं । (अर्किणः) वेदमन्त्रों के ज्ञाता जन भी (अर्कं-त्वा) अर्चना करने योग्य तेरी ही (अर्चन्ति) अर्चना करते हैं । हे (शत-क्रतो) सैकड़ों कर्मों के करने हारे परमेश्वर ! (ब्रह्माणः) वेदज्ञ ब्राह्मण-जन भी (वंशम् इव) वंश अथवा ध्वजा दण्ड के समान (त्वा) तुझको ही (उद्येमिरे) उत्तम पद पर नियत करते हैं ।

यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जैसे मनुष्य (सानोः) एक पर्वत शिखर से (सानुम्) दूसरे पर्वत शिखर पर (आरुहत्) चढ़ता है तब वह और (भूरि) करने योग्य कार्यों को और जाने योग्य बहुत स्थानों को दूर दूर तक (अस्पष्ट) देख सकता है । (तत्) वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी (अर्थम्) प्राप्त होने योग्य समस्त पदार्थों को (चेतति) सर्वोपरि होने से जानता है । (वृष्णिः) वर्षण करने वाला मेघ जिस प्रकार (यूथेन) वायुगण से प्रेरित होकर आगे बढ़ता है उसी प्रकार परमेश्वर भी समस्त काम्य सुखों का वर्षण करने हारा होकर (यूथेन) सुख प्रदान करने वाले समस्त साधनों से (राजति) संसार को चलाता है ।

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रकाशस्वरूप ! (केशिना हरी) जैसे तेजस्वी राजा अपने दो अयाल वाले, बलवान्, कोखों पर भरे पूरे हुए हृष्ट-पुष्ट (वृषणा कक्ष्यप्रा) घोड़ों को रथ में जोड़ता है वैसे ही तू भी (केशिना) प्रकाशयुक्त किरणरूप केशों वाले (हरी) व्यापनशील (वृषणा) वृष्टि के कराने वाले (कक्ष्यप्रा) सब पदार्थों के अवयव अवयव में व्याप्त, धन व ऋण दोनों बलों को (युक्ष्वा हि) निश्चय से जोड़ता है । (अथ) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! तू (गिराम्) वाणियों को (उपश्रुतिम्) श्रवण (चर) कर ।

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (आ इहि) आप, हमें प्राप्त हों । हे (इन्द्र) वाणी प्रदान करने हारे ! (स्तोमान्) वेदमन्त्र समूहों को (अभिस्वर) साक्षात् ज्ञान करा । (अभि गृणीहि) सन्मुख साक्षात् उपदेश कर । (आ रुव) प्रतिपद की व्याख्या कर । हे (वसो) समस्त भूतों में बसने वाले और सबको अपने में बसाने हारे एवं ब्रह्मचारियों को अपने कुल में बसाने हारे गुरो ! (नः) हमारे (ब्रह्म च) ब्रह्म, वेदज्ञान और ब्रह्मचर्य (सचा) और (यज्ञं च) यज्ञकर्म और परस्पर मिलके करने योग्य वेदाध्ययन रूप यज्ञ एवं आत्मा के बल और ईश्वरोपासना को भी (वर्धय) बढ़ा ।

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

भा०—(पुरु-निष्षधे) अनेक शास्त्रों का ज्ञान करने हारे (इन्द्राय) ज्ञान के उपदेशक आचार्य को प्रसन्न करने के लिए (वर्धनम्) आदर का बढ़ाने वाला (उक्थम्) वचन (शंस्यम्) कहने योग्य है । (यथा) जिससे वह (शक्रः) ज्ञानवाणी में रमण करने वाला अथवा याचनानुसार

फल देने वाला आचार्य (नः) हमारे (सख्येषु) मित्रों, समान रूप से नाम, यश को धारण करने वाले पुत्र, स्त्री, भृत्य, बन्धुओं में और (नः सुतेषु च) हमारे पुत्रों में भी (रारणत्) बराबर उत्तम उपदेश करे।

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—(तम् इत्) उसको हम (सखित्वे) अपना मित्र होने के लिए (ईमहे) प्रार्थना करते हैं। (तं राये) और उसी से ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं (सुवीर्ये) उत्तम बल के लिए भी (तम्) उसी से प्रार्थना करते हैं और (सः) वही (शक्रः) 'शक्र' कहाता है जो हमें हमारे याचित फल प्रदान करता है (उत) और जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् होकर (दयमानः) दान देता, रक्षा करता, शत्रुओं का नाश करता हुआ (नः) हमें (वसु शकत्) सुख से बसने योग्य धन प्रदान करता है।

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुविवृतम्) सुखपूर्वक विकसित, एवं (सु-निरजम्) अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त, (यशः) जल के समान अन्न, बल और ज्ञान (त्वादतम् इत्) तेरा ही शोधा हुआ या प्रदान किया हुआ है। हे ईश्वर ! हे गुरो ! (गवाम् व्रजम्) जैसे कोई गवाला गौओं के बाड़े को खोल दे तो गौएं बहुत प्राप्त होती हैं वैसे ही हे प्रभो ! गुरो ! (गवां व्रजम्) सूर्य के किरण समूहों के समान ज्ञानवासियों के समूह को (अप वृधि) खोल दे, उनके आवरण को दूर करके प्रकट कर और हे (अद्रिवः) मेघों से युक्त वायु जैसे जल प्रदान करता है वैसे ही अखण्ड शक्ति से सम्पन्न बलवन् ! एवं ऐश्वर्यवन् ! तू ही (राधः कृणुष्व) ऐश्वर्य और ज्ञानोपदेश प्रदान कर।

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्ववर्तीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों भी (ऋघायमाणम्) उपासना करने योग्य (त्वा) तुझको (नहि इन्वतः) नहीं व्यापते। तू (स्ववर्तीः अपः) प्रकाशयुक्त या आकाश में स्थित समस्त लोकों को (जेषः) विजय करता है, (गाः) सूर्य जैसे किरण प्रदान करता है वैसे ही तू (अस्मभ्यम्) हमें (गाः) ज्ञानवाणियों को (सं धूनुहि) भली प्रकार प्रदान कर।

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (आश्रुत्कर्ण इन्द्र) सर्वत्र श्रवण करने वाले कानों से युक्त परमेश्वर ! तू (नु) निश्चय से (मे हवं) मेरी स्तुति को (श्रुधि) श्रवण करता है। तू (गिरः दधिष्व) मेरी स्तुति वाणियों को धारण कर, सुन। (मम युजः) मुझ समाहित चित्त वाले साधक मित्र के (इमं स्तोमं चित्) इस स्तुति समूह को (अन्तरम् कृष्व) भीतर कर।

विद्मा वि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

भा०—हे राजन् ! हे परमेश्वर ! (त्वा हि) तुझको ही हम (वृषन्तमम्) सुखों को सबसे अधिक वर्षाने वाला और (वाजेषु) यज्ञों और संग्रामों में (हवनश्रुतम्) भक्तों के आह्वानों को सुनने वाला और प्रजाओं की पुकार और शत्रुओं की ललकारों को सुनने वाला (विद्म) जानते हैं। (वृषन्तमस्य) सुखों के वर्षक तेरी (सहस्रसातमाम्) सहस्रों सुखों के देने वाली (ऊतिम्) रक्षा की (हूमहे) याचना करते हैं।

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (कौशिक) समस्त पदार्थों का यथार्थ उपदेश करने वाले परमेश्वर ! तू (मन्दसानः) ज्ञान प्रकाश से अति उज्वल होकर (सुतं) प्रयत्न से उत्पन्न किये ज्ञान रस का ओषधि रस के समान (पिब) पान कर, श्रवण कर और (नव्यम्) नये (आयुः) जीवन को (सु प्रतिर) खूब अधिक बढ़ा और (ऋषिम्) वेदमन्त्रों के अर्थ देने वाले विद्वान् पुरुष को (सहस्रसाम्) सहस्रों ज्ञानों और ऐश्वर्यों को लाभ करने में समर्थ (कृधि) कर।

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वेद और विद्वानों की वाणियों का सेवन करने वाले ! (इमाः गिरः) ये समस्त वाणियें (विश्वतः) सब प्रकार से (त्वा परि भवन्तु) तुझे ही लक्ष्य करके हों, तेरे गुणों का वर्णन करें। (वृद्धयः) वृद्धि को प्राप्त होने वाली, (जुष्टयः) सेवन करने योग्य वाणियां तुझ (वृद्धायुम्) महान् को ही लक्ष्य कर (जुष्टाः) अति प्रीतिकर (अनु भवन्तु) हों। इति विंशोवर्गः ॥

[११] जेता माधुच्छन्दस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—अनुष्टुप्। १, ३, ८ निचृद्। ५ एकोना विराट्। ७ विराट्। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

भा०—(समुद्र-व्यचसम्) समुद्र के समान अति विस्तृत, आकाश और अन्तरिक्ष में भी व्यापक, (रथीनाम्) रथवान् सैनिकों के बीच (रथीतमम्) सबसे श्रेष्ठ रथारोही वीर के समान रमण साधनरूप देह-धारी जीवों में भी (रथीतमम्) सर्वश्रेष्ठ पृथिवी आदि रमण साधन लोकों में भी व्यापक और (सत् पतिम्) सत्, नाशरहित कारण द्रव्यों के भी परिपालक, स्वामी और (वाजानां) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी,

परमेश्वर को ही (विश्वाः गिरः अवीवृधन्) समस्त वेदवाणियां बढ़ाती हैं, उसकी महिमा का गान करती हैं।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे शत्रुनाशक राजन् ! सेनापते ! (वाजिनः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, उत्तम वेगवान् अश्वारोही ऐश्वर्यवान् और संग्रामकारी योद्धागण हम (ते सख्ये) तेरे मित्र भाव में रहकर (मा भेम) कभी भयभीत न हों। हे (शवसस्पते) समस्त ज्ञानों और बलों के स्वामिन् ! (जेतारम्) जीतने वाले और (अपराजितम्) पराजित न होने वाले, (त्वाम् अभि) तुझे ही लक्ष्य करके (प्र नोनुमः) सदा हम स्तुति करते हैं।

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

भा०—(यदि) जिससे (गोमतः) उत्तम गौ आदि पशु, वाणी आदि इन्द्रियों से सम्पन्न (वाजस्य) सुख प्राप्त करने वाले सामर्थ्य के (मघम्) ऐश्वर्य को (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्ता विद्वान् पुरुषों को (मंहते) दान करता है, इसी कारण से (इन्द्रस्य) परमेश्वर के दिये (पूर्वीः) सनातन से चले आये (रातयः) दान, (ऊतयः) ज्ञान और रक्षाएं (न विदस्यन्ति) कभी विनष्ट नहीं होतीं।

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

भा०—परमेश्वर (पुरां भिन्दुः) मुमुक्षु जनों के देह रूप पुरों को तोड़ने वाला होने से 'पुरभित्' है। कभी वृद्ध और परिणामी न होने से अथवा नाना पदार्थों को मिलाने, जुदा करने में समर्थ होने से 'युवा' है। (कविः) क्रांतदर्शी होने से 'कवि' है। (अमितौजाः) अनन्त पराक्रम होने

से वह सर्वशक्तिमान् है। वह परमेश्वर ही (वज्री) अज्ञान का निवारक होने से, ज्ञानमय वज्र का धर्त्ता 'वज्री' है। (पुरुष्टुतः) बहुत से विद्वानों से स्तुति किये जाने से 'पुरस्तुत्' है। वह ही (इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य कर्मणः) विश्व रूप कर्म का (धर्त्ता) धारण करने वाला (अजायत) है।

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रवन्! अखण्ड वीर्यवन्! राजन्! (गोमतः वलस्य) सूर्य जैसे किरणों को रोकने वाले मेघ के (बिलम्) जल को (अपावः) छिन्न-भिन्न कर देता है वैसे ही तू भी (गोमतः बलस्य) भूमि को रोक लेने वाले, शत्रु को (अप अवः) दूर कर (अबिभ्युषः) भयरहित होकर (तुज्यमानासः) तुझसे अपना आश्रय पाकर, तेरे से नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करके (देवाः) विद्वान् पुरुष, युद्ध विजयी सैनिकगण भी (त्वां आविषुः) तुझे प्राप्त होते हैं, तेरा आश्रय लेते हैं।

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन्।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर राजन्! परमेश्वर! (तव रातिभिः) तेरे अनेक दानों से मैं तुझको (सिन्धुम्) बहते महानद के समान अक्षय ऐश्वर्यवान् (आ वदन्) कहता हुआ (प्रतिआयम्) प्राप्त होता हूँ। हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति योग्य! (तस्य) उस समुद्र के समान गम्भीर और ऐश्वर्यवान् (ते) तुझे ही (कारवः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् गण और राज्यादि कार्यों के कुशल कर्त्ता पुरुष (ते विदः) तेरे सामर्थ्य को जानते हैं और (उपातिष्ठन्त) तेरी उपासना करते हैं।

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वं) तू (मायिनम्) कुटिल बुद्धि वाले (शुष्णम्) प्रजाओं के रक्त शोषण करने वाले, अधार्मिक पुरुष को (मायाभिः) विशेष बुद्धियों से (अव अतिरः) विनष्ट कर । (मेधिराः) मेधावी पुरुष (ते तस्य) तेरे उस सामर्थ्य को (विदुः) भली प्रकार जानें और (तेषां) उनको तू (श्रवांसि) अन्न और ऐश्वर्य (उत् तिर) प्रदान कर ।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥२१॥३॥

भा०—(यस्य) जिसके (रातयः) दान (सहस्रं) अनेक और पूर्ण हैं । (उत वा) और (भूयसीः) जिसके दान और भी बहुत से (सन्ति) हैं । (स्तोमाः) सब स्तुतिकर्त्ता (ओजसा ईशानम्) पराक्रम से सबको वश करने वाले, (इन्द्रम्) राजा और परमेश्वर की (अनूषत) स्तुति करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[१२] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः । ३, ५ निचृद् । ४, १० पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ विराड् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

भा०—हम (अस्य यज्ञस्य) इस ब्रह्माण्डमय यज्ञ के (सुक्रतुम्) उत्तम ज्ञाता और कर्त्ता (विश्ववेदसम्) विश्व के ज्ञाता, समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, (होतारम्) सबके दाता, (दूतम्) उपास्य और सूर्य के समान दुष्टों के सन्तापकारी परमेश्वर को हम (वृणीमहे) वरण करते हैं ।

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

भा०—(हवीमभिः) आहुति या भोजन योग्य पदार्थों से जैसे (हव्यवाहम्) आहवनीयाग्नि या जाठर अग्नि को (सदा हवन्त) लोग

अन्न, हवि प्रदान करते हैं वैसे ही (पुरुप्रियम्) बहुतों को प्रिय लगने वाले (विश्वपतिम्) प्रजाओं के पालक (अग्निम्-अग्निम्) अग्नि के समान ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को (हवीमभिः) ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थों से सदा (हवन्त) आदर सत्कार करो।

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे।
असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन्! परमेश्वर! विद्वन्! तू (इह) यहां (देवान्) सूर्य जैसे किरणों को प्राप्त करता है वैसे ही तू विद्वान् पुरुषों को (आवह) प्राप्त कर। तू (वृक्तबर्हिषे) यज्ञार्थ कुशादि काटकर लाने वाले, कुशल या विद्वान् पुरुष के उपकार के लिए (जज्ञानः) स्वयं प्रकट होकर उत्तम ज्ञानों को प्रकट कराने वाला और (होता) अग्नि के समान आहुति किये पदार्थों को ग्रहण करने वाला, (नः) हमारा (ईड्यः) पूजनीय (होता असि) होता नामक विद्वान् या उपदेष्टा (असि) हो।

ताँ उ॑श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म्।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! (यत्) जब तू (दूत्यम्) दूत कर्म, शत्रुओं के संताप देने वाले कार्य को (यासि) प्राप्त होता है तब तू (तान्) (उशतः) तेरी चाहना करने वालों को (बिबोधयः) विशेष प्रकार से बतला और (देवैः) तेजस्वी पुरुषों सहित (बर्हिषि) आसन पर, प्रजा के राज्यशासन पर (आ सत्सि) विराजमान हो।

घृता॑हवन दीदिवः॒ प्रति॑ ष्म॒ रिष॑तो दह।
अग्ने॒ त्वं र॑क्ष॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (घृताहवन) अग्नि में जैसे घृत आदि दीप्तिकारक पदार्थों की आहुति दी जाती है वैसे ही घृत

अर्थात् तेजोवर्धक साधनों की आहुति लेने हारे ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् ! (त्वं) तू (रक्षस्विनः) दुष्ट पुरुषों वाले (रिशतः) हिंसाकारी शत्रुसंघों को (प्रतिदह स्म) एक एक करके जला डाल।

अ॒ग्निना॒ग्निः समि॑ध्यते क॒विर्गृ॒हप॑तिर्यु॒वा ।
ह॒व्य॒वाड् जु॒ह्वा॑स्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—(अग्निना अग्निः) जैसे एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही (हव्यवाड्) आहुति योग्य हवि को ग्रहण कर उसको नाना देश में प्राप्त कराता और (जुहू आस्यः) ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है। वैसे ही (कवि) क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है। वह भी (हव्यवाड्) ग्रहण करने योग्य ज्ञान का धारक होने से 'हव्यवाड्' और (जुहू-आस्यः) उपदेशप्रद वाणी को मुख में रखने वाला होने से 'जुह्वास्य' कहाता है। ऐसे ही (युवा गृहपतिः) युवा, बलवान् गृहपति भी गृहपति से ही उत्पन्न होकर, अग्नि के समान ही गृहपति हो जाता है। वह भी अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के प्रदान करने से 'हव्यवाड्', 'जुहू' नाम उत्तम वाणी को मुख में धारण करने से 'जुह्वास्य' है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

क॒विम॒ग्निमुप॑ स्तुहि स॒त्यध॑र्माणमध्व॒रे ।
दे॒वम॑मीव॒चात॑नम् ॥ ७ ॥

भा०—(कविम्) क्रान्तदर्शी, (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप, (सत्यधर्माणम्) सत्य धर्मों के धारक, (अमीवचातनम्) अज्ञान आदि पीड़ाओं के नाशक, (देवम्) सुखप्रद परमेश्वर की स्तुति कर और इसी प्रकार (सत्यधर्माणम्) सत्य धर्म वाले, (देवं) प्रकाशक (अमीवचातनं) रोगहारी (अग्निम्) अग्नि का (स्तुहि) सबको उपदेश कर।

यस्त्वाम॑ग्ने ह॒विष्प॑तिर्दू॒तं दे॑व स॒पर्य॑ति ।
तस्य॑ स्म प्रावि॒ता भ॑व ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! राजन् ! (यः) जो (हविष्पतिः) अन्न आदि पदार्थों और उत्तम गुणों का पालक पुरुष, (दूतम्) ज्ञान के दाता और शत्रुओं के पीड़क (त्वाम्) तुझको (सपर्यति) उपासना और सेवा करता है, हे (देव) दानशील ! तू (तस्य) उसका (प्र अविता) उत्तम रक्षक (भव) हो।

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (हविष्मान्) अन्नादि पदार्थों का स्वामी होकर (देववीतये) विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने और उत्तम गुणों को प्राप्त करने के लिये (अग्निम्) यज्ञाग्नि के समान परमेश्वर की (आ विवासति) आराधना करता है, हे (पावक) पावन अग्नि के समान पाप-कर्मों को दग्ध करके हृदय को पवित्र करने वाले परमेश्वर ! तू (तस्मै) उसको (मृळय) सुखी कर।

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह ।
उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥

भा०—हे (पावक) परम पावन ! हे (दीदिवः) प्रकाशस्वरूप ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू अग्नि के समान शोधक है। तू (नः) हमारे कल्याण के लिये (देवान् इह आ वह) उत्तम पदार्थों और विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा। (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ और (हविः च) हवि अर्थात् देने लेने योग्य उत्तम अन्न को भी (उप वह) प्राप्त करा।

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! (सः) वह तू (नवीयसा) अति नवीन, सदा स्तुति योग्य, (गायत्रेण) गायत्री छन्द से युक्त प्रगाथ से

(स्तवानः) स्तुति किया जाकर (नः) हमें (वीरवतीम्) वीर पुरुषों से युक्त (इषम्) सेना, अभिलषित अन्न, सत्कार और (रयिम्) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः ।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! परमेश्वर ! तू (शुक्रेण) अति उज्वल, शुद्धिकारक (शोचिषा) दीप्ति से (विश्वाभिः) सब (देवहूतिभिः) विद्वानों और वेदों की वाणियों सहित (इमं स्तोमं) इस स्तुतिसमूह को (जुषस्व) स्वीकार कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[१३] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१ इध्मः समिद्धो वाग्निः । २ तनूनपात् । ३ नराशंसः । ४ इलः । ५ बर्हिः । ६ देवीर्द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ देव्यौ होतारौ प्रचेतसौ । तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतयः ॥ छन्दः—गायत्र्यः । ६ निचृद् । ७, ८, ११, १२ पिपीलिकामध्या निचृद् । द्वादशर्चं माप्रीसूक्तम् ॥

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! अग्रणी विद्वन् ! हे (होतः) ज्ञान के देने हारे, हवि को स्वीकार करने हारे, हे (पावक) हृदय को पवित्र करने वाले, मलों के शोधक, शत्रुओं के नाशक ! (सुसमिद्धः) तू अग्नि के समान तेज, ज्ञान और सद्गुणों से अति उज्ज्वल होकर (नः) हममें से (हविष्मते) ज्ञान और उचित उपाय वाले पुरुष को (देवान् आवह) विद्वान् जन, उत्तम गुण और पदार्थ प्राप्त करा । (यक्षि च) हे पुरुष ! तू उसी की उपासना कर ।

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (तनूनपात्) शरीरों के अंग प्रत्यंगों की रक्षा करने हारे जाठराग्नि के समान! हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्! मेधाविन्! तू (नः) हमारे (मधुमन्तम् यज्ञम्) मधुर, अन्नादि पदार्थों से युक्त यज्ञ के समान मधु अर्थात् शत्रु पीड़नकारी बल से युक्त परस्पर सुसंगत राष्ट्र को (वीतये) उत्तम रीति से भोग करने के लिए (अद्य) आज, सदा (देवेषु) विद्वान् विजयी पुरुषों के आश्रय (कृणुहि) कर।

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

भा०—(इह यज्ञे) इस यज्ञ में (प्रियम्) प्रिय, मनोहर, (नराशंसम्) सब नायक पुरुषों से स्तुति करने योग्य, (मधु-जिह्वम्) मधुर जिह्वा, मधुर वाणी बोलने वाले, (हविष्कृम्) स्वीकार करने योग्य अन्न चरु के सम्पादन और ज्ञानोपदेश करने वाले विद्वान् को मैं (उपह्वये) आदर से बुलाता हूँ।

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह।
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! ज्ञानवन्! (ईळितः) स्तुति किया गया, (सुखतमे रथे) अति सुख देने वाले, रमण करने योग्य विमान यान आदि में तू (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (आवह) ले आ। तू (होता) सब सुखों का देने वाला (मनुः) मननशील होकर (हितः) सबका हितकारी (असि) है।

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः।
यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मनीषिणः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (बर्हिः) यज्ञ में कुशा के बने आसनों को ऐसे (स्तृणीत) बिछाओ कि (आनुषक्) वे एक दूसरे से लगे रहें। (घृतपृष्ठम्) जिस पर घृत के पात्र रक्खे जायं

और (यत्र) जहां (अमृतस्य) जल का (चक्षणम्) दर्शन हो । पृथिवी को वेदी मानकर भौतिक पक्ष में—हे विद्वान् पुरुषो ! (घृतपृष्ठं बर्हिः आनुषक् स्तृणीत) जल से व्याप्त विस्तृत आकाश को ऐसे धूम से आच्छादित करो (यत्र अमृतस्य चक्षणं) जहां जल का मेघ रूप से दर्शन हो ।

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः ।
अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—(अद्य) आज सदा (नूनं च) अवश्य (यष्टवे) यज्ञ करने के अवसर में (ऋतावृधः) सुख को, या निर्गमन और प्रवेश को बढ़ाने वाले (देवीः द्वारः) प्रकाश से युक्त द्वार (असश्चतः) पृथक् पृथक् खुले, चौड़े, (वि श्रयन्ताम्) विविध रूप से लगाये जायं ।

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (सुपेशसा) उत्तम, सुखदायी रूप और ऐश्वर्य वाले (नक्तोषासा) रात्रि और दिन दोनों को (उप ह्वये) उपयोग में लाऊँ । जिससे (नः) हमारा (इदं) यह (बर्हिः) आसन के समान आश्रय करने योग्य गृह (आसदे) सब प्रकार से सुख से, रहने योग्य हो ।

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

भा०—यज्ञ में दो विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति—मैं (होतारा) ज्ञान के देने वाले (दैव्या) देवों, विद्वानों के हितकारी (कवी) क्रान्तदर्शी, दीर्घदर्शी. (सुजिह्वौ) शुभ वाणी बोलने वाले, विद्वानों को (उप ह्वये) बुलाता हूँ । वे दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (यक्षताम्) सम्पादित करें ।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥

भा०—(इळा) इला, (सरस्वती) सरस्वती और (मही) मही (तिस्रः देवीः) तीनों देवियें (मयो भुवः) सुख उत्पन्न करने हारी हैं। वे तीनों (अस्रिधः) अक्षय, अविनाशिनी, अहिंसनीय होकर (बर्हिः) आसन और गृह में (सीदन्तु) बिराजें।

स्तुति करने और कथन करने से 'इला' वाणी है। प्रकाशक होने से 'इडा' वाणी और विद्युत् है। सहशयन और बीजवपन से स्त्री और भूमि दोनों 'इडा' हैं। गौ और अन्न दोनों का वाचक 'इडा' शब्द पड़ा है। उनकी स्वामिनी भी 'इडा' है। पशु, अन्न, श्रद्धा, सत्य-धारणावती बुद्धि या मनुष्य की पत्नी और समस्त विश्वचक्र कारणों की स्वामिनी प्रकृति भी इडा और इरा नाम से कहाती हैं।

सरस्वती वाक् है, सरस्वती स्त्री है, पूषा पुरुष है। सरस्वती वज्र विद्युत् है। सरः और सरस्वती दोनों वाणी के नाम हैं। सरः जल वाचक है। इससे मध्यम वाग् विद्युत् सरस्वती है। 'सरः' उत्तम ज्ञान है, उससे युक्त वेदवाणी सरस्वती है।

प्राणरूप होकर सब प्रजाओं का पोषक होने से अग्नि 'भरत' है। उसकी शक्ति भारती है। भरत ऋत्विज हैं। उनकी स्तुति भारती है। वर्षा देकर जगत्-पालन करने से विद्युत् भारती है।

'मही' पृथ्वी, वाणी और गौ तीनों का नाम है।

फलतः इडा = ऋग्। सरस्वती = यजुः। मही = साम। तीनों नाम पृथ्वीवाचक हैं। इला = अन्नदात्री, सरस्वती = जलदात्री, मही = उत्तम रत्न आदि दात्री। गृहस्थ पक्ष में—इला = कुमारी, सरस्वती = गृहपत्नी। मही = वृद्धा। राज्यपक्ष में—इला = भूमि-प्रबन्धकर्त्री सभा, सरस्वती = विद्वत्सभा, मही = पूज्य शिक्षक समिति।

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

भा०—(इह) यहां मैं (अग्रियम्) अग्र, सर्व-प्रथम, सर्वोच्च अग्रासन के योग्य, सर्वश्रेष्ठ, (विश्वरूपम्) समस्त रूपों को धारण करने वाले, (त्वष्टारम्) संसार के कर्त्ता, सब दुःखों के छेदक, एवं तेजस्वी परमेश्वर को (उप ह्वये) स्मरण करता हूँ । वह (केवलः) केवल, एक अद्वितीय (अस्माकम्) हमारा उपास्य (अस्तु) हो ।

अव॑ सृजा वनस्पते॒ देव॑ दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः ।
प्र दा॒तुर॑स्तु चेत॑नम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (वनस्पते) ऊखल जैसे कूट छानकर गृहस्थों को अन्न प्रदान करता है वैसे ही हे (वनस्पते) बनों के पालक ! हे उपभोग करने योग्य समस्त अन्नादि पदार्थों के पालक ! परमेश्वर, अथवा राजन् ! हे (देव) सब पदार्थों के दातः । तू (हविः अवसृज) चरु के समान अन्न और ज्ञान को उत्पन्न या प्रदान कर जिससे (दातुः) दानशील अथवा आत्मा को शुद्ध करने वाले उपासक को (चेतनम्) ज्ञान, (प्र अस्तु) उत्तम रीति से हो ।

'वनस्पति'—यज्ञ में ऊखल, देह में आत्मा, विश्व में परमेश्वर, राष्ट्र में राजा या सेनापति सब 'वनस्पति' हैं। यज्ञपक्ष में—ऊखल से कूटकर हवि, अन्नादि प्राप्त कर, उससे यजमान की अग्नि प्रदीप्त हो । वृक्षपक्ष में—वृक्षादि ओषधि आदि चरु प्रदान करें जिससे ओषधिशोधक को प्राणबल प्राप्त हो ।

स्वाहा॑ य॒ज्ञं कृ॑णोत॒नेन्द्रा॑य॒ यज्व॑नो गृ॒हे ।
तत्र॑ दे॒वाँ उप॑ ह्वये ॥ १२ ॥ २५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (स्वाहा) उत्तम आहुति द्वारा (यज्ञं) यज्ञ को (यज्वनः) दानशील धार्मिक पुरुष के (गृहे) घर में (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति, और ईश्वरोपासना के लिए

(कृणोतन) करें । (तत्र) उस यज्ञ में मैं (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (उप ह्वये) आदरपूर्वक बुलाऊं ।

१–४ मन्त्रों में विद्वानों के आह्वाता होता का वर्णन है । ५ वें में यज्ञ में आसन कुशाच्छादन है । ६ ठे में यज्ञशाला के द्वार, ७ में नक्त और उषा, ८ वें में दो दैव्य होता, ९ में तीन देवियें, १० में त्वष्टा, ११ वें में वनस्पति और १२ वें में स्वाहा का वर्णन है । अध्यात्म में—क्रम से मन, देह, उसके प्राण द्वार, जागृत स्वप्नदशा, प्राण अपान, दो होता, इडा पिङ्गला सुषुम्ना तीन नाड़ियें, त्वष्टा परमेश्वर, वनस्पति आत्मा और उनकी परस्पर आहुति यह अध्यात्म यज्ञ का वर्णन है ।

[१४] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः । छन्दः—गायत्र्यः । ७, ८ पिपीलिकामध्या निचृद् । १२ निचृद् । १०, ११ विराड् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

एभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये ।
देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वव्यापक परमेश्वर ! तू (एभिः) इन (विश्वेभिः) समस्त (देवेभिः) दिव्य गुण वाले, तेजस्वी जल अग्नि आदि पदार्थों सहित, (सोमपीतये) सुखजनक पदार्थों को उपभोग कराने के कारण (दुवः) समस्त आराधना, सेवा और (गिरः) स्तुति वाणियों को (याहि) प्राप्त हो । (यक्षि च) मैं आपकी उपासना करता हूँ ।

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः ।
देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे (विप्र) विविध विद्याओं को और प्रजाओं को पूर्ण करने वाले विद्वन् ! (ते धियः) तेरे ही कर्मों और विद्वानों को (कण्वाः) अन्य विद्वान् पुरुष (गृणन्ति) अन्यों को उपदेश करते हैं और (त्वा) तेरी ही (अहूषत) स्तुति करते, तेरा ही स्मरण करते

हैं। हे (अग्ने) ज्ञानवन्, तू, (देवेभिः) देव, दिव्यगुण वाले उत्तम विद्वानों सहित (आगहि) आ, हमें प्राप्त हो।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३ ॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इन्द्र-वायू) विद्युत् और वायु, (बृहस्पतिम्) बड़े २ लोकों के पालक, सूर्य, (मित्रा) मित्र, प्राण, (अग्निम्) भौतिक अग्नि, (पूषणम्) सबके पोषक अन्नप्रद पृथिवी, अन्न और ओषधिवर्धक चन्द्र, (भगम्) सुख से सेवन योग्य ऐश्वर्य और (आदित्यान्) सूर्य और पृथिवी की गति से उत्पन्न १२ मासों और (मारुतम् गणम्) वायुओं के समूह इन सबका (गृणन्ति) उपदेश करें और उनको प्रयोग करें।

प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः।
द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के सुख के लिये ही (इन्दवः) द्रुतगति से जाने वाले, (मत्सराः) हर्षपूर्वक शत्रु पर प्रयाण करने वाले, (मादयिष्णवः) सबको हर्षित करने वाले, (द्रप्साः) अति गर्वशील, (चमूषदः) सेना में सुसज्जित (मध्वः) जलों के समान वेग से गतिशील एवं शत्रुओं का पीड़न करने वाले वीर पुरुष (भ्रियन्ते) राष्ट्र में भृति, अन्न आदि द्वारा रक्खे और पाले पोसे जाते हैं।

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अरङ्कृतः ॥ ५ ॥

भा०—(अवस्यवः) रक्षा, तेज और ज्ञान की इच्छा वाले (वृक्त-बर्हिषः) कुशा को काट लाकर यज्ञ को रचने वाले, फलतः कुशल (कण्वासः) विद्वान् (हविष्-मन्तः) दान और ग्रहण योग्य

अन्नादि पदार्थों से युक्त (अरंकृतः) सब कार्यों को सुचारु रूप से करने वाले पुरुष (त्वाम्) तेरी ही (ईलते) स्तुति करते हैं।

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे परमेश्वर (घृतपृष्ठाः वह्नयः) घृत से सिंची, अग्नियों के समान अति तेजस्वी, (मनोयुजः) मन के बल से योग-समाधि करने वाले, (वह्नयः) शरीर को वहन करने वाले, अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, (घृतपृष्ठाः) अति तेजोमय प्रकाश से युक्त होकर (त्वा वहन्ति) तुझ को धारण करते हैं। तू (सोमपीतये) आनन्द-जनक ज्ञान रस का पान करने के लिये (देवान्) उन विद्वान् पुरुषों को (आ) स्वीकार कर।

तान्यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि।
मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (यजत्रान्) देवोपासना करने वाले (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान, यज्ञ और राष्ट्र की वृद्धि करने वाले (पत्नीवतः) उत्तम पत्नियों से युक्त गृहस्थ पुरुषों को (कृधि) ऐश्वर्य-वान् कर और हे (सुजिह्व) उत्तम ज्वाला से युक्त अग्नि के समान उत्तम वाणी से युक्त विद्वन् ! तू हमें (मध्वः) मधुर ज्ञानरस का (पायय) पान करा।

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया।
मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो मनुष्य (यजत्राः) यज्ञ करने वाले, उपासना-शील और जो (ईड्याः) स्तुति करने योग्य हैं (ते) वे (जिह्वया) अपनी वाणी द्वारा ही (वषट्कृति) वषट्कार युक्त यज्ञ अर्थात् बल

४ प्र.

के कार्य में और गृहस्थ के यज्ञादि कार्य में (मधोः पिबन्तु) मधुर रस, ज्ञान का पान करें।

[१] शरीर में वाणी, प्राण और अपान ये वषट्कार हैं। [२] वीर्य सेचन भी वषट्कार है। छः ऋतुओं में सूर्य बलाधान करता है यह उसका वषट्कार है। सूर्य स्वतः वषट्कार है। 'धाता' होना अर्थात् वीर्य आधान करने में समर्थ होना वषट्कार है। बज्र, धामच्छद और रिक्त ये तीन स्वरूप वषट्कार के हैं। ओजः और सहः अर्थात् पराक्रम और शत्रु दमनकारी बल ये दोनों वषट्कार के दो स्वरूप हैं। ब्रह्म यज्ञ के चार वषट्कार हैं वायु का वेग से चलना, बिजली का चमकना, गर्जना और कड़कना। फलतः—यज्ञ में—(यजमान ईड्याः) यज्ञशील स्तुति योग्य पुरुष मधुर अन्न का भोग करें। गृहस्थ कार्य, प्रजोत्पत्ति के कार्य में हे अग्ने ! काम ! परस्पर संगत एवं एक दूसरे की इच्छा पूर्ति करने वाले स्त्री पुरुष (जिह्वया) रस ग्रहण शक्ति से (मधोः) मधुर रस आनन्द को प्राप्त करें।

आकीं सूर्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उषर्बुधः।
विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥

भा०—(विप्रः) बुद्धिमान् (होता) ज्ञान का दान और ग्रहण करने वाला पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य के समान चराचर के प्रकाशक परमेश्वर के (रोचनात्) प्रकाश से ही (उषर्बुधः) उषाकाल अर्थात् सृष्टि के आदि काल में बोध को प्राप्त कराने वाले (विश्वान्) समस्त (देवान्) ज्ञानप्रद वेदमन्त्रों को (आकीम् वक्षति) सब प्रकार से और सुखप्रद सब दिव्य भोगों को प्राप्त करे।

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! जीव ! जैसे अग्नि (इन्द्रेण वायुना)

ऐश्वर्य और तेज की वृद्धि करने वाले गतिशील वायु से और (मित्रस्य धामभिः) प्राण के धारण सामर्थ्य–या जल के बलों से (सोम्यं मधु पिबति) प्रेरक बल को उत्पन्न करने वाले (मधु) द्रव पदार्थ को अपने भीतर ग्रहण करता है वैसे ही तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के उत्पादक (वायुना) वायु से और (मित्रस्य धामभिः) सूर्य के प्रकाशों के समान प्राण के धारण सामर्थ्यों से (सोम्यम् मधु) वीर्य के उत्पन्न करने वाले मधुर अन्न और ब्रह्मानन्द के जनक (मधु) मधुर ब्रह्मज्ञान का (पिब) पान कर।

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (त्वं) तू (होता) यज्ञ में होता नाम ऋत्विज् के समान सब ज्ञानों को धारण करने वाला, (मनुः) मनन-शील (हितः) सर्व हितकारी होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (सीदसि) विराज। (सः) वह तू (नः) हमारे (इमं) इस (अध्वरम्) यज्ञ, एवं न नाश करने योग्य, उत्तम, सुखजनक पदार्थ को (यज) प्राप्त करा।

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः।
ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

भा०—हे (देव) विद्वन्! तू (रथे) रमण करने योग्य रथ में (अरुषीः) रक्त गुण वाली, मननशील, (हरितः) हरणशील शक्तियों को (युक्ष्व) संयोजित कर। (ताभिः) उनसे (इह) लोक में (देवान्) कामना योग्य सुखकारी पदार्थों और व्यवहारों को (आवह) प्राप्त करा। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[१५] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता ऋतवः। १, ५ इन्द्रः। २ मरुतः। ३ त्वष्टा। ४, १२ अग्निः। ६ मित्रावरुणौ। ७–१० द्रविणोदाः। ११ अश्विनौ। छन्दः—गायत्र्यः। १२ पिपीलिकामध्या निचृद्। २ भुरिग्। १२ निचृद् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः।
मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) जल का रश्मियों में मेघ रूप से धारण करने वाले सूर्य ! तु (ऋतुना) वसन्त आदि प्रत्येक ऋतु के बल से (सोमं) जल का (पिब) पान करता है, उनको रश्मियों से सोख लेता है और तब ही (तदोकसः) वे जल, अन्तरिक्ष, वायु, पृथिवी आदि नाना स्थानों पर आश्रय पाकर (मत्सरासः) प्राणियों को हर्ष और तृप्ति उत्पन्न करने वाले होकर (इन्दवः) द्रव रूप एवं गीला करने वाले रूप में रहते हैं, (त्वां) तुझको (विशन्तु) प्राप्त होते हैं।

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन।
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् जनो ! जैसे (मरुतः ऋतुना पिबति) वायुगण ऋतुओं के अनुसार जल को सूक्ष्म रूप से पान करते हैं और सूक्ष्मरूप से अपने भीतर धारण करते हैं और (पोत्रात्) अपने पवित्र करने के सामर्थ्य से (यज्ञं पुनन्ति) यज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ को पवित्र करते हैं और वे (सुदानवः) उत्तम सुख और वृष्टि जल, कृषि फल को प्रदान करते हैं, वैसे ही आप विद्वान् जन भी (ऋतुना) ज्ञानबल और प्राण के सामर्थ्य से (पिबत) अन्न औषधि आदि रस का पान करो और (पोत्रात्) पवित्र करने वाले परमेश्वर, प्राण या जल के सत्यज्ञान और सामर्थ्य से (यज्ञं पुनीतन) आत्मा को और शरीर को पवित्र करो। हे विद्वान्जनो ! (हि) क्यों आप लोग (सुदानवः) उत्तम कल्याणकारी ज्ञान और ऐश्वर्य का दान करने हारे (स्थ) हो।

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्रावो नेष्टः पिब ऋतुना।
त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे (ग्रावः) सब पदार्थों को प्राप्त व शुद्ध करने की शक्ति

वाले ! तू (यज्ञं अभि नः गृणीहि) प्रजापति, परमेश्वर को लक्ष्य करके हमें उपदेश कर और (ऋतुना) सत्यज्ञान के बल पर (पिब) आनन्द रस का पान कर। (हि) क्योंकि (हि) निश्चय से (त्वं हि) तू ही (रत्नधा) रमण योग्य ज्ञान और आत्म तत्व का धारक (असि) है।

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु।
परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू अग्नि के समान (इह) इस राष्ट्र या लोक में (देवान्) दिव्य पदार्थों एवं विजयशील विद्वान्, बलवान् पुरुषों को (आ वह) प्राप्त करा और उनको (त्रीषु योनिषु) तीनों उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थानों पर (आ सादय) स्थापित कर और (परि भूष) इन सबको सुशोभित कर और (ऋतुना) बल, ऋतु और सहयोगी अमात्य आदि सहित (पिब) ऐश्वर्य का भोग कर।

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु।
तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (ऋतून् अनु) प्राणों के सामर्थ्य से (ब्राह्मणात्) उस महान् परमेश्वर के (राधसः) आराधना, साधना या विभूति, ऐश्वर्य में से प्राप्त होने वाले (सोमं) उस परमानन्द-मय रस को (पिब) पान कर और हे आत्मन् ! (तव उत् हि) तेरा ही (सख्यम्) सख्य या मैत्रीभाव, प्रेम, (अस्तृतम्) कभी नष्ट नहीं होता।

युवं दक्षं धृतव्रता मित्रावरुण दूळभम्।
ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—हे (धृतव्रता) व्रतों, नियमों को धारण करने और उनको स्थिर रखने वाले (मित्रावरुणा) मित्र सबके स्नेही, वरुण दुष्टों के वारक तुम दोनों (ऋतुना) सूर्य और चन्द्र जैसे दोनों ऋतु के अनुसार संवत्सर

रूप यज्ञ को धारण करते हैं और प्राण और अपान दोनों गतिबल से जैसे देह को धारण करते हैं वैसे ही (युवं) तुम दोनों राजा और मन्त्री, गृह में गृहस्थ और गृहपत्नी (ऋतुना) सत्य धारक बल से (दूळभम्) शत्रुओं से नाश न होने वाले (दक्षं) बल को और (यज्ञम्) परस्पर संग से उत्पन्न प्रजापालन व्यवहार को (आशाथे) व्याप्त होकर रहो। उस पर वश रक्खो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—(द्रविणसः) धन ऐश्वर्य और द्रुत वेग को चाहने वाले ज्ञानी पुरुष (ग्रावहस्तासः) उत्तम स्तुति करने से सिद्धहस्त होकर (अध्वरे) हिंसारहित, शुद्ध, पवित्र यज्ञ में और (यज्ञेषु) ईश्वरोपासना के कार्यों में और (द्रविणोदाः) विद्या, बल, राज्य ऐश्वर्य के देने वाले (देवम्) परमेश्वर को (ईळते) उपासना स्तुति प्रार्थना करते हैं।

द्रविणोदाः ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे।
देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

भा०—(यानि) जिन भी बहुत से (वसूनि) प्राणियों को सुखपूर्वक बसाने वाले ऐश्वर्य (शृण्विरे) सुने जाते हैं, उन सबको वह (द्रविणोदाः) सब ऐश्वर्यों का दाता ही (नः) हमें (ददातु) प्रदान करे और (ता) उनको (देवेषु) विद्वानों के निमित्त (वनामहे) प्राप्त करें और उनके हित के लिये प्रदान करें।

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत।
नेष्ट्राद् ऋतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

भा०—ऋत्विजों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला पुरुष जैसे सोम रसों का पान करता है वैसे ही (द्रविणोदाः) ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ राजा ही ऐश्वर्य को (पिपीषति) भोग करने की अभिलाषा करता है।

इसलिये हे वीरो ! विद्वान् जनो ! आप लोग (जुहोत) शस्त्रों का प्रहार करो, एवं परस्पर का लेन देन व्यवहार करो और (प्रतिष्ठत च) आगे बढ़ो और (ऋतुभिः) प्राणों के बल से जैसे मनुष्य (नेष्ट्रात्) व्यापक आत्मा या मन से ही समस्त इच्छाएं करते हैं और जैसे प्राणी ऋतुओं सहित सबके नायक सूर्य से ही सब इष्ट फल प्राप्त करते हैं वैसे ही हे वीर पुरुषो ! (ऋतुभिः) ज्ञानवान् पुरुषों सहित (नेष्ट्रात्) सबसे आगे चलने वाले नायक पुरुष से ही (इष्यत) अपने इष्ट कार्यों को प्राप्त करो ।

यत् त्वां तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे ।
अधं स्मा नो द॒दिर्भव ॥ १० ॥

भा०—हे (द्रविणोदः) ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर ! (यत्) जिस (तुरीयम्) तुरीय, मोक्षस्वरूप तुझको (ऋतुभिः) प्राप्ति के समस्त साधनों से हम (यजामहे) उपासना करते हैं, (अध) और तू ही (नः) हमें (ददिः) सब पदार्थों का दाता, सब कष्टों और दुःखों से त्राता और रक्षक (भव स्म) हो । (त्वा तुरीयम्) हे राजन् ! तुझ चारों वर्णों के पूरक या शत्रु, मित्र और उदासीन सबसे ऊपर विद्यमान चतुर्थ तुझको हम (ऋतुभिः यजामहे) सब सदस्यों, एवं बलों से युक्त करें । परमेश्वर का तुरीय स्वरूप देखो माण्डूक्य उप० । "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव" । १२ ।

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता ।
ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विना) देह में व्यापक (दीद्यग्नी) जाठर अग्नि से स्वतः प्रदीप्त होने वाले, (शुचिव्रता) शरीर को शुद्ध करने वाले कर्मों के कर्ता होकर (मधु) अन्न का मधुर रस (ऋतुना) मुख्य प्राण के बल से पान करते हैं और वे दोनों (यज्ञवाहसा) आत्मा को धारण करते हैं । ऐसे

ही (शुचिव्रता) शुद्ध कर्मों और नियमों वाले (दीद्यग्नी) अग्नि के समान स्वयं प्रकाशमान, अथवा राजारूप अग्रणी नेता पद के साथ प्रकाशित होने वाले, उसके संग विराजमान होकर (अश्विना) हे अश्वों पर चढ़ने वाले दो मुख्य अधिकारियो ! या राजा रानियो ! तुम दोनों (यज्ञवाहसा) राष्ट्ररूप यज्ञ, प्रजापालक प्रजापति पद को धारण करते हुए (ऋतुना) ऋतु अनुकूल, या बल से राज्य को प्राप्त करने वाले सामर्थ्य से ही (मधु) मधुर राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पिबतम्) पान करो । ऐसे ही (अश्विना) एक दूसरे के हृदय में व्यापक, पति पत्नी, (शुचिव्रता) शुद्ध व्रत का पालन करते हुए (दीद्यग्नी) अग्निहोत्र में अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, (यज्ञवाहसा) गार्हस्थ्य या परस्पर संगत यज्ञ को धारण करने वाले होकर (ऋतुना) ऋतु के अनुसार (मधु) मधुर गृहस्थ सुख का भोग करें।

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।
देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥ २६ ॥

भा०—हे (सन्त्य) दान करने और उत्तम विद्या, ऐश्वर्य आदि पदार्थों को विभाग या प्रदान करने में कुशल पुरुष ! तू (गार्हपत्येन ऋतुना) गृहपति के पालन करने योग्य ऋतु से ही (यज्ञनीः) यज्ञ को सम्पादन करने वाले प्रमुख पुरुष के लिये (देवान् यज) उत्तम व्यवहारों को सम्पादन कर और (देवान् यज) उत्तम विद्वानों को सुसंगत कर। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

[१६] काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—गायत्र्यः । ३ पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ विराड् । नवर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।
इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! परमेश्वर ! (हरयः) जल ले लेने वाले किरण (सोमपीतये) रसों को पान करने के लिये जिस प्रकार (वृषणं)

वर्षण करने वाले सूर्य वा मेघ को धारण करते हैं, उसी प्रकार (सूर-चक्षसः) सूर्य के समान तेजोमय, स्वतःप्रकाश परमेश्वर का साक्षात् करने वाले (हरयः) विद्वान् जन भी (सोमपीतये) आनन्दरस का पान करने के लिए (त्वा वृषणं) तुझ सब सुखों के वर्षक को ही (वहन्ति) हृदय में धारण करते हैं और (त्वा) तुझे ही साक्षात् करते हैं। अध्यात्म में—(हरयः) ये इन्द्रियगण तुझे धारण करते हैं।

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः।
इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

भा०—(हरी) दो अश्व जैसे राजा को रथ द्वारा ले जाते हैं और सब पदार्थों और कालचक्र को ले जाने वाले कृष्ण और शुक्लपक्ष जैसे चन्द्र को और दक्षिणायन और उत्तरायण जैसे सूर्य को धारण करते हैं, वैसे ही हे आत्मन्! (हरी) हरणशील, गतिमान् दोनों प्राण (इह) इस (सुख-तमे) अति सुखकारी (रथे) रमण कराने वाले स्वरूप में (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त, आत्मसाक्षात्कार से देखने योग्य रसमय स्वरूप में (उप-वक्षतः) धारण करते हैं। द्रष्टा को वहां तक पहुँचाते हैं और जैसे दिन रात्रि या किरणें काल को धारण करने से (धानाः) 'धाना' कहाती हैं सूर्य और चन्द्र की ज्योति या जल को धारण करने से वे 'धानाः' हैं और तेजप्रद होने से 'घृतस्नु' है वैसे ही (इमाः) ये सब (धानाः) आत्मा को धारण करनेवाली नाड़ियां (घृतस्नुवः) आनन्द रस को स्रवण करने वाली हैं।

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(प्रातः) प्रातःकाल के अवसर पर प्रतिदिन हम (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को (हवामहे) स्मरण करें। (प्रयति) उत्तम ज्ञान प्रदान करने वाले (अध्वरे) यज्ञ में भी हम उसी (इन्द्रम्) ईश्वर का

स्मरण करें और (सोमस्य पीतये) सोम, परम ब्रह्मानन्द रस के पान करने के लिए (इन्द्रम्) परमेश्वर को ही स्मरण करें ।

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।
सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! जिस प्रकार (केशिभिः) तेजोमय (हरिभिः) वेगवान् किरणों सहित जगत् को सूर्य या वायु प्राप्त होता है, उसी प्रकार तू भी किरणों वाले वेगवान् सूर्यादि पदार्थों द्वारा (नः सुतम्) हमारे ज्ञान से निष्पन्न आत्मा को (आगहि) प्राप्त हो और (सुते) उपासना के अवसर में ही (त्वा) तुझे हम (हवामहे) पुकारते हैं ।

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् ।
गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—(तृषितः) पियासा (गौरः न) गौर मृग जिस प्रकार उत्सुक होकर जलाशय से जल पीता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू (गौरः) स्तुतिवाणियों में रमण करने वाला होकर (नः) हमारे (इमं स्तोमम्) इस स्तुतिसमूह को (आ गहि) प्राप्त हो और (इदम् सुतम् सवनं) इस उत्तम रीति से सम्पादित उपासना रस का (उप पिब) पान कर, स्वीकार कर । इति त्रिंशो वर्गः ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि ।
ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (इमे) ये (सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) परम ऐश्वर्ययुक्त (सोमासः) सूर्य, वायु आदि कारण पदार्थ (बर्हिषि अधि) अन्तरिक्ष और महान् आकाश में विद्यमान् हैं (तान्) उनको (सहसे) अपने बल से (पिब) पान कर, अपने भीतर धारण कर । अध्यात्म में—(सोमासः इन्दवः) साक्षात् देह से देहान्तर में जाने वाले ये जीव (बर्हिषि) अन्न के आधार पर उत्पन्न हैं । हे परमेश्वर ! उन्हें अपने में धारण कर ।

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः।
अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! (ते) तेरा (अयं) यह (हृदिस्पृक्) हृदय को स्पर्श करने वाला, अतिप्रिय, (स्तोमः) स्तुति समूह (अग्रियः) सबसे श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, (शंतमः) अति शान्तिदायक (अस्तु) हो। (अथ) और तू (सुतं) उत्पन्न हुए इस (सोमं) जीव को (पिब) पान कर, अपनी शरण में ले।

विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) वायु जैसे (मदाय) सब प्राणियों को आनन्दित और तृप्त करने के लिये (विश्वम् इत्) इस समस्त (सुतम् सवनं) उत्पन्न जगत् को (गच्छति) व्यापता है और (सोमपीतये) जल का पान कराने के लिये ही वह (वृत्रहा) मेघ को छिन्न भिन्न करने हारा है वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (सुतम्) उत्पन्न हुए इस (विश्वं सवनं) समस्त ऐश्वर्यमय जगत् को (मदाय) आनन्द से तृप्त करने और (सोमपीतये) सोमरूप चैतन्य तत्व के पान कराने के लिये (वृत्रहा) आवरणकारी तामस आवरण को नाश करके (गच्छति) सर्वत्र व्याप रहा है।

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) असंख्य कर्मों और प्रज्ञाओं वाले परमेश्वर या राजन् ! (सः) वह तू (नः) हमारे (इमम्) इस (कामम्) मनोरथ को (गोभिः) गौओं और अश्वों से गृहस्थ और राष्ट्र के कार्यों के समान (आपृण) पूर्ण कर। हम (स्वाध्यः) उत्तम रीति से तेरी चिन्ता करने वाले भक्तजन (त्वा) तेरी ही (स्तवाम) स्तुति करते हैं, तेरा ही गुणानुवाद करते हैं। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[१७] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—गायत्र्यः। २ यवमध्या विराड्। पादनिचृद्। ४ भुरिगार्ची। ६ निचृद्। ७ पिपीलिकोमध्या निचृद्। नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

भा०—(अहम्) मैं प्रजाजन (सम्राजोः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाले (इन्द्रावरुणयोः) राजा और सेनापति दोनों के (अवः) रक्षा कार्य को (आ वृणे) स्वीकार करूं, (ता) वे दोनों (नः) हमें सूर्य और चन्द्र के समान या विद्युत् और मेघ के समान (ईदृशे) इस प्रकार साक्षात् राज्यकार्य में (मृळातः) सुखी करते हैं।

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः।
धर्त्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण नामक राजा और सेनापति पुरुषो! आप दोनों अग्नि और जल के समान (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (धर्त्तारौ) धारक हो और (मावतः) मेरे समान (विप्रस्य) विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले बुद्धिमान प्रजाजन की (अवसे) रक्षा करने के लिए (हवं) युद्ध को भी (गन्तारा स्थः हि) निश्चय से जाने को सदा तैयार रहते हो।

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) अग्नि और जल के समान प्रजा की अभिलाषाओं को पूर्ण करने हारे! तुम दोनों (रायः) ऐश्वर्य की (अनुकामं) प्रत्येक प्रकार की अभिलाषाओं को (तर्पयेथाम्) पूर्ण करो। (ता वाम्) उन तुम दोनों को हम लोग (नेदिष्ठम्) अपने अधिक समीप (ईमहे) प्राप्त होकर याचना करते हैं।

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (शचीनां) उत्तम बुद्धियों के (युवाकु) साथ अपने को मिलाये रक्खें और (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धियों वाले विद्वानों के साथ (युवाकु) हम सत्संग करें और (वाज-दाव्नाम्) अन्न और ऐश्वर्य देने वाले पुरुषों के बीच में हम (भूयाम) सदा रहें।

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

भा०—(सहस्रदाव्नाम्) सहस्रों ऐश्वर्यों के देने वालों में से (इन्द्रः) परमेश्वर, अग्नि, विद्युत्, सूर्य, मेघ, राजा यही (क्रतुः) क्रियावान्, कुशल एवं (उक्थः) प्रशंसयोग्य हैं और (शंस्यानाम्) स्तुति योग्यों में से (वरुणः) परमेश्वर, जल, वायु, चन्द्र और समुद्र ही (क्रतुः उक्थ भवति) क्रियावान् और प्रशंसा के योग्य हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

भा०—(तयोः इत्) उन दोनों के ही (अवसा) ज्ञान, रक्षण और तेजः सामर्थ्य से (वयम्) हम सब लोग (सनेम) समस्त सुखों का भोग करें। (नि धीमहि च) धन को कोष में संचय करें (उत) और हमारे (प्र-रेचनं स्यात्) बहुत अधिक ऐश्वर्य हो।

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण राजन्! और सेनापते! (अहम्) मैं प्रजाजन (चित्राय राधसे) अद्भुत राज्य, रत्न, अश्व आदि से सम्पन्न एवं दूसरों के आश्रयकारक धन को प्राप्त करने के लिए

(वाम् हुवे) तुम दोनों को बुलाता हूँ। आप दोनों (अस्मान्) हम सबको (जिग्युषः) विजयशील (सुकृतम्) बनाओ।

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण! वायु और जल के समान सुखप्रद! (वाम्) आप दोनों का (सिषासन्तीषु) सेवन करने-वाली (धीषु) प्रजाओं में आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमें (शर्म) सुख (आ यच्छतम्) दो।

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे।
यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण! पूर्वोक्त वायु जल! उनके समान राजन्! सेनापते! (यां) जिस सत्य गुण वर्णन वाली स्तुति को मैं (हुवे) प्रकट करता हूँ और (याम्) जिस सत्य (सधस्तुतिम्) अपने गुण-वर्णनानुरूप क्रियाशक्ति को आप दोनों (ऋधाथे) बढ़ाते हो, वह (वां अश्नोतु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हो। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥ इति प्रथमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः।

[१८] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता। १—३ ब्रह्मणस्पतिः। ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च। ५ बृहस्पतिदक्षिणे। ६—८ सदसस्पतिः। ९ सदसस्पतिर्नाराशंसोवा ॥ छन्दः—गायत्र्यः। १ विराड्। ३, ६, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्। ४ निचृद्। ५ पाद निचृद्। नवर्चं सूक्तम् ॥

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) वेदों और वेदज्ञ विद्वानों के पालन करने हारे परमेश्वर! तू (सोमानं) यज्ञ कर्म करने वाले उपासक को (यः) जो

(औशिजः) तेजस्वी, वीर्यवान् है उसको (स्वरणम्) उत्तम शब्दार्थों का ज्ञाता और उपदेष्टा तथा (कक्षीवन्तम्) शिल्प क्रिया में भी सिद्धहस्त (कृणुहि) कर।

यो रे॒वान्यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः।
स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान्) विद्या और धनैश्वर्य से सम्पन्न, (अमीवहा) वैद्य के समान दुःखदायी रोगकारणों का नाशक, (वसुवित्) समस्त लोकों को जानने वाला, (पुष्टि-वर्धनः) अन्न और ज्ञान से शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाला है और (यः) जो (तुरः) अति वेगवान्, शीघ्र सुख फल देने वाला है (सः) वह (नः) हमें (सिषक्तु) प्राप्त हो।

मा नः॒ शंसो॒ अर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य।
रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

भा०—(अररुषः) अदानशील, पीड़ादायी (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्त्तिः) विनाशकारी शक्ति (प्रणङ्) नष्ट हो और (नः शंसः मा प्रणक्) और हमारी ख्याति नष्ट न हो। हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर! महान् राष्ट्र के पालक राजन्! (नः रक्ष) हमारी तू रक्षा कर।

स घा॑ वी॒रो न रि॑ष्यति॒ यमिन्द्रो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑।
सोमो॑ हि॒नोति॒ मर्त्य॑म् ॥ ४ ॥

भा०—(यम्) जिस (मर्त्यम्) पुरुष को (इन्द्रः) वायु, प्राणवायु (सोमः) सोमलता आदि ओषधिसमूह और (ब्रह्मणः पतिः) वेद का पालक विद्वान् और ब्रह्माण्ड का स्वामी परमेश्वर (हिनोति) बढ़ाते हैं (सः घ) वह (वीरः) शत्रुबलों को तितरवितर करने में समर्थ पुरुष (न रिष्यति) कभी दुःख नहीं पाता, कभी नष्ट नहीं होता।

त्वं तं ब्र॑ह्मणस्पते॒ सोम॒ इन्द्र॑श्च॒ मर्त्य॑म्।
दक्षि॑णा पा॒त्वंह॑सः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणः पते) महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! वेदज्ञ विद्वन्! बृहत् राष्ट्र के पालक राजन् ! (त्वं) तू (सोमः) ओषधि रस विद्वान् जन और वीर्यादि सामर्थ्य, (इन्द्रः च) सेनापति, प्राण, वायु और (दक्षिणा) बढ़ने की उत्तम धर्म नीति ये सब (तं) उस (मर्त्यम्) पुरुष को (अहंसः) पाप से (पातु) बचावें।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥

भा०—(अद्भुतं) आश्चर्यकारी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजवर्ग और वैश्यवर्ग के (प्रियम्) प्रिय लगने हारे, (काम्यम्) सब प्रजा के इच्छानुकूल, (सनिम्) योग्य ज्ञान और उचित श्रमानुकूल वेतन पुरस्कार आदि देने वाले (सदसः) विद्वानों के एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा के (पतिम्) पालक, न्यायसभा या धर्मसभा के नेता सभापति को मैं (मेधाम्) धारणावती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए (अयासिषम्) प्राप्त करूं।

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मात् ऋते) जिसके बिना (विपश्चितः चन) बड़े भारी विद्वान् पुरुष का भी (यज्ञः) यज्ञ, कोई भी उत्तम कार्य, उपासना आदि (न सिद्ध्यति) सफल नहीं होता, (सः) वह परमेश्वर सर्वोपास्य, (धीनां) समस्त बुद्धियों और कर्मों के (योगम्) एकाग्रचित्त से ध्यान करने (इन्वति) योग्य है।

आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम्।
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥

भा०—सभापति के समान सर्वोच्च, सर्वप्रेरक पुरुष ही (आत्) तब (हविष्कृतम्) अन्नादि पदार्थों के सम्पादन करने वाले यज्ञादि कार्यों

को (ऋध्नोति) सम्पन्न करता है और (अध्वरं) यज्ञ को (प्राञ्चम्) उन्नति की ओर जाने वाला बनाता है और (होत्रा) दानयोग्य पदार्थों को (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (गच्छति) प्राप्त कराता है।

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥ ३५ ॥

भा०—मैं (नराशसं) मनुष्यों के प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर को ही (सुधृष्टमम्) सबसे अधिक अच्छी प्रकार से ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला और (सप्रथस्तमम्) विस्तृत आकाश आदि पदार्थों के साथ, उनके समान ही व्यापक और (दिवं न) सूर्यादि प्रकाशवान् लोकों के समान (सद्ममखसम्) सबके आश्रय होकर तेज प्रकाश से युक्त, (अपश्यम्) देखता हूँ। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[१९] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्मरुतश्च देवते ॥ छन्दः—गायत्र्यः। २ निचृद्। ९ पिपीलिकामध्या निचृद्। नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! परमेश्वर! (त्वं) उस जगत्प्रसिद्ध (अध्वरम्) नित्य ब्रह्माण्ड मय (चारुम्) उत्तम यज्ञ की (गोपीथाय) रक्षा के लिये तू (प्रति प्र हूयसे) प्रतिदिन स्तुति किये जाने योग्य है। तू (मरुद्भिः) विद्वानों एवं वायुओं के समान व्यापक पदार्थों के साथ (आगहि) हमें प्राप्त हो।

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! (तव) तेरे (महः) महान् (क्रतुम्) कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (देवः) कोई तेजस्वी पदार्थ (परः नहि) परे

नहीं है। (न) और (न) न कोई (मर्त्यः) मरणधर्मा जीव ही (तव क्रतुम् परः) तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से परे है। तू ही (मरुद्भिः) वायु आदि व्यापक और विद्युत् आदि तीव्र वेगवान् भूत तत्वों सहित (आ गहि) प्रकट होता है।

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! (ये) जो (विश्वे) समस्त (अद्रुहः) परस्पर द्रोह न करने वाले, एक दूसरे के साथ मिल कर, एक दूसरे के उपकारक होकर (महः रजसः) बड़े २ लोकों को (विदुः) प्राप्त हैं उन (मरुद्भिः) तीव्रगामी, वायु आदि तत्वों के सहित तू (आ गहि) प्रकट है।

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो (उग्राः) वेगवान्, (अनाधृष्टासः) कभी शत्रुओं से घर्षण या पराजय को प्राप्त न होने हारे, (ओजसा) अपने बल पराक्रम के द्वारा (अर्कम्) सूर्य के समान तेजस्वी सम्राट् के (आनृचुः) गुणों को प्रकाशित करते हैं उन (मरुद्भिः) वायु के समान बलवान् पुरुषों सहित हे (अग्ने) शत्रुसंतापक, राजन्! तू (आगहि) हमें प्राप्त हो।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (शुभ्राः) श्वेत वर्ण के, उज्ज्वल रूप वाले, नाना गुणों से सुशोभित, (घोरवर्पसः) शत्रुओं का नाश करने वाले, (सु-क्षत्रासः) उत्तम क्षात्र-बल से युक्त, (रिशादसः) दुष्ट पुरुषों के नाशक हैं उन (मरुद्भिः) वेगवान् वीरों सहित, हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (आगहि) आ। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (रोचने दिवि) प्रकाशमान सूर्य के आश्रय पर जो पृथिवी, चन्द्र, अन्यान्य ग्रह आदि या प्रकाश की किरणें हैं उनके साथ ही सूर्य उदय होता है वैसे ही (नाकस्य) सुखयुक्त राष्ट्र के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता रूप से विद्यमान (रोचने) तेजस्वी (दिवि) सर्वोपरि ज्ञानप्रद राजसभा में (ये) जो विद्वान् पुरुष (आसते) विराजते हैं उन (मरुद्भिः) राष्ट्र के प्राणस्वरूप विद्वान् पुरुषों के साथ हे (अग्ने) नायक ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (पर्वतान्) पर्वतों को और (अर्णवम्) जलयुक्त (समुद्रम्) समुद्र को (तिरः ईंखयन्ति) उथलपुथल करते हैं उन (मरुद्भिः) वायुओं सहित हे (अग्ने) सूर्य एवं विद्युत् ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो वायुगण (रश्मिभिः) सूर्य की किरणों के ताप से (तन्वन्ति) फैलते हैं और (ओजसा) बलपूर्वक (समुद्रम्) अन्तरिक्ष और जलमय सागर को भी (तिरः कुर्वन्ति) उथलपुथल कर देते हैं, उन (मरुद्भिः) वेगवान् प्रचण्ड वायुओं सहित हे (अग्ने) सूर्य ! तू (आ गहि) प्राप्त हो ।

अभि त्वां पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! मैं (त्वा) तेरे निमित्त (सौम्यम्) ऐश्वर्य

अथवा राजपद के योग्य, (मधु) अन्न आदि पदार्थ एवं बल और अधिकार को (पूर्वपीतये) सबसे प्रथम आनन्दपूर्वक स्वीकार करने के लिये सोम रस के समान ही (अभिसृजाभि) प्रस्तुत करता हूँ। वे (मरुद्भिः) वायुओं सहित जैसे सूर्य पृथिवी पर जलों को रश्मियों द्वारा पान करने के लिये आता है वैसे ही तू भी (आ गहि) आ। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः॥

[२०] मेधातिथिः काण्व ऋषिः॥ देवता—ऋभवः॥ छन्दः—३ विराड् गायत्री। ४ निचृद्गायत्री। ५, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। १, २, ६, ७ गायत्री। अष्टर्चं सूक्तम्॥

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया।
अकारि रत्नधातमः॥ १॥

भा०—(विप्रेभिः) बुद्धिमान् पुरुष (आसया) अपने मुख से (देवाय) उत्तम गुणों से युक्त (जन्मने) इस देह रचना, एवं पुनर्जन्म ग्रहण के निमित्त (रत्नधातमः) उत्तम २ रमण योग्य सुखों के दाता (अयम्) इस प्रकार के (स्तोमाः) स्तुति समूह को (अकारि) करते हैं।

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी।
शमीभिर्यज्ञमाशत॥ २॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष, शिल्पी जैसे ऐश्वर्यवान् राजा के लिये वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते और नाना कर्म कौशलों से सब कल पुर्जों की व्यवस्था करते हैं वैसे ही (ये) जो विद्वान् पुरुष (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये (मनसा) अपने मनन सामर्थ्य से (वचोयुजा) वाणी के साथ योग देने वाले (हरी) गतिशील, प्राण और अपान दोनों को (ततक्षुः) साधते हैं वे ही (शमीभिः) शान्ति-

दायक साधनाओं से (यज्ञम्) सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को (आ-शत) प्राप्त करते हैं ।

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं ।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् शिल्पी (नासत्याभ्याम्) सत्य व्यवहार से वर्त्तने हारे स्त्री पुरुषों के लिये (परिज्मानम्) सब तरफ जाने वाले (सुखं) सुखप्रद (रथम्) रथ आदि यान (तक्षन्) बनाते हैं और उनके लिये ही (सबर्दुघाम्) दुग्धादि रस देने वाली (धेनुम्) गाय के समान अमृत, मोक्षज्ञान को पूर्ण करने वाली (धेनुम्) वाणी का (तक्षन्) उपदेश करते हैं वे मानयोग्य हैं ।

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

भा०—(सत्यमन्त्राः) सत्य विचारों से युक्त (ऋजूयवः) धर्म मार्ग पर चलने हारे, (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, विद्वान् पुरुष (युवाना) स्वधर्म में वृद्ध, परस्पर संगत हुए, (पितरा) माता पिता, स्त्री पुरुषों को (विष्टी) एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट अनुकूल (अक्रत) बनाते हैं ।

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (मदासः) आनन्द और हर्ष (मरुत्वता इन्द्रेण च) वायुओं सहित मेघ, उसके समान वीर सैनिकों और प्रजा पुरुषों से युक्त सेनापति के साथ और (आदित्येभिः) सूर्य की किरणों और उनके समान तेजस्वी (राजभिः) राजाओं के साथ (अग्मत) प्राप्त होते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

भा०—(उत) और (देवस्य) विद्वान् (त्वष्टुः) शिल्पी के (निष्कृतम्) उत्तम रीति से बनाये गये शिल्प कार्य को देखकर जैसे अन्य शिल्पी उनके अनुकरण में और बहुत से पदार्थ बना लेते हैं वैसे ही (देवस्य त्वष्टुः) सबको ज्ञान और चेतना देने वाले परमेश्वर के (त्यं) उस जगत्-प्रसिद्ध, (नवं) नवीन, एवं स्तुतियोग्य, (चमसम्) सुखादि प्राप्त करने योग्य (निष्कृतम्) सुसम्पादित वेद ज्ञान को (पुनः) फिर ज्ञान, विज्ञान, कर्म और उपासना भेद से (चतुरः) चार रूपों से (अकर्त) साक्षात् करते हैं।

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

भा०—(ते) वे विद्वान् पुरुष (सुन्वते) ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और यज्ञ उपासना करने वाले के लिए (साप्तानि त्रिः) सात तिया, २१ प्रकार के (रत्नानि) सुख के रमण करने योग्य पदार्थों को (सुशस्तिभिः) उत्तम उपदेशयुक्त क्रियाओं द्वारा (एकम्-एकम्) एक २ करके (धत्तन) धारण करें, करावें। यज्ञपक्ष में—'त्रि साप्तानि'—अग्न्याधेय, दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रायण, चातुर्मास्य, निरुढ़पशुबन्ध, सौत्रामणी ये सात हविर्यज्ञ संस्था हैं। पञ्चमहायज्ञ, अष्टकाश्राद्ध, श्रवणाकर्म प्रत्यवरोहण, शूलगव और आश्वयुजीकर्म ये सात पाकयज्ञ संस्था हैं। अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम ये सात सोमयज्ञ-संस्था हैं। (सायण) ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के साथ पञ्चयज्ञ, अतिथिसत्कार और दान ये ७ इनको मन, वाणी, देह से तीन प्रकार से बार २ करें, करावें। (दया०)।

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २ ॥

भा०—(वह्नयः) राष्ट्र के कार्य भार को धारण करने हारे विद्वान् जन, अग्नि के समान तेजस्वी, (देवेषु) विद्वानों और विजीगीषु राजाओं के बीच में भी (यज्ञियं भागम्) अपने यज्ञ, सुसंगत धर्मानुकूल व्यवस्था के कार्य के योग्य (भागं) अंश को (सुकृत्यया) उत्तम रीति से सुसम्पादित करके ही (अधारयन्त) धारण करें। इति द्वितीयो वर्गः॥

[२१] मेधातिथिः काण्व ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—गायत्र्यः। २ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। ५ निचृद्गायत्री। १, ३, ४, ६ गायत्री। षडर्चं सूक्तम्॥

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि।
ता सोमं सोमपातमा॥ १॥

भा०—(इह) इस जगत् में या राष्ट्र में, मैं प्रजाजन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अर्थात् वायु और अग्नि के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषों को (उप ह्वये) स्वीकार करता हूँ, नियुक्त करता हूँ। (तयोः) उन दोनों के ही (स्तोमम्) स्तुतिसमूह, गुणवर्णन एवं अधिकार आदि (उश्मसि) चाहते हैं। (सोमपातमा) जैसे वायु और जल मिल कर भूमि के जलांश को पान करते हैं और अन्तरिक्ष में उठाये रखते हैं उसी प्रकार (सोमपातमा) राष्ट्र और ऐश्वर्य का पान प्राप्ति, उपभोग और पालन करने में सर्वश्रेष्ठ (ता) वे दोनों (सोमं) ऐश्वर्यमय राष्ट्र, राजपद और जगत् का पालन करें।

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः।
ता गायत्रेषु गायत॥ २॥

भा०—(यज्ञेषु) जैसे यज्ञों में, उपासना के अवसरों पर जीव और परमेश्वर के गुणों का वर्णन किया जाता है और शिल्पादि में वायु, सूर्य और अग्नि आदि के गुणों का वर्णन किया जाता है वैसे ही (यज्ञेषु) एकत्र होने के संग्राम आदि स्थलों और प्रजा पालन के कार्यों में, हे (नरः) नेता

पुरुषों ! आप लोग (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सेनापति और शत्रुन्सं-तापक अग्रणी राजा के (प्रशंसत) गुणों का अच्छे प्रकार वर्णन करो। उन्हीं को (शुम्भत) सुशोभित करो और अधिक उत्साहित और उत्तेजित करो। (ता) उनको ही (गायत्रेषु) गायत्री छन्दों में, यज्ञों में, या मुख्य पदों पर (गायत) गान करो, उनके गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन करो।

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(ता) उन दोनों (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि के समान बलवान् पुरुषों को (मित्रस्य) स्नेहवान् बन्धु, उपकारक के लिए और (सोमपीतये) ऐश्वर्ययुक्त पदर्थों के पालक, उपयोग के लिए (सोमपा) ऐश्वर्य और उत्पन्न पदार्थों के पालक (ता) उन दोनों को (हवामहे) हम बुलाते हैं।

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्।
इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि वायु और सूर्य या विद्युत् और अग्नि या विद्युत् और मेघ इन दोनों के समान (उग्रा सन्ता) उग्र, बलवान्, तीव्र स्वभाव के दोनों को हम (हवामहे) बुलाते हैं, (इदं) यह (सवनं सुतम्) सवन, ऐश्वर्योत्पादक राज्य तय्यार है। वे दोनों (इह) यहां (आगच्छताम्) आवें।

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

भा०—(ता) वे दोनों अधिकारी पुरुष (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि (महान्ता) महान् पराक्रमी (सदस्पती) राजसभा के पालक सभापति के तुल्य होकर (रक्षः) दुष्ट राक्षस पुरुषों को (उब्जतम्) झुका देवें, उनके क्रूर कर्मों को छुड़ाकर सरल स्वभाव बना दें और (अत्रिण) प्रजा को लूट खसोट कर खाने वाले (अप्रजाः) प्रजारहित

(सन्तु) हों। अर्थात् उनके अगले आने वाले वैसे प्रजानाशक पैदा न हों।

तेन॑ स॒त्येन॑ जागृत॒मधि॑ प्रचे॒तुने॑ प॒दे।
इन्द्रा॑ग्नी शर्म॑ यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (तेन सत्येन) उस जगत्प्रसिद्ध, सत्य व्यवहार, सज्जनों के हितकारी न्याय से (प्रचेतुने) सबको चेताने वाले (पदे) न्यायाधीश के परमपद पर रहकर स्वयम् (अधि जागृतम् जागते रहो, सावधान रहो और हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि आप दोनों सूर्य और अग्नि के समान समस्त प्रजावर्ग को (शर्म) सुख और सुखप्रद शरण (यच्छतम्) प्रदान करो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[२२] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता ॥ १–४ अश्विनौ। ५–८ सविता। ९, १० अग्निः। ११, १२ देव्य इन्द्राणीवरुणान्यग्न्यायः। १३, १४ द्यावापृथिव्यौ। १५ पृथिवी। १६ देवो विष्णुर्वा। १७–२१ विष्णुः। छन्दः— गायत्र्यः। ६, १९ निचृद्। १–३, १२, १७, १८ पिपीलिकामध्या। १५ विराड्। एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्रा॒त॒र्युजा॒ वि बो॑धया॒श्विना॒वेह ग॑च्छताम्।
अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (प्रातः युजा) प्रातः, सबसे प्रथम समाहित चित्त से उपासना करने वाले एवं परस्पर मिलने वाले, (अश्विनौ) दिन रात्रि के समान परस्पर दोनों स्त्री पुरुषों को (वि बोधय) विशेष रूप से जागृत कर। वे दोनों (इह) इस यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म में (अस्य) इस (सोमस्य) उत्पन्न करने योग्य उत्तम सुख के (पीतये) पान या प्राप्त करने के लिए (आगच्छयाम्) प्राप्त हों।

या सु॒रथा॑ र॒थीत॑मो॒भा दे॒वा दि॑वि॒स्पृशा॑।
अ॒श्विना॒ ता ह॑वामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो दोनों स्त्री पुरुष (सुरथा) उत्तम रथ वाले, (रथी-

तमा) रथ संचालन में उत्तम रथी, (दिविस्पृशा) आकाश में सूर्य चन्द्र के समान ज्ञान में प्रकाशित अथवा राजसभा में सम्मानित, (देवा) विद्वान्, दानशील, (अश्विना) अश्वों पर चढ़ने वाले राष्ट्र के दो उत्तम अधिकारी हैं (ता) उन दोनों को हम (हवामहे) आदर से बुलाते हैं।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) नाना विद्याओं को व्यापने वाले अध्यापक और शिष्यगणो! (वां) तुम दोनो की (या) जो (मधुमती) मधुर ऋग् आदि ज्ञानयुक्त, (सुनृतावती) उत्तम सत्यज्ञान से पूर्ण, (कशा) अर्थों की प्रकाशक वाणी है (तया) उसे आप दोनों (यज्ञं) सत्यकर्माचरण और परस्पर के सत्संग और विद्या आदि के दान आदि व्यवहार और आत्मा और ईश्वरोपासना के कार्य को (मिमिक्षतम्) सेचन करो।

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्याओं और कलाकौशल में पारंगत पुरुषो! आप दोनों (यत्र) जहां भी (रथेन) रथ से (गच्छथ:) जा सकते हो वह (सोमिनः) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी के (गृहं) गृह, स्थान (वां) तुम दोनों के लिए (दूरके) दूर (नहि अस्ति) नहीं है।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये।
स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—मैं (सवितारम्) सर्व जगत् के उत्पादक, (हिरण्यपाणिम्) हृदय को आनन्द देने वाली पूजावाले, को ही (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (उप ह्वये) सदा स्मरण करता रहूँ। (सः) वह ही (देवता) साक्षात् सब पदार्थों का दाता सब ज्ञानों और तत्वों का सूर्य के समान साक्षात् दर्शाने और ज्ञान कराने वाला और (चेत्ता) सब ज्ञानों को प्राप्त

कराने वाला और (पदम्) प्राप्त करने योग्य एवं जगत् में सर्वत्र व्यापक है। इति चतुर्थो वर्गः॥

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि।
तस्य व्रतान्युश्मसि॥ ६॥

भा०—(अपां नपातम्) सूर्य जैसे अपनी किरणों द्वारा जलों का आकर्षण कर फिर नीचे नहीं गिरने देता, वैसे ही समस्त व्यापक आकाशादि पदार्थों को नाश न होने देने वाले नित्य (सवितारम्) सबके उत्पादक और प्रेरक, सर्वैश्वर्यप्रद परमेश्वर की (अवसे) रक्षा के लिए ही (उपस्तुहि) स्तुति कर और हम (तस्य) उस जगदीश्वर के ही (व्रतानि) बनाये नियत धर्मों से युक्त व्रतों, कर्मों, शुभ आचरणों की (उश्मसि) कामना करें।

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः।
सवितारं नृचक्षसम्॥ ७॥

भा०—(वसोः) वास या जीवन निर्वाह योग्य (चित्रस्य) नाना प्रकार के (राधसः) ऐश्वर्य के (विभक्तारम्) विभाग करने वाले, (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों और जीवों के द्रष्टा, (सवितारम्) सबके उत्पादक और प्रेरक के समान सर्वद्रष्टा परमेश्वर और राजा की हम (हवामहे) स्तुति करें।

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः।
दाता राधांसि शुम्भति॥ ८॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (सखायः) परस्पर समान नाम वाले उपकारी होकर (आ नि सीदत) सब तरफ से आकर विराजो। (नु) जिससे हमें (सविता) सबके उत्पादक उस परमेश्वर की (स्तोभ्यः) स्तुति करनी अभीष्ट है। वही (राधांसि) समस्त ऐश्वर्यों को (दाता) देने वाला

है। (शुम्भति) सूर्य के समान स्वयं शोभा को प्राप्त और अन्यों को भी शोभित करता है।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप।
त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! (इह) इस राष्ट्र में तू (देवानाम्) विजय की इच्छा वाले वीर पुरुषों की (उशतीः) विजय की कामना वाली, तेजस्विनी (पत्नीः) राष्ट्र का पालन करने वाली, सेनाओं और परिषदों को प्राप्त कर और (त्वष्टारं) सूर्य के समान तेजस्वी, प्रजापालक प्रजापति राजा को (उप आवह) प्राप्त करा।

आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्।
वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! तू (इह) इस राष्ट्र में (अवसे) रक्षण कार्य के लिये (ग्नाः) गमन करने योग्य पृथिवियों, और तीव्र गतिवाली सेनाओं को (वह) अपने वश कर, हे (यविष्ठ) न्यायकारिन् हे शत्रुनाशक! तू (भारतीम्) सबके पालक सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की (वरूत्रीम्) वरण योग्य, (होत्रां) सबको सुख देने वाली, आहुति के समान सर्व वशकारी (धिषणाम्) उत्तम वाणी, आज्ञा या राजप्रजा के धर्मों को उपदेश करने वाली वेद वाणी को भी (अवसे) प्रजा पालन के निमित्त (वह) धारण कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः।
अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥

भा०—(देवीः) विजय करने वाली, (नृपत्नीः) नेता पुरुषों का पालन करने वाली, राजा की शक्तिरूप सेनाएं, (अच्छिन्नपत्राः) दायें बायें पक्षों, बाजुओं के बिना छिन्न भिन्न हुए ही (नः) हमें (महःशर्मणा) बड़े भारी शरण आदि सुख और (अवसा) रक्षण कार्य सहित

(अभि सचन्ताम्) प्राप्त हों। हमारी सेनाओं से दायें बायें बाजू को शत्रु नाश न कर सके। वे सदा अक्षत रह कर राष्ट्र का पालन करें।

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये।
अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्राणीम्) शत्रुहन्ता पुरुष की सूर्य और वायु के समान पालक और शत्रुसंहारक शक्ति को और (वरुणानीम्) जल की शान्ति, शीतलता, मधुरता, स्नेह आदि गुण से युक्त सर्वश्रेष्ठ स्वयं वृत, एवं दुष्टों के वारक सेनापति की पालक नीति को और (अग्नायीम्) अग्नि की भस्म कर डालने वाली शक्ति को (इह) यहां (सोमपीतये) ऐश्वर्यों से पूर्ण प्राप्ति और रक्षा करने के लिये (उपह्वये) प्राप्त करूं।

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥

भा०—(मही द्यौः) बड़े विशाल आकाश या तेजस्वी सूर्य और (पृथिवी च) पृथिवी के समान तेजस्वी और सर्वाश्रय राजा और प्रजागण मिलकर (नः) हमारे (इमं यज्ञम्) इस प्रजा-पालक रूप यज्ञ का (मिमिक्षताम्) अभिषेक करें, उसको दृढ़ कर और वे दोनों (भरीमभिः) भरण पोषण करने वाले साधनों से (नः पिपृताम्) हम प्रजागण को पालन करें।

तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः।
गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

भा०—(तयोः) उक्त आकाश या तेजस्वी सूर्य और पृथिवी इन दोनों के (घृतवत् पयः) उत्तम जल से युक्त पुष्टिकारक रस को (विप्राः) विद्वान् मेधावी पुरुष एवं प्राणीगण (गन्धर्वाय) पृथिवी को धारण या पोषण करने वाले मेघ या वायु के (ध्रुवे) ध्रुव, स्थिर, (पदे) स्थान, अन्तरिक्ष के आश्रय से (धीतिभिः) नाना प्रकार के धारण, कर्षण रूप

क्रियाओं नाना कार्यों और बुद्धिपूर्वक आविष्कृत कृषि आदि रीतियों से (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं, उनका उपभोग करते हैं।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवी ! तू (स्योना) सुखप्रद, (अनृक्षरा) काटों से और दुःखप्रद शत्रुओं से रहित, (निवेशनी) प्रजा के बसने योग्य, (भव) हो। तू (सप्रथः) विस्तृत अवकाश और ऐश्वर्य से युक्त (नः) हमें (शर्म) शरण, सुख (यच्छ) प्रदान कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

भा०—(यतः) जिस अनादि तत्व से (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी से प्रारम्भ कर (सप्त धामभिः) समस्त लोकों को धारण करने वाले सात पदार्थों से (वि चक्रमे) इन लोकों को रचता है (देवाः) विद्वान् गण अथवा प्रकृति के विकार पृथिवीं आदि (अतः) उसे ही मूल कारण द्वारा (नः) हमें (अवन्तु) रक्षा करें और उसका ज्ञान करावें। पृथिवी आदि पांच भूत, परमाणु और प्रकृति ये सात धातु हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूहळमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

भा०—(विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (इदम्) इस प्रत्यक्ष और (पदम्) जानने योग्य जगत् को (विचक्रमे) विविध रूप से रचता है और सबको (त्रेधा) तीन प्रकार से (नि दधे) स्थिर करता है। (अस्य) इस जगत् के (समूढम्) भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह (पांसुरे) रेणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है। तीन प्रकार—एक प्रत्यक्ष प्रकाश रहित पृथिवीमय, दूसरा अदृश्य कारणगण रेणुरूप, तीसरा प्रकाशमय सूर्यादि।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

भा०—(अदाभ्यः) विनाश को न प्राप्त होने वाला, (गोपाः) रक्षक, (विष्णुः) परमेश्वर (धर्माणि) समस्त धर्मों को (धारयन्) धारण करता हुआ (त्रीणि पदा) तीनों प्रकार के पदार्थों को (अतः) इस मूल कारण से ही (विचक्रमे) विविध रूपों में बनाता है ।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

भा०—(विष्णोः) उस व्यापक परमेश्वर के (कर्माणि) किये सृष्टि कर्मों को (पश्यत) देखो (यतः) जिसके अनुग्रह से जीव (व्रतानि) अपने कर्त्तव्य कर्मों को (पस्पशे) करता है । वह परमेश्वर (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) सर्वत्र साथ देने वाला, (सखा) मित्र है ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥

भा०—(विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (तत्) उस (परमं) परम (पदम्) पद, परम वेद्य स्वरूप को (सूरयः) विद्वान् पुरुष (दिवि) आकाश में (आततम्) खुले (चक्षुः) सर्व पदार्थों के दर्शक सूर्य के समान स्वतःप्रकाश रूप से (सदा पश्यन्ति) सदा देखते हैं ।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

भा०—(विष्णोः) व्यापक परमेश्वर का (यत्) जो (परमं) परम, सबसे उत्कृष्ट (पदम्) जानने योग्य स्वरूप है (तत्) उसको (विपन्यवः) नाना प्रकार से परमेश्वर की स्तुति करने वाले (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (समिन्धते) भली प्रकार प्रकाशित करते हैं । इति सप्तमो वर्गः ॥

[२३] मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता । १ वायुः । २, ३ इन्द्रवायू । ४—६ मित्रावरुणौ । ७—९ इन्द्रो मरुत्वान्, १०—१२ विश्वे देवाः १३—१५ पूषा । १६—२२ आपः । २३—२४ अग्निः (२३ आपश्च) ॥ १—१८ गायत्र्यः । १९ पुरउष्णिक् । २० अनुष्टुप् । २१ प्रतिष्ठा । २२—२४ अनुष्टुभः । चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे ।
वायो तान् प्रस्थितान्पिब ॥ १ ॥

भा०—हे (वायो) परमेश्वर ! (इमे) ये (सुताः) उत्पन्न हुए (आशीर्वन्तः) नाना प्रकार की उत्तम कामना और आशाओं वाले (सोमासः) जीवगण हैं । तू (आगहि) आ, दर्शन दे और (तान्) उन समस्त जीवों (प्रस्थितान्) प्रस्थान करने वाले, तेरी तरफ अपने वाले, मुक्ति के अभिलाषियों को (पिब) अपने भीतर ले, अपनी शरण में ले ।

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—(इन्द्रवायु) इन्द्र और वायु अग्नि और पवन (सोमस्य-पीतये) सुख के प्राप्त करने लिए (दिवि-स्पृहा) आकाश में यानादि को ले जाते हैं, इसी प्रकार, अध्यात्म में (अस्य सोमस्य पीतये) इस परमेश्वर के सुख को प्राप्त करने के लिए (उभा देवा) दिव्य गुण वाले (इन्द्रवायू) जीव और परमेश्वर दोनों (दिविस्पृशा) ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करते हैं । उन दोनों की (हवामहे) हम स्तुति करते हैं ।

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये ।
सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

भा०—(विप्राः) मेधावी पुरुष (ऊतये) रक्षा, ज्ञान और तेज प्राप्त करने के लिए (सहस्राक्षा) सहस्रों ज्ञान-साधनों से युक्त (धियः पती) ज्ञानों और कर्मों के पालक (इन्द्रवायू) विद्युत और वायु के समान

तेजस्वी (मनोजुवा) मन या ज्ञान से चलने हारे दोनों को (हवन्ते) प्राप्त करते हैं। नाना दूत, सभासद् और प्रणिधि होने से सेनापति, राजा दोनों 'सहस्राक्ष' हैं। नाना क्रिया साधनों से युक्त विद्युत और पवन भी 'सहस्राक्ष' हैं। छत्रिन्याय से जीव और ईश्वर दोनों सहस्राक्ष हैं।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये।
जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (सोमपीतये) समाधिगत आनन्द-रस और स्वास्थ्य सुख को प्राप्त करने के लिए हम (पूतदक्षसा) पवित्र मन और शरीर को रोग रहित करने वाले बल से युक्त (जज्ञाना) उत्पन्न होने वाले (मित्रं वरुण) मित्र, प्राण, वरुण, अपान की (हवामहे) साधना करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में (पूतदक्षसा) पवित्रकारी और दुष्ट पुरुषों के नाशक कण्टक-शोधक सेना बल से युक्त (जज्ञाना) राष्ट्र में प्रकट होने वाले (मित्रं) सबसे स्नेही और (वरुणं) दुःखों और कष्टों के वारक पुरुषों को (सोम-पीतये) राष्ट्रैश्वर्य के भोग के लिए (हवामहे) नियुक्त करें।

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ज्योतिषः पती) तेज के पालक सूर्य और वायु के समान ज्ञान, तेज या जीवन को धारक (यौ) जो दो (ऋतावृधौ) सत्य व्यवहार को बढ़ाने वाले, (ऋतस्य ज्योतिषः) वेद विज्ञान के प्रकाशक (पती) पालक हैं (ता) उन दोनों (मित्रा वरुणा हुवे) मित्र, ब्राह्मण वर्ग और (वरुण) दुष्टों के बारक सबसे वरण किये, क्षात्रवर्ग दोनों को (हुवे) राष्ट्र में नियुक्त करता हूँ।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः।
करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥

भा०—(वरुणः) बाह्य और शरीर के भीतर का वायु जैसे शरीर

की (प्राविता) अच्छी प्रकार से रक्षा करता है और (मित्रः) सूर्य जिस प्रकार जगत् की रक्षा करता है वैसे ही (वरुणः) दुष्टों का वारक राजा और (मित्रः) न्यायाधीश (प्राविता) अच्छी प्रकार प्रजा का रक्षक और ज्ञानप्रद (भुवत्) हो और वे दोनों (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षा-साधनों और प्रकारों से (नः) हमें (सुराधसः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (करताम्) करें।

मरुत्वन्त हवामह इन्द्रमा सोमपीतये।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(सोमपीतये) उत्तम पदार्थों के भोग करने के लिए हम लोग (मरुत्वन्तम्) वायुओं के स्वामी (इन्द्रम्) विद्युत् को (हवामहे) ग्रहण करें। वह (गणेन सजूः) वायुगण के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर (तृम्पतु) सबको तृप्त करे। (मरुत्वन्तं) वायु के समान वेगवान्, धीर पुरुषों के स्वामी (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता वीर पुरुष, राजा, सेनापति को (हवामहे) नियुक्त करें। (गणेन सजूः) अपने सैनिक गणों, दस्तों के साथ एक समान वेग से जाने वाला वह सदा (तृम्पतु) प्रसन्न रहे।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रज्येष्ठाः) राजा और सेनापति जिनमें सबसे ज्येष्ठ पद पर विराजता है वे (मरुद्गणाः) वीर पुरुष (देवासः) विजय की कामना वाले (पूषरातयः) सबके पोषक, स्वामी द्वारा वेतनादि दान प्राप्त करने हारे (विश्वे) सब (मम) मेरे (हवम्) स्तुति और आह्वान को (श्रुत) श्रवण करें।

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥

भा०—(सुदानवः) उत्तम जल और रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने वाले वायुगण जैसे (इन्द्रेण युजा) विद्युत् के साथ (सहसा वृत्रम्) बलपूर्वक मेघ को आघात करते हैं वैसे ही हे (सुदानवः) उत्तम वेतन आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने हारे! आप लोग (युजा) अपने साथी, (इन्द्रेण) शत्रुहन्ता, सेनापति के साथ (सहसा) बलपूर्वक (वृत्रम्) राष्ट्र के घेर लेने वाले या शक्ति में बढ़ने वाले शत्रु को (हतं) मारो और हम पर (दुःशंसः) बुरा शासन करने वाले अथवा बुरी ख्याति वाले पुरुष (मा ईशत) कभी स्वामी न रहें।

विश्वा॑न्दे॒वान्ह॑वामहे म॒रुतः॒ सोम॑पीतये।
उ॒ग्रा हि पृश्नि॑मातरः॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (सोमपीतये) पदार्थों के भोग के लिए (विश्वान्) समस्त (देवान्) दिव्य गुणों से युक्त, (मरुतः) व्यापारादि के साधक वायुगण का (हवामहे) उपयोग करें। वे (पृश्निमातरः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न वायुगण (उग्राः) वेगवान् होते हैं। ऐसे ही (सोमपीतये) ऐश्वर्यों के भोग के लिए (विश्वान् देवान् मरुतः) समस्त विजयशील सैनिक वीर पुरुषों को (हवामहे) हम आदर करें और वे (पृश्निमातरः) आदित्य के समान प्रजाओं से साररूप कर को लेने वाले राजा से बनाये गये अथवा पृथिवी से उत्पन्न होने हारे (उग्राः हि) निश्चय से बड़े बलवान् हों। इति नवमो वर्गः॥

जय॑तामिव तन्य॒तुर्म॒रुता॑मेति धृ॒ष्णुया।
यच्छुभं॑ या॒थना॑ नरः॥ ११ ॥

भा०—हे (नरः) नायक वीर पुरुषो! (यत्) जब आप लोग (शुभम्) सुखपूर्वक (याथन) यात्रा करते हो तब (धृष्णुया) शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले, (मरुताम्) वेग वाले शत्रुहन्ता वीर सैनिकों का सा (तन्यतुः) घोर शब्द (एति) उत्पन्न होता है।

ह॒स्का॒राद् वि॒द्युत॒स्पर्य॑तो॑ जा॒ता अ॑वन्तु नः ।
म॒रुतो॑ मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

भा०—(हस्कारात्) दिन का सा प्रकाश कर देने वाली (विद्युत्) बिजली या सूर्य (परि) से (जाता) उत्पन्न (मरुतः) वायुगण (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें और वे (नः) हमें (मृळयन्तु) सुखी करें ।

आ पू॑षञ्चि॒त्रब॑र्हिष॒माघृ॑णे ध॒रुणं॑ दि॒वः ।
आजा॑ न॒ष्टं यथा॑ प॒शुम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (पूषन्) सबके पोषक ! हे (आघृणे) सब प्रकार से दीप्ति युक्त सूर्य के समान तेजस्विन् ! पृथिवी-राष्ट्र ! (यथा) जैसे (नष्टं पशुम्) खोये हुए पशु को (आज) खोजकर लाया जाता है वैसे ही (दिवः धरुणम्) आकाश के धारक उसके आश्रयस्वरूप सूर्य के समान तेजस्वी (दिवः धरुणम्) ज्ञानवती राजसभा के आश्रय रूप (चित्रबर्हिषम्) अद्‌भुत, वृद्धिशील, ऐश्वर्य और प्रजाजन से, या लोकसमूह से युक्त विद्वान् पुरुष को (आ अज) बड़े मान से प्राप्त कर ।

पू॒षा राजा॑न॒माघृ॑णि॒रप॑गूळ्हं॒ गुहा॑ हि॒तम् ।
अवि॑न्दच्चि॒त्रब॑र्हिषम् ॥ १४ ॥

भा०—(पूषा) राजा और प्रजा दोनों को पोषण करने वाली पृथिवी राष्ट्र, (आघृणिः) स्वतः सूर्य के समान ऐश्वर्य से तेजस्वी होकर (अपगूहळ्म्) अति गूढ़, (गुहाहितम्) बुद्धि कौशल में स्थित, प्रज्ञावान् (चित्रबर्हिषम्) अनेक अद्‌भुत लोक, प्रजा और पशु आदि ऐश्वर्यों से युक्त पुरुष को (राजानम्) राजा रूप से (अविन्दत्) प्राप्त करे ।

उ॒तो स मह्य॒मिन्दु॑भि॒ः षड् यु॒क्ताँ अ॑नु॒सेषि॑धत् ।
गोभि॒र्यवं॒ न च॑र्कृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(उत) और जैसे (गोभिः यवं न) बैलों से किसान जौ आदि अन्न की (चर्कृषत्) खेती करता है और जैसे वह हल में (युक्तान्)

जुते (षट्) छः बैलों को एक साथ (अनुसेषिधत्) एक दूसरे के पीछे चलाता है वैसे ही (सः) वह राजा (इन्दुभिः युक्तान्) ऐश्वर्यों द्वारा अपने पदों पर नियुक्त ६ अमात्यों को (मह्यम्) मुझ प्रजाजन के हित के लिए (अनुसेषिधत्) अपने अनुकूल चलावे । इसी प्रकार जीव, सूर्य (षड् युक्तान्) मन, चक्षु आदि ६ इन्द्रियों को (इन्दुभिः) स्नेहवर्धक, राग प्राप्त रसों से अपने अनुकूल चलावे । इति दशमो वर्गः ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥

भा०—(अम्बयः) जीवनरक्षक जलधारायें, शरीर में रक्त या प्राण की धाराएं (जामयः) भगिनियों के समान (अध्वरीयतां) अपने अहिंसित जीवन को चाहने वाले हम जीवों के (अध्वभिः) मार्गों से (मधुना) मधुर गुण से युक्त (पयः) पुष्टिकर रस को (पृञ्चती) युक्त करती हुई (यन्ति) गति करती हैं ।

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

भा०—(अमूः) ये (याः) जो (सूर्ये उप) सूर्य के समीप या उसके प्रकाश में रहती हैं और (याभिः वा सह) जिनके साथ (सूर्यः) सूर्य और उसका प्रकाश रहता है (ताः) वे (नः) हमारे (अध्वरम्) सदा जीवित रहने योग्य जीवन या शरीर यज्ञ को (हिन्वतु) तृप्त, पुष्ट करें ।

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

भा०—(यत्र) जिन नदियों और नहरों के आश्रय (नः) हमारी (गावः) गौवें या भूमियें (पिबन्ति) जल-पान करती हैं, सींची जाती हैं । हे विद्वान् पुरुषो ! मैं जन (देवीः अपः) गतिशील, उत्तम गुणों वाले जलों

को (उप ह्वये) प्राप्त करूं और उन ही (सिन्धुभ्यः) बड़े बहने वाले नदी नहरों से (हविः) अन्न को (कर्त्वम्) करने का यत्न करो।

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर (अमृतम्) मृत्युकारी रोग का निवारक परम रस, जीवन रूप विद्यमान है और (अप्सु) जलों में ही (भेषजम्) सब रोगों के दूर करने का बल भी है। (उत) और (प्रशस्तये) उत्तम गुण और बल प्राप्त करने के लिये आप लोग (वाजिनः) उत्तम ज्ञान और बल युक्त (भवत) होवो।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥

भा०—(सोमः) ओषधियों में उत्तम सोम नामक लता ही यह (मे) मुझे (अब्रवीत्) बतलाती है कि (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर ही (विश्वानि) सब प्रकार से (भेषजा) रोगों को दूर करने के सामर्थ्य है और वह सोम ही जलों में (विश्वशम्भुवम्) समन्त जगत् को सुख शान्ति देने वाले (अग्नि च) अग्नि को भी जलों के भीतर बतलाता है और (आपः च) जलों को ही (विश्वभेषजीः) समस्त दुःखों के दूर करने का उपाय बतलाता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥

भा०—हे (आपः) जलो ! जल के समान शान्तिदायक और उससे उत्पन्न प्राणो और आप्त पुरुषो ! आप लोग (मम तन्वे) मेरे शरीर के हित के लिये और (सूर्यं) सूर्य के प्रकाश को (ज्योक् च दृशे) चिरकाल, दीर्घ आयु तक देखते रहने के लिये (वरूथं) रोग निवारण करने वाला, सर्वश्रेष्ठ (भेषजं) औषध (पृणीत) सेवन कराओ।

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (आपः) जलो ! प्राणो ! हे आप्त पुरुषो ! (मयि) मेरे मन और शरीर में (यत् किम् च) जो कुछ भी (इदम्) यह (दुरितम्) दुष्ट स्वभाव, वासना या उससे उत्पन्न पाप है उसको (प्र वहत) बहा डालो, धो दो और (यद् वा) जो कुछ मैं (अभि दुद्रोह) किसी के प्रति द्रोह बुद्धि करूं और (यद् वा) जो कुछ भी (शेपे) अनुचित वचन कहूँ (उत) और (अनृतं) असत्य वचन कहूँ उस सबको दूर करो।

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥

भा०—(अद्य) आज मैं (आपः) रसयुक्त जलों में (अनु अचारिषम्) नित्य विचरण करूं और (रसेन) पुष्टिकारक रोगनाशक सारवान् भाग से (सम् अगस्महि) संयुक्त होऊं। हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! तू भी (पयस्वान्) पुष्टिकारी रस से युक्त होकर (मा) मुझको (आगहि) प्राप्त हो और मुझको भी पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों से युक्त कर। इसीलिये (मा तं) मुझको उस (वर्चसा) तेज और बल से (संसृज) संयुक्त कर।

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥२४॥१२॥५॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! आचार्य ! तू (प्रजया) प्रजा और (आयुषा) दीर्घ जीवन से (मा) मुझे (संसृज) वर्चस्वी, प्रजावान् और दीर्घायु कर। (अस्य मे) इस मेरे तप, प्रजा और ब्रह्मचर्य के शुभ कर्म को (देवाः) विद्वान् गण और (इन्द्रः) परमेश्वर और आचार्य भी (ऋषिभिः सह) वेदमन्त्रार्थ के वेत्ता गुरुजनों सहित (विद्यात्) जाने। इति द्वादशो वर्गः। इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[२४] शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः ॥ देवता—१ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३–५ सविता भगो वा । ६–१५ वरुणः । छन्दः—१, २, ६–१५ त्रिष्टुप् । ३–५ गायत्र्यः । ३ पिपीलिकामध्या निचृद् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑ना॒ं मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥१॥

भा०—(अमृतनाम्) मरण रहित मुक्तात्माओं को (देवस्य) सुखदायक (कस्य) कौन से सबसे अधिक सुखमय प्रजापालक के (चारु नाम) अति उत्तम नाम को (मनामहे) जानें, स्मरण करें, चिन्तन और मनन करें। (नः) हम मुक्ति सुख ही सुख भोगने हारे जीवों को भी (कः) वह कौन प्रजापति (मह्या अदितये) बड़ी भारी अखण्ड पृथिवी के ऐश्वर्यों को भोगने के लिये (पुनः) बार २ (दात्) भेजता है, जिससे मैं जीव (पितरं च) पिता और (मातरम्) माता का (दृशेयम्) दर्शन करता हूँ।

अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑ना॒ं मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥२॥

भा०—(वयम्) हम सब जीव गण (अमृताम्) अविनाशी जीवों के बीच में सबसे (प्रथमस्य) प्रथम, सर्वश्रेष्ठ (देवस्य) सुखों के दाता (अग्नेः) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के ही (चारु) सुन्दर, प्राप्त करने योग्य, (नाम) नाम का (मनामहे) चिन्तन करते हैं। (सः) वह (नः) हमें (अदितये) अखण्ड पृथिवी के भोग के लिये (पुनः दात्) पुनः अवसर देता है जिससे मैं (पितरं च) पिता और (मातरं च) माता के भी (दृशेयम्) दर्शन करता हूँ।

अ॒भि त्वा॑ देवसवित॒रीशा॑नं॒ वार्या॑णाम् ।
सदा॑वन् भा॒गमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ! हे (देव) सुखों के दाता ! हे (अवन्) सबके रक्षक (वार्याणाम्) वरण करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों के (ईशानम्) स्वामी (भागं) भजन और सेवा करने योग्य, (त्वा) तुझसे ही (सदा) सदा हम (ईमहे) याचना करें।

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर, (यः) जो (चित्) भी (भगः) सेवनयोग्य (ते) तेरा (पुरा) पूर्वकाल से ही (शशमानः) स्तुति किया जा रहा है वह (निदः) निन्दित पुरुष से लेकर, मैं (अद्वेषः) द्वेषरहित होकर, (हस्तयोः) हाथों में (दधे) धारण करता हूँ, देता हूँ।

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा।
मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ! (भगभक्तस्य) ऐश्वर्य के विभाग करने वाले (ते) तेरे ही (वयम्) हम (अवसा) रक्षण और ज्ञान सामर्थ्य से (उत् अशेम) उत्कृष्ट पद को प्राप्त करें। और हम (रायः) ऐश्वर्य के (मूर्धानम्) शिरोभाग, सर्वोच्च आदर के पद को (आरभे) प्राप्त करने में (उत् अशेम) उत्पन्न हों।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६॥

भा०—हे परमेश्वर ! (अमी) ये (पतयन्तः) पूर्व से पश्चिम आदि दिशाओं में जाने वाले पक्षिगण और उनके समान सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि बड़े-बड़े लोक और ज्ञानैश्वर्य वाले विमानचारी भी (ते क्षत्रं) तेरे बल को (नहि आपुः) नहीं पा सकते और वे (न) न तेरे (सहः) शत्रु को पराजय करने और सबको वश करने के अपार बल को (आपुः) प्राप्त कर सकते हैं। (न मन्युम् आपुः) वे न तेरे क्रोध, या मनन सामर्थ्य,

या ज्ञानशक्ति को ही पा सकते हैं और (अनिमिषं चरन्तीः) बिना झपक लिए, एक क्षण भी विश्राम न लेकर चलने वाली (इमाः आपः) ये जल, नदी तथा अप्रमाद होकर धर्माचरण करने वाले आप्त जन भी (न आपुः) तेरे बल, सामर्थ्य और ज्ञान को नहीं पा सकते और (ये) जो (वातस्य) वायु के तीव्र वेग हैं वे भी (ते) तेरे (अभ्वम्) सामर्थ्य या महान् सत्ता को मानने से इन्कार या निषेध (न प्रमिनन्ति) नहीं कर सकते ।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥

भा०—(राजा) तेजोमय, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ सूर्य (पूतदक्षः) पावनकारी तेजोबल से युक्त होकर (वनस्य स्तूपम्) सेवनयोग्य एवं विभक्त करके सर्वत्र पहुँचाने योग्य तेज के समूह को (ऊर्ध्वं) सबके ऊपर (अबुध्ने) मूल रहित या बन्धन रहित आकाश में (ददते) धारण करता है और वे सब किरणें (नीचीनाः) नीचे इस भूमि पर (स्थुः) आकर पड़ती हैं। (एषाम्) इन सबका (बुध्नः) बांधने वाला, सबका केन्द्र (उपरि) ऊपर है और वही (केतवः) किरणें (अस्मे) हमारे (अन्तः) भीतर भी (निहिताः) विद्यमान (स्थुः) हैं। इसी प्रकार (अबुध्ने) सब दुःख-बन्धनों से रहित मोक्ष में (राजा वरुणः) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (पूतदक्षः) पवित्र ज्ञान और बल से युक्त (ऊर्ध्वं स्तूपं ददते) सबके ऊपर ज्ञानस्वरूप वेदराशि को धारण करता है। वे (नीचीनाः स्थुः) इस लोक में सूर्य की किरणों के समान प्राप्त हैं। पर (एषाम् बुध्नः उपरि) इन सबका मूल ऊपर ही है। वे ही (केतवः) ज्ञानराशियें (अस्मे अन्तः निहिताः स्युः) हमारे भीतर भी विद्यमान हों।

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥

भा०—जो (राजा) प्रकाशस्वरूप (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, राजा के समान

परमेश्वर सब दुःखों का वारण करने हारा होकर (सूर्याय) सूर्य के (अनु एतवा) प्रतिदिन और प्रति संवत्सर पुनः पुनः नियम से अनुसरण करने के लिए (उरुम्) विशाल (पन्थाम्) मार्ग को (चकार) बना देता है और (अपदे) अगम्य आकाश में भी (पादा) किरणों के (प्रतिधातवे) प्रत्येक पदार्थ तक पहुँचने के लिए अवकाश को (अकः) बनाता है वह ही (हृदयाविधः चित्) हृदय अर्थात् मर्म को शस्त्रों और दुःखदायी वचनों से बेंधने वाले कटुभाषी पुरुष का भी (अपवक्ता) निराकरण करने वाला हो ।

शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (शतं) सैकड़ों और (सहस्रं) हजारों (भिषजः) रोग और बाधक शत्रुओं के निवारण करने वाले औषधों और वैद्यों के समान उपाय हैं । (ते) तेरी ही (गभीरा) यह अगाध (उर्वी) पृथिवी है (ते सुमतिः अस्तु) तेरी ही शुभ कल्याणकारी मति सदा रहे । तू (निर्ऋतिं) पाप प्रवृत्ति और दुःखदायी शत्रुसेना को (दूरे) दूर ही (बाधस्व) पीड़ित कर । (कृतं चित्) किये हुए (एनः) अपराध को भी (अस्मत् पराचैः) हम से परे (प्र मुमुग्धि) हटा ।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥१४॥

भा०—(ये) जो (अमी) ये (ऋक्षाः) नक्षत्रगण (उच्चा) ऊपर आकाश में (निहितासः) निश्चल रूप से स्थापित हैं जो (नक्तं) रात के समय तो (ददृशे) दिखलाई देते हैं और (दिवा) दिन में (कुहचित्) कहीं (ईयुः) चले जाते हैं, और (विचाकशत्) विशेष प्रकाश से चमकता हुआ (चन्द्रमाः) चन्द्र (नक्तम्) रात के समय (एति) आता है, ये (वरुणस्य) परमेश्वर के (व्रतानि) नियम (अदब्धानि) कभी नष्ट नहीं होते ।

तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑।
अहे॑ळमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शंस॒ मा न॒ आयु॒ः प्र मो॑षीः ॥ ११ ॥

भा०—हे (वरुण) सब दुःखों के वारक, एवं सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! (यजमानः) उपासना करने वाला पुरुष (हविर्भिः) उत्तम स्तुति-वचनों से (तत्) उन २ अभिलाषा योग्य पदार्थों की (आशास्ते) कामना करता है। (तत्) उन उन पदार्थों की ही मैं भी (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ (यामि) तुझसे याचना करता हूँ। हे (उरुशंस) मनुष्यों से स्तुति करने योग्य, तू (अहेळमानः) हमारा तिरस्कार न करता हुआ (इह) इस संसार में (बोधि) हमारा अभिप्राय जान और (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा) मत (प्रमोषीः) नष्ट कर।

तादिन्नक्तं॒ तद्दिवा॒ मह्य॑माहु॒स्तद॒यं केतो॑ हृ॒द आ वि च॑ष्टे।
शुनः॒शेपो॒ यमह्व॑द् गृभी॒तः सो अ॒स्मान्राजा॒ वरु॑णो मुमोक्तु ॥१२॥

भा०—विद्वान् पुरुष, माता पिता, आचार्य और चारों वेद (नक्तम्) रात्रि को (तत्) उस परम ज्ञान का ही (मह्यम् आहुः) मुझे उपदेश करें और वे ही विद्वान् जन और वेद मन्त्र (मह्यम्) मुझे (दिवा) दिन के समय भी (तत्) उसी ज्ञान का (आहुः) उपदेश करें। (अयं केतः) जो वेद ज्ञान (हृदः) हृदय को (आ विचष्टे) सब प्रकार से प्रकाशित करता है। (शुनः शेपः) सुख और उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने वाला, परम सुखाभिलाषी मुमुक्षु और जिज्ञासु विद्वान् (गृभीतः) बन्धन में बंध कर (यम्) जिस परमेश्वर को (अह्वत्) पुकारता है, (सः) वह (राजा) सबमें प्रकाशमान, सूर्य के समान तेजस्वी (वरुणः) परमेश्वर (अस्मान्) हम बद्ध जीवों को (मुमोक्तु) अन्धकार से सूर्य के समान अज्ञानमय बंधनों से मुक्त करे।

शुनः॒शेपो॒ ह्यह्व॑द् गृभी॒तस्त्रि॒ष्वा॑दि॒त्यं द्रु॑प॒देषु॑ ब॒द्धः। अवै॑नं॒ राजा॒ वरु॑णः ससृज्याद्वि॒द्वाँ अद॑ब्धो॒ वि मु॑मोक्तु॒ पाशा॑न् ॥ १३ ॥

भा०—(त्रिषु) तीन (द्रुपदेषु) खूंटो में (बद्धः) बंधे हुए पशु के समान प्रकृति के तीन गुणों में (गृभीतः) फंसा और जकड़ा हुआ यह (शुनः शेपः) सुखार्थी, मुमुक्षु और जिज्ञासु पुरुष (आदित्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी एवं सबको अपनी शरण में लेने हारे परमेश्वर को (अह्वत्) पुकारता है और (राजा वरुणः) सर्वोपरि वरुण, (अदब्ध) कभी भी नाश न होने वाला, (विद्वान्) ज्ञानवान् परमेश्वर (एनं) उस जिज्ञासु को (अव ससृज्यात्) बंधनों से छुड़ा दे और वही (पाशान्) सब पाशों को (वि मुमोक्तु) नाना प्रकार से दूर करे।

अव॑ ते॒ हेळो॑ वरुण॒ नमो॑भि॒रव॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे ह॒विर्भिः॑।
क्षय॑न्न॒स्मभ्य॑मसुर प्रचेता॒ राज॒न्नेनां॑सि शिश्रथः कृ॒तानि॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे (वरुण) दुःखवारक परमेश्वर! हम (ते हेळः) तेरे प्रति उपेक्षा द्वारा किये अपराध को (नमोभिः) नमस्कारों, (हविर्भिः) देने योग्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को देकर और (यज्ञेभि) उपासना आदि कर्मों से (अव, अव ईमहे) दूर करते हैं। हे (प्रचेतः) उत्कृष्ट ज्ञान वाले, हे (राजन्) हृदय और संसार भर के राजन्! हे (असुर) सबके प्राणों में रमने और दुःखों के उखाड़ फेंकने वाले तू (कृतानि) हमारे किये कर्मों का (क्षयन्) भोग द्वारा क्षय कराता हुआ, तप द्वारा (एनांसि शिश्रथः) सब पाप कर्मों को भी शिथिल कर दे।

उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय। अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (उत्तमम् पाशम्) उत्तम कोटि के सात्विक बन्धन को (उत् श्रथाय) उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और (अधमं पाशं) निकृष्ट, तामस बन्धन को (अव श्रथाय) नीचे की योनियों में भेज कर शिथिल करता है और (मध्यमं पाशं) मध्यम श्रेणी के पाश को (वि श्रथाय) विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है। (अथ) उन सब

भोगों के अनन्तर, हे (आदित्य) प्रकाशक ! (वयम्) हम (तव व्रते) तेरे दिखाये कर्त्तव्य कर्म में चल कर (अदितये) अखण्ड सुख, मोक्ष प्राप्त करने के लिये (अनागसः) निष्पाप (स्याम) हो जाते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२५] शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ वरुणा देवता । छन्दः—गायत्र्यः । १ १७, ८ पिपीलिकामध्या निचृद् । ६, १६, २० निचृत् । १० एकोना विराट् ११ विराड् । एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) सबके वरने योग्य राजा के समान ! हे (देव) परमेश्वर ! (विशः) प्रजाएं जैसे दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ नियम आदि अपराध किया ही करती हैं वैसे ही (यत् चित्) जो कुछ (हि) कभी हम (व्रतम्) किसी कर्त्तव्य को (द्यविद्यवि) दिन प्रतिदिन (मिनीमसि) तोड़ा करते हैं। परन्तु तू—

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः ।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

भा०—हे वरुण ! राजन् ! हे परमेश्वर ! (जिहीळानस्य) अज्ञान अनादर करने वाले पुरुष के (बधाय) बध करने और (हत्नवे) किसी आघात पहुँचाने के लिये (नः) हमें (मा रीरधः) मत प्रेरित कर और इसी प्रकार (मन्यवे) क्रोध के निमित्त (हृणानस्य) स्वयं लज्जा अनुभव करने वाले को दण्ड देने के लिये भी मत उकसा।

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् ।
गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (वरुण) परमेश्वर ! राजन् ! (रथीः) रथ का स्वामी (संदितम्) बल में खण्डित, हारे हुए (अश्वं न) घोड़े को जैसे (गीर्भिः

नाना प्रकार की बंधाने वाली, पुचकार वाली वाणियों से अपने वश करता है वैसे ही हम भी (मृळीकाय) सुख प्राप्त करने के लिये (ते मनः) तेरे हृदय या ज्ञान को (गीर्भिः) स्तुति-वाणियों द्वारा (सीमहि) बांधते हैं।

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये ।
वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥

भा०—(वयः) पक्षीगण जैसे (वसतीः न उप पतन्ति) अपने रहने की जगहों के प्रति उड़ आते हैं वैसे ही हे वरुण ! राजन् ! (मे) मेरी (विमन्यवः) विविध प्रकार की बुद्धियां, (वस्यः) सबसे श्रेष्ठ वसु, सबको वास देने हारे, सबके शरणरूप तुझको (इष्टये) प्राप्त करने के लिये (हि) निश्चय (परा उप पतन्ति) तेरे समीप तक उड़ती २ तुझ तक पहुँचती हैं। अथवा—(वयः वसतीः न) पक्षी जैसे अपने स्थानों को छोड़कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिये चले जाते हैं वैसे ही (विमन्यवः) विशेष ज्ञानवान् पुरुष अधिक धन प्राप्ति के लिये (परा पतन्ति हि) दूर २ देशों तक जावें।

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(मृळीकाय) सुख प्राप्त करने के लिये हम लोग (नरम्) सबके नायक, (वरुणम्) अपने आप चुने गये राजा के समान सब कष्टों के वारक (उरुचक्षसम्) बहुत प्रकार के ज्ञानों और प्रजाजनों के द्रष्टा पुरुष को हम लोग (कदा) कब (क्षत्रश्रियम्) समस्त बलों का आश्रय, राजा रूप से (करामहे) बनावें। इति षोडशो वर्गः ॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—(धृतव्रताय) समस्त व्रतों, कर्त्तव्यों की बागडोर को धारण करने वाले (दाशुषे) दानशील स्वामी को प्रसन्न करने के लिये (वेनन्ता)

उसकी अभिलाषा के अनुसार वाद्य वादन और गान करने वाले गायक, वादक (न) जैसे (तद् इत्) उसके अभिलषित गान वाद्य को (समानम्) दोनों समान रूप से (आशाते) प्रयोग करते हैं और (प्र युच्छतः) उसको प्रसन्न करते हैं। वैसे ही (धृतव्रताय) समस्त संसार की नियम व्यवस्थाओं को धारण करने वाले (दाशुषे) सुखों के दाता परमेश्वर की (वेनन्ता) कामना करने वाले साधक और जिज्ञासु जन (तद् इत्) उसके वचन को (समानम्) समानरूप से (आशाते) प्राप्त करें और (प्र युच्छतः) उसको प्रसन्न करें।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः॥ ७॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर और राजा (अन्तरिक्षे) आकाश मार्ग से (पतताम्) जाने वाले (वीनां) पक्षियों और विमानों के भी (पदम्) गन्तव्य मार्ग को (वेद) जानता है, (समुद्रियः) समुद्र में चलने वाली (नावः) महान् आकाश में विद्यमान, बड़े २ सूर्य लोकों या नौकाओं, जहाजों को भी (वेद) जानता है वही परमेश्वर और राजा सेवनीय है।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥ ८॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर या विद्वान् (धृतव्रतः) सब नियमव्यवस्थाओं और धर्मों को धारण करने वाले सूर्य के समान (प्रजावतः) नाना प्रजाओं के स्वामी (द्वादश) बारहों (मासः) मासों को (वेद) जानता है और (यः) जो (उपजायते) बाद में १३ वां मास होता है उसको भी जानता है वह सबको सुख देता है। उसी प्रकार राजा १२ प्रजापालक राजओं को जानता है और जो उस १३ वें विजिगीषु को, जो सबमें प्रबल हो जाता है, उसको भी जानता है वही प्रजा को वरुण पद पर चुनने योग्य है।

वेद॒ वात॑स्य वर्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः।
वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥

भा०—परमेश्वर (उरोः) बड़े (बृहतः) बलवान् (ऋष्वस्य) सर्वत्र गतिशील, दर्शनीय (वातस्य) वायु के (वर्त्तनिम्) मार्ग को (वेद) जानता है और (ये) जो (अधि आसते) सूर्यादि नाना पदार्थों पर अधिष्ठाता, शासक रूप से विराजते हैं उनको भी जानता है।

नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३ स्वा।
साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतु॑ः ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—(धृतव्रतः) राज्य-नियमों को धारण करने वाला राजा एवं संसार के सृष्टि नियम और धर्मों को धारण करने वाला (वरुणः) पुरुषोत्तम (पस्त्यासु) गृहों में बसने वाली प्रजाओं में (साम्राज्याय) महान् साम्राज्य की व्यवस्था के लिये (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और प्रज्ञा से युक्त होकर (आ नि ससाद) विराजे। इति सप्तदशो वर्गः।

अतो॒ विश्वा॒न्यद्भु॑ता चिकि॒त्वाँ अ॒भि प॑श्यति।
कृता॑नि॒ या च॒ कर्त्वा॑ ॥ ११ ॥

भा०—(अतः) इसी कारण (चिकित्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (विश्वानि) समस्त (अद्भुतानि) आश्चर्यजनक, जो पहले कभी देखे, सुने, या किये भी न गये हों ऐसे (कृतानि) कर्मों और (या च कर्त्वा) जो काम भविष्य में करने को भी हैं उन सबको (अभि पश्यति) देखता है।

स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्यः सु॒पथा॑ करत्।
प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥ १२ ॥

भा०—(सुक्रतुः) उत्तम कर्मों का कर्त्ता (आदित्यः) सूर्य के समान तेजस्वी (सः) वह परमेश्वर, विद्वान् और राजा (विश्वाहा) सब दिनों (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नः) हमें (करत्) संचालित करे और (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषत्) बढ़ावे, उनको सफल करे।

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥

भा०—(वरुणः) सूर्य जैसे (हिरण्ययम्) सुवर्ण के समान उज्ज्वल (द्रापिम्) बाह्य स्वरूप को (बिभ्रद्) धारण करता है और (निर्णिजम्) शुद्ध प्रकाश को (वस्त) वस्त्र के समान धारण करता है। और (स्पशः) प्रकाश की किरणें उसके (परि) चारों ओर (निषेदिरे) विराजते हैं वैसे ही राजा भी (हिरण्ययं द्रापिं बिभ्रत्) सुवर्ण के कवच को धारण करता हुआ और (निर्णिजं) सर्वदा शोधन, न्याय, विवेक करने वाले आसन पर विराजता है, या अति शुद्ध वस्त्रों को धारण करता है (स्पशः) सत्यासत्य को देखने वाले स्पर्श, उसके अधीन दूत प्रणिधि और विद्वान् पुरुष (परि निषेदिरे) उसके गिर्द विराजते हैं। ऐसे ही परमेश्वर तेजोमयस्वरूप को धारता और शुद्ध तत्व को ग्रहण करता है और (स्पशः) स्पर्श करने वाले, या तेजस्वी सब सूर्यादि दिव्य पदार्थ उसी के आश्रय पर विराजते हैं।

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

भा०—(यम्) जिस (देवम्) परमेश्वर और विजिगीषु राजा को (दिप्सवः) हिंसाशील पुरुष (न दिप्सन्ति) मारना भी नहीं चाहते और (जनानं द्रुह्वाणः) जन्तु और सब मनुष्यों के द्रोहकारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते, जिसको (अभिमातयः) अभिमानी शत्रुगण भी परास्त नहीं कर सकते, वही परमेश्वर और राजा न्यायकारी पद पर स्थित 'वरुण' है।

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—(उत) और (यः) जो परमेश्वर, सूर्य और मेघ (मानुषे)

पुरुषों के निमित्त (असामि) पूर्णरूप से (यज्ञः) यज्ञ, अन्न (आ चक्रे) देता है और (अस्माकम्) हमारे (उदरेषु) पेटों को भरने के लिए (यशः) अन्न (आ चक्रे) सर्वत्र पैदा कराता है वह 'वरुण' है। वैसे ही जो राजा (मानुषेषु) समस्त मनुष्यों में अपने यश, कीर्ति को विस्तृत करता और सब मनुष्यों और (अस्माकम् उदरेषु) हम प्रजाजन की क्षुधा-शान्ति के लिए (यशः आ चक्रे) सर्वत्र भूगोल पर अन्न उत्पन्न कराता है वह राजा 'वरुण' है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥ १६॥

भा०—(गव्यूतीः अनु) गौओं के जाने के स्थान, बाड़े में जैसे (गावः न) गौएं जाती हैं वैसे ही (उरुचक्षसम्) समस्त विशाल लोकों के द्रष्टा सूर्य के समान दर्शनीय उस परमेश्वर को (इच्छन्तीः) चाहती हुई (मे) मेरी (धीतयः) बुद्धियां (परा अनु यन्ति) दूर तक उसी को लक्ष्य करके चलती जाती हैं और मुमुक्षु के सब मनन और कर्म-प्रयत्न उसी परमेश्वर के लिए हैं।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्।
होतेव क्षदसे प्रियम्॥ १७॥

भा०—(यतः) क्योंकि (मे) मुझे (मधु) ज्ञानरस विद्वानों से प्राप्त हुआ है और हे शिष्य! तू उस (प्रियम्) तृप्तिकर ज्ञानराशि को (होता इव) यज्ञकर्त्ता विद्वान् के समान ही (क्षदसे) अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए प्राप्त कराता है इसलिए हम दोनों (सं वोचावहै) भली प्रकार उस ज्ञान को वचन प्रतिवचन द्वारा उपदेश दें और ग्रहण करें।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥ १८॥

भा०—(अधि क्षमि) इस पृथ्वी पर (विश्वदर्शतम्) सबके दर्शनीय (रथम्) रथ पर चढ़े महारथी राजा के समान तेजस्वी (रथम्) रसस्वरूप, आनन्दमय परमेश्वर को (दर्शं दर्शं) पुनः पुनः दर्शन करने के लिए (मे) मेरी (एताः) इन (गिरः) वेदवाणियों को (जुषत) सेवन करो।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके॥ १९॥

भा०—हे (वरुण) परमेश्वर! राजन्! (मे) मेरे (इमं) इस (हवम्) स्तुतिवचन को (अद्य) आज (श्रुधि) श्रवण कर (च) और (अद्य) आज दिन, सदा (त्वं) तू ही मुझे (मृळय) सुखी कर। मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक होकर (त्वाम्) तेरी (आचके) स्तुति करता हूँ।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि॥ २०॥

भा०—हे (मेधिर) विद्वन्! परमेश्वर! राजन्! (त्वं) तू (विश्वस्य) समस्त (दिवश्च) आकाश और (ग्मः च) पृथिवी के ऊपर (राजसि) सूर्य के समान प्रकाशित होता है और (सः) वह तू (यामनि) प्रति पहर (प्रति श्रुधि) प्रत्येक मनुष्य या जन्तु के कष्टों को श्रवण कर।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे॥ २१॥ १९॥

भा०—हे परमेश्वर! हे राजन्! (नः) हमारे (उत्तमं) उत्तम श्रेणी के सात्विक (पाशं) बन्धन को (मुमुग्धि) उन्मुक्त कर, उत्तम फलों के भोग द्वारा छुड़ा और (मध्यमं) बीच की श्रेणी के (पाशं) बन्धन को (वि चृत) विविध, उत्तम, अधम योनि में मिले कर्म फलों के भोग द्वारा काट और (अधमानि) निकृष्ट कोटि के पाशों को भी (जीवसे) जीवन को

सुखप्रद करने के लिये (अव चृत) नीच योनियों में भोग भुगा कर काट।
इत्ये कोनविंशो वर्गः ॥

[२६] शुन शेप आजीगर्त्तिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८, ९ आर्ची उष्णिक । २—६ निचृद्गायत्री । ३ प्रतिष्ठा गायत्री । ४, १० गायत्री । ५, ७ विराड गायत्री । दशर्चं सूक्तम् ॥

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥

भा०—हे (मियेध्य) पवित्र यज्ञ के योग्य विद्वन्! हे प्रजापति पद के योग्य राजन्! हे उपासना योग्य परमेश्वर! हे यज्ञ अग्नि द्वारा हव्य पदार्थों को प्रक्षेप करने हारे ऋत्विग्! और हे (ऊर्जां पते) अन्नों, बल, पराक्रमों और रसों के परिपालक! तू (वस्त्राणि) आदित्य जैसे आच्छादक, सबके तेजों को दबा लेने हारे प्रकाशों को धारण करता है वैसे ही (वस्त्राणि) भव्य वस्त्रों को (वसिष्व) धारण कर और (सः) वह तू (नः) हमारे (इम) इस (अध्वरं) हिंसा रहित यज्ञ, प्रजापालन रूप कर्म का (यज) कर।

नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः।
अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥

भा०—हे (यविष्ठ) अति बलशालिन्! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! परमेश्वर! राजन्! विद्वन्! तू (नः) हमें (होता) सुखप्रद पदार्थों और ज्ञानों के देने हारा (वरेण्यः) उत्तम पद और कार्य के लिए वरण योग्य श्रेष्ठ और (मन्मभिः) मनन योग्य ज्ञातव्य गुणों से युक्त होकर (दिवित्मता) प्रकाश और ज्ञान को अधिक बढ़ाने वाले उत्तम गुण या तेज से युक्त होकर (नः वचः) हमें वेदवाणी और आज्ञा का उपदेश कर।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (पिता) पिता (सूनवे) पुत्र को अपना सर्वस्व (आ यजति) देता और (आपिः आपये) आप्त विद्वान् या बन्धु आप्त शिष्य या बन्धु को अपना ज्ञान और धन देता है और (सखा) मित्र अपना प्रेम और धन (सख्ये) मित्र को प्रदान करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर! राजन्! तू भी हमें हमारे (पिता, आपि, सखा) पिता, बन्धु और मित्र होकर मुझ (सूनवे आपये सख्ये) पुत्र, बन्धु, और मित्र के लिए (वरेण्यः) वरण योग्य होकर (आ यजतिस्म) सब कुछ प्रदान करता है।

आ नो॑ ब॒र्ही रि॒शाद॑सो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा।
सीद॑न्तु॒ मनु॑षो यथा ॥ ४ ॥

भा०—(नः) हमारे (बर्हिः) यज्ञ में (यथा) जैसे (मनुष्यः) बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष आकर बैठें वैसे ही हमारे (बर्हि) उत्तम अधिकारासन पर शास्य प्रजाजन के ऊपर प्रजापालन के कार्य पर भी (रिशादसः) हिंसक पुरुषों के नाशक (वरुणः) दुःखों का वारक श्रेष्ठ पुरुष, (मित्रः) सबका स्नेही और (अर्यमा च) न्यायाधीश पुरुष (आसीदन्तु) विराजें।

पूर्व्य॑ होतर॒स्य नो॒ मन्द॑स्व स॒ख्यस्य॑ च।
इ॒मा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिरः॑ ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—हे (पूर्व्य) पूर्व के विद्वान् पुरुषों द्वारा सत्कार पाने हारे! उन द्वारा उच्चासन पर स्थापित, हे (होतः) प्रजाओं को नाना सुखों के दाता! तू (सख्यस्य) इस मित्रता और (च) बन्धुता के कारण सदा (मन्दस्व) खूब हर्षित हो और (इमाः) इन (गिरः) स्तुतियों को (श्रुधि) श्रवण कर। हे विद्वन्! (इमाः गिरः श्रुधि) इन वेदवाणियों को श्रवण कर। इति विंशो वर्गः ॥

यच्चि॒द्धि शश्व॑ता॒ तना॑ दे॒वंदे॑वं॒ यजा॑महे।
त्वे इद्धू॑यते ह॒विः ॥ ६ ॥

भा०—(यत् चित् ही) और जब जब भी (तना शश्वता) अति विस्तृत

अनादि वेदज्ञान से (देवंदेवं) किसी भी ज्ञानद्रष्टा विद्वान् का (यजामहे) आदर सत्कार करते हैं, तब तब भी (त्वे इत्) उस तुझ में ही हे (अग्ने) परमेश्वर! (हविः) अग्नि में डाली आहुति के समान तेरे में ही (हविः) वह ग्रहणयोग्य या देने योग्य आदर सत्कार, स्तुति, वचन आदि (हूयते) प्रदान किया जाता है।

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः।
प्रिया स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

भा०—(होता) ऐश्वर्यों के देने वाला (वरेण्यः) वरण योग्य, (मन्द्रः) स्वयं प्रसन्न, सबको प्रसन्न करने हारा, स्तुति-योग्य, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक, स्वामी, राजा (नः) हमारा (प्रियः अस्तुः) प्रीतिपात्र हो और अग्निहोत्र या यज्ञ में श्रेष्ठ होता से जैसे हम (सु अग्नयः) उत्तम यज्ञाग्नियुक्त होकर सब बन्धु-बान्धवों को प्रिय हो जाते हैं वैसे ही पूर्वोक्त राजा से ही (वयम्) हम सब प्रजाजन भी (स्वग्नयः) उत्तम अग्नि के समान तेजस्वी, बलप्रद राजारूप अग्नि से युक्त होकर (प्रियाः) सबके प्रेमपात्र और परस्पर प्रीतियुक्त हों।

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः।
स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥

भा०—(स्वग्नयः देवासः) उत्तम अग्नि को धारण करने वाले (देवासः) सूर्य के किरण जैसे (वार्यं) अति सूक्ष्म परमाणुओं में विभक्त हुए जल को धारण करते हैं और जैसे उत्तम अग्नि से युक्त होकर पृथिवी आदि दिव्य पदार्थ (वार्यम्) वरण योग्य श्रेष्ठ जन, सुवर्ण रत्नादि को धारण करते हैं वैसे ही (स्वग्नयः) उत्तम विद्वान् और शत्रु-संतापक, प्रतापी राजास्वरूप अग्नि या नेताओं से युक्त होकर (देवासः) वीरपुरुष और करादि देने वाले प्रजागण (नः) हमारे (वार्यम्) वरण योग्य धनैश्वर्य को (दधिरे च) धारण करते और उसका उपयोग करते हैं

और हम लोग (स्वग्नयः) उत्तम नायक, विद्वान्, परमेश्वर और यज्ञाग्नि को भली प्रकार धारण करके ही (मनामहे) उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अमृत) कभी न मरने वाले चिरायुष ! (अथ) और (उभयेषाम्) मूर्ख और पंडित दोनों पक्षों के (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा, वीरपुरुषों के (मिथः) परस्पर (प्रशस्तयः) उत्तम प्रवचन हों।

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः।
चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) पर-सेना को दमन करने में समर्थ बल के द्वारा उत्पन्न या अभिषेक द्वारा बनाये गये सेनापते ! राजन् ! हे (अग्ने) प्रतापिन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (अग्निभिः) सेनानायकों सहित (नः) हमारे (इमं यज्ञं) इस यज्ञ, सुसंगत, सुसंबद्ध राष्ट्र को (इदं वचः) इस वचन, आज्ञा प्रदान करने के कार्य या प्रजाशासन करने योग्य धर्मशास्त्र को और (चनः) समस्त अन्न, पूजा और सत्कार को (धाः) धारण कर और प्रदान कर। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२७] शुनःशेप आजीगर्त्तिर्ऋषिः ॥ देवता—१–१२ अग्निः। १३ विश्वेदेवाः। छन्दः—१–१२ गायत्र्यः। ३ एकोना पिपीलिकामध्या विराड। ५, ७ निचृद्। १३ त्रिष्टुप्। त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

भा०—(अध्वराणाम्) हिंसादि दोषों से रहित यज्ञों, प्रजापालन के उत्तम कार्यों में (सम्राजन्तम्) यशस्वी होने वाले (अग्निं) प्रतापी (अश्वं न) अश्व के समान (वारवन्तम्) पूंछ के बालों के समान बाधक शत्रुओं के वारक सेनादि साधनों से सम्पन्न (त्वा) तुझ नायक पुरुष को

(नमोभिः) आदरपूर्वक नमस्कारों और अन्न आदि भोग्य पदार्थों से (वन्दध्या) स्तुति करने के लिए हम सदा तैयार हैं।

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (घ) निश्चय से (शवसा) बल से, (प्रथुप्रगामा) रथ, यान, तोपखाना आदि विस्तृत लश्कर सहित आगे बढ़ने वाला, (सुशेवः) प्रजा को उत्तम सुख देने हारा (मीढ्वान्) मेघ के समान प्रजाओं पर सुख और शत्रुगण पर शस्त्र आदि वर्षाने हारा, वीर्यवान् पुरुष (अस्माकम्) हमारे बीच में (नः) हमारा (सूनुः) प्रेरक आज्ञापक, अभिषेक युक्त राजा (बभूयात्) हो।

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह तू (विश्वायुः) विश्व में व्यापक परमेश्वर और प्रजाओं का जीवनप्रद राजा या सभापति (नः) हमें (अघायोः) पापकर्म हत्या आदि करना चाहने वाले दुष्ट (मर्त्यात्) पुरुष से (सदम् इत्) सदा ही (आरात् च) दूर से और (आसात् च) समीप से भी (पाहि) रक्षा कर।

इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! विद्वन्! (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमें (सनिम्) समस्त सुख-दाता (गायत्रम्) उपदेश करने और गान करने वाले की रक्षा करने वाले, (नव्यांसं) सदा नये-नये ज्ञानों को (देवेषु) विद्वानों, अग्नि आदि ऋषियों और ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों में (प्र वोचः) उपदेश करता है।

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! तू (नः) हमें (परमेषु) उत्कृष्ट कोटि के (वाजेषु) संग्रामों में, या ऐश्वर्यों में, (मध्यमेषु) मध्यमकोटि के ऐश्वर्यों या युद्धों में (अन्तमस्य) अति समीप, तृतीय कोटि के ऐश्वर्यों को भी (आ भ) प्राप्त करा और (शिक्ष) दे । इति द्वाविंशो वर्गः ।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥

भा०—हे (चित्रभानो) चित्र विचित्र, नाना रंगों की किरणों वाले सूर्य समान विद्वन् ! राजन् ! जैसे सूर्य (सिन्धोः) समुद्र के (ऊर्मौ) तरंग के उठने पर (उपाके) समीप ही जलों को (विभासि) सूक्ष्म जल कणों के रूप में विभक्त कर देता और उस सूक्ष्म जल को शीघ्र ही वर्षारूप में बरसा देता है ऐसे ही हे नाना विद्याओं और तेजों पराक्रमों से युक्त परमेश्वर ! राजन् ! तू (सिन्धोः ऊर्मौ) वेग से जाने वाले तरंग के समान उमड़ने वाले अपार ऐश्वर्य और ज्ञान राशि को (विभक्ता असि) सबको विभाग कर देता है । (दाशुषे) आत्म समर्पण के हित के लिए (सद्यः) शीघ्र ही (क्षरसि) मेघ के समान वर्षा देता है ।

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! विद्वन् ! राजन् (यम् मर्त्यम्) जिस मनुष्य को तू (पृत्सु) सेनाओं के बीच में से (अव) बचाता है और (वाजेषु) संग्रामों के बीच में (यम्) जिसको (जुनाः) प्रेरित करता है, (सः) वह ही (शश्वतीः) निरन्तर स्थिर रहने वाली (इषः) कामना योग्य प्रजाओं और आज्ञा पर चलने वाली सेनाओं का (यन्ता) नियन्ता, व्यवस्थापक होने योग्य है ।

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (सहन्त्य) सहनशील ! विद्वन् ! (अस्य) इस (कयस्य चित्) ज्ञानवान् , युद्ध-विद्या कुशल, पराक्रमी सेनापति का (पर्येता) मुकाबला करने वाला (नकिः) कोई नहीं है और (अस्य वाजः) इसका बल वीर्य, ऐश्वर्य और वेग भी (श्रवाय्यः) जगत्प्रसिद्ध, एवं स्तुत्य, आश्चर्यकारी (अस्ति) है।

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता।
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह (विश्वचर्षणिः) समस्त प्रजा का द्रष्टा, (अर्वद्भिः) अश्व आदि के बलों से (वाजं तरुता) संग्राम को पार करता और (विप्रेभि) बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा (वाजं सनिता) अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को समस्त प्रजा में विभक्त करता है।

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे (जराबोध) अपनी गुण स्तुति द्वारा अपने वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त करने वाले नायक ! तू (विशेविशे) प्रत्येक प्रकार की प्रजा के लिए (यज्ञियाय) राष्ट्रव्यवस्था अथवा युद्धक्षेत्र के योग्य (रुद्राय) उपदेष्टा विद्वान् , शत्रुओं के रुलाने वाले वीर पुरुष के (दृशीकम्) दर्शनीय (तत्) उस (स्तोमम्) सत्य गुण को (विविड्ढ) विशेष रूप से प्राप्त कर।

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह (नः) हमारे लिये (महान्) बड़ा (अनिमानः) अपरिमित बलशाली, (धूमकेतुः) धूम की शिखा वाले अग्नि के समान

शत्रुओं को शिर से पांव तक कम्पा देने वाले बल और प्रज्ञा वाला, (पुरुश्चन्द्रः) बहुतों को सुख शान्ति देने और हृदय में उत्साह देने में समर्थ है। वह हमें (धिये) कर्म और ज्ञान को प्राप्त करने एवं (वाजाय) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए (हिन्वतु) प्रेरित करे।

स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः।
उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर राजा (रेवान्) धनाढ्य के समान (विश्पतिः) प्रजा का पालक (दैव्यः) समस्त दिव्य पदार्थ जलादि व्यापक पदार्थों और विजिगीषु विद्वानों में सबसे कुशल (केतुः) ज्ञानवान् और (बृहद्भानुः) बड़े तेजों और दीप्तियों से तेजस्वी (अग्निः) प्रतापी है। वह (नः) प्रजाजनों का (उक्थैः) वेदमन्त्रों द्वारा अथवा उनके अनुसार सब कुछ (शृणोतु) श्रवण करे और न्याय करे।

नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ शक्न॒वाम॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः॥१३॥

भा०—(महद्भ्यः) बड़े आदरणीय विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और बलवृद्ध पुरुषों को (नमः) नमस्कार, आदर और उचित पद प्राप्त हो। (अर्भकेभ्यः नम) बालक, विद्या, बल में अल्प, पुत्र, शिष्य आदि को भी उचित आदर प्राप्त हो। (युवभ्यः नमः) युवा, बलवान् और विद्यावान् पुरुषों को भी आदर प्राप्त हो। (आशिनेभ्यः नमः) विद्या और बल अधिकार में सामर्थ्यवान् पुरुषों को आदर प्राप्त हो। (यदि) हम जब भी (शक्नवाम) शक्ति और सामर्थ्यवान् हों, जितना भी कर सकें (देवान्) उत्तम ज्ञानवान्, बल और सुख के प्रदाता और व्यवहार-कुशल तत्वदर्शी विद्वान् पुरुषों का (यजाम) सत्संग करें। हे (देवाः) विद्वान् और दानशील पुरुषो! मैं (ज्यायसः) अपने से बड़ों की (शसम्) कीर्त्ति, स्तुति को (मा आवृक्षि) न काटूं, न परित्याग करूं।
इति चतुर्विंशो वर्गः।

[२८] शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रयज्ञसोमा देवताः ॥ छन्दः—१-६ अनुष्टुभः । विराड् (२ द्व्यूना ३, ६ एकोना) । ७-९ गायत्र्यः । २, ७, ८ निचृद् । ७ पिपीलिकामध्या । नवर्चं सूक्तम् ॥

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥

भा०—(यत्र) जहां (पृथुबुध्नः) बड़े आश्रय या बड़े मूल भाग वाला, (ग्रावा) बड़ा पाषाण या शिला जैसे (उर्ध्वः) ऊंचा होकर (सोतवे) ओषधियों के रस निकालने के लिये (भवति) होता है वैसे ही (ग्रावा) ज्ञान का उपदेशक विद्वान् पुरुष भी (पृथु बुध्नः) विस्तृत अधिकार वाले राजा आदि का आश्रय पाकर (सोतवे) ज्ञान और ऐश्वर्य के प्रचार और प्रसार करने के लिए (ऊर्ध्वः) उन्नत पद पर स्थित (भवति) हो और जैसे गृहपति (उलूखल-सुतानां) ओखली में कूट पीसकर तैयार किये अन्न और ओषधि आदि पदार्थों को (अव) प्राप्त करता और (जल्गुलः) उसका भोजन करता है ऐसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! आचार्य ! तू (उलूखल-सुतानाम्) बहुत बड़े कार्यों को करने वाले, पुरुषों द्वारा उत्पन्न किये पुत्रों को (अव इत्) प्राप्त कर और (जल्गुलः) उनको उपदेश कर ।

यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

भा०—(यत्र) जिसमें (द्वौ) दो (अधिषवण्या) सोम को कूटने के लिये शिला और बट्टा (इव) के समान (जघना) शरीर में गति करने वाली दो जंघाएं (कृता) बनी हैं, अथवा शरीर में दो जंघाओं के समान यज्ञ में सोम सवन के लिये अन्न कूटने के निमित्त दो अधिसवन फलक और गृहस्थ यज्ञ में पुत्रोत्पादक दो स्त्री पुरुष बने हैं और ज्ञान में ज्ञानोत्पादक गुरु शिष्य हैं वहां (उलूखल-सुतानाम्) अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य के कर्त्ता पुरुषों से उत्पादित अन्न, पुत्र और शिष्यों की, हे (इन्द्र)

स्वामिन् ! गृहपते ! आचार्य ! तू (अव) रक्षा कर (जल्गुलः) उपदेश कर ।

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥

भा०—(यत्र) जिस गृहस्थ के कार्य में (नारी) स्त्री (अपच्यवं) त्याग करना, दान देना, व्यय करना और (उपच्यवं) अन्नादि को प्राप्त करना, सञ्चय करने आदि का (शिक्षते) अभ्यास करती है, हे (इन्द्र) विद्वन् ! तू (उलूखल सुतानाम्) ओखल से बने अन्नों को वहां (अव इत्) प्राप्त कर और (जल्गुलः) उनका भोजन कर ।

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥

भा०—(यमितवा इव) अश्वों को वश करने के लिये (रश्मीन् इव) जैसे सारथि रासों को जोड़ता है वैसे ही (यत्र) जहां लोग (मन्थाम्) दूध दही को मथन करने वाली रयि को रस्सी (विबध्नते) बांधते हैं। हे (इन्द्र) विद्वन् ! वहां ओखली से तैयार किये अन्नों को भी (अव इत्) प्राप्त कर और भोग कर, उसी प्रकार जिस राष्ट्र में अश्वों के समान ही (मन्थां) शत्रुओं को मथन करने वाली क्षात्र शक्ति को नियम में बांधा जाता है वहां बड़े ऐश्वर्यों के उत्पादक व्यापारियों द्वारा उत्पादित ऐश्वर्यों को तू प्राप्त कर, उपभोग कर ।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (उलूखलक) अति अधिक ज्ञानोत्पादक वचनों का उपदेश करने हारे विद्वन् ! ओखली के समान (यत् चित् हि) जो तू (गृहे गृहे) घर घर (युज्यसे) नियुक्त किया जाता है तो तू (इह) इस राष्ट्र में (जयताम्) विजयकारी योद्धाओं के (दुन्दुभिः) रणभेरी के समान

(द्युमत्तमं वद) अति ज्ञानप्रकाश से युक्त उपदेश (वद) किया कर।

बहुत अन्न, ज्ञान, कार्य, शक्ति आदि उत्पन्न करने वाले ओखली, गुरु, बड़ा पुरुष, राजा, पुरोहित आदि सभी 'उलूखल' शब्द से कहे जाने योग्य हैं।

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन योग्य फल, छाया, उत्तम रस के पालक महावृक्ष (उत) और (ते) तेरे (अग्रम् इत्) अग्र भाग तक (वातः) वायु अर्थात् रस प्राप्त कराने वाला बल (विवाति) विविध प्रकारों से प्राप्त होता है। (अथो) और हे (उलूखल) ओखली के समान अन्नों को उत्पन्न करने वाले पुरुष! तू (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (पातवे) पान करने के लिये (सोमम्) औषधि रस का (सुनु) सार भाग प्राप्त कर।

आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

भा०—(अन्धांसि) नाना प्रकार के जौ चने आदि को (बप्सता) खाने वाले, (आयजी) परस्पर संगत और (वाज-सातमा) वेग से जाने वाले (हरी इव) जैसे दो घोड़े रथ को उठाते हैं वैसे ही (आयजी) एक साथ संगत होने, यज्ञ करने और दान देने वाले और (वाज-सातमा) ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष (ता हि) वे दोनों ही (उच्चा) ऊंचे पद, गृहस्थादि के कार्य-भार को (विजर्भृतः) उठाते हैं और दोनों (अन्धांसि बप्सता) नाना अन्नों का उपभोग करते हैं।

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

भा०—(वनस्पती) काष्ठ के ऊखल और मूसल दोनों जैसे गृहपति के लिये (मधुमत् सुतम्) मधुर अन्न तैयार करते हैं वैसे ही (ता) वे

दोनों (वनस्पती) सेवन योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों के पालक राजा प्रजा-वर्ग और स्त्री पुरुष दोनों (ऋष्वौ) महान् सामर्थ्य वाले होकर (ऋष्वेभिः) दर्शनीय या बड़े २ (सोतृभिः) अभिषव, अभिषेक करने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों से मिलकर (इन्द्राय) शत्रु नाशक बलवान् पुरुष के लिये (मधुमत्) ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्रपति पद को (सुतम्) अभिषेक द्वारा प्रदान करें।

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज।
नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—(चम्वोः) 'चमू' नाम अधि सवन फलक, ऊखल मूसल दोनों में (शिष्टम्) कूटे गये (सोमम्) अन्न को (उद्भर) निकाल लो और पुनः (सोमम्) उस कुटे पिसे अन्न को (पवित्रे) साफ करने वाले छाज पर (आ सृज) रक्खो और (गौः त्वचि अधि) शेष सोम को गोचर्म पर (निधेहि) रक्खो। ऐसे ही (चम्वोः) राष्ट्र का उपभोग करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में (शिष्टम्) शिक्षित विद्वान् पुरुष को (उद् भर) उन्नत पद पर स्थापित करो और (सोमं) ज्ञान से पूर्ण उपदेश को (पवित्रे आसृज) परम पावन, आचार्य आदि पद पर नियुक्त कर और उसको (गोः त्वचि अधि निधेहि) वाणी, वेदज्ञान के संवरण, रक्षा के कार्य पर नियुक्त कर। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[२९] शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः—१, ४, ५ निचृद्। २, ३, ६, ७ विराड्। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

भा०—(यत् चित् हि) क्योंकि हे (सत्य) सज्जनों के हितकर! सत्य-स्वरूप, परमेश्वर! राजन्! हे (सोमपाः) समस्त ऐश्वर्यों और पदार्थों के पालक हम (अनाशस्ताः) प्राप्त करने में असमर्थ, अल्पज्ञ (स्मसि) हैं,

इसलिये हे (इन्द्र) परमेश्वर ! आचार्य ! राजन् ! हे (तुवीमघ) अधिक ऐश्वर्यवन् ! आप (नः) हमें (गोषु) वाणी, पशु, इन्द्रिय, भूमि और (अश्वेषु) अश्व आदि वेग से जाने वाले साधनों और (सहस्रेषु) हजारों (शुभ्रिषु) सुखप्रद पदार्थों में (आशंसय) विख्यात व सम्पन्न कर ।

शिप्रि॑न्वाजानां पते॒ शची॑व॒स्तव॑ दं॒सना॑ ।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥२॥

भा०—(शिप्रिन्) हे ऐहिक, पारमार्थिक दोनों सुखों को प्राप्त करने हारे ज्ञानवन् ! (वाजानां पते) संग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक, हे (शचीवः) प्रज्ञा और प्रजा के स्वामिन् ! (तव) तेरा ही यह (दंसना) सब सामर्थ्य है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (नः तु) हमें भी (गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु नः आशंसय) सहस्रों शोभाजनक विमानादि ऐश्वर्यों में उत्तम सम्पन्न कर ।

नि ष्वा॑पया मिथू॒दृशा॑ स॒स्तामबु॑ध्यमाने ।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥३॥

भा०—जो स्त्री पुरुष (मिथूदृशा) मिथ्या दृष्टि से युक्त, दुःख से मिले विषय सुख को वास्तविक सुख मानने वाले और प्रमाद आलस्य करने वाले होकर (अबुध्यमाने) कुछ भी ज्ञान न प्राप्त कर (सस्ताम्) सदा सोते हैं उनको (निः स्वापय) उस कुमार्ग से हटा और हे (इन्द्र तुवीमघ गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु नः आशंसय) इत्यादि पूर्ववत् ।

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑ ।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥४॥

भा०—(त्याः) वे (अरातयः) दानशील शत्रुगण, (ससन्तु) अचेत होकर सोवें । हे (शूर) शूरवीर ! (रातयः) दानशील प्रजाएं (बोधन्तु) ज्ञानवान् जागृत, सावधान होकर रहें । (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत् ।

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! प्रभो! सभाध्यक्ष! तू (अमुया) अमुक नाना प्रकार की (पापया) पापयुक्त वाणी से (नुवन्तम्) निन्दा करते हुए (गर्दभ) कर्णकटु बोलने वाले, निन्दक, गधे के समान नीच पुरुष को (सं मृण) अच्छी प्रकार दण्डित कर। (गोषु अश्वेषु सहस्रेषु) गौ आदि पशु और सहस्रों सुखप्रद ऐश्वर्यों के विषय में हमें (आ शंसय) उत्तम निर्दोष प्रसिद्ध कर। (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत्।

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥

भा०—(वातः) वायु जैसे (वनात् अधि) वन से निकल कर बहुत (दूरम्) दूर तक (कुण्डृणाच्या पतति) कुटिल गति से दूर तक चला जाता है वैसे ही (वातः) वायु के समान बलवान् सेनापति (वनात् अधि) सेना समूह से निकलकर (कुण्डृणाच्या) राजनीति की कुटिल गति या शत्रुदाहक प्रताप और पराक्रम वाली शक्ति से दूर तक (पताति) आक्रमण करे। (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत्।

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२७

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू सर्व प्रकार से (परिक्रोशं) प्रजा को रुलाने वाले एवं निन्दा फैलाने वाले दुष्ट पुरुष को (जहि) दण्डित कर और (कृकदाश्वं) हिंसाकारी को (जम्भय) विनष्ट कर। (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३०] शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवता । १–१६ इन्द्रः । १७–१९ अश्विनौ। २०–२२ उषाः ॥ छन्दः—१–१०, १२–१५, १७–२२ गायत्र्यः

२, ५, ६, १०, १५, १७, १८, २० निचृद् । ६, १०, १५, १८, पिपीलिकामध्या । ३, १६, २१, २२ विराड् । २१ पिपीलिकामध्या । ११ पादनिचृद् गायत्री । १६ त्रिष्टुप् । द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

भा०—(वाजयन्तः) अन्न की कामना करने वाले किसान जैसे (क्रिविम्) कूप का आश्रय लेते हैं और जलों से क्षेत्रों को सींचते हैं वैसे ही हे वीर पुरुषो ! (व) आप लोगों में से (वाजयन्तः) संग्राम में विजय और ऐश्वर्यों की कामना करने वाले जन (शतक्रतुम्) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों के करने में कुशल (क्रिविं) शत्रुनाशक, कार्यदक्ष (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुघातक (मंहिष्ठं) दानशील पुरुष को आश्रय करो। हे पुरुष ! तब (इन्दुभिः) जलों के समान सदा बहने वाले ऐश्वर्यों से प्रजाजन को (सिंच) राजा और प्रजा दोनों को सेचन कर, बढ़ा।

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।
एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

भा०—(निम्नं न) जैसे जल नीचे की ओर बह जाता है वैसे ही (यः) जो विद्वान् (शुचीनां) पवित्र करने वाले (शतं) सहस्रों साधनों और पदार्थों के प्रति और (समाशिराम्) आश्रय या सेवनयोग्य (सहस्रम्) हजारों ग्राह्य पदार्थों के प्रति (आ रीयते इत्) झुकता ही है, वह उनको प्राप्त कर उनका ज्ञान करता है।

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे ।
समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

भा०—(समुद्रः न) जैसे समुद्र (व्यचः) विविध पदार्थों को धारण करने वाले, विस्तृत अवकाश को धारण करता है वैसे ही (शुष्मिणे मदाय) बलवान्, अति तृप्त (अस्य) इस विद्वान् पुरुष के (उदरे) पेट

या वश में (एना) सहस्रों पदार्थ (संदधे) धारण कराता हूँ, उसके भोगने के निमित्त प्रदान करता हूँ।

अय मु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४॥

भा०—(कपोतः) कबूतर (इव) जैसे (गर्भधिम्) गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास आता और संगत होता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (कपोतः) नाना वर्णों का आश्रय होकर (गर्भधिम्) अपने गर्भ में, अपने बीच में तुझे धारण करने में समर्थ राष्ट्र की प्रजा को तू (सम् अतसि) आपसे आप प्राप्त होता है। (अयम्) यह समस्त लोक (ते उ) तेरे ही भोग और शासन के लिए, तेरे ही वश है। (तत् चित्) वैसे ही (नः) हमारे तू (वचः) वचन को भी (ओहसे) प्राप्त हो।

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (राधानां पते) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (वीर) वीर्य-वन्! (यस्य) जिस (गिर्वाहः) समस्त स्तुति वाणियों को धारण करने वाले, उनके योग्य (ते) तेरी (स्तोत्रम्) स्तुति है उस तेरी ही यह (सूनृता) उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण (विभूति) विविध सम्पदा (अस्तु) है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों से युक्त राजन्! परमेश्वर! तू (नः) हमारे (ऊतये) रक्षा करने के लिए (ऊर्ध्वः) सबसे ऊँचा होकर (अस्मिन्) इस संग्राम, राष्ट्र यज्ञ और ऐश्वर्य पद पर (तिष्ठ) विराज और हम दोनों स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य और राजा प्रजावर्ग मिलकर (अन्येषु) अपने से भिन्न अन्य शत्रुओं में भी अथवा अन्य कार्यों और

अवसरों पर भी (सं ब्रवावहै) परस्पर तेरे गुणों का कथन किया करें।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

भा०—हम सब (सखायः) सुहृद होकर (योगेयोगे) ऐश्वर्य प्राप्ति के प्रत्येक अवसर में और (वाजेवाजे) प्रत्येक संग्राम में भी (ऊतये) रक्षा के लिये (तवस्तरं) अति बलशाली और ज्ञानी (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता एवं कार्यकुशल परमेश्वर और सेनापति राजा को (हवामहे) बुलावें, उसे प्रस्तुत करें।

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

भा०—यदि परमेश्वर या सेनापति (नः) हमारे (हवम्) स्तुति वचनों और बुलावे को (उप श्रवत्) सुन ले, तब अवश्य ही वह (सहस्रिणीभिः) सहस्रों पुरुषों से बनी, या सहस्रों ऐश्वर्यों के देने वाली सेना रूप (ऊतिभिः) रक्षाओं और (वाजेभिः) अन्न, ज्ञान, उपाय, युद्धादि सामग्री और अश्वकादि वेगवान् साधनों से (आ गमद् घ) निश्चय से आ जावे।

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

भा०—(यं) जिस (तुविप्रतिम्) नाना लोकों के बनाने वाले, (नरं) सबके नायक, (प्रत्नस्य औकसः) अति पुराण स्थान, आकाश के भी (पूर्वं) पूर्व विद्यमान परमेश्वर की (ते पिता) तेरे पालक जन भी स्तुति करते थे। उसी की मैं (अनुहुवे) आदर से स्तुति करता हूँ।

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत।
सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे (विश्ववार) सबके वरण योग्य, सबको धनैश्वर्य का समानरूप से विभाग करने हारे ! हे (पुरुहूत) बहुत से जनों से स्तुति किये, रक्षा, क्षेमादि के निमित्त बुलाये गये ! हे (सखे) मित्र ! (वसो) सबमें बसने और सबके बसाने वाले परमेश्वर ! राजन् ! (वयम्) हम (तं) उस (त्वा) तुझको (जरितृभ्यः) स्तुति करने वाले पुरुषों के हितकारी रूप से चाहते हैं। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् ।
सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (सोमपाः) नाना उत्पादित कार्य, पदार्थ, ऐश्वर्य आनन्द, ज्ञान तथा राष्ट्र के पालक ! राजन् ! विद्वन् ! ईश्वर ! (शिप्रिणीनां) ज्ञान से युक्त हम स्त्रियों का और (सोमपावनाम्) सोम, अन्न, ज्ञान, बलैश्वर्य राष्ट्रादि के पालक और (सखीनाम्) मित्र भाव से रहने वाले (अस्माकं) हम स्त्रियों और पुरुषों में से सभी का तू हितकारी है।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु ।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥

भा०—हे (सोमपाः) राष्ट्रपालक, हे (सखे) सखे ! मित्र ! हे (वज्रिन) बलवन् ! दुःखों के निवारक ! (यथा) जैसे भी हम (ते) तुझे अपने (इष्टये) अभिलषित फल की प्राप्ति के लिए (उश्मसि) चाहते हैं तू (तथा कृणु) वैसे ही हमारा मनोरथ पूर्ण कर और (तत्) वह हमारा अभिलषित कार्य भी (तथा अस्तु) वैसे ही सिद्ध हो।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥

भा०—(क्षुमन्तः) अन्न आदि भोग्य पदार्थों से समृद्धिमान् होकर हम (याभिः) जिन प्रजाओं से और जिन सहधर्मचारिणी स्त्रियों के साथ (मदेम) सन्तुष्ट, पूर्ण सफल हो सकें वे (तुविवाजाः) अति ऐश्वर्य और

अन्नों से युक्त होकर (रेवतीः) धनैश्वर्य वाली स्त्रियें (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में, या राजा के या परमेश्वर के आश्रय रहकर (नः) हमारे (सधमादः) साथ सुख और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली (सन्तु) हों।

आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥

भा०—(चक्रयोः) चक्रों के बीच लगा (अक्षं न) धुरा जैसे (इयानः) गति करता हुआ स्वयं चलता और अन्यों को अभिलषित स्थान तक पहुँचता है और वह स्वयं (त्मना आप्त) अपने ही आश्रय पर स्थित रह कर दोनों चक्रों को भी सम्भालता है वैसे ही हे (धृष्णो) बलवन्! (इन्द्र) परमेश्वर! राजन्! तू भी (त्वावान्) अपने ही समान, अपने जोड़ का अकेला, (त्मना आप्तः) अपने ही सामर्थ्य से अपने में स्थित होकर (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले पुरुषों को (ऋणोः) स्वयं प्राप्त होता और उनको अभिलषित सुख प्राप्त कराता है।

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम्।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—(अक्षं न) जैसे चक्रों का धुरा (शचीभिः) क्रियाओं द्वारा गति करता हुआ (कामं) इष्ट को प्राप्त कराता है वैसे ही हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों में कुशल ईश्वर! राजन्! विद्वन्! सभापते! तेरी (यत्) जो (दुवः) परिचर्या, सेवा है वह भी (जरितॄणाम्) स्तोता पुरुषों को (शचीभिः) अपनी बुद्धियों और कर्मों से (कामं) अभीष्ट फल को (ऋणोः) प्राप्त कराती है। इतित्रिंशद् वर्गः ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि। स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता, भूमि और राष्ट्र का पालक राजा (पोप्रु-

थद्भिः) नथुने फुनफुनाते हुए, बलशाली व्यायामशील (नानदद्भिः) मेघनाद करते हुए (शाश्वसद्भिः) निरन्तर श्वास लेने वाले घोड़ों से (धनानि) ऐश्वर्यों का (शश्वत्) निरन्तर (जिगाय) विजय करे और (सः) वह (दंसनावान्) कर्म शक्ति से सम्पन्न होकर (नः) हमें (हिरण्यरथम्) सुवर्ण और लोहादि धातु के बने रथ (अदात्) दान करे और (सः) वह (सनिता) सब ऐश्वर्यों का दाता दानशील (नः) हमें (सनये) दान देने या ऐश्वर्य विभाग करने के लिये ही (नः अदात्) दान दे।

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) सूर्य और पृथिवी, आकाश और पृथिवी, दिन रात्रि और शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र में व्यापक शक्ति और अधिकार वाले! (दस्रौ) राष्ट्र के दुःखों और दरिद्रता आदि दोषों के नाशक आप दोनों (अश्वावत्या) अश्वों वाली, अश्वारोहियों से बनी, (शवीरया) सैकड़ों वीर पुरुषों से पूर्ण, (इषा) इच्छानुकूल प्रेरित सेना से (आ यातम्) सर्वत्र प्रयाण करो, जिससे हमारा राष्ट्र (गोमत्) गवादि पशु और उत्तम भूमि वाला और (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि से समृद्ध हो।

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः।
समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

भा०—हे (दस्रौ) दुःखों के नाशक, तुम दोनों शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र के संचालको ! (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (समान-योजनः) एक जैसा बना हुआ और (अमर्त्यः) बिना मनुष्य के चलने वाला है। हे (अश्विनौ) वेगवान् साधनों से जाने हारो ! वह रथ (समुद्रे) अन्तरिक्ष और समुद्र में भी (ईयते) जाता है।

न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

भा०—हे उत्तम शिल्पी जनों ! तुम दोनों (अघ्न्यस्य) विनाश न होने योग्य दृढ़ (रथस्य) रथ के (मूर्धन) सिर या अग्र भाग पर (अन्यत्) एक और (चक्रं नियेमथुः) चक्र को लगाओ। इससे वह (याम् परि) आकाश में भी (ईयते) चला जावे।

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्यें।
कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

भा०—हे (उषः) पापों के नाश करने वाली उषा के समान ज्योतिर्मयि परमेश्वरी शक्ते ! हे (कधप्रिये) स्तुति एवं ज्ञान कथा से अतिप्रिय ! हे (अमर्त्ये) कभी न मरने वाली (ते भुजे) तेरे परमानन्द के भोग या सुख को प्राप्त करने के लिए (कः मर्त्तः) कौन मरणधर्मा प्राणी समर्थ है ? हे (विभावरि) विशेष तेजोयुक्त ! तू (कं नक्षसे) किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है ?

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात्।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्वे) व्यापक, (चित्रे) आश्चर्यशक्तिशाली ! हे (अरुषि) दीप्तिमय ईश्वरीय शक्ते ! (हि) निश्चय से (वयम्) हम (आ अन्तात्) अति समीप से लेकर (आपराकात्) दूर तक भी विवेचना करके (ते) तेरे स्वरूप को हम (न अमन्महि) नहीं जान सके।

त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः।
अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न उषा के प्रभातवेला के समान ! (दिवः) ज्ञानप्रकाश से उत्पन्न होने वाली एवं ज्ञानप्रकाश को प्रदान करने वाली ! तू (वाजेभिः) ऐश्वर्यों और (त्येभिः) उन ज्ञानों सहित हमें (आगहि) प्राप्त हो और (अस्मे) हमें (रयिम्) विद्या, ज्ञान और ऐश्वर्य (नि धारय) प्रदान कर। इसी प्रकार २०-२२

तक तीनों मन्त्र राजशक्ति परक भी हैं। जब राजा का अभ्युदय होता है तब उसकी ऐश्वर्यशक्तियां, राज्यलक्ष्मी उदित होते समय सूर्य की प्रभा के समान हैं। (१) वह उस समय प्रभावशाली होने से 'विभावरी' और सबसे स्तुति योग्य होने से 'कधप्रिया', प्रतिद्वंद्वियों के नाशकारी होने से 'उषा' है। (२) अश्व अर्थात् राष्ट्ररूप एवं अश्वारोही बल चतुरंग सेना रूप होने से 'अश्वी' है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा से उत्पन्न और उसके ऐश्वर्य दोहन करने से 'दिवः दुहिता' है। एकत्रिंशद् वर्गः ॥
इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

[३१] हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता । छन्दः—१–७, ६–१५, १७ जगत्यः। १, ३, ५, ६, ७, १५, १७ विराट्। ४, १०, १३ एकोना विराट्। ६, १२ द्व्यूना, २, ११, १४ निचृद्। ८, १६, १८ त्रिष्टुभः। ८ विराट्। १६ एकोना विराट्। १८ निचृद्। अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान्! परमेश्वर! (त्वम्) तू (अंगिराः) शरीर में प्राण के समान ब्रह्माण्ड में स्थित, सूर्य आदि लोकों के संचालक, (प्रथमः) सबसे प्रथम, जगत् रचना के भी पूर्व विद्यमान, (ऋषिः) सब विद्वानों और लोकों को देखने और उपदेश करने वाला, (देवः) ज्ञान और ऐश्वर्य का दाता, (देवानाम्) समस्त दिव्य लोकों और विद्वानों का (शिवः) कल्याणकारी और (सखा) मित्र (अभवः) है। हे परमेश्वर! (तव) तेरे (व्रते) बनाये नियम में रहकर (विद्मना-अपसः) ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाले (कवयः) मेधावी (मरुतः) मरणधर्मा विद्वान् मनुष्य भी (भ्राजद् ऋष्टयः) तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाले (अजायन्त हो जाते हैं!

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रस्तमः क॒विर्दे॒वानां॒ परि॑ भूषसि व्र॒तम् ।
वि॒भुर्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय॒ मेधि॑रो द्विमा॒ता श॒युः क॑ति॒धा चि॑दा॒यवे॑ ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! (त्वम्) तू (प्रथमः) सबसे प्रथम, आदि मूलकारण, (अंगिरस् तमः) 'अंगिरा' शब्दों से कहाने वाले अग्नि, आदित्य, प्राण, आत्मा आदि सबसे उत्कृष्ट, (कविः) सर्वज्ञ होकर (देवानाम्) विद्वानों और सूर्यादि लोकों के (व्रतम्) व्रतों, नियमों को (परिभूषसि) धारण करता रहा है। तू (मेधिरः) मेधावान् एवं संगत, (विश्वस्मै) समस्त (भुवनाय) भुवन ब्रह्मांडों के भीतर (विभुः) व्यापक, विशेष सामर्थ्यवान् होकर भी उनका (द्विमाता) सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों को बनाने वाला, (शयुः) सबके भीतर प्रसुप्त रूप से विद्यमान होकर (आयवे) मनुष्यों के लिए (कतिधा) कितने ही प्रकारों से, नाना शक्तियों के रूप में दिखाई देता है।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्ये॒ऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (त्वम्) तू (मातरिश्वने) गतिशील वायु तत्व के भी (प्रथमः) प्रथम विद्यमान होकर (विवस्वते) विविध लोकों में व्यापक और उनको बसाने, धारण करने वाले सूर्य की ज्योति के भी पूर्व (सुक्रतुया) सबसे उत्तम कृति या प्रज्ञा या संकल्प रूप में (आविः भव) प्रकट होता है। (होतृवूर्ये) सबको अपने भीतर से प्रकट करने और उनको अपने भीतर ले लेने वाले, परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य (रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से (अरेजेताम्) कांपती हैं, अर्थात् उसी के संकल्प से भोग्य-भोक्ता और जीव प्रकृति में प्रथम स्पन्द हुआ। हे परमेश्वर तू ही (भारम्) सब जीवों और लोकों के भरण पोषण के कार्य को भी (असघ्नोः) धारण करता है। हे (वसो) सबको बसाने और सब में बसने वाले परमेश्वर तू ही (महः) बड़े सूक्ष्म तत्वों को (अयजः) संगत करता है।

त्वम॑ग्ने मन॑वे द्याम॑वाशयः पुरू॒र॑वसे सुकृते॑ सुकृत्त॑रः ।
श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुन॑ः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानमय ! (त्वम्) तू ही (मनवे) मननशील (पुरुवरसे) बहुत से ज्ञानोपदेशों के धारक (सुकृते) पुण्याचारी जीव के उपकार के लिए (द्याम्) सूर्य और उसके समान ज्ञानप्रकाश के दाता बड़े ज्ञान का (अवाशयः) उपदेश करता है । हे जीव ! पुरुष (यत्) जब तू (पित्रोः) माता पिता के घर से (परिमुच्यसे) मुक्त या पृथक् होता है तब (श्वात्रेण) उसी परमेश्वर के दिये ज्ञान के निमित्त तेरे माता, पिता, बन्धु आदि (त्वा) तुझको (पूर्वम्) पहले आचार्य के समीप (आ अनयन्) उपनयन द्वारा प्राप्त कराते हैं और (पुनः) फिर (अपरम्) उसी परमेश्वर के प्रति ये विद्वान् जन तुझको उसी परम-ज्ञान के लिए (अनयन्) ले जाते हैं ।

त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्य॑ः ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॑ वष॑ट्कृ॒तिमेका॑युरग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑सति ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (त्वम्) तू (वृषभः) सूर्य और मेघ के समान जलों और सुखों का वर्षक (पुष्टिवर्धनः) पोषणकारी अन्नों और पशु समृद्धि को बढ़ाने वाला और (उद्यतस्रुचे) उर्ध्वरेता एवं उन्नतम ब्रह्मरन्ध्र में प्राणवृत्तियों को रोंधने वाले रोगी के लिए (श्रवाय्यः) श्रवण करने और दूसरों के बतलाने योग्य (भवसि) होता है । (यः) जो स्वयं (वषट्कृतिम्) पांचों भूत और अहंकार-महत् तत्वयुक्त छहों विकारों की (आहुतिम्) आहुति को अपने भीतर (परिवेद) ग्रहण करता है और जो (एकायुः) एकमात्र समस्त संसार जीव रूप होकर, समष्टि महान् चैतन्य होकर (अग्रे) सबसे पूर्व (विशः) अपने भीतर विद्यमान महत् आदि समस्त प्रज्ञाओं को (आ विवासति) विविध रूपों में आच्छादित करता है, ढकता है, वश कर रहा है । वह परमेश्वर

सबकी आहुति लेने से सबका मूल कारण 'सत्' है। एकायु अर्थात् समष्टि चैतन्य होने से 'चित' है और सब प्रजाओं को अपने भीतर मग्न कर लेने से 'आनन्द' स्वरूप है।

त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्सम॑ृता॒ हंसि॒ भूय॑सः ॥६॥

भा०—(अग्ने) नायक ! सेनापते ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के द्रष्टा (त्वम्) तू (सक्मन्) संघ से बने (विदथे) युद्ध में (वृजिनवर्तनिम् नरम्) बल के मार्ग से जाने वाले पुरुष को (पिपर्षि) अन्न आदि से पालता है और (यः) जो तू (शूरसाता) शूरों से सुखपूर्वक भोगने योग्य (परितक्म्ये) चारों ओर से आक्रमण करने योग्य (धने) युद्ध में (दभ्रेभिः) मारने में कुशल छोटे-छोटे वीर पुरुषों के द्वारा (चित्) भी (समृता) एकत्र होकर युद्ध में आये (भूयसः) बहुत से शत्रुओं को भी (हंसि) मार देता है। वही तू सेनापति या राजा पद के योग्य है।

त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (यः) जो पुरुष (उभयाय) दोनों (जन्मने) जन्मों में सुख प्राप्त करने और उनको उत्तम बनाने के लिए (तातृषाणः) तेरे आनन्द प्राप्त करने के लिए प्यास अनुभव करता है, उस (सूरये) विद्वान् के लिए तू (मयः) सुख और (प्रयः) अन्न, श्रेय और प्रेय दोनों ही (आ-कृणोषि) प्रदान करता है और (त्वम्) तू (तम् मर्त्तम्) उस मनुष्य को (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अमृतत्वे) मोक्ष के निमित्त (श्रवसे) ज्ञान प्राप्त करने के लिए (दधासि) नियुक्त करता है।

'उभय-जन्म'—अतीत, आगामी, वर्त्तमान, ये तीन जन्म और आचार्य प्रदत्त द्विजन्मता ये चारों मिलकर एक जन्म है और मुक्त होने के पश्चात् पुनः जन्म लेना द्वितीय जन्म है ऐसा महर्षि का आशय है।

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! राजन् ! (स्तवानः) तू स्वयं स्तुति किया जाकर, उच्च आसन पर प्रस्तुत होकर, (नः) हमें (धनानां) ऐश्वर्यों के प्रदान और उत्तम विभाग के लिए (यशसम्) यशस्वी (कारुम्) कर्मशील पुरुष को (कृणुहि) नियुक्त कर और हम (नवेन) नये २ (अपसा) प्रयत्न से (कर्म) अपने अभिलषित उद्देश्य को (ऋध्याम) बढ़ावें और अधिक सम्पन्न व फलदायक बनावें। (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी, स्त्री और पुरुष एवं राजा प्रजावर्ग दोनों (देवैः) अग्नि आदि दिव्य पदार्थ और दानशील एवं विजयशील और निरीक्षक अधिकारी और ज्ञानी धनाढ्य पुरुषों द्वारा (नः) हमारी (प्र अवतम्) भली प्रकार रक्षा करें।

त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥९॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! हे (अनवद्य) निष्पाप ! तू (देवः) सब दुःखों का दाता और (देवेषु) अग्नि आदि तत्वों में सदा (जागृविः) जागरणशील, क्रियाशक्ति रूप से व्यापक होकर (पित्रोः) जगत् के पालक सूर्य पृथिवी दोनों के (उपस्थे) बीच में (आ) व्यापक है और तू (प्रमतिः) सबसे उत्कृष्ट ज्ञानी और (तनूकृत्) समस्त प्राणियों, पृथिवी आदि तत्वों के रूपों को रचने हारा होकर (कारवे) कर्त्ता जीव को (बोधि) ज्ञान प्रदान कर। हे (कल्याण) मंगलमय ! (त्वं) तू ही (कारवे) इस कर्त्ता जीव के सुख के लिए (विश्वं वसु) समस्त प्रकार के ऐश्वर्य (आ ऊपिषे) सर्वत्र उत्पन्न करता है।

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य १०।३३

भा०—हे (अग्ने) आचार्य ! परमेश्वर ! राजन् ! (त्वम्) तू (नः) हमारा (पिता असि) पिता के समान उत्पादक और पालक है। (त्वं नः वयः कृत्) तू हममें जीवन, बल और ज्ञान का देने वाला है। (वयम्) हम सब (तव) तेरे (जामयः) बन्धु या सन्तान के समान हैं। हे (अदाभ्य) प्रतिप्रशंसनीय ! सदा आदरणीय ! (शतिनः) सैकड़ों और (सहस्रिणः) हजारों विद्या, कर्म सुख आदि से युक्त (रायः) ऐश्वर्य (व्रतपाम् त्वा) व्रतों के पालक, तुझको (यन्ति) प्राप्त हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मम॒ायुम॒ायवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न्नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म्।
इळा॑मकृण्व॒न्मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत्पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (देवः) दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि और विद्वान् जन (प्रथमम्) आदि में विद्यमान (त्वाम्) तुझको ही (नहुषस्य) कर्म-बन्धनों में बंधने वाले जीवगण के (आयवे) इस लोक में आने ज्ञान प्राप्त करने और जीवन सुख से व्यतीत करने के लिए (विश्पतिम्) प्रजापालक राजा के समान (अकृण्वन्) बतलाते हैं और वे ही (इलाम्) स्तुति योग्य वेदविद्या को ही (मनुषस्य) मननशील का (शासनीय) शासन करने वाली (अकृण्वन्) बतलाते हैं। (यत्) जैसे (पुत्रः) पुत्र (पितुः) उत्पादक पिता का होता है वैसे ही (ममकस्य) मननशील ज्ञानवान् पुरुष का शिष्य पुत्र के समान ही (जायते) होता है।

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! राजन् ! सभाध्यक्ष ! हे (देव) सुख के देने हारे ! (त्वं) तू (मघोनः) ऐश्वर्य से युक्त (नः) हम प्रजाजनों की और (नः तन्वः च) हमारे शरीरों और (तोकस्य) हमारे सन्तानों के (तन्वः च) शरीरों की अपने (पायुभिः) पालनकारी साधनों से (रक्ष)

रक्षा कर। तू (तनये) हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तति के निमित्त (तव व्रते) अपने नियम शासन व्यवस्था में (अनिमेषं) बिना किसी प्रमाद के, निरन्तर (रक्षमाणः) उनके प्राणों की रक्षा करता हुआ भी उनकी (गवाम्) गौ आदि पशुओं और चक्षु आदि इन्द्रियों का (त्राता असि) पालक है।

त्वम॑ग्ने यज्यवे॑ पा॒युरन्त॑रोऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे।
यो रा॒तह॑व्योऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न्मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम्॥१३॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! (त्वम्) तू (यज्यवे) यज्ञशील, भक्तजन का (पायुः) रक्षक है। तू (अन्तरः) अन्तर्यामी होकर (अनिषङ्गाय) निःसंग और (चतुरक्षः) चार आंखों वाला अति सावधान होकर (इध्यसे) हृदय में प्रकाशित होता है और (यः) जो तू (अवृकाय) वृक के समान हिंसक न होकर रहने वाले और (धायसे) सबके पालन करने वाले पुरुष को (रातहव्यः) ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह तू (कीरेः चित्) अपनी स्तुति करने हारे भक्त के (तम्) उस नाना प्रकार के (मनसा मन्त्रम्) मन से विचारित मन्त्र या मनन संकल्प को भी (वनोषि) स्वीकार करता है।

त्वम॑ग्न उरु॒शंसा॑य वा॒घते॑ स्पा॒र्हं यद्रेक्णः॑ पर॒मं व॒नोषि॒ तत्।
आ॒ध्रस्य॑ चि॒त्प्रम॑तिरुच्यसे पि॒ता प्र पाकं॒ शास्सि॒ प्रदिशो॑ वि॒दुष्ट॑रः॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! राजन्! विद्वन्! सभाध्यक्ष! (त्वम्) तू (यत्) जब (उरुशंसाय) अति स्तुतिशील एवं विद्वान् (वाघते) वाणी से स्तुति करने वाले और वाणी द्वारा ज्ञान देने वाले विद्वान् को (तत्) नाना प्रकार का वह (परमम्) सर्वश्रेष्ठ (स्पार्हम्) चाहने योग्य, (रेक्णः) धनैश्वर्य (वनोषि) प्रदान करता है तब तू (प्रमतिः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (आध्रस्य चित्) सब प्रकार से धारण योग्य राष्ट्र या दुर्लभ दीन प्रजाजन का भी (पिता उच्यसे) पिता ही कहाता है

और तभी (पाकं) परिपक्क ज्ञान का (प्र शास्सि) भली प्रकार उपदेश करता है और तू (विदुस्तरः) सब विद्वानों में श्रेष्ठ होकर (दिशः प्र शास्सि) प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्या के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है।

त्वम॑ग्ने प्रय॑तदक्षिणं नरं॒ वर्मे॑व स्यू॒तं परि॑ पासि वि॒श्वतः॑।
स्वा॒दु॒क्षद्मा॒ यो व॑स॒तौ स्यो॑न॒कृज्जी॑वया॒जं यज॑ते॒ सोप॒मा दि॒वः १५।३४

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! विद्वान् जैसे (प्रयतदक्षिणम्) दान दक्षिणा देने वाले धार्मिक पुरुष की रक्षा करता है और (स्यूतं वर्म इव नरं) दृढ़ता से सीया हुआ कवच युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है वैसे ही तू (प्रयतदक्षिणं) अपनी समस्त चित्तवृत्ति, क्रियाशक्ति और वीर्य को अच्छी प्रकार नियम में रखने वाले (नरं) साधक पुरुष की (विश्वतः) सब प्रकार से (परि पासि) रक्षा करता है और (यः) जो पुरुष (वसतौ) अपने निवास योग्य गृह या देह में (स्वादुक्षद्मा) उत्तम स्वादयुक्त, पुष्टिकारक जल, अन्न खाता और (स्योनकृत्) अपने आपको सुखी रखता हुआ (जीवयाजं यजते) प्राण धारण करने निमित्त आजीवन ज्ञान करता है (सः) वह (दिवः) सूर्य के समान सुखप्रद (उपमा) जाना जाता है। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः।

इ॒माम॑ग्ने श॒रणिं॑ मीमृषो न इ॒मम॑ध्वा॑नं॒ यमगा॑म दू॒रात्।
आ॒पिः पि॒ता प्रम॑तिः सो॒म्याना॒ं भमि॑रस्यृषि॒कृन्मर्त्या॑नाम् ॥१६॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! विद्वन्! तू (नः) हमारा (शरणिम्) नाश करने वाली (इमाम्) इस वर्त्तमान (शरणिम्) अविद्या को या हिंसा को (मीमृषः) दूर कर। (यम्) जिस तेरे पास हम (दूरात्) इतने दूर से भी (इमम् अध्वानम्) इतना लम्बा मार्ग चल कर (अगाम) तुझे प्राप्त हुए हैं वह तू (सोम्यानाम्) पुरुषों में भी (प्रमतिः) सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला, (पिता) पालक और (आपिः) सदा आप्त, बन्धु

है। तू ही (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के हित के लिये (भृमिः) सूर्य के समान सर्वत्र व्यापक या सत्यासत्य के विवेचक तर्कों, युक्ति, प्रमाणों का उपदेष्टा (असि) है। (सोम्यानां) वीर्य-रक्षक पुरुषों का (भूमिः) पालक और मनुष्यों में (ऋषिकृत्) ज्ञानी, ऋषियों और शरीर में इन्द्रियों, प्राणों का उत्पादक और बलकारक है।

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे (अङ्गिरः) सूर्य के समान प्रकाशवाले! वायु के समान समस्त संसार के अंग २ में व्यापक! हे (शुचे) परम पावन! तू (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त होकर (अङ्गिरस्वत्) बलवान् पुरुषों से युक्त होकर (ययातिवत्) विद्याओं के पार और संग्राम में बढ़ने वाले वीर पुरुषों से युक्त होकर और (पूर्ववत्) अपने से पूर्व विद्यमान गुरु, माता, पिता और पूज्य पुरुषों से युक्त होकर (सदने) राजसभा या मुख्य पद पर (अच्छ याहि) हमें प्राप्त हो। तू (दैव्यं जनम्) विद्वानों और राजाओं के हितकारी पुरुषों को (आ वह) प्राप्त कर और (प्रियम्) सबके प्रिय पुरुष को (बर्हिषि) आसन पर प्रजाजन के ऊपर शासन के लिये स्थापन कर और उसको (यक्षि च) उचित वेतन आदि दे।

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या १८।३५

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू (एतेन) इस (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान, ब्रह्म अर्थात् संचालक बल और ब्राह्म बल से (वावृधस्व) बढ़। हम (यत्) जो कुछ भी (ते) तेरे निमित्त (शक्ती) शक्ति से और (विदा वा) ज्ञान से (चकृम) करें तू (उत) तो (अस्मान्) हमें (वास्यः) उत्तम धन ऐश्वर्य (प्र नेषि) प्राप्त करा और (नः) हमें

(सुमत्या) उत्तम मति, बुद्धि (वाजवत्या) ज्ञान और ऐश्वर्य से (सृज) युक्त कर । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[३२] हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुभः । १,३, ५, ७ विराट् । २, ४, ८, ९, १०, ११, १३, १५ निचृद् । पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥

भा०—मैं (इन्द्रस्य) सूर्य के समान तेजस्वी, पराक्रमी, वायु के समान बलवान्, राजा और सेनापति के (वीर्याणि) बलयुक्त उन कर्मों का (प्र वोचम्) उपदेश करता हूँ (यानि) जिन (प्रथमानि) अति उत्तम बल के कार्यों को (वज्री) छेदन भेदन करने में कुशल वह (चकार) करता है । [१] (अहिम् अहन्) जैसे सूर्य या वायु मेघ को प्रकाश और प्रबल वेग से आघात करता है वैसे ही (अहिम्) जीता न छोड़ने योग्य, शत्रु को राजा भी प्रताप और पराक्रम से (अहन्) आघात करता है । (अपः अनु ततर्द) जैसे सूर्य और वायु मेघ पर आघात करके तदनन्तर उसमें से जलों को नीचे गिराता है वैसे ही पराक्रमी राजा भी शत्रु सेनाओं को (अनुततर्द) बार बार पीड़ित करता है और (इन्द्रः) विद्युत् और वायु जैसे (पर्वतानाम्) पर्वतों और मेघों की (वक्षणाः) कोखों और तटों को विदीर्ण करता है और उनमें से (वक्षणाः अभिनत्) नदियों और जल-धाराओं को बहा देता है वैसे ही राजा भी (पर्वतानाम्) पर्वत के समान अचल, दृढ़, शत्रु राजाओं के (वक्षणः) कोखों या पार्श्व के दृढ़ रक्षा स्थानों को (अभिनत्) तोड़ डाले और (वक्षणाः अभिनत्) शत्रु सेना के प्रवाहों को छिन्न भिन्न कर दे ।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२॥

भा०—(पर्वते) पर्वत पर या मेघमण्डल में (शिश्रियाणम्)

आश्रय लेने वाले (अहिम्) मेघ को जैसे (त्वष्टा) कान्तिमान् सूर्य या वायु (अहन्) आघात करता है और (अस्मै) राजा के लिये (त्वष्टा) शिल्पी जैसे शस्त्र बनाता है वैसे ही वायु (स्वर्यं) घोर गर्जना करने और अतितापदायी (वज्रं) विद्युत रूप वज्र को (ततक्ष) उत्पन्न करता है। वैसे ही विजयशील राजा (पर्वते) पालन करने में समर्थ पर्वत या बड़े राजा के (शिश्रियाणं) आश्रय पर रहने वाले अपने, न जीता छोड़ने योग्य, वध्य शत्रु को (अहन्) मारे और (त्वष्टा) कारीगर शिल्पी (अस्मै) उसके मारने लिये (स्वर्यं) गर्जनाकारी, अतिताप या अग्नि से चलने योग्य (वज्रं) शस्त्र को (ततक्ष) बनावे । (आपः) और जैसे (धेनवः) दुधार गौएं (स्यन्दमानाः) दूध की धाराएं प्रेमवश बहाती हुई अपने बछड़े के पास वेग से जाती है वैसे ही (आपः) जलधाराएं भी (अञ्जः) प्रकट रूप में, अति शीघ्र (स्यन्दमानाः) बहती हुई (समुद्रम्) अन्तरिक्ष और समुद्र को (अवजग्मुः) पहुँच जाती हैं । और वैसे ही (आपः) प्रजाएं (अञ्जः) शीघ्र ही प्रेम से वशीभृत (स्यन्दमानाः) अतिद्रवीभूत होकर (समुद्रम् अव जग्मुः) समुद्र के समान गम्भीर राजा के पास आवें ।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—(वृषायमाणः) वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ जैसे गौओं में वीर्य सेचन करता है, वैसे ही भूमियों को सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान आचरण करने वाला सूर्य (त्रिकद्रुकेषु) तीनों लोकों में (सुतस्य) उत्पन्न जगत् के (सोमं) अंश को (अवृणीत) प्राप्त करता और (अपिबत्) पान कर लेता है, और (मघवा) जल और तेज से पूर्ण सूर्य (सायकम्) मेघ का अन्त कर देने वाले (वज्रं) विद्युत् रूप तेजोमय वज्र को (आदत्त) लेता है और (अहीनां प्रथमजाम्) मेघों में सबसे

प्रथम उत्पन्न महा मेघ को (अहन्) आघात करता है वैसे ही विजयेच्छु राजा (वृषायमाणः) बरसते मेघ के समान, शस्त्र वर्षण में कुशल होकर (त्रिकद्रुकेषु) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, प्राप्ति, पालन और शत्रुनाश इन तीनों कार्यों के निमित्त अथवा सेना, राष्ट्र और प्रजा इन तीनों के आधार पर (सोमं) राष्ट्र को स्वीकार करे और (अपिबत्) उसका भोग करे। वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् होकर (सायकं वज्रम्) शत्रु के वर्जन करने में समर्थ विद्युत के समान तेजस्वी (सायकं) बाण आदि अस्त्र को (आदत्त) ले और (अहीनाम्) अत्याज्य, अवश्य बध करने योग्य शत्रुओं में से भी सबसे (प्रथमजाम्) प्रथम कोटि में दीखने वाले शत्रु को (अहन्) मारे।

यदिन्द्राहंन्प्रथम॒जामहीं॑ना॒मान्मा॒यिना॒ममि॑ना॒: प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं॑ ज॒नय॒न्द्यामु॒षासं॑ ता॒दीत्ना॒ शत्रुं॒ न किला॑ विवित्से ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सूर्य के समान तेजस्विन्! राजन्! जिस प्रकार (प्रथमजाम् अहीनाम्) मुख्य प्रबल मेघ वा अन्धकार को नाश करके वायु (सूर्यं द्याम् उषासम्) सूर्य को उषा-काल और आकाश को प्रकट करता है और समस्त मायावी रात्रिचरों की (मायाः) हिंसाकारी चेष्टाओं का नाश करता है। इसी प्रकार तू भी (अहीनाम्) अवश्य बध करने योग्य शत्रुओं में से (प्रथमजाम्) सबसे प्रबलतम शत्रु को (अहन्) मारे (उत) तब (मायिनाम्) मायावी कुटिलाचारी लोगों की (मायः) छल कपट आदि कुहक आचरणों का (प्र अमिनाः) अच्छी प्रकार नाश कर और उसके अनन्तर (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी (द्याम्) आकाश के समान विस्तृत और (उषासम्) उषःकाल के समान तमोनाशक अपने स्वरूप को (जनयन्) प्रकट कर और (तादीत्ना) तभी तू अपने राष्ट्र में (किल) निश्चय से (शत्रुम्) शत्रु को भी (न) नहीं (विवित्से) प्राप्त कर सकेगा।

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥३६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य और तीव्र वायु जिस प्रकार (व्यंस) नाना कन्धों के समान उठे शिखरों वाले, (वृत्रम्) आकाश को घेर लेने वाले मेघ को (महता वज्रेण) बड़े भारी वज्र, विद्युत् से (अहन्) आघात करता है और वह (अहिः) मेघ (पृथिव्याः उपपृक् शयते) पृथिवी के ऊपर पानी के रूप में गिर पड़ता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (व्यंसम्) नाना सेनास्कन्धों या स्कन्धवारों या विविध सेनांगों से युक्त (वृत्रतरम्) बल और ऐश्वर्य में बहुत अधिक बढ़ने वाले शत्रु को भी (महता वधेन) बड़े हिंसाकारी शस्त्रसमूह से (अहन्) आघात कर मारे। (कुलिशेन) कुठार से जिस प्रकार वृक्ष की डालों को काट दिया जाता है उसी प्रकार (कुलिशेन) तीक्ष्ण खड्ग से (स्कन्धांसि) शत्रु के कन्धे और सेना को—स्कन्ध और अंग (विवृक्णा) विशेष रूप से काट दिये जायं जिससे (अहिः) अवश्य वध योग्य शत्रु (पृथिव्याः) पृथिवी के (उपसृक्) ऊपर पड़ा (शयत) सदा के लिए सोये।

'वृत्रं'—वृत्रो वृणोतेर्वा, वर्त्ततेर्वा, वर्धतेर्वा, यदवृणोत्। तद् वृत्रस्य वृत्रत्वं यद्वर्त्तते तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते। यदवर्धत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते। निरु० २। १७ ॥ इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६॥

भा०—(दुर्मदः) बुरे, पापमय मद, भोग विलास से तृप्त होने वाला व्यसनी, एवं अपनी प्रजा पर अत्याचार और अन्याय के उपायों से अपने भोग विलास पूर्ण करने वाला पुरुष (महावीरम्) बड़े वीर, (तुविबाधम्) अनेकों शत्रुओं को पीड़न करने में समर्थ, (ऋजीषम्) उत्तम गुणों, उत्तम ऐश्वर्यों के अर्जन करने वाले अथवा (ऋजीषम्) ऋजु,

सरल मार्ग पर जाने वाले धर्मात्मा, नीतिमान्, संग्रहशील पुरुष को (अयोद्धा इव) लड़ना न जानने वाले अकुशल योद्धा के समान (आजुहे) युद्ध में ललकार ले। (हि) तो वह दुर्व्यसनी पुरुष (अस्य) इस महावीर धर्मात्मा पुरुष के (वधानां) शस्त्रास्त्रों के (सम् ऋतिम्) एक साथ आने वाले प्रहार को (न अतारीत्) पार नहीं कर सकता। (इन्द्रशत्रुः) सूर्य या वायु का शत्रु मेघ जिस प्रकार वज्र से ताड़ित होकर (रुजानाः) नदियों को और उनके तटों को (सं पिपिषे) तोड़ फोड़ देता है और नदियां विक्षुब्ध होकर भागती हैं उसी प्रकार (इन्द्र-शत्रुः) ऐश्वर्यवान् धर्मात्मा राजा का वह शत्रु दुर्व्यसनी, विरोध भी (रुजानाः) अपनी अति पीड़ित सेनाओं प्रजाओं को (सं पिपिषे) पीस डालता है।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७॥

भा०—यदि (अपाद्) बे पांव का, लङ्गड़े के समान निराश्रय, (अहस्तः) बे हाथों का, लूला, निःशस्त्र होकर कोई दुर्मद पुरुष (इन्द्रम्) धार्मिक राजा के विरुद्ध (अपृतन्यत्) सेना सहित युद्ध करे तो (अस्य) इस धार्मिक राजा का (वज्रम्) सेनाबल पराक्रम उसको (सानौ अधि) मेघ को जैसे वायु या तीव्र विद्युत् मेघ के उठे कन्धों पर वज्र आघात करता है वैसे ही (सानौ) उसके कन्धों या अवयव पर (आ जघान) सब तरफ से उसे प्रहार करता है और (वध्रिः) जैसे बधिया, नपुंसक बैल (वृष्णा प्रतिमानं) खूब बलवान् सांड के मुकाबले पर आकर (पुरुत्रा) जगह-जगह (वि-अस्तः) विविध प्रकार से पटका जाकर (अशयत्) लोट पोट हो जाता है वैसे ही वह (वध्रिः) नपुंशक बैल के समान निर्बल पुरुष भी (वृष्णः) सांड के समान बलवान् राजा के (प्रतिमानं) मुकाबले पर आना (बुभूषन्) चाहता हुआ (पुरुत्रा) बहुत से स्थलों पर (वि अस्तः) विविध प्रकार से पछाड़ खाकर (वृत्रः) बिजली की मार

खाये हुए मेघ के समान (अशयत्) भूमि पर आ पड़ता है ।

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥८॥

भा०—(आपः) जलधाराएं जैसे (मनः रुहाणाः) प्रजाओं के चित् पर चढ़ीं, अति चित्ताकर्षक होकर (अमुया) इस पृथ्वी के साथ (शयानम्) सोये हुए प्रशान्त (भिन्नं नदं) टूटे तट वाले महानद को (अतियन्ति) उसके तट तोड़कर उससे जा मिलती हैं। वैसे ही (आपः) सेनाएं भी (मनः रुहाणाः) मनोरथ पर चढ़ी हुई (अमुया शयानं) इस पृथ्वी के ऊपर सोते हुए (भिन्नं नदं न) टूटे फूटे देह को रण में छोड़कर भाग जाती हैं और (चित्) जैसे (वृत्रः) मेघ (याः) जिन जलधाराओं को (महिना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (परि अतिष्ठत्) थामे रहता है, (तासाम् अहिः) उनका धारण करने वाला मेघ वज्र से ताड़ित होकर (पत्सुतः शीः) पांवों तले (बभूव) आ पड़ता है, वैसे ही (वृत्रः) वर्द्धमान शत्रु (महिना) बढ़े हुए सामर्थ्य से (याः चित्) जिन सेनाओं के ऊपर (परि अतिष्ठत्) सेनापति शासक रूप से रहता है (तासाम् अहिः) उनका ही वह अत्याज्य स्वामी (पत्सुतःशीः) युद्ध में पछाड़ खाकर पांवों तले रोंदा (बभूव) जाता है ।

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जैसे (अस्याः) इस अन्तरिक्ष रूप मेघ की उत्पादक भूमि पर (वधः) अपने आघातकारी विद्युत् आदि का (अव जभार) प्रहार करता है जब (वृत्रपुत्रा) अन्तरिक्ष को ढांप लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाली अन्तरिक्ष भूमि भी (नीचा वयाः) जल को नीचे गिरा देती है। तब (उत्तरासूः) ऊपर की अन्तरिक्ष रूप माता तो ऊपर रहती है और (पुत्रः) उसका पुत्र मेघ (अधरः आसीत्) नीचे

आ पड़ता है। तब (सहवत्सा न धेनुः) बछड़े सहित गाय के समान (दानुः) वह खण्डित वृत्र, माता के नीचे ही (शये) पड़ा रहता है। ऐसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा (अस्याः) इस पृथिवी के ऊपर अपना (वधः अव जभार) शस्त्र प्रहार करता है और (वृत्रपुत्रा) बढ़ते शत्रु को अपने पुत्र के समान गोद या बीच में लिए सेना भी (नीचावया: अभवत्) बलहीन हो जाती है। उस समय (सूः) उस सेनापति को अभिषेक करने वाली सेना तो (उत्तरा) उठी खड़ी रहती है और (पुत्रः) उसका पुत्र के समान प्रिय सेनापति (अधरः आसीत्) नीचे गिरा होता है। उस समय (दानुः) वह सेना खण्डित बल होकर (सहवत्सा धेनुः न) बछड़े सहित गाय के समान (शये) खड़ी रहती है।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥२७॥

भा०—(वृत्रस्य) सूर्य को ढक लेने वाले मेघ का (शरीरम्) शरीर (अतिष्ठन्तीनां) अस्थिर, (अनिवेशनानां) निराश्रय (काष्ठानां) वाष्परूप जलों के (मध्ये) बीच में (निण्यम्) अप्रत्यक्ष रूप से (निहितम्) रक्खा रहता है। जब (आपः विचरन्ति) जलधाराएं विवधि रूप से बह जाती हैं तब (इन्द्रशत्रुः) बिजली से पछाड़ खाया हुआ मेघ (दीर्घंतमः) विस्तृत, गिरे जल के रूप में (आशयत्) आ गिरता है। ठीक ऐसे ही जब (वृत्रस्य) घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु का (शरीरम्) शरीर भी (अतिष्ठन्तीनाम्) कहीं भी आसन वृत्ति से स्थिर न होने वाली और (अनिवेशनानां) कहीं भी निवेश, या छावनी बनाकर न बैठने वाली, (काष्ठानां) क्षुद्र स्थिति वाली सेनाओं के (मध्ये) बीच में (निण्यम्) मृत रूप से बेनाम-निशान होकर (निहितम्) गिर पड़ता है तब (आपः) सेनाएं भी जलधाराओं के समान (विचरन्ति) विविध दिशाओं में भग जाती हैं और (इन्द्रशत्रुः) शत्रुहन्ता राजा के द्वारा आघात खाया हुआ

शत्रु (दीर्घतमः) गहरे अन्धकार, मरण में (आशयत्) पड़ा रह जाता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

दासपत्नीरहिंगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥

भा०—(पणिनः इव) जैसे वणिक् जनों, या पशुओं के व्यापारी से (निरुद्धाः) रोकी हुई (गावः) गौएं (अतिष्ठन्) निश्चेष्ट खड़ी रहती हैं और जैसे (अहिगोपाः) मेघ में सुरक्षित (अपः) जल धाराएं अन्तरिक्ष में रुकी खड़ी रहती हैं, नीचे नहीं गिरतीं, वैसे ही (दासपत्नीः) रक्षा के देने वाले राजा या सेनापति को अपना पति-पालक मानने वाली, (अहि-गोपाः) आक्रामक शत्रु द्वारा सुरक्षित रहकर (आपः) सेनाएं (अतिष्ठन्) युद्ध में स्थिर भाव से रुकी खड़ी रहती हैं और (यत्) जो (अपां बिलम्) जलों के रहने का अवकाश (अपिहितम्) ढका रहता (आसीत्) है (तत्) उसको (वृत्रं) बहने से वारण करने वाले कारण को (जघन्वान्) आघात करने वाला विद्युत् और वायु (अप ववार) दूर कर देता है। वैसे ही (अपां यत् बिलम्) सेना का जो भरण करने वाला साधन (अपिहितं आसीत्) ढका हुआ सुरक्षित रूप से होता है (तत् वृत्रम्) उस शत्रु को (जघन्वान्) प्रबल हन्ता राजा (अपववार) मार कर दूर कर देता है।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (यत्) जब (देवः) विजय करने की इच्छा वाला शत्रु (एकः) अकेला ही (त्वा प्रति) तेरे प्रति (अहन्) आघात करता है (तत्) तब तू भी (अश्व्यः) अश्वारोही सेना में कुशल होकर (सृके) शस्त्रबल, वज्र के आश्रय पर ही (वारः) सेना द्वारा वरण करने और शत्रु को वारण करने में समर्थ (अभवः) होता है और (एकः) तू

अकेला (गाः) शत्रु के गौ आदि पशुओं तथा शत्रु की भूमियों को भी (अजयः) विजय कर। हे (शूर) शूरवीर ! तू ही (सप्त सिन्धून्) तीव्र वेग से जाने वाले सेना समूहों को (सर्तवे) चलाने के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य को (अव सृजः) प्रदान करता है।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

भा०—(यत्) जब (इन्द्रः च) सूर्य और (अहिः च) मेघ दोनों (युयुधाते) युद्ध करते हैं। तब (अस्मै) इस सूर्य तक (न विद्युत्) न बिजली और (न तन्यतुः) न गर्जना ही (सिषेध) पहुँचती है। (याम् मिहम्) जिस जल वृष्टि और (ह्रादुनिं च) अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत् को भी मेघ (अकिरत्) चारों ओर फेंकता है वह भी सूर्य तक नहीं पहुँचती। (उत) और (अपरीभ्यः) इन सब अपूर्ण चेष्टाओं पर (मघवा) प्रकाशमान सूर्य (वि जिग्ये) विशेष रूप से जय पाता है। ऐसे ही (यत्) जब (इन्द्रः) राजा और (अहिः च) आक्रमणकारी शत्रु दोनों (युयुधाते) युद्ध करते हैं तब (याम्) जिस (मिहम्) जलवृद्धि के समान फेंकी शरवृष्टि को और (ह्रादुनिं च) गर्जना करने वाले महास्त्र शतघ्नी को भी (अकिरत्) वह फेंकता है तब (न विद्युत्) न वह बिजली के शस्त्र और (न तन्यतुः) न वह गर्जनाकारी शस्त्रास्त्र (अस्मै सिषेध) उस तक पहुँचते हैं। (उत) बल्कि (मघवा) ऐश्वर्यों का स्वामी वह (अपरीभ्यः) शक्ति से युक्त शत्रु सेनाओं को (वि जिग्ये) विशेष रूप से जीत लेता है।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (यत्) यदि (जघ्नुषः ते) शत्रु पर प्रहार करते हुए तुझे (भीः) भय (आगच्छत्) व्याप जाय तो (अहेः) मेघ के समान शत्रु पर (यातारम्) आक्रमण करने वाले (कम्)

किसको तू (अपश्यः) देखता है ? (श्येनः न) जैसे बाज (भीतः) डरकर (नव च नवतिं च) निन्यानवे अर्थात् असंख्य (स्रवन्तीः) नदियों को, (रजांसि) अनेक लोकों को (अतरः) पार कर जाता है वैसे ही यदि तू भय करे तो तू भी सैकड़ों नदियों और जनपदों को छोड़ भागे ।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी (वज्रबाहुः) वज्र या शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में किये (राजा) राजा (यातः) शत्रु पर आक्रमण करके सफल होकर (अवसितस्य) युद्ध समाप्त कर देने वाले पराजित दल का, (शमस्य) शान्तियुक्त तपस्वी जनों का और (शृंगिणः) हिंसाकारी सेनादल का (च) भी (राजा) स्वामी होकर रहता है । (सः इत्) और वह ही (चर्षणीनाम्) प्रजाओं के बीच (राजा क्षयति) राजा होकर रहता है । (अरान् नेमिः न) चक्र के अरों पर जैसे लोहे का हाल चढ़ा रहता है वैसे ही वह राजा भी (ताः परि बभूव) उन समस्त प्रजाओं को चारों ओर से घेरे रहता है । उन पर वश किये रहता है ।

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोध्यायः ॥

[३३] हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता । छन्दः—शेषाः त्रिष्टुभः । १, २, ४, ७, ८, ९, १२, १३ निचृद् । ५, ११ विराट् । १४, १५ एकोना विराट । पन्चदशर्चं सूक्तम् ॥

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (आ इत) आओ । (गव्यन्तः) हम उत्तम स्तुतियों की कामना करते हुए (इन्द्रम्) परमेश्वर की (अयाम्)

शरण को प्राप्त हों। वह (अस्माकं) हमारे (प्रमतिम्) उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान को (सु वावृधाति) अच्छी प्रकार बढ़ावे। उसका (अनामृणाः) कोई भी मारने वाला नहीं। (आत्) और (अस्य) इस (रायः) ऐश्वर्य (गवां) वेदवाणियों और इन्द्रियों के (परं) सर्वोच्च (केतम्) ज्ञान को (कुवित्) बहुत बार (नः) हमें (आ वर्जते) प्रदान करता है।

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२॥

भा०—(श्येनः) बाज पक्षी (न) जैसे अपने (जुष्टाम्) प्रिय (वसतिं) निवासस्थान को जाता है मैं वैसे ही (धनदाम्) ऐश्वर्य के दाता (अप्रतीतम्) चक्षु आदि इन्द्रियों से न दीखने वाले, (इन्द्रम्) उस प्रभु को (उपमेभिः) उसके गुणों का बहुत अधिक ज्ञान कराने वाले, (अर्कैः) स्तुति वचनों से (नमस्यन्) प्रभु की वन्दना करता हुआ (पतामि) उस प्रभु को प्राप्त होऊं (यः) जो (यामन्) प्रति प्रहर (स्तोतृभ्यः) गुण स्तुति करने वाले भक्तों के (हव्यः अस्ति) सदा स्मरण और स्तुति करने योग्य होता है।

नि सर्वसेन इषुधीरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३॥

भा०—(सर्वसेनः) समस्त सेनाओं का स्वामी राजा जब (इषुधीन्) वाणों से भरे तर्कसों को (नि असक्त) बांध लेता है तब (अर्यः) प्रजाओं का स्वामी (यस्य) जिसका भी (वष्टि) चाहता है उसकी (गाः) भूमियों और गौ आदि पशुओं को (सम् अजति) खदेड़ ला सकता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् हे (प्रवृद्ध) शक्ति में बढ़े हुए! तू (महि) बहुत अधिक (वामम्) भोगने योग्य धन को (चोष्कूयमाणः) देने वाला होकर (अस्मत्) हमारे लिये (पणिः) वैश्य के समान बदले में कुछ चाहने वाला (मा भूः) मत हो।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन् ! (उपशाकेभिः) शक्ति-शाली सहायकों सहित (एकः) अकेला (चरन्) विचरता हुआ भी तू (घनेन) कठिन शस्त्र से (दस्युम्) अन्यों को नाश करने वाले चोर डाकू के समान पीड़ाकारी (धनिनम्) धनैश्वर्य युक्त पुरुष को भी (हि) अवश्य (वधीः) विनाश कर और तू (विषुणक्) प्रजा में अधर्म से घुस कर रहने वाले पुरुषों का विनाशक होकर (ते) तेरे (धनोः अधिः) धनुष के ऊपर (अयज्वानः) अयज्ञशील, परस्पर द्रोही अथवा राजा को कर न देने वाले, (सनकाः) क्षुद्र भोगी पुरुष, दरिद्र (वि आयन्) विविध रूप से भी आक्रमण करें तो वे (प्रेतिम्) मरण को (ईयुः) प्राप्त हों।

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥५॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (यज्वभिः) ईश्वरोपासकों से (स्पर्धमानाः) स्पर्धा करने वाले, (अयज्वानः) अधार्मिक पुरुष सदा (ते) तुझसे (शीर्षा) अपने सिर (पराचित् ववृजुः) अवश्य परे फेर लेते हैं । हे (हरिवः) वीर पुरुषों की सेनाओं के स्वामिन् ! हे (स्थातः) युद्ध में स्थिर रहने वाले ! तू (दिवः) आकाश से जैसे वायु मेघों को उड़ा देता है वैसे ही हे (उग्र) शत्रुओं को कंपाने हारे ! तू (रोदस्योः) पृथिवी और आकाश दोनों में से (अव्रतान्) व्रत या प्रतिज्ञा के पालन न करनेवाले शत्रुओं को (निर् अधमः) सर्वथा उड़ा दे, कठोर आज्ञा से दण्डित कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६॥

भा०—जब (नवग्वाः) नवशिक्षित, नई भूमि को प्राप्त, या युद्ध गति को सीखने वाले (क्षितयः) भूमि निवासी लोग (अनवद्यस्य)

दोषरहित, धार्मिक राजा की सेना से (अयुयुत्सन्) युद्ध करना चाहते हैं और वे (अयातयन्त) प्रयत्न करते या प्रयाण करते हैं और तब (वृषायुधः) बलवान् से लड़ने वाले (वध्रयः न) बलहीन पुरुषों के समान (निरष्टाः) परास्त होकर (इन्द्रात्) ऐश्वर्यवान् राजा से (चितयन्तः) भय खाते हुए (प्रवद्भिः) नीचे उतरने वाले, मार्गों से जलधाराओं के समान (आयन्) बह निकलते हैं, भाग जाते हैं।

त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) राज्य के स्वामिन्! (त्वम्) तू (एतान्) इन (रुदतः) रोते हुए और (जक्षतः च) खाते पीते और भोगी विलासी पुरुषों को (रजसः) लोकों से (पारे) परे पृथक् करके (अयोधयः) उनसे युद्ध कर और (दस्युम्) प्रजा के नाशक पुरुष को (दिवः) अपने प्रखर तेज से (अव अदहः) सूर्य के समान जला दे। और (सुन्वतः) राज्याभिषेक करने वाले एवं (स्तुवतः) तेरी स्वामी रूप से गुण स्तुति करते और प्रस्ताव करने वाले विद्वान् गण के (शंसम्) उपदेश को (आवः) ध्यान में रख, उसकी रक्षा कर।

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥८॥

भा०—(पृथिव्याः) पृथिवी लोक, उसमें रहने वाले प्रजाजनों के (परीणहं) ऊपर शासन प्रबन्ध को (चक्राणासः) करने वाले और (हिरण्येन मणिना) सुवर्ण के बने मणि के समान हितकारी शिरोमणि नायक से (शुम्भमानाः) शोभा को प्राप्त होकर (हिन्वानासः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (स्पशः) वीर पुरुष भी (इन्द्रम्) राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी को (न तितिरुः) नहीं लांघते। वह (स्पशः) बाधक शत्रुओं, अपने तक

पहुँचाने वाले जनों एवं सत्यासत्य के विवेचक पुरुषों के भी (परि) ऊपर (सूर्येण) सूर्य के समान तेज से (अदधात्) शासन करता है।

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! जैसे सूर्य (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों का अपने महान् सामर्थ्य से भोग या पालन करता है वैसे ही जब तू (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (विश्वतः) सब प्रकार से (सीम्) सुखपूर्वक (अबुभोजीः) भोगता और पालता है तब हे (इन्द्र) विद्वन्! तू (अमन्यमानान्) ज्ञानरहित पुरुषों को (मन्यमानैः) ज्ञान करने वाले विद्वान् (ब्रह्मभिः) वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा (अभि अधमः) सब प्रकार से उपदेश कर और (दस्युम्) प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष को (ब्रह्मभिः) अपने बड़े शस्त्रों से (निर् अधमः) नीचे गिरा।

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन्।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥

भा०—मेघ जैसे (दिवः पृथिव्याः अन्तम् आयुः) आकाश और पृथिवी दोनों के ही सीमा तक नहीं पहुँचते और (मायाभिः धनदां न परि अभूवन्) गर्जना, अन्धकार आदि चमत्कार चेष्टाओं से भी धन और अन्न की देने वाली पृथिवी को या तेजप्रद सूर्य को नहीं ढांप सकते। उनको (वृषभः) वर्षणशील (इन्द्रः) सूर्य (युजं वज्रं चक्रे) अपने सहायक वज्ररूप वायु, या विद्युत् का प्रयोग करता है और (ज्योतिषा) अपने तीव्र तेज से (तमसः) अन्धकारमय गहरे मेघ से (गाः) वेग से जाने वाली जलधाराओं को (निर् अधुक्षत्) सब तरह से गौओं को गवाले के समान दूह लेता है, उनको जलरहित कर देता है। उसी प्रकार (ये) जो दुष्ट पुरुष (दिवः) न्याय, बल, पराक्रम, तेज और (पृथिव्याः) पृथिवी के

आसनोपयोगी (अन्तम्) सीमा या मर्यादा को (न आपुः) नहीं प्राप्त कर सकते, नहीं पालन करते और जो (मायाभिः) अपनी कुटिल बुद्धियों, कपट छल से भरी चेष्टाओं से (धनदाम्) ऐश्वर्य प्रदान करने वाली पृथ्वी या राजशक्ति के भी (न परि अभूवन्) अधीन नहीं रहते उन पर (वृषभः) बलवान् (इन्द्रः) राष्ट्रपति (वज्रं) पापों से निवारक अस्त्र बल का (युजं चक्रे) प्रयोग करे और (ज्योतिषा) अपने तेज से (तमसः) अन्धकार के समान क्लेशदायी शत्रु से (गाः) वाणियों, भूमियों और पशु आदि समृद्धियों को (निर् अधुक्षत्) सब प्रकार से दोह ले, उनका ऐश्वर्य स्वयं प्राप्त करके शत्रु की भूमियों का सर्वस्व प्राप्त कर ले। इति द्वितीयो वर्गः ॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११॥

भा०—(स्वधाम् अनु) पृथिवी के प्रति जैसे (आपः अक्षरन्) जलधाराएं बहती हैं और (अस्य) इस मेघ का जल (नाव्यानाम्) नावों से पार उतरने योग्य नदियों के (मध्ये) बीच में भी (आ अवर्धत) सब ओर से आकर बढ़ जाता है और सूर्य वा वायु अपने सहज (ओजिष्ठेन हन्मना) अति आघातकारी शस्त्र, विद्युत् से (अभि द्यून्) अपने प्रकाशों को (तम्) उस मेघ के प्रति (अहन्) ताड़ित करता है वैसे ही (आपः) समस्त आप्त जन व कुशल सेनाएं (स्वधाम् अनु) अपने आपको धारण करने वाले प्रभु को या 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करने वाले अन्न या वेतनादि वृत्ति की तरफ (अक्षरन्) बह आती हैं। (अस्य) इस सूर्य समान प्रतापी राजा या मेघ समान वर्षणकारी पुरुष का बल भी (नाव्यानाम्) वेग से बहती नदियों के समान बलशाली, या आज्ञा पर चलाई जाने योग्य सेनाओं के बीच (अवर्धत) बढ़ जाता है। (इन्द्र) शत्रुहन्ता राजा अपने (सध्रीचीनेन) साथ चलने वाले (मनसा) स्तम्भक

१० प्र.

सेना बल से और (ओजिष्ठेन हन्मना) अति बलशाली, आघातकारी शस्त्र से (द्यून्) कुछ दिनों में ही (तम्) उस अपने शत्रु को (परि हन्) मुकाबला करके मार लेता है।

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम ॥१२॥

भा०—(इन्द्रः) जैसे सूर्य (इलीबिशस्य) ताल, सरोवर, समुद्रादि में विद्यमान जल के (दृढ) घनीभूत जलों को (नि आविध्यत्) सब प्रकार से छिन्न भिन्न करता है और जैसे (इन्द्रः) सूर्य, वायु और विद्युत् (शुष्णम्) पृथिवी के जल को सोखने वाले (शृङ्गिणम्) शिखरों वाले मेघ को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करता है ऐसे ही हे (मघवन्) राजन् ! तू भी (इन्द्रः) भूमि विजय में समर्थ होकर (इलीविशस्य) पृथिवी के भीतर दुर्ग बनाकर छुपने वाले (दृढा) दृढ दुर्गों और उसके दृढ अंगों को (नि अविध्यत्) खूब वेध और (शुष्णम्) प्रजा के सुख-ऐश्वर्यों को सोंख लेने वाले रक्तशोषी, (शृङ्गिणम्) हिंसाकारी साधनों से युक्त पुरुष को (वि अभिनत्) विविध प्रकार से भेद डाल। हे सेनापते! (यावत् तरः) तेरा जितना बल और (यावत् ओजः) जितना भी पराक्रम हो उस (वज्रेण) क्षात्र बल से तू (पृतन्युम् शत्रुम्) सेना द्वारा युद्ध करने वाले शत्रु को (अवधीः) मार।

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥१३॥

भा०—(अस्य सिध्मः) इस विद्युत् का सब तरफ जाने वाला वेगवान् प्रहार जैसे (शत्रून्) छिन्न भिन्न करने योग्य मेघों तक (अजिगात्) पहुँचता है और जैसे (तिग्मेन वृषभेण) तीखे सींगों वाले बैल से तट भाग तोड़े जाते हैं और जैसे (तिग्मे) अति तीक्ष्ण (वृषभेण) वर्षाने वाली बिजली से (पुरः) प्रजा को पालने, या मेघ को पूरने वाले जलों को

(अभेत्) तोड़ डालता है और (इन्द्रः) वह वायु जैसे (वज्रेण) प्रबल विद्युत् से (वृत्रम्) जल को (सम् असृजत्) नीचे एक साथ घनीभूत करके गिरा देता है उसी प्रकार (अस्य) इस सेनापति का (सिध्मः) सब तरफ जाने वाला सैन्यबल (शत्रून् अजिगात्) शत्रुओं को जा पकड़े, जीत ले। (तिग्मेन वृषभेण) तीखे शस्त्रास्त्र वर्षा करने वाले अस्त्र से (अभेत्) तोड़ दे। वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (वज्रेण) क्षात्र-बल से (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को (सम् असृजत्) ला भिड़ावें और (शाशदानः) निरन्तर उसका घात करता हुआ (स्वाम् मतिम्) अपनी आज्ञा, घोषणा और शक्ति या सेना को शस्त्र के समान (प्र अतिरत्) खूब आगे बढ़ा दे।

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू (यस्मिन्) जिसके बल पर (युद्धयन्तं) युद्ध करने वाले (दशद्युम्) दशों दिशाओं को विजय करने में समर्थ और (वृषभम्) शस्त्रवर्षण में समर्थ वीर पुरुष को (प्र अवः) अच्छी प्रकार रक्षा करता है तू उस (कुत्सम्) शत्रुओं को काट गिराने वाले महास्त्र को (चाकन्) इच्छा पूर्वक (आवः) प्राप्त कर। (शफच्युतः) अश्वों के खुरों से उठाया (रेणुः) धूलिपटल (द्याम् नक्षत) आकाश में फैल जाय, तो भी (श्वैत्रेयः) श्वेत कीर्ति का इच्छुक राजा तो (नृषाह्याय) शत्रु के नेतागणों के पराजय करने के लिए मैदान में (तस्थौ) खड़ा रहता है।

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥

भा०—हे (मघवन्) राजन्! जैसे सूर्य (तुग्र्यासु) प्राणियों का नाश करने वाली दशाओं में, या जलों के निमित्त (शमं) शान्तिदायक

(वृषभम्) जल के वर्षाने वाले मेघ को (आ अवः) प्राप्त कराता है वैसे ही तू (तुग्र्यासु) दुष्ट पुरुषों द्वारा प्राप्त होने वाले बध, बन्धन आदि पीड़ाकारी अत्याचारों के होने पर (शमं) उनको शान्त करने वाले पुरुष को (प्र अवः) भेज। हे राजन्! (क्षेत्रजेषे) खेत के हलने के लिए किसान जैसे (श्वित्र्यं) पृथ्वी के हितकारी (गाम्) बलीवर्द को खेत में (प्र अवः) लाता है और सूर्य जैसे (क्षेत्रजेषे) खेतों में अन्न उपजाने के निमित्त (श्वित्र्यं गाम् आ अवः) भूमि के हितकारी किरणों को फेंकता है वैसे ही तू भी (क्षेत्रजेषे) रणक्षेत्रों के विजय के लिए (श्वित्र्यं) भूमि लोक के हितजनक (गाम्) उसके प्रबन्ध और शासन के भार उठाने में समर्थ नरपुंगव को (आ अवः) भेज। (अत्र) इस भूमि पर (तस्थिवांसः) स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन (ज्योक्) चिरकाल तक (अक्रन्) अपना कृषि आदि कार्य करें। हे राजन्! तू (शत्रूयताम्) शत्रुता का आचरण करने वाले शत्रुओं और द्रोहियों को (अधरा वेदना) निकृष्ट कोटि की पीड़ायें (अकः) दे। इति तृतीयो वर्गः॥

[३४] हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—जगत्यः। १, ६ विराड। ४ एकोना। २, ३, ७, ८ निचृत्। १०, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ एकोना विराट् त्रिष्टुप्। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

त्रिश्चि॑न्नो अ॒द्या भ॑वतं नवेदसा वि॒भुर्वां॒ याम॑ उ॒त रा॒तिर॑श्विना। यु॒वोर्हि य॒न्त्रं हि॒म्येव॒ वास॑सोऽभ्याय॒ंसेन्या॑ भवतं मनी॒षिभिः॑॥१॥

भा०—हे (अश्विनौ) सूर्य, चन्द्र और दिन रात्रि के समान, विद्या और अधिकारों में व्यापक! हे (नवेदसा) किसी प्रकार के ऐश्वर्य को शेष न रखने वाले, पूर्ण विद्यावान्! (अद्य) आज के समान सदा आप दोनों (नः) हमारे हित के लिए (त्रिः चित्) तीनों वार, तीनों प्रकार से (भवतम्) अधिक सामर्थ्यवान् होओ। प्रथम, (वाम्) तुम दोनों का (यामः) यात्रा करने का साधन रथ आदि (बिभुः) विशेष शक्ति से

युक्त हो। (उत) और (रातिः) तुम दोनों का देने का सामर्थ्य भी बहुत अधिक हो। (हिम्या-इव वाससः) रात्रि जैसे दिन के साथ खूब अनुरूप होकर रहती है अथवा वस्त्र का जिस प्रकार शीत वेला के साथ सम्बन्ध और उपयोग है उसी प्रकार (युवोः) तुम दोनों के (यन्त्रम्) यंत्र, नियम-साधन एक दूसरे के अनुरूप हों। आप दोनों (मनीषिभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (अभि-आयंसेन्या) एक दूसरे को लक्ष्य करके नियम में बंधने वाले (भवतम्) होकर रहो।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा

भा०—(मधुवाहने रथे) सुखप्रद अन्न आदि और मधुर सुख और वेग आदि को धारण करने वाले रथ में (त्रयः पवयः) जैसे वज्र के समान कठोर और विद्युत् के देने वाले तीन पवि, चक्र या यन्त्र हों और उसमें (विश्व इत्) सभी ही (सोमस्य) प्रेरक बल, वायु की ही (वेनाम्) गमन करने वाली शक्ति (विदुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं। उसमें (आरभे) आधार के लिए (त्रयः) तीन (स्कम्भासः) खम्भे, या दण्ड (स्कभितासः) लगाये गये हों। वे उस रथ द्वारा (अश्विना) वेगवान् यन्त्रकला के विज्ञ विद्वान् दोनों (त्रिः दिवः) तीन वार दिन में और (त्रिः नक्तं) तीन वार रात्रि में (याथः) जाते हैं। (मंत्र संख्या चत्वारि शतानि ४००)

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम्॥

भा०—हे (अवद्यगोहना) एक दूसरे के दोषों और निन्दनीय कार्यों को आच्छादित या गोपन करने वाले स्त्री पुरुषो! (समाने अहनि) एक ही दिन में आप दोनों (त्रिः त्रिः) तीन तीन बार, अर्थात् बार बार

(मधुना) मधुर गुण वाले जल से, अन्न से, बल से और मधु के समान मधुर गुण से (यज्ञं) यज्ञ, आत्मा, शरीर और मन को (मिमिक्षतम्) नित्य सेचन करो। हे (अश्विना) ऐश्वर्यों के भोक्ता, परस्पर प्रेमी स्त्री पुरुषो! (यूयम्) तुम दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिए (दोषाः उषः च) दिन और रात (वाजवतीः इषः) बलयुक्त अन्न, वेगवती, शुभ कामनाओं को और ज्ञान वाली प्रेरणाओं को (त्रिः) तीन बार, बार बार (पिन्वतम्) सेचन करो। उनको पूर्ण करो।

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों (वर्तिः) व्यवहार करने योग्य उत्तम मार्गों को (त्रिः यातम्) तीन बार अर्थात् बार २ जाओ आओ। (अनुव्रते जने) अपने अनुकूल नियम धर्म पालन करने वाले आचार्य आदि के अधीन (त्रिः) वार बार रहो। (सु-प्राव्ये) सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने वाले राजा के अधीन रहकर (त्रिः) तीन तीन बार अर्थात् बार बार (शिक्षतम्) ज्ञान का अभ्यास करो। (नान्द्यं) आनन्दप्रद कार्य को या ऐश्वर्य पुत्रादि को भी (त्रिः वहतम्) बार बार प्राप्त करो। तुम दोनों (त्रिः) तीन बार, बार बार (अस्मे) हमें (अक्षरा इव) अक्षय जलों के समान (पृच्छः पिन्वतम्) अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम्॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो! (युवं) आप दोनों (नः) हमारे लिए (रयिम्) ऐश्वर्य को भी (त्रिः) तीन तीन बार, बार बार (वहतम्) प्राप्त कराओ। (देवताता) विद्वानों के लिये ज्ञान और यज्ञादि कार्यों में भी (त्रिः) बार बार ऐश्वर्य लगाओ। (उत) और (धियः) बुद्धियों और कर्मों को भी (त्रिः अवतम्) शरीर, मन, प्राण तीनों तरह से रक्षा

करो। (सौभगत्वं) सुख से भजन करने योग्य परमेश्वर की भक्ति, (त्रिः) श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा और सुखपूर्वक सेवने योग्य ऐश्वर्य की प्राप्ति, रक्षण और वर्धन द्वारा भोग करो। (उत श्रवांसि त्रिः) और श्रवण योग्य वेद शास्त्रादि ज्ञानों और ख्याति लाभ करने वाले ऐश्वर्यो को भी उक्त तीनों प्रकारों से तीन बार प्राप्त करो। (सूरेः दुहिता) सूर्य की पुत्री प्रभा या कान्ति जैसे दिन और रात्रि के बने प्रभात, मध्याह्न और सायं नाम तीन आधारों पर स्थित रथ पर आरूढ़ होती है वैसे ही (सूरे) सूर्य के समान तेजस्वी राजा की (दुहिता) सब कामों को पूर्ण करने वाली प्रजा भी (वाम्) तुम राजा मन्त्री दोनों के (त्रिरथं) मन्त्र, धन और बल इन तीनों पर आश्रित राज्यैश्वर्य पर (आरुहत्) सुख से तीन चक्रों वाले रथ पर नव-वधू के समान विराजे।

त्रिर्नो॑ अश्विना दि॒व्यानि॑ भेष॒जा त्रिः पार्थि॑वानि॒ त्रिरु॑ दत्तम॒द्भ्यः।
ओ॒मानं॑ शं॒योर्मम॑काय सू॒नवे॑ त्रि॒धातु॒ शर्म॑ वहतं शुभस्पती ॥ ६॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथी के समान स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अद्भ्यः) जलों से प्राप्त करके (पार्थिवानि) पृथिवी पर उगे वनौषधि से और (दिव्यानि) तेजोमय धातु, लोह स्वर्णादि से बने (भेषजा) नाना रोग निवारक पदार्थों को (नः) हमारे उपकार के लिए (त्रिः त्रिः त्रिः उ दत्तम्) तीन तीन बार अर्थात् बार बार प्रदान करें। (शंयोः) शान्ति सुख के चाहने वाले (ममकाय) मेरे निज बन्धु (सूनवे) पुत्र को (ओमानं) रक्षाकारी उपाय प्रदान करो और हे (शुभः पती) शुभ गुणों के धारक स्त्री पुरुषो! (त्रिधातु) तीन धातु वात, पित्त और कफ के बने (शर्म) सुखद साधन देह को या तीन धातु के बने रोगनाशक आभूषण (वहतं) धारण करो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

त्रिर्नो॑ अश्विना यज॒ता दि॒वेदि॑वे॒ परि॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीम॑शायतम्।
ति॒स्रो ना॑सत्या रथ्या परा॒वत॑ आ॒त्मेव॒ वातः॒ स्वस॑राणि गच्छतम् ७

भा०—हे (अश्विना) शान्ति और तेज से युक्त स्त्री पुरुषो ! (यजता) यज्ञ करने वाले आप दोनों (दिवेदिवे) प्रतिदिन (त्रिधातु) तीन धातुओं से बने शरीर को (पृथिवीम्) पृथ्वी पर ब्रह्मचारी रहकर (त्रिः) तीन बार, या तीन दिनों तक (अशायतम्) शयन करो। हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले तुम दोनों (आत्मा इव) आत्मा जैसे एक देह से अन्य देहों में और (वातः) वायु जैसे एक स्थान से अन्य स्थानों में स्वयं चला जाता है वैसे ही (परावतः) दूर दूर तक के देशों को (रथ्या) रथ पर चढ़कर (तिस्रः) तीनों लोक अर्थात् उच्च, नीच और सम अथवा जल, पर्वत और स्थल, तीनों प्रकार के भूमि-भागों में (स्वसराणि) दिन रात स्वयं चलने वाले यानों द्वारा (गच्छतम्) जाओ।

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य और वायु या चन्द्रमा, रथी सारथी के समान तुम दोनों (सप्तमातृभिः) पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, आकाश आदि सात सूक्ष्म तत्वों से पैदा होने वाले (सिन्धुभिः) नदियों के समान निरन्तर बहने वाले, सूक्ष्म पदार्थों द्वारा (त्रिः) तीनों बार करके (हविः) आहुति योग्य अन्नादि पदार्थों को (कृतम्) सम्पादित करो। (त्रयः) उनके लिए तीन (आहावाः) आहुति योग्य पात्र हों और उन अन्नादि औषधियों को (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रातों में (तिस्रः पृथिवीः उपरि) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों स्थानों पर (प्रवा) अच्छी प्रकार पहुँचने वाले आप दोनों (दिवः) प्रकाशमय किरणों की ओर (हितम्) स्थित (नाकम्) सुखप्रद आकाश की (रक्षेथे) रक्षा करो।

क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य१ क्व त्रयो बन्धुरो ये सनीळाः।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यस्वभाव वालो ! आप लोग (येन)

जिसके द्वारा (यज्ञं) गन्तव्य मार्ग को (उपयाथः) जाते हो। उस (त्रिवृतः रथस्य) त्रिवृत रथ के (त्री चक्रा क्व) तीन चक्र कहां लगे हैं? और (ये) जो (त्रयः) तीन (सनीळाः) एक ही आश्रय में जड़े हुए (बन्धुराः) बन्धन दण्ड हैं वे (क्व) कहां लगे हैं और (वाजिनः) वेग वाले (रासभस्य) अति शब्दकारी यंत्राग्नि के समान या अश्वों के समान सञ्चालक शक्ति का (योगः कदा) योग कब हुआ? ये सभी प्रश्न विशेष जानने योग्य हैं। अध्यात्म में—अग्नि, वायु और तेज इन तत्वों के त्रिवृतीकरण द्वारा बना देह रूप रथ है। उसके वात, पित्त, कफ तीन चक्र हैं। सत्व, रजस, तमस् अथवा मन, वाक् प्राण तीन दण्ड हैं। इसमें मुख्य प्राण वेगवान् अश्व है। ये सब कहां २ स्थित हैं? और प्राण का देह में कब योग होता है? ये सब ज्ञातव्य बातें हैं।

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥१०॥

भा०—हे (नासत्यौ) सत्य स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुषो! (आ गच्छतम्) आप दोनों आदरपूर्वक आओ। (हविः) अन्न आदि ग्रहण योग्य पदार्थ (हूयते) अग्नि में आहुति किया जावे और आप दोनों (मधुपेभिः) उत्तम अन्न और जल को पान और उपभोग करने वाले (आसभिः) मुखों द्वारा (मध्वः) मधुर अन्न का (पिबतम्) उपभोग करो। (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर और तुम्हारा आचार्य (उषसः पूर्वम्) उषाकाल के समान, या तापकारक यौवनकाल के पूर्व ही (युवोः) तुम दोनों के (चित्रं) अति अद्भुत (घृतवन्तम्) तेजस्वी पदार्थों से पुष्ट (रथम्) रथ के समान बने देह को (ऋताय) ब्रह्मचर्य और सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (इष्यति) प्रेरित करे।

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११॥

भा०—हे (नासत्या) स्त्री पुरुषो! आप दोनों वर्ग (त्रिभिः एकादशैः) तैंतीस (देवेभिः) दिव्य गुणों से युक्त एवं हृष्ट पुष्टि होकर (मधुपेयम्) उपभोग योग्य नाना पदार्थों और सुखों से युक्त यौवन को (यातम्) प्राप्त करो और (आयुः) अपने जीवन को वीर्यरक्षा आदि साधनों से (प्र तारिष्टम्) खूब बढ़ाओ और (रपांसि) समस्त पाप कृत्यों को (निर्मृक्षतम्) सर्वथा दूर करो। (द्वेषः) द्वेष करने वाले पदार्थों को (नि.षेधतम्) दूर करो, और (सचाभुवा) दोनों परस्पर एक साथ मिल कर प्रेम से (भवतम्) रहो। (त्रिभिः एकादशैः) ३ दिनों में समुद्र और ११ दिनों में भूगोल को पार करो [इति दया०]

आ नो॑ अश्विना त्रिवृता रथे॑नार्वाञ्चं॑ र॒यिं व॑हतं सु॒वीर॑म्।
शृ॒ण्वन्ता॑ वा॒मव॑से जोहवीमि वृ॒धे च॑ नो भवतं॒ वाज॑सातौ ॥१२॥५॥

भा०—हे (अश्विना) एक दूसरे में हृदय से व्याप्त स्त्री पुरुषो! आप दोनों (नः) हमारे बीच में (त्रिवृता रथेन) त्रिचक्र रथ के समान मन, वाणी और प्राण तीन बल से चलने वाले रथ रूप देह से (सुवीरं रयिम्) उत्तम वीरों से युक्त ऐश्वर्य के समान उत्तम प्राणों से युक्त वीर्य को (वहतं) धारण करो। (शृण्वन्तौ) विद्याओं का श्रवण करते हुए (वाम्) तुम दोनों को मैं, आचार्य (अवसे) ज्ञान की वृद्धि के लिये (जोहवीमि) उपदेश करता हूँ। तुम दोनों (नः) हम लोगों के बीच (वाजसातौ) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य प्राप्ति के कार्य में, सन्तानों द्वारा (नः वृधे) हमें बढ़ाने के लिये (भवतम्) सदा तत्पर रहो। इति पञ्चमो वर्गः॥

[३५] हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ देवताः—१ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च। २–११ सविता ॥ छन्दः—१ विराड् जगती १, ६ निचृज्जगती। २, ५, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६ त्रिष्टुप्। ८ एकोना विराट्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ह्वया॑म्य॒ग्निं प्र॑थ॒मं स्व॒स्तये॒ ह्वया॑मि मि॒त्रावरु॑णावि॒हाव॑से।
ह्वया॑मि॒ रात्रीं॒ जग॑तो नि॒वेश॑नीं॒ ह्वया॑मि दे॒वं स॑वि॒तार॑मू॒तये॑ ॥१॥

भा०—(स्वस्तये) सुखपूर्वक जगत् के विद्यमान रहने के लिये (प्रथमम्) सबसे पूर्व विद्यमान (अग्निम्) परमेश्वर की (ह्वयामि मैं स्तुति करता हूँ। (इह) इस जगत् में (अवसे) रक्षा, सत्य, ज्ञान और जीवन रक्षा के लिये (मित्रावरुणौ) सबके प्रति स्नेही और दुःखों के दूर करने वाले प्राण और अपान दोनों के समान परमेश्वर के स्नेहमय और दुष्ट नाशक दोनों स्वरूपों की (ह्वयामि) स्तुति करता हूँ। (जगतः) जगत् को निवेशनी) अपने भीतर रखने वाली, (रात्रीम्) रात्रि के समान सुख-पूर्वक निद्रा में सुलाने वाली, सकल सुखदायिनी उस परमेश्वरी शक्ति की (ह्वयामि) स्तुति करता हूँ। (ऊतये) सबकी रक्षा और ज्ञान के लिये भी (सवितारम्) सर्वोत्पादक (देवम्) सर्वसुखदाता परमेश्वर को बुलाता हूँ।

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥२॥

भा०—(सविता) काल रूप से सबका उत्पादक, सूर्य (देवः) सबका प्रकाश और वृष्टि ताप आदि का देने वाला सूर्य जैसे स्वयं (कृष्णेन) आकर्षण बल से युक्त पृथिवी आदि (रजसा) लोक समूह के साथ (आवर्तमानः) भ्रमण करता हुआ और (अमृतम्) वृष्टि के द्वारा जल और प्राण, चैतन्य और (मर्त्यम्) मरणधर्मा प्राणियों को (निवेशयन्) स्थापित करता हुआ (हिरण्ययेन) सर्व लोक हितकारी अथवा तेजोयुक्त (रथेन) अति वेगवान् पिण्ड से (भुवनानि) समस्त उत्पन्न लोकों को (पश्यन्) देखता हुआ जाता है वैसे ही परमेश्वर (कृष्णेन रजसा वर्त्तमानः) सर्वाकर्षक लोकसमूहों के साथ उनमें व्यापक रहकर उनमें (अमृतं मर्त्यं च) मोक्ष सुख और सत्य ज्ञान तथा 'मर्त्य', मरने वाले

प्राणियों को व्यवस्थित करता हुआ (हिरण्ययेन रथेन) आनन्ददायक, रस स्वरूप से समस्त लोकों को अन्तर्यामी रूप से साक्षात् करता हुआ, सुवर्ण के रथ पर स्थित राजा के समान (याति) हमें प्राप्त है ।

याति॑ दे॒वः प्र॒वता॒ यात्यु॒द्वता॒ याति॑ शु॒भ्राभ्यां॑ यज॒तो हरि॑भ्याम् ।
आ दे॒वो याति सवि॒ता प॑रा॒वतोऽप॒ विश्वा॑ दुरि॒ता बाध॑मानः ॥३॥

भा०—(देवः) राजा या शूर पुरुष (प्रवता) नीचे के मार्गों से भी (याति) जाता है । वह (उद्वता याति) ऊपर के मार्ग से भी जाता है । वह (यजतः) सत्संग योग्य चन्द्र सूर्य के समान (शुभ्राभ्याम् हरिभ्याम्) गतिशील काल के अवयव दिन और रात्रि तथा उत्तरायण, दक्षिणायन के समान (शुभ्राभ्याम्) श्वेत, सुन्दर (हरिभ्याम्) घोड़ों से (याति) प्रयाण करता है । (सविता देवः) सूर्य के समान तेजस्वी (देवः) राजा (विश्वा दुरिता) सब दुःखों को (अप बाधमानः) दूर करता हुआ (परावतः) दूर और पास भी सर्वत्र (आ याति) प्राप्त हो ।

अ॒भीवृ॑तं॒ कृश॑नैर्वि॒श्वरू॑पं॒ हिर॑ण्यशम्यं यज॒तो बृ॒हन्त॑म् ।
आस्था॒द्रथं॑ सवि॒ता चि॒त्रभा॑नुः कृ॒ष्णा रजां॑सि॒ तवि॑षीं॒ दधा॑नः ॥४॥

भा०—(यजतः) अन्नादि उत्तम पदार्थों का दाता (सविता) सूर्य जैसे (कृशनैः) जलों को सूक्ष्म करने में समर्थ किरणों से (अभीवृतम्) व्याप्त (विश्वरूपम्) सब तेजों को धारण करने वाले (हरिण्यशम्यम्) सुवर्ण आदि धातुओं तथा उच्च ज्योतियों को भी शान्त कर देने वाली शक्तियों से युक्त (बृहन्तम् रथम्) बड़े गतिशील पिण्ड में (आ अस्थात्) स्थित है । वह (चित्रभानुः) विचित्र तेजों से युक्त होकर (कृष्णा) प्रकाश से रहित और आकर्षण गुण वाले (रजांसि) लोकों को और स्वयं भी (तविषीं) बड़ी भारी शक्ति को धारण किये रहता है । वैसे ही (यजतः सविता) पूजनीय सूर्य के समान तेजस्वी राजा (कृशनैः अभीवृतम्) शत्रुओं को पीड़न करने वाले एवं शस्त्रधारियों से घिरे हुए (विश्वरूपम्)

सब प्रकार के गज, अश्व, पदाति आदि को अपने वश करने वाले (हिरण्यशम्यम्) सुवर्ण या लोह की बनी शंकु या कीलों से जड़े (बृहन्तं रथं) विशाल रथ पर (आ अस्थात्) चढ़े और (चित्रभानुः) विविध कान्तियों से युक्त होकर (कृष्णा रजांसि) कर्षणशील अन्नोत्पादक प्रजा जनों को और (तविषीम्) बलवती सेना को (दधानः) धारण पोषण करने वाला हो।

वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥५॥

भा०—(दैव्यस्य) आकाश में विचरने वाले लोकों में सर्वश्रेष्ठ (सवितुः) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर की (उपस्थे) गोद में, (विशः) समस्त प्रजाएं और (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (तस्थुः) स्थित हैं और (श्यावाः) ज्ञान करने योग्य, (शितिपादः) शुभ्र, विशुद्ध ज्ञान कराने वाले पादों, छन्दों के चरणों से युक्त, (हिरण्यप्रउगम्) कान्ति वाले, आत्मा द्वारा जानने योग्य (रथम्) रमणीय, आनन्दमय रस को (वहन्तः) धारण करते हुए, (जनान्) मनुष्यों को (वि अख्यन्) विविध ज्ञानों का प्रकाश करते और स्वयं भी किरणों के समान प्रकाशित होते हैं।

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥६॥६॥

भा०—(द्यावः) सूर्य, अग्नि और विद्युत् (तिस्रः) तीन पदार्थ हैं। उनमें से (द्वा) दो, अग्नि और विद्युत् (सवितु) सबके उत्पादक सूर्य के (उपस्था) आश्रय हैं और (एका) एक (यमस्य) यम, अर्थात् वायु के जो कि (भुवने) भुवन अर्थात् अन्तरिक्ष में रहती है जो (विराषाड्) वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ है। (रथ्यम्) रथ के भार उठाने में समर्थ (आणिम् न) रथ के धुरे पर जैसे रथ और उस पर स्थित पुरुष

सम्भले रहते हैं वैसे ही वायु के आश्रय पर सूक्ष्म जलों के समान (अमृता) जीव गण (अधि तस्थुः) स्थिर हैं। (यः उ) जो भी (तत्) इस रहस्य को (चिकेतत्) जाने वह (इह) इस विषय में (ब्रवीतु) सबको उपदेश करे। इति षष्ठो वर्गः॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान॥७॥

भा०—(सुपर्णः) उत्तम रश्मियों से युक्त (गभीरवेपाः) अति गंभीर, बल और गतिवाला (असुरः) सबको प्राणशक्ति देने वाला (अन्तरिक्षाणि) समस्त आकाश के प्रदेशों को (वि अख्यत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है। परन्तु अस्त हो जाने पर फिर प्रश्न उठता है कि—(इदानीं) अब सूर्यः क्व) वह सूर्य कहां है? इस रहस्य को (कः) कौन विद्वान् (चिकेत) जानता है कि (अस्य रश्मिः) इस सूर्य का रश्मिगण अब (कतमां द्याम्) किस आकाश को (ततान) व्याप रहा है।

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि॥८॥

भा०—(हिरण्याक्षः) मनोहर व्यापनशील किरणों वाला (सविता देवः) प्रकाश और ताप का उत्पादक, सूर्य (दाशुषे) यज्ञशील पुरुष को (वार्याणि) उत्तम उत्तम (रत्ना) रमण-योग्य सुखों को (दधत्) देता हुआ (आ अगात्) आता है और वह (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर (अष्टौ ककुभः) आठों दिशाओं, (योजना) सब पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले (त्री धन्व) तीनों लोकों और (सप्त सिन्धून्) सर्पणशील आकाशस्थ जलों को भी (वि अख्यत्) प्रकाशित करता है।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति॥९॥

भा०—(हिरण्यपाणिः) जलों के ग्रहण करने वाले, हाथों के समान ज्योतिर्मय किरणों को धारण करने वाला (सविता) समस्त औषधियों और अन्तरिक्ष में जलों और रसों का उत्पादक (विचर्षणिः) विशेषरूप से समस्त लोकों को आकर्षण करने वाला होकर सूर्य (द्यावापृथिवी अन्तः) आकाश और भूमि दोनों के बीच में गति करता है और (अमीवां) रोगादि पीड़ा को (अप बाधते) दूर करता है और (सूर्यम्) सबके प्रेरक और उत्पादक प्रकाश समूह को (वेति) प्रकाशित करता है और (कृष्णेन रजसा) अन्धकार के नाश करने वाले तेज से, (द्याम् अभि ऋणोति) आकाश को भर देता है।

हिर॑ण्यहस्तो॒ असु॑रः सुनी॒थः सु॑मृळी॒कः स्ववाँ॑ यात्व॒र्वाङ्।
अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥१०॥

भा०—(हिरिण्यहस्तः) तेजोमय किरणों से युक्त सूर्य के समान सुवर्ण आदि धातुओं को अपने वश करने वाला, (असुरः) बलवान्, सबका प्राणपद, (सुनीथः) उत्तम सुखमय नीति से ले जाने वाला, (सुमृळीकः) उत्तम सुख देने वाला, (स्ववान्) उत्तम रक्षक होकर, (अर्वाङ्) हमारे पास (आयातु) आवे और (यातुधानान्) पीड़ा देने वाले मायावी (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों और रोगों को (अप सेधन्) दूर करता हुआ, (देवः) तेजस्वी राजा (प्रतिदोषं) प्रति दिन रात्रि (गृणानः) अपने गुणों से स्तुति करने योग्य होकर (अस्थात्) स्थित हो।

ये ते॒ पन्थाः॑ सवितः पू॒र्व्यासो॑ऽरे॒णवः॒ सुकृ॑ता अ॒न्तरि॑क्षे।
तेभि॑र्नो अ॒द्य प॒थिभिः॑ सु॒गेभी॒ रक्षा॑ च नो॒ अधि॑ च ब्रूहि देव ॥११॥

भा०—हे (सवितः) परमेश्वर! हे राजन्! (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में जैसे सूर्य के लिए पहले ही से बने रेणु रहित मार्ग हैं, उन निर्विघ्न आकाश मार्गों से सूर्य प्रतिदिन तेज द्वारा प्राप्त होकर हमें सुख प्रदान करता है। वैसे ही हे राजन्! (अन्तरिक्षे) आकाश और पृथिवी के बीच

में (ये) जो (ते) तेरे लिए या तुझ राजा के लिए (पूर्व्यासः) पूर्व के विद्वानों से निर्धारित (अरेणवः) विघ्न बाधा से रहित, निःस्वार्थता युक्त, (सुकृताः) अच्छी प्रकार से बनाये गये हैं (सुगेभिः) सुखपूर्वक जाने योग्य (तेभिः पथिभिः) उन मार्गों से (नः च) हमारी भी (रक्ष) रक्षा कर। हे (देव) राजन्! (अधि ब्रूहि च) हम पर अधिकारी रूप से शासन भी कर। इति सप्तमो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः।

[३६] घोर ऋषि। अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १२ भुरिगनुष्टुप्। २ निचृत्सतः पंक्तिः। ४ निचृत्पंक्तिः १०, १४ निचृद्विष्टारपंक्तिः। १८ विष्टारपंक्तिः। २० सतः पंक्तिः। ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती। ५, १६ निचृद्बृहती। ६ भुरिग् बृहती। ७ बृहती। ८ स्वराड् बृहती। ९ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। १३ उपरिष्टाद्बृहती। १५ विराट पथ्य बृहती। १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती। १९ पथ्या बृहती ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ य॒ह्वं पु॑रू॒णां वि॒शां दे॑वय॒तीना॑म्।
अ॒ग्निं सू॒क्तेभि॒र्वचो॑भिरीमहे॒ यं सी॒मिद॒न्य ईळ॑ते ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर की (सीम्) सब तरह से (अन्ये इत्) और जन भी (ईळते) स्तुति करते हैं उस (अग्निम्) ज्ञानवान् (यह्वं) शरण जाने और स्तुति योग्य महान् परमेश्वर को (देवयतीनां) उत्तम गुणों, दिव्य तेजों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाली (पुरूणां) बहुत सी (वः विशां) आप प्रजाजनों के हितार्थ (सूक्तेभिः वचोभिः) उत्तम अर्थोंवाले वचनों से (प्र ईमहे) प्रार्थना करते हैं।

जना॑सो अ॒ग्निं द॑धिरे सहो॒वृधं॑ ह॒विष्म॑न्तो विधेम ते।
स त्वं नो॑ अ॒द्य सु॒मना॑ इ॒हावि॒ता भवा॒ वाजे॑षु सन्त्य ॥ २ ॥

भा०—(जनासः) विद्याओं में विशेष रूप से प्रकट होने वाले विद्वान्

जन (सहःवृधं) कष्टों के सहने और शत्रुओं के पराजय करने वाले बल को बढ़ाने वाले, (अग्निम्) परमेश्वर और अग्रणी नायक को (दधिरे) धारण करते हैं, हे (सन्त्य) ऐश्वर्य प्रदान करने में कुशल ईश्वर! राजन्! हम (हविष्मन्तः) उत्तम देने और स्वीकार योग्य अन्न, रत्नादि पदार्थों को प्राप्त कर (ते विधेम) तेरी सेवा करें। (सः त्वं) वह तू (सुमनाः) उत्तम चित्तवाला होकर (अद्य) आज से (इह) इस राष्ट्र में, इस लोक में, (वाजेषु) युद्धों में और ऐश्वर्यों के निमित्त (अविता भव) हमारा रक्षक हो।

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन्! हम लोग (दूतं) अग्नि के समान शत्रुओं के उपतापक, (होतारम्) सबको अन्न, अधिकार और शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार के करने वाले, (विश्ववेदसं) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी एवं ज्ञानों के ज्ञाता तुझको (प्र वृणीमहे) उत्तम पद के लिये वरण करते हैं। (ते) तुझ (महः) बड़े सामर्थ्यवान् (सतः) सृजन की, अग्नि के समान ही (अर्चयः) ज्वालाओं के सदृश न्याय-प्रकाश और तेज (विचरन्ति) विविध रूप से प्रकट होते और (भानवः) किरणों के समान वे तेजःप्रभाव (दिवि) आकाश के समान व्यापक राजसभा आदि राज्य-व्यवहार में (स्पृशन्ति) प्रकट होते हैं।

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—(वरुणः) सबसे उत्कृष्ट, प्रजा के दुःखों का वारक, (मित्रः) मित्र राजा और (अर्यमा) न्यायकारी ये सब (देवासः) विद्वान् गण (त्वा) तुझ विद्वान् पुरुष को (दूतं) साम आदि उपायों से शत्रु के तापकारी जानकर ही दूत रूप से (सम् इन्धते) अग्नि के समान प्रज्वलित करते

अर्थात् उत्तम पदाधिकारों से सुशोभित करते हैं। (यः मर्त्यः) जो मनुष्य (ते) तेरे निमित्त (ददाश) अधिकार प्रदान करता है, हे (अग्ने) विद्वन्! (सः) वह राजा (त्वया) तेरे द्वारा (विश्वं धनं) समस्त ऐश्वर्य और (प्रत्नं) प्राचीन काल से चले आये राज्य को भी (जयति) विजय कर लेता है।

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! तू (मन्द्रं) सबको प्रसन्न करने हारा, सबके हर्ष का कारण, (होता) सुखप्रद, (गृहपतिः) गृहों का पालक, (विशाम्) प्रजाओं के बीच (दूतः) शत्रुतापक अग्नि के समान प्रतापी है। (त्वे) तेरे ही आश्रय पर, अग्नि के आश्रय पर संस्कार दीक्षा आदि के समान (विश्वा) समस्त (व्रता) राजा प्रजा के वे सब कर्त्तव्य (संगतानि) ध्रुव स्थिर हैं (यानि) जिनको (देवाः) विद्या, धन आदि देने वाले आचार्य तथा व्यापारी जन (अकृण्वत) करते हैं।

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अति बलशालिन्! (अग्ने) नायक! राजन्! परमेश्वर! (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यवान्, भजने, सेवने योग्य (त्वे) तुझमें, तेरे निमित्त ही (विश्वम् हविः) सब स्वीकार करने योग्य पदार्थ और स्तुति वचन भी (आ हूयते) प्रदान किये जाते हैं। (सः त्वम्) वह तू (अद्य) आज (नः) हमारे प्रति (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाला हो और (सुवीर्या) उत्तम वीर्यवान् (देवान्) युद्ध-विजयी पुरुषों और विद्वानों को भी (यक्षि) वेतनादि प्रदान कर और राष्ट्र में सुसंगत कर।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार से (नमस्विनः) शत्रु को नतमस्तक करने वाले राष्ट्रवासी जन (तम् घ इम्) उस वीर नायक पुरुष को ही (स्वराजम्) अपना राजा बना कर (उप आसते) उसका आश्रय लेते हैं और (होत्राभिः) उत्तम २ पदार्थों को आदरपूर्वक देने आदि क्रियाओं से भी (मनुषः) वे मननशील पुरुष (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही हवन आदि यज्ञाहुतियों से अग्नि के समान (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार प्रज्वलित, तेजस्वी और बलशाली करते हैं। तभी वे (स्त्रिधः) अपने हिंसक शत्रुओं को (अति तितिर्वांसः) पार कर जाते हैं, उनको विजय करने में समर्थ होते हैं।

घ्नन्तो॑ वृ॒त्रम॑तर॒न्रोद॑सी अ॒प उ॒रु क्षया॑य चक्रिरे ।
भुव॒त्कण्वे॒ वृषा॑ द्यु॒म्न्याहु॑तः॒ क्रन्द॒दश्वो॒ गवि॑ष्टिषु ॥ ८ ॥

भा०—(वृत्रम्) फैलते हुए मेघ को जैसे सूर्य की किरणें (घ्नन्तः) विनाश करती हुई (रोदसी अतरन्) आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को पार कर जाती हैं वैसे ही (देवाः) वीर, सैनिक गण (वृत्रम्) घेरा डालने वाले शत्रु का नाश करते हुए (रोदसी) अपने और पराये दोनों राष्ट्रों को (अतरन्) अपने वश कर लेते हैं और (क्षयाय) प्रजाओं के सुखपूर्वक निवास के लिये (उरु) बड़े राष्ट्र को और (अपः) नाना कर्मों को भी (चक्रिरे) करते हैं। (गविष्टिषु) भूमियों के प्राप्त करने के विजयादि संग्राम कार्यों में (क्रन्दत् अश्वः) हर्ष से हिनहिनाते हुए अश्व के समान सिंहनाद करता हुआ अश्वारोही, (वृषा) मेघ के समान शत्रुओं पर अस्त्र बरसाने वाला (द्युम्नी) ऐश्वर्यवान्, (आहुतः) सब वीरों द्वारा आदर से सेनाध्यक्ष रूप से स्वीकृत होकर (कण्वे) विद्वान् पुरुषों के बीच (भुवत्) विराजे।

सं सी॑दस्व म॒हाँ अ॑सि॒ शोच॑स्व देव॒वीत॑मः ।
वि धू॒मम॑ग्ने अरु॒षं मि॑येध्य सृ॒ज प्र॑शस्त दर्श॒तम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! राजन् ! तू (देवतीतमः) समस्त तेजस्वी पदार्थों में अति कान्तिमान्, सूर्य और अग्नि के समान राजाओं और विद्वानों में सबसे अधिक तेजस्वी होकर (सं सीदस्व) अच्छी प्रकार सिंहासन पर विराज। तू (महान् असि) सबसे बड़ा है। तु (शोचस्व) अग्नि के समान चमक। हे (मियेध्य) मेधाविन्! हे (प्रशस्त) उत्तम रूप से प्रशसित ! तू (अरुषं) रोषरहित (दर्शतम्) दर्शनीय, (धूमम्) अग्नि के धूम के समान शत्रु को कंपाने वाले बल को (वि सृज) विविध प्रकार से उत्पन्न कर।

यं त्वा॑ दे॒वासो॒ मन॑वे द॒धुरि॒ह यजि॑ष्ठं हव्यवाहन।
यं कण्वो॒ मेध्या॑तिथिर्धन॒स्पृतं॒ यं वृषा॒ यमु॑पस्तु॒तः॥ १०॥ ९॥
यम॒ग्निं मेध्या॑तिथिः॒ कण्व॑ ई॒ध ऋ॒तादधि॑।
तस्य॒ प्रेषो॑ दीदियु॒स्तमि॒मा ऋ॒च॒स्तम॒ग्निं व॑र्धयामसि॥ ११॥

भा०—(देवासः) विद्वान् पुरुष (यं) जिसको (यजिष्ठम्) अति पूजनीय (त्वा) तुझको (इह) इस लोक में (मनवे) मनन करने के कार्य, राज्यशासन पद पर (दधुः) स्थापित करते हैं और हे (हव्यवाहन) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम गुणों के धारक (यं) जिस ऐश्वर्य से पूर्ण तुझको (कण्वः) विद्वान् (मेध्यातिथिः) सत्संग योग्य पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ और (यं) जिसको (वृषा) शत्रु पर वाण वर्षण करने वाला वीर योद्धा और (यम् उपस्तुतः) जिसको स्तुति करने वाला विद्वान् और (यम्) जिस (अग्निम्) नायक पुरुष को (मेध्यातिथिः कण्वः) उत्तम संगत होने वाले अतिथि रूप शिष्यों से युक्त विद्वान् पुरुष (ऋतात् अधि) मेघमण्डलस्थ जल के ऊपर विद्यमान सूर्य के समान (ऋतात् अधि) सत्य व्यवहार और राज्य शासन के सत्य व्यवस्था या नियम समूह के भी ऊपर (इधे) प्रकाशित और (दधुः) स्थापित करते हैं (तस्य) उस तेरी (इषः) प्रेरित आज्ञाएं और राज्य-प्रबन्ध की व्यवस्थायें (प्र

दीदियुः) उज्वल रूप में चमकती और सत्य न्याय का प्रकाश करती हैं। (तम्) उस तुझ (अग्निम्) नायक को (इमाः ऋचः) ये वेदमन्त्र और हम प्रजाजन (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम्।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥

भा०—हे (स्वधावः) ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू हमें (रायः) ऐश्वर्य (पूर्धि) प्रदान कर। हे (अग्ने) नायक! राजन्! (ते) तेरा (देवेषु) युद्ध-विजयी पुरुषों पर (आप्यम्) बन्धुभाव और मित्रता (अस्ति हि) निश्चय से है। (त्वं) तू (श्रुतस्य) श्रवण करने योग्य, (वाजस्य) युद्ध और ऐश्वर्य का (राजसि) राजा है। (सः) वह तू (नः) हमें (मृळ) सुखी कर। तू (महान् असि) सबसे बड़ा है।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! तू (सविता) सर्वोत्पादक होकर (सविता देवः) सबके प्रकाशक सूर्य के समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (ऊर्ध्वः) सबसे ऊंचा होकर (तिष्ठ) रह। तू (ऊर्ध्वः) सबसे ऊंचा बनकर ही (वाजस्य) ऐश्वर्य और युद्ध का (सनिता) देने, करने हारा है (यत्) इसी कारण हम (अंजिभिः) नाना विद्याओं का प्रकाश करने वाले (वाघद्भिः) विद्वान् पुरुषों से (वि ह्वयामहे) मिलकर तेरी विविध स्तुति करते हैं।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४॥

भा०—हे राजन्! तू (ऊर्ध्वः) सर्वोपरि पद पर स्थित होकर (नः) हमें (अंहसः) पाप से (नि पाहि) बचा। और (केतुना) ज्ञान तथा शासन

द्वारा (विश्वम्) समस्त (अत्रिणम्) लूट पाट कर खाने वाले दुष्ट पुरुषों को (सम् दह) अच्छी प्रकार भस्म कर। (नः) हमें (चरथाय) धर्माचरण और (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिए (ऊर्ध्वान् कृधि) उत्तम बना। (देवेषु) विद्वानों के प्रति (नः) हमारे अन्दर (दुवः) उत्तम आचरण तथा सेवा भाव आदि (विदाः) उत्पन्न करा।

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१५॥१०॥

भा०—हे (अग्ने) नायक! राजन्! हे (बृहद्-भानो) ऐश्वर्य आदि नाना प्रभाओं वाले! हे (यविष्ठ्य) हृष्ट पुष्ट, हमें (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों से (पाहि) बचा। और तू (अराव्णः) अति कृपण (धूर्त्तः) विश्वासघाती, धूर्त्त पुरुष से भी (पाहि) बचा। (रिषतः) हिंसक व्याघ्र आदि पशु और आक्रमणकारी पुरुष से (उत वा) और (जिघांसतः) हमें घात करने की इच्छा करने वाले से भी (पाहि) बचा। इति दशमो वर्गः॥

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक्।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

भा०—(घना इव) आघात करने वाले दण्ड आदि से जैसे कच्चे घड़े आदि पात्र को तोड़ दिया जाता है या हतौड़े से जैसे लोहे को पीटा जाता है वैसे ही हे (तपुर्जम्भ) शत्रुओं और दुष्टों को संताप देने वाले शस्त्रों वाले राजन्! सेनापते! (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोह करता है और (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अक्तुभिः) शस्त्रों से (अति शिशीते) बहुत अधिक सताता है ऐसे (अराव्णः) निर्दय शत्रु का (विश्वक्) सब प्रकार से (वि जहि) विनाश कर (सः) वह (रिपुः) पापी शत्रु (नः) हम पर (मा ईशत) कभी शासन न करे।

अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम्।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥

भा०—(अग्निः) राजा (कण्वाय) विद्वान् जन को (सुवीर्यम्) उत्तम बल और (सौभगम्) उत्तम ऐश्वर्य (वन्ने) प्रदान करे। (अग्निः) तेजस्वी राजा (मित्रा) मित्र जनों को (उत) और (मेध्यातिथिम्) पूज्य अतिथि को और (उपस्तुतम्) गुणों से प्रशंसित, विद्वान् पुरुष को (साता) युद्ध शिल्प आदि कार्य के अवसर पर (प्र अवत्) उनकी रक्षा करे और उनका सत्संग करे।

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः॥ १८॥

भा०—(अग्निना) नायक राजा या सभाध्यक्ष के बल पर (तुर्वशं) शीघ्रता से दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ, (यदुम्) दूसरे के धन लेने में यत्नशील और (उग्रादेवम्) भयानक पुरुषों को जीतने वाले पुरुष को (परावतः) दूर देश से भी (हवामहे) हम स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध के लिये ललकार लें। क्योंकि (दस्यवे सहः) प्रजा के नाशकारी, चोर डाकुओं को पराजित करने में समर्थ, (नववास्त्वं) नये मकान या गढ़ बनवाने वाले (बृहद्रथम्) बड़े वैभव से युक्त एवं बड़े रथ से बलवान् (तुर्वीतिम्) प्रजा के हिंसाकारी पुरुष को (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा (नयत्) दूर करे और कारागार में डाल दे।

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥ १९॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! राजन्! (मनुः) ज्ञानी पुरुष (त्वाम्) तुझको (शश्वते जनाय) अनादि प्रवाह से आने वाले मनुष्यों के हित के लिए (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप से (दधे) धारण करता है। तू (कण्वे) ज्ञानी पुरुष के आश्रय में रह कर (ऋतजातः) राष्ट्रशासन और प्रजा-पालन के धर्माचरण में कुशल एवं (उक्षितः) अभिषेचित होकर (दीदेथ)

चमक, (यं) जिससे (कृष्टयः) मनुष्य (नमस्यन्ति) आदर से नमस्कार करें।

त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥ ११ ॥

भा०—(त्वेषासः) अति दीप्ति वाले, (अमवन्तः) बलवान् , (अग्नेः) नायक राजा के (भीमासः) अति भयानक (प्रतीतये) ज्ञान के लिए (अर्चयः) आग की ज्वाला के समान दीखते हैं। हे राजन् ! तू (रक्षस्विनः) राक्षसों के सहायक (यातुमावतः) पीड़ादायक पुरुषों के स्वामी लोगों को और (विश्वे) समस्त (अत्रिणं) लूट पाट कर खाने वाले प्रजा पीड़क पुरुषों को (सं दह) भस्म कर।

[३७] कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ६–८, १२ गायत्री। ३, ६, ११, १४ निचृद् गायत्री। ५ विराड् गायत्री। १०,१५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। १३ पादनिचृद्गायत्री। पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत ॥१॥

भा०—हे (कण्वाः) अपने तेज से शत्रुओं की आंखों को झपका देने वाले वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (मारुतम्) वायुओं के सम्मिलित बल के समान शत्रु को मारने वाले समूहरूप, दलबद्ध, ऐसा (शर्धः) बल जिसके (अनवाणम्) मुकाबले पर कोई भी शत्रु न आ सके (रथेशुभम्) और जो रथ वा सेनांग के बल पर अधिक शोभाप्रद है उसको (अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार वर्णन करो, बतलाओ।

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः॥२

भा०—(ये) जो (पृषतीभिः) हृष्टपुष्ट अश्वों वाली या वाणों से युक्त सशस्त्र सेनाओं, (ऋष्टिभिः) आयुधों, (वाशीभिः) व्यक्तवाणियों और (अंजिभिः) स्पष्ट अभिव्यक्त करने वाले चिह्नों के (साकं) सहित (स्वभानवः) स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी (अजायन्त) हैं वे युद्ध में विजय को प्राप्त करते हैं।

इहेव॑ शृण्व एषां॒ कशा॒ हस्ते॑षु॒ यद्वदा॑न्। नि याम॑ञ्चि॒त्रमृ॑ञ्जते ॥३॥

भा०—(एषां) इन वायुओं और प्राणों की (हस्तेषु) हाथ पैर आदि अंगों में विद्यमान (कशाः) विकसित होनें वाली नाना चेष्टाएं (यत्) जो कुछ भी (वदान्) तत्व बतलाती हैं उसको मैं दूरदर्शी बनकर (इह एव) यहां ही इस शरीर में स्थित, यहां बैठा ही (शृण्वे) सुन लेता हूँ।

प्र वः॒ शर्धा॑य॒ घृष्व॑ये त्वे॒षद्यु॑म्नाय शु॒ष्मिणे॑। दे॒वत्तं॒ ब्रह्म॑ गायत ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोग (घृष्वये) परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न होने वाले (शर्धाय) बल वृद्धि करने और (त्वेषद्युम्नये) उज्ज्वल यश प्राप्त करने के लिये (देवत्तं) परमेश्वर द्वारा दिये (ब्रह्म) महान् वेद में ज्ञान-वचन का (गायत) गान करो।

प्र शं॑सा॒ गोष्वघ्न्यं॑ क्री॒ळं यच्छर्धो॒ मारु॑तम्। जम्भे॒ रस॑स्य वावृधे ५

भा०—(यत्) जो (मारुतम्) प्राणों का बल (गोषु) इन्द्रियों में अथवा गौ आदि पशुओं में (क्रीळं) शरीर के अंगों में चेष्टाओं को उत्पन्न करने वाला, (अघ्न्यम्) कभी नाश न होने वाला विद्यमान है, सो (जम्भे) अंगों के नाना प्रकार से झुकाने आदि कार्यों में भी प्रकट होता है वही (रसस्य) खाये हुए अन्न के बने परिपक्व रस के कारण शरीर में (वावृधे) बढ़ता है। उसको बढ़ाने का (प्र शंस) उत्तम रीति से उपदेश करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

को वो॒ वर्षि॑ष्ठ॒ आ न॑रो दि॒वश्च॒ ग्मश्च॑ धूतयः। यत्सी॒मन्तं॒ न धू॑नु॒थ ६

भा०—हे (नरः) नायक, वीरजनो! (दिवः च ग्मः च) आप आकाश और पृथिवी पर स्थित पदार्थों को (धूतयः) कंपा देने वाले वायुओं के समान आकाश जमीन को अपने बल पराक्रम से कंपा देने वाले हो। (वः) आप लोगों में से (वर्षिष्ठः कः) कौन सबसे बड़ा है (यत्) जिसके बल पर आप लोग (सीम्) सदा (अन्तम्) वायुएं जैसे वृक्ष

था वस्त्र के अग्रभाग, फुनगी या अंचरे को हिला डालते हैं वैसे शत्रुओं को (अहा धूनुथ) कंपा डालते हो।

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ७

भा०—हे वीर पुरुषो! (वः) आप लोगों के (यामाय) नियन्त्रण करने और (उग्राय मन्यवे) आप लोगों के भयकारी क्रोध को वश करने के लिये ही (मानुषः) मननशील राजा (निदध्रे) आप लोगों को अपने अधीन व्यवस्था में रखता है जिससे (पर्वतः) पर्वत के समान अचल और (गिरिः) मेघ के समान शस्त्रास्त्र वर्षण या गर्जनशील शत्रु भी (जिहीत) कांप जाता है।

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते॥८॥

भा०—(येषाम्) वायुओं के समान प्रबल जिन वीर पुरुषों के (अज्मेषु) उथल पुथल कर देने वाले (यामेषु) प्रबल प्रयाण होने पर (पृथिवी) समस्त भूगोल अर्थात् उसके वाशी प्रजाजन (जुजुर्वान्) रोग या बुढ़ापे या शत्रु के निरन्तर आक्रमणों से अति जीर्ण, (विश्पतिः इव) राजा के समान (भिया) भय से (रेजते) कांपते हैं।

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः॥९॥

भा०—(हि) जिस कारण से (एषाम्) इन वायुओं का (जानम्) उत्पत्ति स्थान, आकाश (स्थिरम्) स्थिर है इसी कारण (वयः) पक्षीगण (यत् सीम् अनु) जिस वायु के बल पर (मातुः) अन्तरिक्ष से (निः एतवे) जाने आने में समर्थ होते हैं उन वायुओं का (शवः) बल भी (द्विता) दुगुना अर्थात् महान् होता है और उनमें शब्द और स्पर्श दो गुण रहते हैं।

उदु त्य सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे १०

भा०—(त्ये) वे वायुगण, प्राणगण (अज्मेषु) अपने गमन आगमन के बलों पर ही (सूनवः) बालकों का प्रसव कराने वाले और अन्तरिक्ष में

मेघों को चलाने वाले होते हैं। ये ही (गिरः उत् अत्नत) वाणियों को उत्पन्न करते हैं ये ही (काष्ठाः उत् अत्नत) जलों को अन्तरिक्ष में उठाये रहते हैं। (वाश्राः) बछड़ों के लिए उनके प्रेम से हंभारती हुई (अभिज्ञु) मानो जानुओं की तरफ झुकती हुई गौओं के समान (यातवे) वायुगण गति करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

त्यं चिद्घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्र च्यावयन्ति यामभिः

भा०—(मिहः) वृष्टि के सेचन करने वाले पवनगण जैसे (यामभिः) अपने शीघ्र वेगों से (दीर्घम्) लम्बे, (पृथुम्) चौड़े, बड़े भारी (नपातम्) जल न गिराने वाले, (अमृध्रम्) भूमि को जल से न गीला करनेवाले मेघ के भी (प्र च्यावयन्ति) जल को गिरा देते हैं वैसे ही (मिहः) जलों के समान शरों की वर्षा करने वाले वीर गण (दीर्घम्) बड़े लम्बे, (पृथुं) विशाल (नपातम्) न गिरने वाले, (अमृध्रम्) न मारे जानेवाले, (त्यं चित् च) उस शत्रु को भी (यामभिः) अपने प्रबल आक्रमणों से (प्र च्यावयन्ति) गिरा देते हैं।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन ॥१२॥

भा०—हे (मरुतः) वायुओं और प्राणगण के समान वीरो! विद्वान् पुरुषो! (यत् वः बलम्) जो आप लोगों का बल (जनान्) प्राणियों और प्रजा पुरुषों को (अचुच्यवीतन) सन्मार्ग में चलने के लिए प्रेरित करता है वही बल (गिरीन्) मेघों को या पर्वतों को वायुओं के समान दृढ़ शत्रु को भी हिला देता है।

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३॥

भा०—(यत् ह) और जब भी (मरुतः) पवन के समान परोपकारी विद्वान्गण और वीरगण (अध्वन्) ज्ञानमार्ग से या युद्धमार्ग से (आ यन्ति) जाते हैं और (सं ब्रुवते) परस्पर वार्तालाप या ज्ञान का उपदेश

करते हैं तब (एषाम्) इनके वचनों को (कः चित्) कोई ही (शृणोति) सुनता और समझता है ।

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४॥

भा०—हे वीरो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (आशुभिः) शीघ्र जाने वाले यान आदि साधनों से (शीभम्) शीघ्र ही (प्रयात) दूर देशों तक जाओ (वः) आप लोगों को (कण्वेषु) विद्वान् मेधावी पुरुषों के अधीन (दुवः) नाना कर्तव्य कर्म (सन्ति) करने होते हैं । (तत्र) वहां ही आप लोगों को (सु मादयाध्वै) अच्छी प्रकार तृप्त और सुखी होना चाहिये ।

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥

भा०—(वः) आप लोगों के (मदाय) आनन्द लाभ के लिए, सदा तृप्त होने और सुखपूर्वक (आयुः जीवसे) जीवन व्यतीत करने के लिए (विश्वं चित्) समस्त पदार्थ (अस्ति हि स्म) सदा विद्यमान रहें । और (एषाम्) इनके ही प्राप्त (वयम् स्मसि स्म) करने के लिए हम भी पुरुषार्थ करते रहें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३८] १–१५ कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ८, ११, १३, १४, १५ गायत्री । २, ६, ७, ९, १० निचृद्गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री । ५, १२ पिपीलिकामध्या निचृत् । १४ यवमध्या विराड् गायत्री । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥१॥

भा०—(पिता) पिता (हस्तयोः) अपने हाथों में जैसे (पुत्रम् न) पुत्र को प्रेम से सुरक्षित रूप में लेता है, रक्षा करता है वैसे ही हे (वृक्तबर्हिषः) शत्रुओं को घास के समान काट गिराने हारे वीर, विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कधप्रियः) कथा, विद्योपदेश और व्यवस्थाओं के द्वारा स्वयं सन्तुष्ट होने और अन्यों को सन्तुष्ट करने हारे विद्वान् होकर (नूनं)

निश्चय से (कत् ह) कब प्रजाजन को (हस्तयोः) अपने हाथों में, अपने अधीन (दधिध्वे) धारण करोगे ?

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति

भा०—(नूनं) निश्चय से (क्व) किस स्थान पर आप लोग (वः) अपने (अर्थम्) इष्ट प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य को (गन्त) प्राप्त करते हो ? (दिवः) आकाश के समान (पृथिव्यः) पृथिवी के (अर्थम्) ऐश्वर्य को भी आप लोग (कद्) भला कब (गन्त) प्राप्त करते हो ? (गावः न) सूर्य की किरणों के समान आप लोगों की (गावः) इन्द्रियें, वाणियें और भूमियें, भूमि वासी प्रजायें (क रण्यन्ति) कहां मनोहर शब्द करती हैं ? जहां विद्वान् हों, जहां वे उत्तम वचन बोलें वहां उनका सत्संग करो।

क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो३ विश्वानि सौभगा

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे वायु के समान वैश्य गण और वीर जनो ! (वः) तुम्हारे लिये (नव्यांसि) नये से नये, (सुम्ना) सुख साधन (क्व) कहां हैं ? और आपके (सुविता) शासन तथा नाना ऐश्वर्य (क्व) कहां हैं ? (विश्वानि सौभगा क्व) और समस्त सौभाग्य, सुखप्रद ऐश्वर्य राज्य आदि कहां हैं ? जहां हों वहां से उनको प्राप्त करो।

यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात् ४

भा०—हे (पृश्निमातरः) आकाश रूप माता से उत्पन्न होने वाले वायुगण के समान (पृश्निमातरः) पृथ्वी और तेजस्वी राजा से उत्पन्न होने वाले प्रजा के वीर पुरुषो ! (यत्) यद्यपि आप लोग (मर्तासः) मरणधर्मा पुरुष (स्यातन) हो। तथापि (वः) आप लोगों का (स्तोता) उपदेष्टा नेता पुरुष (अमृतः) दीर्घजीवी और शत्रुओं से कभी नाश न होने वाला होकर रहे।

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ॥५॥१५

भा०—(यवसे) घास रहने पर (मृगः न) तृणचारी पशु जैसे सदा

हृष्ट पुष्ट और कार्य सेवा में लगने योग्य रहता है और घास आदि न मिलने पर दुर्बल और मरणासन्न तथा भार आदि उठाने के काम का भी नहीं रहता वैसे ही हे विद्वानो ! वीरो ! (वः) आप लोगों का (जरिता) मार्गोपदेष्टा नायक भी (अजोष्यः) असेव्य अर्थात् सेवा और प्रीति करने और कर्तव्य पालन करने के अयोग्य (मा भूत्) न हो। और वह (यमस्य पथा) नियन्ता के मार्ग से ही (उपगात्) जावे। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ॥६॥

भा०—(परापरा) अधिक से अधिक शत्रु रूप (निर्ऋतिः) अतिकष्टदायिनी पर सेना (दुर्हना) अति कठिनाई से मरने वाली, प्रबल होकर (नः) हमें (मा उ सु वधीत्) कभी न मारे। प्रत्युत, वह (तृष्णया) प्यास से पीड़ित होकर (पदीष्ट) भाग जाये।

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम्

भा०—(त्वेषाः) विद्युत् की दीप्ति से युक्त, (अमवन्तः) बलवान् तीव्र गति वाले (रुद्रियासः) जीवों के सुखप्रद, जीवनधार होकर जैसे वायुगण (धन्वन् चित्) अन्तरिक्ष या मरुभूमि में भी (अवाताम्) वायु से रहित अविचल (मिहम्) वृष्टि (कृण्वन्ति) करते हैं वैसे ही (सत्यम्) सचमुच ये (त्वेषाः) अति तेजस्वी, प्रतापी (अमवन्तः) बलवान्, ज्ञानी, (रुद्रियासः) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर सेनापति के सैनिक (अन्धन् चित्) धनुष के बल पर ही (अवाताम्) वायु के प्रवेश से भी रहित, वायु से भी बढ़ कर (मिहं) शर वर्षा को (कृण्वन्ति) करें।

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥८

भा०—(यत्) जब (एषां) इन वायुओं के कारण (वृष्टिः) जलवृष्टि (असर्जि) होती है तब (वाश्रा इव वत्सम्) जैसे हंभारती हुई गौ अपने

बछड़े की तरफ लपकती है और (माता वत्सं न) जैसे माता प्रेम से दूध झरते पयोधरों से बच्चे को (सिसक्ति) अपने अंगों में लगा लेती है, वैसे ही (विद्युत्) बिजली (मिमाति) शब्द करती है, (वत्सं) भूमि पर बसने वाले प्रजाजन को (सिषक्ति) प्राप्त होती और वर्षा से सींच देती है।

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥९॥

भा०—(यत्) जब ये वायुगण (पृथिवीं) पृथिवी को (वि उन्दन्ति) विशेष रूप से तरबतर कर रहे होते हैं तब (उदवाहेन) जल को धारण करने वाले (पर्जन्येन) बादल से ही (दिवा चित्) दिन के समय भी (तमः) अन्धकार (कृण्वन्ति) कर देते हैं।

अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः ॥१०।१६॥

भा०—(अध) और (मरुताम्) वायुओं और उनके समान वेग से जाने वाले वीर सैनिकों के (स्वनात्) घोष से (विश्वम्) समस्त (पार्थिवम्) पृथिवी लोक और नरपति मण्डल (सद्म) मट्टी के बने घर के समान (आ अरेजत्) कांप जाता है और (मानुषाः) साधारण मनुष्य तो (प्र अरेजत) बहुत ही अधिक कांप जाते हैं, डर जाते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेमखिद्रयामभिः ॥११॥

भा०—(मरुतः) वायुगण जैसे (अखिद्रयामभिः) अविच्छिन्न, अटूट वेगों से (चित्राः) नाना प्रकार की (रोधस्वतीः) नदियों की ओर बहते हैं वैसे ही हे (मरुतः) प्रचण्ड वेग वाले वीर सैनिको ! आप लोग (वीळुपाणिभिः) बलयुक्त हाथों से (चित्राः) अद्भुत, या चिन कर बनाई गई, या समृद्ध (रोधस्वतीः अनु) चारों तरफ से घेरने वाले परकोटों से घिरी शत्रु की पुरियों को लक्ष्य कर (अखिद्रयामभिः) अनथक चालों से (यात ईम) बढ़ते चले जाओ।

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्। सुसंस्कृता अभीशवः ॥१२॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वः) तुम्हारे (नेमयः) रथ चक्रों की धुराएं (रथाः) यान, रथ (अश्वासः) अग्नि और अश्व आदि वेग वाले वाहन (एषाम्) इन वायुगण के योग से हों और (अभीशवः) रासें, अंगुलियां और अश्व भी (सुसंस्कृताः) अच्छी प्रकार से बने, सजे हों।

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् अग्निं मित्रं न दर्शतम्॥१३

भा०—हे विद्वन् ! तू (ब्रह्मणः पतिम्) महान् वेद राशि का अध्ययन और प्रवचन द्वारा पालन करने वाले (अग्निम्) ज्ञानवान् (मित्रम्) स्नेही पुरुष को (मित्रम् न दर्शतम्) प्रिय मित्र के समान प्रेम से दर्शन करने योग्य जान कर (तना गिरा) विस्तृत व्याख्या करने वाली वाणी से (जरायै) प्रत्येक पदार्थ के गुणों के वर्णन करने के लिए (अच्छा वद) आदर से प्रार्थना कर।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम्॥१४

भा०—हे विद्वन् ! तू (श्लोकम्) वेदवाणी को (आस्ये) मुख में (मिमीहि) कर ले, उसे कण्ठस्थ कर और उसे (ततनः पर्जन्य) मेघ के समान गर्जना करते हुए दूर दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका उपदेश कर और (गायत्रम्) गायत्री छन्द में कहे (उक्थ्यम्) स्तुति युक्त वेद-वचन समूह को (गाय) स्वयं गान कर, पढ़ और पढ़ा।

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह॥१५

भा०—हे मनुष्य ! तू (त्वेषं) तेजस्वी (पनस्युम्) व्यवहार कुशल, (अर्किणम्) ज्ञानसम्पन्न, (मारुतम् गणम्) प्राणों और वायुगणों के समान उपकारी वीरों और विद्वानों के समूह को (वन्दस्व) अभिवादन कर। वे (अस्मे) हमारे (वृद्धाः) ज्ञान और आयु में वृद्ध होकर (इह) इस लोक में (असन्) हितकारी हों। इति सप्तदशो वर्गः॥

[३९] कण्वो घौर ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ५, ९ पथ्या-बृहती॥ २, ७ उपरिष्ट द्विराड बृहती। २, ८, १० विराट् सतः पंक्तिः। ४, ६ निचृत्सतः पंक्तिः। ३ अनुष्टुप्। दशर्चं सूक्तम्॥

प्र य॒दि॒त्था प॑रा॒वत॑: शो॒चिर्न मान॒मस्य॑थ ।
कस्य॒ क्रत्वा॑ मरुत॒: कस्य॒ वर्प॑सा॒ कं या॑थ॒ कं ह॑ धूतयः ॥१॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो ! एवं वायु के समान तीव्र वेग वाले बलवान् वीर सैनिको ! एवं व्यापारकुशल पुरुषो ! (शोचिनः) जैसे सूर्य दूर देश से अपने तेज को फेंकता है वैसे ही (परावतः) दूर दूर के देश से भी आकर तुम (यत् इत्था) जो इस प्रकार (मानम्) प्रजा और शत्रुजन को स्तब्ध या चकित कर देने वाले बल या शस्त्रास्त्रसमूह को (अस्यथ) फेंकते हो तो बतलाओ वह (कस्य) किसके क्रिया-सामर्थ्य से और (कस्य वर्पसा) किसके भौतिक बल से फेंकते हो और तुम लोग जो वायु के समान तीव्र वेग से जा रहे हो तो (कं याथ) किसको लक्ष्य करके जाते हो और हे (धूतयः) वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले आप लोग (कं ह) भला किसको अपने बल से कंपाना चाहते हो ।

स्थि॒रा व॑: स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑ ।
यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिन॑: ॥२॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (आयुधा) युद्ध करने के हथियार, आग्नेय, वायव्य आदि अस्त्र शस्त्र (पराणुदे) शत्रुओं को दूर हटा देने वाले संग्राम के लिए (स्थिरा) स्थिर हों और (प्रतिष्कभे) शत्रुओं को रोकने और मुकाबले पर डट जाने के लिए वे हथियार (वीळू) बलवान्, दृढ़, मजबूत (सन्तु) हों। हे वीर पुरुषो ! (युष्माकम्) तुम लोगों की (तविषी) बलवती सेना (पनीयसी) अति व्यवहारकुशल, (अस्तु) हो। (मायिनः) कुटिल (मर्त्यस्य) मनुष्य के (मा) वैसे दृढ़ शस्त्रास्त्र और प्रबल, कुशल सेना न हो ।

परा॑ ह॒ यत्स्थि॒रं ह॒थ नरो॑ व॒र्तय॑था गु॒रु ।
वि या॑थन व॒निन॑: पृथि॒व्या व्याशा॑: पर्व॑तानाम् ॥३॥

१२ प्र.

भा०—हे (नरः) वीर पुरुषो ! (यत्) जिस कारण (स्थिरम्) वृक्ष के समान स्थिर शत्रु को भी प्रचण्ड वायु के समान (परा हथ) आघात करके उखाड़ देते हो और (गुरु) पर्वत के समान भारी पदार्थ को भी (परावर्त्तयथ) पलट देते हो इस कारण तुम (वनिनः) रश्मियों से युक्त प्रचण्ड वायु के समान तीव्र एवं वन के समान सेना संघ बना कर चलने वाले आप सब (पृथिव्याः) पृथिवी, समस्थल और (पर्वतानाम्) पर्वतों के (आशाः) समस्त दिशाओं को (वि याथन) विविध प्रकारों से पहुँचो और उन पर आक्रमण करो।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४॥

भा०—हे (रिशादसः) हिंसक शत्रुओं को नाश करने वाले वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् पुरुषो ! (नू चित्) यदि शीघ्र ही (युष्माकम् तविषी) आप लोगों की सेना (तना युजा) विस्तृत बल और सेनापति के साथ (आधृषे) शत्रुओं के दबाने में समर्थ (अस्तु) हो जाय तो निश्चय से हे (रुद्रासः) शत्रुओं को रुलाने वाले वीरो ! (वः शत्रुः) तुम दोनों का कोई भी शत्रु (अधि द्यवि, अधि भूम्याम्) आकाश और पृथिवी दोनों में भी (न विविदे) नहीं पाया जाय।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥५॥१८॥

भा०—हे (मरुतः) प्रबल वेग से जाने वाले वीर पुरुषो ! (पर्वतान्) पर्वतों और मेघों को जैसे वायुगण (प्र वेपयन्ति) बड़े बल से हिला देते हैं और वे जैसे (वनस्पतीन्) वट, गूलर आदि बड़े वृक्षों को (वि विञ्चन्ति) प्रबल झकोरों से तोड़ फोड़ कर पृथक् २ कर देते हैं वैसे ही आप लोग भी (देवासः) युद्ध विजय की कामना करते हुए (दुर्मदाः इव) मदमत्त पुरुषों या हाथियों के समान किसी की भी पर्वाह न करते हुए

(पर्वतान्) पर्वत के समान दृढ़ और मेघ के समान शरवर्षाने वाले शत्रुओं को भी (वेपयन्ति) खूब कंपा डालो और (वनस्पतीन्) वट आदि के समान बड़ी २ प्रजाओं और सेनाओं को आश्रय देने वाले राजाओं को भी (वि विञ्चन्ति) तोड़ फोड़ कर भेद नीति से पृथक् २ कर दो और (सर्वया विशा) अपनी समस्त आश्रित प्रजा के साथ (प्रो आरत्) आगे बढ़ो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

भा०—हे वीर पुरुषो! आप लोग (रथेषु) अपने विनोद के लिये बने रथों में या रथारोही महारथियों के अधीन (पृषतीः) देह में चेतनता रस और आनन्द का सेचन करने वाली, रक्त नाड़ियों के समान और वर्षाकालिक वायुओं के साथ जुड़ी धारा वर्षाने वाली मेघमालाओं के समान (पृषतीः) भरी पीठ वाली या वेगों से चलने वाली घोड़ियों को और शत्रु पर शस्त्र वर्षण करने वाली सेनाओं को (अयुग्ध्वम्) नियुक्त करो। आप लोगों में (रोहितः) वायुओं को सूर्य के समान (रोहितः) रक्त वर्ण की उज्ज्वल पोशाक पहनने वाला एवं उदय को प्राप्त होने वाला, राजा (प्रष्टिः) पीठ से बोझा उठाने में समर्थ बलवान् पशु के समान राष्ट्र-भार या सेनापति पद को उठाने वाला एवं (प्रष्टिः) जिज्ञासा के कार्य में कुशल, मतिमान् पुरुष (वहति) उस पद को धारण करे। हे वीर जनो! (वः) आप लोगों के (यामाय) प्रयाण के विषय की बातें (पृथिवी चित्) दुनियां भर में (अश्रोत्) सुनाई देवें और (मानुषाः) सर्व साधारण मनुष्य सुन कर भय खावें।

आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७॥

भा०—हे (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने हारे वीर पुरुषो, नैष्टिक

ब्रह्मचारी जनो! (वः) आप लोगों के (कम्) सुखजनक (अवः) रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य को (मक्षू) अति शीघ्र (तनाय) अपनी सन्तति और विद्या ऐश्वर्य के प्रसारक विद्वान् पुरुषों के लिये (आवृणीमहे) सब प्रकार से चाहते हैं। (यथा) जैसे (पुरा) पहले आप लोग अपने (अवसा) बल से जाते रहे वैसे ही अब भी (बिभ्युषे) संकटों में पड़े (नः) हमारे में (कण्वाय) विद्वान, उत्तम पुरुषों की (अवसा) रक्षा के लिये (नूनं) अवश्य (गन्त) जाया करो।

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो और वीर सैनिको! (यः) जो (अभ्वः) शक्तिमान् न होकर, निर्बल या सुहृद् भाव से न रहने वाला शत्रु (युष्मेषितः) आप लोगों को विजय करना अभीष्ट है और (मर्त्येषितः) साधारण मनुष्य भी जिसे जीतना चाहते हैं, वह यदि (नः) हमें (ईषते) मारे तो (तम्) उसको (शवसा) अपने बल और (ओजसा) पराक्रम से और (युष्माकाभिः) अपनी (ऊतिभिः) रक्षा, आक्रमण आदि करने वाली सेनाओं से (वि युयोत) हमसे दूर रखो।

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥९॥

भा०—(विद्युतः) बिजलियां (न) जैसे (वृष्टिम्) वर्षा को पूर्ण तरह बरसा देती हैं वैसे ही हे (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान से युक्त (प्रयज्यवः) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के ज्ञाता (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी (नः) हमारे (कण्वम्) प्रज्ञावान् शिष्य के प्रति (असामिभिः ऊतिभिः) अपने सम्पूर्ण ज्ञानों और ब्रह्मचर्य आदि पालनकारी शिक्षाओं सहित (आ गन्त) आओ और (असामि) पूर्ण ज्ञान और सामर्थ्य (दद) प्रदान करो।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। नू चित्स दभ्यते जनः॥१॥

भा०—(यम्) जिस प्रमुख पुरुष को (वरुणः) सभापति या दुष्टों के वारणकारी, (मित्रः) सबका मित्र, आचार्य, (अर्यमा) न्यायकारी, धर्माध्यक्ष ये सब (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न जन सावधान होकर (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (जनः) वह पुरुष (नू चित्) कभी भी (दभ्यते) किसी से नहीं मारा जा सके।

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते ॥२॥

भा०—(यं मर्त्यं) जिस पुरुष को (बाहुता एव) बाहुएं जैसे शरीर की रक्षा करती हैं वैसे ही अनेक शत्रुओं को रोकने वाली बाहुएं तथा अनेक प्रबल सेना दल (पि प्रति) पालन करते हैं और (रिषः) घातक शत्रु के आक्रमण से (पान्ति) बचाते हैं वह (अरिष्टः) किसी प्रकार भी पीड़ित न होकर (सर्वः) सब अंगों सहित (एधते) बढ़ता है।

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः॥३॥

भा०—(राजानः) प्रजा में विशेष मान से चमकने वाले राजा गण (एषाम्) इन शत्रुओं के (दुर्गा) दुर्गम गढ़ों को, (द्विषः) शत्रु के (पुरः) नगरों और उनमें रहने वाले निवासियों को (वि वि घ्नन्ति) विविध उपायों से विनष्ट करते हैं और (दुरिता) दुःखदायी कारणों को (तिरः नियन्ति) दूर करते हैं।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः॥४॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालक विद्वानो एवं अधिकारी पुरुषो! (ऋतं यते) सत्य ज्ञान और धर्मशास्त्र तथा वेदानुकूल चलने वाले का (पन्थाः) मार्ग सदा (सुगः) अति सुगम और (अनृक्षरः) कांटों और बाधा से रहित होता है। (अत्र) इस मार्ग में हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोगों के लिये भी (न अवखादः अस्ति) किसी प्रकार का कोई भय नहीं।

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत् ५

भा०—हे (आदित्या) सूर्य के समान सत् मार्गों के प्रकाशक विद्वान् पुरुषो! हे (नरः) नेता पुरुषो! आप लोग (यम्) जिस (यज्ञं) प्रजा पालन के कार्य को (ऋजुना) सरल, न्यायानुकूल (पथा) मार्ग से (नयथ) ले जाते हो (सः) वह राजा और राज्य कार्य (वः धीतये) आप लोगों के ऐश्वर्य के लिये (प्र नशत्) प्राप्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥६

भा०—(सः) वह विद्वान् (मर्त्यः) मनुष्य (अस्तृतः) किसी प्रकार भी पीड़ित और व्यथित न होकर (विश्वम्) सब प्रकार के (रत्नं) रमण योग्य, (वसु) ऐश्वर्य (उत) और (त्मना) अपने ही प्राण और बल से उत्पन्न (तोकम्) पुत्र को भी (अच्छा) भली प्रकार (गच्छति) प्राप्त होता है।

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य ७

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो! (मित्रस्य) सबके सुहृद् (अर्यम्णः) न्यायाधीश के (स्तोमं) गुणों का वर्णन या पदाधिकार का हम (कथा) किस प्रकार से (राधाम) वर्णन करें। (वरुणस्य) क्योंकि राजा का (प्सरः) भोगने योग्य ऐश्वर्य या स्वरूप भी (महि) बड़ा है।

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे ८

भा०—हे धार्मिक पुरुषो! और प्रिय प्रजाजनो! मैं प्रजाजन, राजा और मैं भी (वः घ्नन्तम्) आप लोगों को मारने और पीड़ा देने वाले से (प्रति मा वोचे) कभी प्रेम से बात न करूं और (शपन्तं) व्यर्थ निन्दा बचन कहने वाले से भी (मा प्रति वोचे) प्रेम से न बोलूं और (व) आप लोगों के (देवयन्तम्) उत्तम गुणों और विजयी पुरुषों को चाहने वाले मित्र वर्ग की (सुम्नैः इद्) सुखजनक उत्तम पदार्थों द्वारा ही मैं (आ विवासे) सेवा करूं।

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (अमर्त्य) जरामरण से रहित! (जातवेदः) समस्त पदार्थों के जाननेहारे ऐश्वर्यवन्! समस्त जीवों के स्वामिन्! तू (दाशुषे) अपने को समर्पण कर देनेवाले साधक को (उषसः) उषाकाल में उत्पन्न होने वाले, (विवस्वत्) सूर्य के समान प्रकाशवाले, (चित्रम्), अद्भुत, (राधः) ऐश्वर्य के समान (उषसः) पापों के जला देने वाली विशोका प्रज्ञा के उदय कालों में (विवस्वत् = वि-वसु-वत्) विशेष प्राणों के सामर्थ्यों से युक्त, (चित्रम्) चेतना से युक्त, (राधः) साधना का बल (आवह) प्राप्त करा। (त्वम्) तू (अद्य) आज भी (उषर्बुधः) प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में जागने वाले एवं उस विशोका प्रज्ञा के द्वारा विशेष ज्ञान सम्पन्न होने वाले, (देवान्) विद्वान् ज्ञाननिष्ठ पुरुषों को भी (आवह) अपने में धारण कर।

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान्! विद्वन्! जैसे अग्नि अपने बीच में पड़े आहुति के पदार्थों को सूक्ष्म रूप से अति गुणकारी करके दूर देश तक पहुँचाता है वैसे ही तू भी (हव्यवाहनः) ले जाने और ले आने योग्य वृत्तान्तों और संदेशों को सूक्ष्म रूप से प्रजा के हित के लिए ले जानेहारा है। इसीलिए तू (जुष्टः) सबका प्रीतिपात्र और (दूतः) शत्रुओं का तापक होने से 'दूत' (असि) होने योग्य है। तू (अध्वराणाम्) न मारने योग्य पुरुषों में (रथीः) रथवान् नायक के समान सर्वप्रमुख है। तू (अश्विभ्याम्) दिन रात्रि और (उषसा सजूः) प्रातः उषा काल इनसे युक्त होकर अग्नि जैसे बलकारी अन्न प्रदान करता है वैसे ही हे विद्वन्! तू भी (अश्विभ्याम्) राजा और प्रजा-वर्ग दोनों या दो अश्वारोही और (उषसा) तेजस्वी उषा के समान विद्या और प्रभाव से (सजूः) युक्त होकर (अस्मे) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य बल से युक्त (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र और (श्रवः) विख्यात यश को (धेहि) प्रदान कर।

अ॒द्या दू॒तं वृ॑णीमहे॒ वसु॑म॒ग्निं पु॑रुप्रि॒यम् ।
धू॒मके॑तुं॒ भाऋ॑जीकं॒ व्यु॑ष्टिषु य॒ज्ञाना॑मध्वर॒श्रिय॑म् ॥ ३ ॥

भा०—(अद्य) आज, सदा हम लोग (पुरुप्रियम्) बहुतों को संतुष्ट करने और प्रिय लगनेवाले, (वसुम्) विद्या और गुणों के आश्रय, (अग्निम्) तेजस्वी, (धूमकेतुम्) अग्नि धूम के समान शत्रु को कम्पित करने वाले एवं प्रभावशाली ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त (व्युष्टिषु) प्रातःकाल की वेलाओं में जैसे अग्नि और सूर्य विशेष दीप्तियों से युक्त होकर क्रम से उत्तरोत्तर दीप्तियों में बढ़ता ही जाता है वैसे ही (व्युष्टिषु) अपने राष्ट्र की विविध कामना और तेजस्वी कार्यों के अवसर पर विशेष सौम्य एवं उत्तरोत्तर बढ़ने वाली कान्ति को प्राप्त करने वाले (यज्ञानां) यज्ञों में (अध्वरश्रियम्) अश्वमेध आदि यज्ञों के विशेष आश्रयरूप अग्नि के समान ही (यज्ञानां) समस्त प्रजा के संघों और राजाओं के बीच में (अध्वरश्रियम्) अवध्य होने के पद को विशेषरूप से प्राप्त होनेवाले (दूतम्) उत्तम संदेशों के ले जाने हारे दूतरूप से (वृणीमहे) हम चुनें।

श्रेष्ठं॒ यवि॑ष्ठ॒मति॑थिं॒ स्वा॑हुतं॒ जुष्टं॒ जना॑य दा॒शुषे॑ ।
दे॒वाँ अच्छा॒ यात॑वे जा॒तवे॑दसम॒ग्निमी॑ळे॒ व्यु॑ष्टिषु ॥ ४ ॥

भा०—(व्युष्टिषु) प्रातःकाल के अवसरों में जैसे (अग्निम् ईळे) हम लोग परमेश्वर की यज्ञों में उपासना करते हैं वैसे ही हम लोग (श्रेष्ठम्) सबसे उत्तम (यविष्ठम्) सबसे अधिक बलशाली (अतिथिम्) अतिथि के समान पूजनीय, (जुष्टम्) सबके सेवा करने योग्य (स्वाहुतम्) अच्छी प्रकार आदर से बुलाये जाने योग्य (दाशुषे जनाय) वेतन, आज्ञा आदि के देने वाले राजा के हित के लिए (देवान्) विजीगिषु राजाओं, विद्वानों और वीर पुरुषों के प्रति (यातवे) जाने के योग्य (जातवेदसम्) वर्तमान कार्यों और व्यवस्थाओं को भली प्रकार जानने वाले (अग्निम्) ज्ञानी पुरुष का (व्युष्टिषु) नाना प्रकार की इच्छा और कामनाओं की

पूर्त्ति के निमित्त (अच्छ ईळे) मैं प्रधान पुरुष नियुक्त करूं, भेजूं ।

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (अमृत) अविनाशिन् ! (भोजन) सबके पालक ! (मियेध्य) दुःखों के नाशक ! (हव्यवाहन) ग्रहण योग्य अन्न, रत्न आदि पदार्थों के धारक ! (त्रातारम्) सबका त्राण करने वाले (अमृतं) कभी न मरने हारे, (यजिष्ठं) उपासना योग्य (त्वाम्) तेरी (अहम्) मैं (स्तविष्यामि) स्तुति करूंगा। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) युवा पुरुष के समान कभी क्षीण न होने वाले बलवीर्य से युक्त, मनोहर ! हे (नमस्य) नमस्कार करने योग्य पूज्य ! परमेश्वर और राजन् ! तू (सुशंसः) उत्तम स्तुतियों, अनुशासनों व शिक्षाओं से युक्त (मधुजिह्वः) मनन योग्य ज्ञानों को जिह्वा पर धारण करने वाला, मधुर वाणी बोलने वाला, (स्वाहुतः) उत्तम सत्कार से सत्कृत होकर (प्रस्कण्वस्य) भली प्रकार शत्रुओं के नाशक पुरुष को (जीवसे) जीवन के लिए (आयुः) दीर्घायु (प्रतिरन्) बढ़ाता हुआ (दैव्यं) विद्वानों में श्रेष्ठ, एवं वीर पुरुषों में उत्तम जन की रक्षा कर और (गृणते) स्तुति करने वाले को (बोधि) ज्ञान प्रदान कर ।

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! परमेश्वर ! (विश्ववेदसं) समस्त ऐश्वर्य के स्वामी (होतारम्) सब सुखों के दाता, (त्वा) तुझको (हि) ही

(विशः) समस्त प्रजाएं (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करतीं एवं तेजस्वी बनाती हैं। हे (पुरुहूत) बहुत सी प्रजाओं से स्तुति योग्य! तू (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानवाले (देवान्) विद्वानों और विजयेच्छु पुरुषों को (इह) इस राष्ट्र में (द्रवत्) अतिशीघ्र (आवह) प्राप्त करा।

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

भा०—हे (स्वध्वर) उत्तम अहिंसनीय, उषाकाल के समान शत्रुरूप अन्धकार के नाशक! (कण्वासः) बुद्धिमान्, शत्रुहन्ता और (सुतसोमासः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (हव्यवाहं) देने योग्य पदार्थों को धारण करने वाले (त्वा) तुझको, (सवितारम्) सूर्य के समान तेजस्वी (अश्विना) सूर्य चन्द्र से युक्त दिन रात्रि के समान प्रकाशक शत्रुसंतापक और प्रजा को शान्तिदायक (भगं) ऐश्वर्यवान् (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी रूप में (इन्धते) प्रदीप्त करते हैं।

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! तू (अध्वराणाम्) यज्ञों के पालक अग्नि के समान हिंसादि से रहित प्रजापालन के कार्यों में और शत्रु से न मारे जाने वाले वीर पुरुषों के बीच उन सबका (पतिः) स्वामी और (विशाम्) अधीन प्रजाओं का (दूतः) संदेशहर या प्रमुख (असि) है। तू (सोमपीतये) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को आनन्दप्रद अन्न आदि ओषधिरसों के समान पान करने या उपभोग करने के लिए (स्वर्दृशः) सुख, ज्ञान और मोक्षानन्द के देखने वाले (उषर्बुधः) प्रातःकाल अग्नि और सूर्य के समान चेतने वाले, अप्रमादी, (देवान्) विद्वान् और वीर पुरुषों को (अद्य) आज, सदा (आवह) धारण कर।

अग्ने॑ पू॒र्वा अ॒नूषसो॑ विभावसो दी॒देथ॑ वि॒श्वद॑र्शतः ।
असि॒ ग्रामे॑ष्ववि॒ता पु॒रोहि॑तोऽसि य॒ज्ञेषु॒ मानु॑षः ॥१०॥२९॥

भा०—हे (विभावसो) विशेष प्रकाश से लोकों को आच्छादित करने वाले (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! तू (पूर्वाः उषसः अनु) पूर्व के उषाकालों या दिनों के समान ही (विश्व दर्शतः) समस्त संसार में दर्शनीय होकर (दीदेथ) प्रकाशित हो । तू (ग्रामेषु) प्रजा के निवास योग्य स्थानों और संग्रामों में (अविता असि) ज्ञानदाता और रक्षक हो । (यज्ञेषु) प्रजापलन आदि के उत्तम कार्यों में (मानुषः) सब मनुष्यों का हितकारी होकर (पुरः हितः असि) प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश और सत्यासत्य के विवेक के लिए साक्षीरूप से उत्तम पद पर स्थापित (असि) किया जाय । इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

नि त्वा॑ य॒ज्ञस्य॒ साध॑नमग्ने॒ होता॑रमृ॒त्विज॑म् ।
म॒नु॒ष्वद्दे॑व धीमहि॒ प्रचे॑तसं जी॒रं दू॒तमम॑र्त्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (त्वा) तुझको हम लोग (यज्ञस्य) सुसंगत ब्रह्माण्ड, जगत् के (साधनम्) बनाने, पालने और आश्रय देनेहारा, (होतारम्) समस्त सुखों का देनेहारा, (ऋत्विजम्) शरीर में प्राणों का स्थापन करनेवाला, सूर्य के समान ऋतुवत् कल्पों २ में प्रलय और सृष्टि करने वाला, (प्रचेतसम्) उत्कृष्ट ज्ञान वाला, (अमर्त्यम्) अविनाशी, (जीरम्) सबका संहार करनेवाला, (दूतम्) सर्वोपास्य (मनुष्वत्) सामर्थ्य से सम्पन्न (नि धीमहि) मानते हैं ।

यद्दे॒वानां॑ मित्रमहः पु॒रोहि॒तोऽन्त॑रो॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ।
सिन्धो॑रिव॒ प्रस्व॑नितास ऊ॒र्मयो॒ऽग्नेर्भ्रा॑जन्ते अ॒र्चयः॑ ॥ १२ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) सूर्य समान महान् तेज और सामर्थ्य वाले तथा (मित्रमहः) स्नेह करने वाले सुहृदों में से सबसे अधिक पूजनीय परमेश्वर ! तू (देवानां) पृथिवी आदि लोकों और विद्वानों के बीच (यत्) ही

(पुरः हितः) सबके साक्षी रूप से विद्यमान सर्वोच्च पद पर स्थापित, (अन्तरः) सबके अन्तःकरणों में व्यापक होकर (दूत्यम् यासि) सर्वोपास्य पद को प्राप्त है। (सिन्धोः) महान् सागर के (प्र-स्वनितासः) भारी गर्जना करने वाले (ऊर्मयः) तरंग जैसे उमड़ते हैं और (अग्नेः) आग की (अर्चयः) ज्वालाएं जैसे (भ्राजन्ते) भड़का करती हैं वैसे ही (सिन्धोः) सबको चलाने हारे, शक्ति और ज्ञान के अगाध सागर तेरे में से ही ये सब तरंगें उमड़तीं और प्रकाशस्वरूप तेरी ही समस्त ये ज्योतिज्वालाएं चमक रही हैं।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (श्रुत्कर्ण) कानों से उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक सुनने वाले विद्वन्! राजन्! तू (सयावभिः) तेरे साथ सदा जाने वाले, (वह्निभिः) राज्य के कार्यों को अपने ऊपर धारण करने वाले, (देवैः) विद्वानों और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ (श्रुधि) प्रजा के व्यवहारों को श्रवण कर। (अध्वरम्) अंहिसनीय, तिरस्कार न करने योग्य, उच्च आदरणीय पद को प्राप्त होकर (मित्रः) सबका स्नेही, (अर्यमा) न्यायाधीश और (प्रातर्यावाणः) प्रातःकाल ही अपने कार्य पर दत्त चित्त होकर सबसे पूर्व उपस्थित होने वाले विद्वान् जन (बर्हिषि) आदर योग्य, बड़े २ पदों और आसनों पर (आसीदन्तु) विराजें।

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

भा०—(सुदानव) उत्तम रीति से देने वाले (ऋतावृधः) सत्य बल से बढ़ने वाले (अग्निजिह्वाः) विद्वान् पुरुषों को अपना मुख बनाने वाले (मरुतः) प्रजा के मनुष्य (स्तोमम्) न्यायपूर्वक कहे आज्ञा वचनों को (शृण्वन्तु) श्रवण करें। वे और (वरुणः) स्वयं प्रजाओं द्वारा वरण किया

गया, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश, (धृतव्रतः) नियमों को धारण करने वाला, (अश्विभ्याम्) दो मुख्य विद्वानों और (उषसा) दुष्ट पापी पुरुषों को संताप देने वाली पोलिस अथवा तत्वप्रकाश करने वाली न्यायसभा के (सजूः) साथ मिल कर (सोमम्) कूट पीस कर निकले औषधि रस के समान वादविवाद द्वारा निर्णीत तत्व को (पिबतु) ग्रहण करे। इति त्रिंशो वर्गः॥

[४५] प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ १—१० अग्निर्देवा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक्। ५ उष्णिक्। २, ३, ७, ८ अनुष्टुप्। ४ निचृदनुष्टुप्। ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम्।

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (त्वम्) तू (इह) इस संसार में या राष्ट्र में (वसून्) बसने वाले, २४ वर्ष के ब्रह्मचारी, (रुद्रान्) प्राणों के संयमी, ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी (उत) और (आदित्यान्) ४८ वर्ष के विद्वानों को अथवा (वसून् रुद्रान् आदित्यान्) ब्राह्मणों, क्षत्रियों और व्यापारी वैश्य गणों को (यज) एकत्र कर और हे राजन् तू (सु अध्वरः) उत्तम यज्ञशील और (मनुजातं) मननशील, आचार्य आदि की शिक्षा प्राप्त करके शास्त्रनिष्णात हुए, (घृतप्रुषम्) घृत दुग्धादि के साथ अन्नादि पोषक पदार्थों के सेवन करने वाले तथा (घृतप्रुषम्) विधिपूर्वक जलों और ज्ञानों द्वारा स्नात हुए, (जनं) पुरुष को भी (यज) ऐश्वर्य प्रदान कर।

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! राजन्! (विचेतसः) विविध प्रकार के शास्त्रों के ज्ञाता (देवाः) विद्वान् आचार्यगण भी (दाशुषे) भक्तिपूर्वक दान देने वाले शिष्य के लिए ही (श्रुष्टिवानः) उत्तम अन्न आदि को प्राप्त

करें। हे (रोहिदश्व) रक्तवर्ण के अश्वों या अश्वारोही सैनिकों के स्वामिन्! हे (गिर्वणः) स्तुति वाणियों के पात्र! तू ही (तान्) उन (त्रिंशतम्) तीस प्रकार के विद्वानों को (आ वह) प्राप्त कर।

प्रि॒य॒मे॒ध॒वद॑त्रि॒वज्जात॑वेदो विरू॒प॒वत्।
अ॒ङ्गि॒र॒स्वन्म॑हिव्रत॒ प्रस्क॑ण्वस्य श्रुधी॒ हव॑म् ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) विद्वन्! राजन्! हे (महिव्रत) महान् कर्त्तव्य करने वाले! (प्रियमेधवत्) मनोहर बुद्धि वाले पुरुष के समान (अत्रिवत्) तीनों तापों से रहित, सुखयुक्त पुरुष के समान, (विरूपवत्) नाना रूपों को धारण करने वाले बहुश्रुत के समान और (अंगिरस्वत्) अंगों में बलकारक प्राण के समान होकर (प्रस्कण्वस्य) उत्कृष्ट विद्वान् पुरुषों के (हवम्) उपादेय ज्ञानयुक्त वचन को (श्रुधि) श्रवण कर।

महि॑केरव ऊ॒तये॑ प्रि॒यमे॑धा अहूषत।
राज॑न्तमध्व॒राणा॑म॒ग्निं शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॑ ॥ ४ ॥

भा०—(महिकेरवः) बड़े बड़े कार्यों को करने वाले विद्वान् एवं शिल्पीगण और (प्रियमेधाः) मनोहर बुद्धियों से युक्त पुरुष भी (अध्वराणाम्) अति प्रबल राजाओं के बीच में (अग्नि) प्रतापी और (शुक्रेण) निष्पाप, अति उज्वल (शोचिषा) तेज से (राजन्तम्) चमकने वाले प्रतापी धर्मात्मा पुरुष को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (अहूषत) प्रधान राजा रूप से स्वीकार करें।

घृता॑हवन सन्त्ये॒मा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिरः॑।
याभि॒ः कण्व॑स्य सू॒नवो॒ हव॑न्ते॒ऽव॑से त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(घृताहवन) घृत की आहुति लेकर अग्नि जैसे चमकता है वैसे ही ज्ञान और तेज की आहुति से देदीप्यमान हे विद्वन्! हे (सन्त्य) सुख प्राप्ति के कार्यों और साधनों में कुशल विद्वन्! प्रभो! (याभिः)

जिन वेदवाणियों से (कण्वस्य) विद्वान् पुरुषों के (सूनवः) पुत्र और शिष्यगण (अवसे) रक्षा और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये (त्वा हवन्ते) तेरी स्तुति करते हैं। तू (इमाः) इन (गिरः) वेदवाणियों का (श्रुधि) श्रवण कर और अन्यों को श्रवण करा। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम् हवन्ते विक्षु जन्तवः।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ६ ॥

भा०—हे (चित्रश्रवस्तम) अद्भुत ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्यों के धारक ऐश्वर्यवन् स्वामिन्! हे (पुरुप्रिय) सब जनों को भरपूर तृप्त करने हारे! राजन्! विद्वन्! प्रभो! (हव्याय वोढवे) हवि पदार्थ को समस्त वायु, जल आदि पदार्थों तक प्राप्त कराने के लिये जैसे प्रज्वलित अग्नि को प्राप्त करते हैं और रथादि को उठा ले चलने के लिये जैसे अश्व को प्राप्त करते हैं वैसे ही (हव्याय वोढवे) ग्रहणयोग्य, उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये (शोचिष्केशम्) दीप्तियुक्त केशों के समान किरण समूहों से युक्त, सूर्य के समान प्रतापी (त्वाम्) तुझको (विक्षु) प्रजा जनों में (जन्तवः) सभी प्राणी (हवन्ते) प्राप्त करते हैं।

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! (दिविष्टिषु) यज्ञों में जैसे अग्नि का आधान करते हैं वैसे ही (होतारम्) उत्तम ज्ञानों, ऐश्वर्यों और सुखों के देने वाले (ऋत्विजम्) प्रतिऋतु में यज्ञ करने वाले, एवं राजसभा के सदस्यों को एकत्र करने वाले (वसुवित्तमम्) सबसे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (श्रुतकर्णम्) समस्त विद्याओं और प्रजा के कष्टों को सुनने वाले, (सप्रथस्तमम्) अति विस्तृत ज्ञान और विद्या से युक्त (त्वा) तुझ विद्वान् और शक्तिमान् को (दिविष्टिषु) सभी उत्तम ज्ञानों और कामनाओं को प्राप्त करने के लिये (नि दधिरे) कोष के समान सुरक्षित रूप से रखते और स्थापित करते हैं।

आ त्वा विप्रा॑ अचुच्यवुः सुतसो॑मा अ॒भि प्रय॑ः ।
बृहद्भा बिभ्र॑तो ह॒विरग्ने॒ मर्त्ता॑य दा॒शुषे॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! जैसे विद्वान् लोग (दाशुषे मर्त्ताय) दक्षिणा के दाता यजमान के लिये (हविः बिभ्रतः) हवि ग्रहण करके (सुतसोमाः विप्राः) सोम सेवन करने वाले ऋत्विग् जन अग्नि को प्राप्त होते हैं वैसे ही (विप्राः) विविध पदार्थों, ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् पुरुष (सुतसोमाः) राष्ट्र को ऐश्वर्यमय बना कर (मर्त्ताय दाशुषे) मरणशील, करप्रद या भृति के देने वाले प्रजा पुरुषों के हित के लिये (हविः) ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रयः) उत्तम अन्न और ज्ञान को (अभि) प्राप्त करने का लक्ष्य रख कर (बृहद्-भाः) बड़े तेजस्वी (त्वां) तुझ को शिष्य बनकर (अचुच्यवुः) प्राप्त हों।

प्रा॒त॒र्याव्ण॑ः सहस्कृत सो॒म॒पेया॑य सन्त्य ।
इ॒हाद्य दैव्यं॒ जनं॑ ब॒र्हिरा सा॑दया वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) बल को सम्पादन करने वाले! हे (सन्त्य) सज्जनों में कुशल! हे (वसो) श्रेष्ठ गुणों में बसने वाले विद्वन्! (इह) यहां (अद्य) इस काल में (प्रातर्याव्णः) प्रातः ही आकर उपस्थित होने वाले शिष्य गणों और (दैव्यं जनम्) विद्वानों के प्रिय पुरुष को भी (सोमपेयाय) ओषधि रसपान के लिये वैद्य जैसे रोगियों को आदर से बैठाता है वैसे ही (बर्हिः) आसन पर (आसादय) बैठा।

अ॒र्वाञ्चं॒ दैव्यं॒ जन॒मग्ने॒ यक्ष्व स॒हूति॑भिः ।
अ॒यं सोम॑ः सुदानव॒स्तं पा॑त ति॒रो अ॑ह्न्यम् ॥ १० ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सुदानवः) ऐश्वर्यों के देने हारे, दानशील पुरुषो! एवं ज्ञानदाता विद्वान् पुरुषो! (अयम्) यह (सोमः) ज्ञान का पिपासु, दीक्षा को प्राप्त शिष्य है। (तिरः अह्न्यम्) एक दिन के उपवास व्रत कर चुकने के अनन्तर प्राप्त हुए (तम्) उसको (पात) तुम पालन

करो। हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (अर्वाञ्चम्) अपने अभिमुख आये हुए (दैव्यं) विद्वानों के हितकारी (जनम्) जन को (हूतिभिः) आदर-पूर्वक सम्बोधन वचनों द्वारा (यक्ष्व) अपने साथ मिला लो। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[४६] १-१५ प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १० विराड्गायत्री। ३, ११, ६, १२, १४ गायत्री। ५, ७, ६, १३, १५, २, ४, ८ निचृद्गायत्री ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् १

भा०—(दिवः प्रिया) सूर्य की प्रिय, (अपूर्व्या) अपूर्व, दिन में सबसे पूर्व प्रकट होने वाली (उषा) उषा जैसे प्रकट होकर अपने उत्पादक दिन रात्रि तथा सूर्य के उत्तम तेज का प्रकाश करती है वैसे ही (एषो, उषा) यह अति कामना योग्य (दिवः) अपने अभिलषित कामना करने वाले पति को (प्रिया) प्रिय लगने हारी (अपूर्व्या) सबसे प्रथम उसी को प्राप्त होकर (वि उच्छति) विविध प्रकार से उत्तम गुणों को प्रकट करती है। हे (अश्विना) परस्पर प्रेम से युक्त स्त्री पुरुषो ! सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान (वाम्) तुम दोनों के मैं (बृहत्) बहुत ही अधिक (स्तुषे) गुणों का वर्णन तथा ज्ञान का उपदेश करूं।

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा २॥

भा०—(या) जो ये दोनों (दस्रा) एक दूसरे के दुःखों को नाश करने वाले या दर्शनीय (सिन्धु मातरा) सूर्य और चन्द्र जैसे महान् आकाश से उत्पन्न होते हैं वैसे ही सिन्धु के समान गम्भीर माता पिताओं से, रत्नों के समान उत्पन्न हुए, (मनोतरा) परस्पर एक से एक बढ़िया चित्त वाले (रयीणां) ऐश्वर्यों के (देवा) दाता, (धिया) उद्योग और प्रज्ञा के बल से (सुविदा) ऐश्वर्य या ज्ञान को प्राप्त करने वाले होकर रहो।

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात् ३

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) रमण करने का साधन (विभिः) पक्षियों के साथ (विष्टपि अधि) अन्तरिक्ष में भी (पतात्) जावे, (जूर्णायां) वृद्धावस्था में वर्त्तमान (ककुहासः) बड़े बूढ़े आदमी (वाम् वच्यन्ते) तुम दोनों को उपदेश करें।

ह॒विषा॑ जा॒रो अ॒पां पिप॑र्ति॒ पपु॑रिर्नरा । पि॒ता कुट॑स्य चर्ष॒णिः ॥४॥

भा०—(अपां जारः) किरणों के ताप से जलों को सूक्ष्मरूप से खींच लेने वाला सूर्य जैसे (पपुरिः) सबका पालक होकर (पिता) पिता रूप से (हविषा) वृद्धि से अन्न उपजाकर उससे (पिपर्ति) सबका पालन करता है और (कुटस्य चर्षणिः) कुटिल, टेढ़े मेढ़े मार्गों को प्रकाश से दिखाता भी है वैसे ही हे (नरा) गृहस्थ के बीच विद्यमान स्त्री पुरुषो! आप दोनों (हविषा) अन्न द्वारा प्रजाओं का पालन करो। (कुटस्य) कुटिल मार्ग के देखने वाले होकर, (पिता) बालक के माता पिता के समान होकर, सन्तानों का पालन करो।

आ॒दा॒रो वां॑ मती॒नां नास॑त्या मतवचसा । पा॒तं सोम॑स्य धृष्णु॒या ॥५॥ ३३॥

भा०—हे (नासत्या) सत्याचरण करने वाले, हे (मतवचसा) अभिमत, ज्ञानयुक्त वाणी के बोलने वालो ! (वां) आप दोनों का, वीर रथी और सारथी के समान (मतीनां) मननशील पुरुषों के बीच (आदारः) शत्रुओं का नाशक प्रभाव और आदर हो। उससे और (धृष्णुया) शत्रुओं का घर्षण या पराजय करनेवाले बड़े सामर्थ्य से आप दोनों (सोमस्य) ऐश्वर्य और शरीरस्थ वीर्य तथा उत्तम सन्तति का (पातम्) पालन करो। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

या नः॒ पीप॑रदश्विना॒ ज्योति॑ष्मती॒ तम॑स्ति॒रः । ताम॒स्मे रा॑साथा॒मिष॑म् ॥६॥

भा०—हे (अश्विना) दिन और रात्रि के समान परस्पर अनुरक्त स्त्री पुरुषो ! (या) जो अन्न या उत्तम अभिलाषा, (ज्योतिष्मती) दिन रात्रि के बीच सन्धि वेला में उत्पन्न होने वाली प्रभातवेला उषा के

समान (ज्योतिष्मती) कान्तिवाली चित्ताकर्षक होकर हमें (नः) हमारे (तमः) शोक और दरिद्रयादि के चिन्ता रूप अन्धकार से (तिरः पीपरत्) पार उतार दे (ताम्) उस (इषम्) इच्छा, उद्योग, चेष्टा या अन्नादि ऐश्वर्य वृद्धि की (अस्मे) हमें (रसाथाम्) प्रदान करो।

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम् ७॥

भा०—हे (अश्विना) निपुण स्त्री पुरुषो ! एवं शिल्पकला में चतुर पुरुषो ! आप दोनों (नः) हमारे (मतीनां) बुद्धिमान् मनुष्यों को (पाराय) परले तट पर (गन्तवे) पहुँचाने के लिए (नावा) जल में नौका से (आयातम्) उपस्थित रहो और स्थल में (रथम्) रथ को (युञ्जाथाम्) बैल और घोड़े जोड़ा करो।

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः ॥८॥

भा०—हे शिल्प में निष्णात स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों के (दिवः) आकाश के (तीर्थे) और (सिन्धूनां) बहने वाले महा समुद्रों के (तीर्थे) पार जाने के लिए (पृथु) बड़ा भारी (अरित्रम्) यान हो और पृथिवी पर जाने के लिए (रथः) उत्तम रथ हो। जिसमें (धिया) उत्तम कौशल से (इन्दवः) द्रुतगति करने वाले चक्रादि (दिवः) अग्नि आदि पदार्थ और (इन्दवः) जलों को युक्ति से लगाया जावे। दया०।

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ९॥

भा०—हे (कण्वासः) ज्ञानी स्त्री पुरुषो ! (सिन्धूनां पदे) समुद्रों के परम गन्तव्य, गहरे स्थान में रक्खे (वसु) वास योग्य भूमि ऐश्वर्य के समान एवं (दिव) सूर्य की किरणों के समान तुम दोनों सुन्दर, उज्ज्वल रूप या ऐश्वर्य को भी (कुह) किस स्थान पर (धित्सथः) रखा चाहते हो ?

अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः १०॥

भा०—जब (सूर्यः) सूर्य का प्रकाश (हिरण्यं प्रति) सुवर्ण के समान

धातु के बने दीप्ति युक्त पदार्थ पर पड़ता है तब (भाः) दीप्ति (अंशवे) किरणपुंज के रूप में प्रकट होती हैं और (असितः) काठ आदि के आश्रय रूप बन्धन से रहित, अग्नि (जिह्वया) ज्वाला रूप से (वि अख्यत्) प्रकट होता है। इस स्थल पर 'हिरण्य' प्रक्षेपक नतोदर दर्पण है। 'अंशु' का अर्थ फोकस है। जब सूर्य नतोदरदर्पण पर पड़ता है तब सूर्य की दीप्ति फोकस पर झुकती है। वहां अग्नि प्रकट होता है। वह अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों में बद्ध न होने से 'असित' कहाता है। वह तीव्र ज्वाला या 'जिह्वा' या किरणों के शंकु के रूप में ही होता है। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः।

पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥११॥

भा०—(ऋतस्य) समुद्र के अपार जल के भी (साधुया) अच्छी प्रकार (पारम् एतवे) पार जाने के लिए (पन्थाः अभूत् उ) मार्ग अवश्य है और (दिवः) प्रकाश और सूर्य का भी (स्रुतिः) गमन करने का मार्ग (वि) विविध उपायों से (अदर्शि) देखा जाता है। १वें के मन्त्र ९ में (सिन्धूनां पदे वसु) समुद्रों के बीच में बसने लायक स्थान कहां है? सूर्य और चन्द्र समुद्र के अतिरिक्त अपना रूप कहां रखते हैं? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट हुआ। (अदर्शि) देखा जा सकता है।

तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२॥

भा०—(जरिता) विद्वान् पुरुष, (मदे) आनन्द और सुख को प्राप्त करने के लिए (सोमस्य) प्रेरक शक्ति, बल या ऐश्वर्य को (पिप्रतोः) पूरण करने वाले (अश्विनोः) सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि, जल और उनके समान ज्ञानयुक्त शिल्पियों के (तत् तत् इत् अवः) उन उन, नाना प्रकार के विज्ञानों और क्रिया सामर्थ्यों को (प्रति भूषति) प्रत्येक पदार्थ में ही देखना चाहता है।

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम्

भा०—(विवस्वति) सूर्य के आधार पर (वावसाना) रहने वाले

दिन और रात्रि जैसे (सोमस्य पीत्या) जल और वायु के पान, या उपभोग द्वारा (शम्भू) शान्ति सुखप्रद होते हैं वैसे ही (विवस्वति) विशेष ब्रह्मचर्यादि के पालनार्थ रहने योग्य आचार्य के अधीन (वावसाना) नित्य नियम से रहने वाले स्त्री और पुरुष, कन्या और कुमार दोनों (सोमस्य) वीर्य के (पीत्या) पालन और (गिरा) वेदवाणी के अभ्यास द्वारा (मनुष्वत्) ज्ञान वाले होकर जन साधारण को (शम्भू) शान्तिदायक एवं कल्याणकारी सौम्य होकर (आ गतम्) घरों को आवें।

युवो॒रु॒षा अनु॒ श्रियं॒ परि॑ज्मनोरु॒पाच॑रत्। ऋता॑वना वनथो अ॒क्तुभिः॑॥१४॥

भा०—(युवोः) बराबर व्यतीत होने वाले दिन और रात्रि के बीच (श्रियम् अनु उषा) जैसे शोभाकर उषा आती है वैसे ही (परिज्मनोः) समस्त देशों में यात्रा करने वाले (युवोः) तुम दोनों की (श्रियम् अनुम्) राज्यसम्पदा के अनुरूप उसको बढ़ाने वाली ही (उषाः) कामना या तेज (उप अचरत्) तुम दोनों को प्राप्त हो। तुम दोनों (ऋता) सत्य व्यवहार वाले होकर (अक्तुभिः) बहुत दिनों तक (श्रियम् वनथ) सम्पदा का भोग करो।

उ॒भा पि॑बतमश्विनो॒भा नः॒ शर्म॑ यच्छतम्। अ॒वि॒द्रि॒याभि॑रू॒तिभिः॑॥१५॥

भा०—हे (अश्विना) रथी और सारथी के समान एक दूसरे के अधीन राजा प्रजाजनो! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो! स्त्री पुरुषो! (उभा) आप दोनों ओषधि रस के समान ऐश्वर्य का परिमित (पिबतम्) भोग करो और (उभा) तुम दोनों (नः) हमें (अविद्रियाभिः) आनन्दित और दृढ़ (ऊतिभिः) रक्षा के उपायों से (नः शर्म) सुख (यच्छतम्) प्रदान करो। इति पंचत्रिंशो वर्गः॥ इति तृतीयोऽध्यायः।

अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

[४७] प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ५ निचृत्पथ्या बृहती। ३, ७ पथ्या बृहती। ९ विराट् पथ्या बृहती। २, ६, ८ निचृत्सतः पंक्तिः। ४, १० सतः पंक्तिः॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्नयं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे (ऋतावृधौ) सत्य व्यवहार से बढ़ने वाले, (वां) तुम दोनों का (अयं सोमः) यह शिष्य (सुतः) पुत्र के समान है। एवं हे (अश्विना) आचार्य और उपदेशको! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो! तथा राजा और पुरोहितो! (अयं सोमः) यह राष्ट्र राष्ट्रपति को (सुतः) अभिषेक किया गया है। वह पुत्र, शिष्य और राष्ट्रपति (मधुत्तमः) उत्तम ओषधि रस के समान मधुरभाषी हो। (तं) उसको (पिबतम्) स्वीकार करो और (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिए (रत्नानि) रत्नादि पदार्थ (धत्तम्) प्रदान करो।

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥

भा०—हे (अश्विना) अग्नि और जल दोनों के समान परस्पर उपकारक स्त्री पुरुषो! एवं सभा, सेना के अध्यक्षो! आप दोनों (त्रिबन्धुरेण) तीन प्रकार से बंधे, (त्रिवृता) तीनों प्रकार के शिष्यों से बने अथवा आकाश, स्थल और जल तीनों स्थानों पर चलने हारे (सुपेशसा) उत्तम सुवर्ण आदि धातु से जड़े, (रथेन) रथ से (यातम्) यात्रा किया करो और (कण्वासः) विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों को (ब्रह्म) वेदज्ञान का उपदेश करें। (अध्वरे) यज्ञ और प्रजापालन के कार्यों में तुम दोनों (तेषां) उन विद्वानों के (हवम्) स्तुति वचन और आदरपूर्वक आमन्त्रण को (सु श्रृणुतम्) अच्छी प्रकार श्रवण करो।

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) पूर्वोक्त स्त्री पुरुषो! सभासेनाध्यक्षो! (मधुमत्तमम्) सुखप्रद पदार्थों से युक्त (सोमम्) ऐश्वर्य को (ऋतावृधा)

सत्य से बढ़ानेहारे होकर आप दोनों (पातम्) ओषधि रस के समान गुणकारी, सुखप्रद रूप में सेवन करो। (अथ) और (अद्य) आज के समान सदा (दस्रा) दुःखों के नाशक होकर (वसु बिभ्रता) राष्ट्र के प्रजा-जन का पालन पोषण करते हुए तुम दोनों (रथे) रथ पर बैठकर (दाश्वांसम्) दानशील राजा तथा करप्रद प्रजा पुरुष को (उप गच्छतम्) प्राप्त होवो।

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) पूर्वोक्त सभा-सेनापतियो! हे (विश्ववेदसा) समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामियो! आप दोनों (त्रिसधस्थे) तीनों समान कोटि के उच्च स्थानों पर स्थित, (बर्हिषि) प्रजाजन पर (मध्वा) मधुर ऐश्वर्य या ज्ञान से (यज्ञं) प्रजापति या राष्ट्र को (मिमिक्षतम्) संयुक्त करो। (सुतसोमाः) सबके प्रेरक राजा का अभिषेक करने वाले (कण्वासः) विद्वान् पुरुष (अभिद्यवः) सब प्रकार से तेजस्वी होकर (युवां) तुम दोनों को (हवन्ते) स्वीकार करें, तुम पर अनुग्रह करें।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना।
ताभिः ष्वस्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र के व्यापक अधिकार वाले, सभा सेना-ध्यक्षो! हे (शुभस्पती) उत्तम गुणों के पालक, हे (ऋतावृधा) सत्या-चरण से बढ़ने वालो! (युवम्) तुम दोनों (याभिः) जिन (अभिष्टिभिः) उत्तम कामनाओं और प्रेरित होने वाली या संचालित सेनाओं से (कण्वम्) विद्वान् पुरुषों की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार से रक्षा करते हो (ताभिः) उन से ही (अस्मान्) हम सामान्य प्रजाजनों की भी (सु-अवतम्) सुख पूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करो और जैसे युद्ध के रथी, सारथी दोनों अपने आज्ञा देने वाले सेना प्राप्ति की रक्षा करते हैं वैसे ही (सोमम्

पातम्) ऐश्वर्य का भोग करो । इति प्रथमो वर्गः ॥

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्रा) शत्रुहन्ता ! (अश्विनौ) राष्ट्र में व्यापक अधिकार वालो ! आप दोनों (सुदासे) उत्तम दास आदि भृत्यों से युक्त स्वामी के अधीन रहकर (रथे वसु बिभ्रता) नाना वासोपयोगी ऐश्वर्यों को अपने रथ में रख कर (पृक्षः) पुष्टि के देने वाले अन्न को (वहतम्) प्राप्त कराओ और (समुद्रात्) समुद्र (उत) और (दिवः) आकाश दोनों मार्गों से (पुरुस्पृहम्) बहुतसी प्रजाओं से चाहने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को (अस्मे) हमें (परि धत्तम्) दो ।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने हारो ! राष्ट्र के दो अधिकारियो (यत्) चाहे तुम दोनों (परावति) दूर देश में (स्थः) हो और (यद् वा) चाहे (तुर्वशे अधि) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के अभिलाषी प्रजाजनों के ऊपर (अधि स्थः) शासन करते होवो, तो भी (अतः) इसी कारण (सुवृता) उत्तम गति वाले (रथेन) रथ से (सूर्यस्य रश्मिभिः साकम्) सूर्य की किरणों के साथ २ ही (नः आगतम्) हमारे पास आओ ।

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥८॥

भा०—हे (नरा) नेता पुरुषो ! रथी और सारथी ! (वाम्) तुम दोनों के (सप्तयः) अश्वगण (अध्वरश्रियः) शत्रुओं से न मारे जाने वाले राजा की शोभाओं और (सवना इत्) नाना ऐश्वर्यों को भी (उप वहन्तु)

प्राप्त करावें। तुम दोनों (सुकृते) उत्तम धर्माचरण और न्याय के करने वाले और (सुदावने) उत्तम दानशील राजा के लिये (इषं) प्रेरणा योग्य सेना और शस्त्रास्त्र समूह को (पृञ्चन्ता) संगठित करते हुए (बर्हिः) प्रधान नायक पद पर (आसीदतम्) आकर विराजो।

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (नासत्या) सत्य मार्ग प्रवर्त्तक आप दोनों (दाशुषे) ऐश्वर्य को देने वाले राजा के (मध्वः) मधुर (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य को ओषधि रस के समान उपभोग के लिये (येन) जिस रथ से (शश्वत्) सदा से (वसु) स्थायी ऐश्वर्य, प्रजा के बसाने वाले राष्ट्र को (ऊहथुः) प्राप्त कराते हो (तेन) उस ही (सूर्यत्वचा) सबके प्रेरक, आज्ञापक राजा को, शरीर या आत्मा को त्वचा के समान सुरक्षित रखने वाले (रथेन) रथ से (गतम्) आया जाया करो।

उक्थेभिरर्वागवसे पुरुवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१०॥२॥

भा०—हे सभापति और सेनापति ! एवं रथी, सारथी ! तुम दोनों को हे (पुरुवसु) अति ऐश्वर्यों के स्वामियो ! हम प्रजाजन (अवसे) ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये (उक्थेभिः) उत्तम वचनों, (अर्कैः च) आदर सत्कार के पदार्थों और उपचारों से (नि ह्वयामहे) निरन्तर बुलाते हैं। आप लोग (कण्वानां प्रिये सदसि) वीर पुरुषों की सेना और विद्वान् पुरुषों की प्रिय राजसभा दोनों स्थानों पर (शश्वत्) सदा (सोमम्) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का (पपथुः) पालन करो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४८] प्रस्कण्व ऋषिः ॥ उषा देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ७, ९ विराट् पथ्या बृहती। ५, ११, १३ निचृद् पथ्या बृहती च। १२ बृहती। १५ पथ्या बृहती।

४, ६, १४ विराट् सतः पंक्तिः । २, १०, १६ निचृत्सतः पंक्तिः । ८ पंक्तिः ।
षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न होने के कारण सूर्य की कन्या के समान, (दिवः दुहितः) आकाश को प्रकाश से पूर्ण करने वाली प्रभात वेला के समान (दिवः) ज्ञानों और गुणों से प्रकाशमान, पिता माता की कन्या के समान (उषः) हे उषः ! समस्त पापों के जला देने वाली ! एवं हे (उषः) कामना करने वाली ! तू (वामेन सह) चाहने योग्य, उत्तम गुणों वाले पुरुष के साथ युक्त होकर (नः) हमारे बीच में (वि उच्छ) अपने गुणों को प्रकाशित कर । हे (विभावरि) विशेष दीप्तियों से युक्त उषा के समान विचित्र भावों और गुणों से युक्त ! हे (देवि) दानशीले ! तू (बृहता द्युम्नेन) बड़े तेज, कान्ति या अन्नादि भोग्य सम्पत्ति से और (राया) गौ आदि पशु ऐश्वर्य से (दास्वती) उत्तम अन्न वस्त्र आदि नाना पदार्थों के देने वाली हो ।

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभातवेले ! उसके समान सुभ दर्शन और प्रेम से युक्त स्त्री ! राष्ट्र के पापों को जला देने वाली राज्य-संस्थे ! (वस्तवे) सुख से निवास करने के लिये (अश्वावतीः) अश्वों, अश्वारोहियों से युक्त सेना और (गोमतीः) गौओं आदि पशु से युक्त सम्पदाएं और (विश्व-सुविदः) समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करने वाली भूमियां (भूरि) बहुत अधिक संख्या में (च्यवन्त) प्राप्त की जावें । इस हेतु तू (मा प्रति) मुझे (सूनृताः) उत्तम ज्ञानों से पूर्ण वाणियों, आज्ञाओं का (उत् ईरय) उपदेश कर और (मघोनाम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुषों के (राधः) ऐश्वर्य (चोद) प्राप्त करा।

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

भा०—(उषाः) जब प्रभात वेला (उवास) व्यापती है तब वह (देवी) प्रकाश वाली होकर (अगात् च नु) सब पदार्थों को प्रकट करती है। वह ही (रथानाम् जीरा) सब रथों या देहों में वेग देने वाली है। और (ये) जो (श्रवस्यवः) धन की इच्छा करने वाले बड़े व्यापारी लोग हैं वे भी (अस्याः आचरणेषु) इसके आगमनों के अवसरों पर (समुद्रे) समुद्र में अपने (दध्रिरे) जहाजों को काबू करते हैं। (न) वैसे ही (श्रवस्यवः) ज्ञान की कामना करने वाले योगीजन (अस्याः आचरणेषु) इसके आगमनों के प्रभात कालों में (समुद्रे) अनेक आत्मानंद रसों के बहाने वाले परमेश्वर और आत्मा में (दध्रिरे) धारणा द्वारा अपने आपको स्थापित करते हैं।

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्वं एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभातवेले! (ये सूरयः) जो सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष हैं, वे (ते यामेषु) तेरे आगमन के कालों में (दानाय) अपने आत्मा के बन्धनों को काट देने के लिए (मनः) अपने चित्त को (प्र युञ्जते) योग समाधि में लगाते हैं। (अत्र अह) इस ही अवसर पर (एषां नृणाम्) इन मनुष्यों के बीच जो (तत्) उस परमेश्वर के नाम और स्वरूप का (गृणाति) स्वयं उच्चारण करता और अन्यों को उपदेश करता है वह (कण्वतमः) बहुत ही बुद्धिमान विद्वान् होता है।

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(घ) निश्चय से (उषा) प्रभातवेला भी (योषा इव) स्त्री के समान ही (सूनरी) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली है। स्त्री (प्रभु-

ञ्जती) जैसे उत्तम उत्तम भोग प्रदान करती हुई नियमादि का पालन करती हुई (आयाति) प्राप्त होती है वैसे ही उषा भी (प्रभुञ्जती) उत्तम सुख प्रदान कराती हुई और उत्तम नियमों का पालन कराती हुई आती है और जैसे स्त्री (जरयन्ती) पुरुष के साथ ही वृद्धावस्था तक आयु व्यतीत करती हुई (वृजनं) गमन योग्य मार्ग को (पद्वत् ईयते) दोनों चरणों से चलती है वैसे ही उषा भी (जरयन्ती) प्रतिदिन प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई (पद्वत् ईयते) मानो पग पग धरती हुई प्राप्त होती है। जैसे स्त्री घर की तथा अन्न की रक्षा के लिए (पक्षिणः) पक्षियों को (उत्पातयति) उड़ाती है वैसे ही उषा भी अपने आगमन पर वृक्ष पर बैठे पक्षियों को जगा जगाकर आहार के लिए उड़ाती है। इति तृतीयो वर्गः ॥

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥ ६ ॥

भा०—(वाजिनीवती) अश्वों की सेना से युक्त संग्रामनेत्री स्त्री जैसे (समनं) संग्राम को (वि सृजती) विविध प्रकारों से जाती है और (वाजिनीवती) नाना ऐश्वर्यों से युक्त सौभाग्यवती नायिका, नववधू जैसे (समनं) पति के संग लाभ के निमित्त (वि सृजती) विविध मार्गों से जाती है, वैसे ही (या) जो उषा प्रभातवेला भी (समनं वि सृजती) दिन और रात्रि के संगम को दूर करती है, (वाजिनीवती अर्थिनः विसृजती) और जैसे वह ऐश्वर्यवती स्त्री धन और अन्न के याचकों को उनके अभीष्ट पदार्थ प्रदान करती है और युद्ध-कुशल स्त्री जैसे (अर्थिनः वि) अर्थनीति में कुशल युद्धार्थी शत्रुओं को भी विमुख कर देती है वैसे ही उषा भी (अर्थिनः वि) स्तुति द्वारा प्रार्थनाशील पुरुषों को विविध मार्गों से प्रेरित करती है। (ओदती पदं न वेति) जैसे युद्धकुशला स्त्री देश को रक्त से गीला करती हुई आगे बढ़ती है और जैसे नववधू (ओदती) अंचल को आंसुओं से गीला करती हुई पति-गृह को प्राप्त होती है वैसे ही यह

उषा भी ओस से भूलोक को गीला करती हुई आती है और (व्युष्टौ पतिवांसः वयः नकिः आसते) युद्ध कुशला सेना या स्त्री के विशेष शत्रुदाहकारी संतापक या उग्र हो जाने पर पक्षियों के समान भगोड़े शत्रु कभी कहीं ठहरते ।

एषाऽयुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

भा०— (इयं) यह (उषा) प्रभातकाल की सूर्य-प्रभा जैसे (परावतः) दूर वर्त्तमान (सूर्यस्य) सूर्य के (उदयनात् अधि) उदय से पूर्व ही (शतं-रथेभिः) सैकड़ों मनोहर किरणों से (सुभगा) सुखपूर्वक सेवन योग्य होकर (मानुषान् वियाति) मनुष्यों को प्राप्त होती है वैसे ही (एषा-सुभगा) यह पितृगृह के कल्याण से युक्त सुभगा नववधू (सूर्यस्य उदयनाद् अधि) सूर्योदय के पूर्व ही (परावतः) दूर देश में स्थित अपने पितृगृह से (अयुक्त) अपने रथ में घोड़े जोड़कर आवे ।

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥८॥

भा०—(दिवः दुहिता) प्रकाशमान सूर्य की मानो कन्या के समान तेज से ही समस्त आकाश को पूर देने वाली (उषा) प्रभातवेला जैसे (मघोनी) तेजस्विनी होकर (द्वेषः) द्वेष करने वाले चोर आदि को (स्रिधः) और हिंसक जन्तुओं को (अप) दूर करती हुई (उच्छत्) प्रकट होती है और वह (सूनरी) उत्तम दिन की नेत्री (विश्वं जगत् चक्षसे) समस्त जगत् को नयनों द्वारा दिखाने के लिए (ज्योतिः कृणोति) संसार में प्रकाश कर देती है और (अस्या चक्षसे विश्वं नानाम) उसके देखते ही समस्त संसार प्रेम से ईश्वर को नमस्कार करता है वैसे ही (दिवः दुहिता) तेजस्वी माता पिता की पुत्री 'सूर्या', अथवा कामना करने हारे पति के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली (मघोनी) ऐश्वर्यों

और सौभाग्यों से युक्त होकर (उषा) पति की कामना करती हुई (द्वेषः) द्वेष करने वाले शत्रुओं को और (स्रिधः) हिंसकों को भी (अप उच्छत) दूर करे और वह (सूनरी = सू-नरी) उत्तम महिला हो। (विश्वं जगत् अस्याः नानाम) समस्त जगत् उसका विनय से आदर करे।

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

भा०—हे (उषः) उषः ! प्रभातवेले ! हे (दिवः दुहितः) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न मानों उसकी कन्या के समान ! एवं प्रकाश से आकाश को पूर्ण करने वाली ! तू (भानुना) पूर्व दिशा में सूर्य और पश्चिम दिशा में स्थित चन्द्र दोनों से (आ भाहि) प्रकाशित हो और (दिविष्टिषु) सूर्य के आगमन कालों में (वि उच्छन्ती) विशेषरूप से प्रकट होती हुई (अस्मभ्यं) हमारे लिये (भूरि सौभगं) बहुत उत्तम ऐश्वर्य (आवहन्ती) प्राप्त कराती रह। ऐसे ही हे (उषः) कान्तिमति कमनीये ! कन्ये ! हे (दिवः दुहितः) ज्ञानवान् पुरुष की पुत्री ! और प्रियतम पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी ! तू (भानुना) सूर्य के समान तेजस्वी और (चन्द्रेण) चन्द्र के समान आह्लादक पति के साथ संगत होकर (आ वि भाहि) सर्वत्र प्रकाशित हो और (दिविष्टिषु) कामनाओं को पूर्ण करने के अवसरों में (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ (व्युच्छन्ती) उत्तम गुणों को प्रकट करती हुई (भूरि) बहुत अधिक (सौभगं) ऐश्वर्य को (आवहन्ती) धारण करती हुई हमें प्राप्त हो।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

भा०—हे (सूनरि) उत्तम रीति से दिन या सूर्य को लाने वाली नायिकास्वरूप उषः ! (यत्) जब तू (वि उच्छसि) विशेष तेज से प्रकट होती है तब (त्वे) तुझ पर ही (विश्वस्य हि प्राणनम्) समस्त

जगत् का प्राण लेना और (जीवनम्) जीवन व्यतीत करना निर्भर है। हे (चित्रामघे) अद्भुत तेज से युक्त ! हे (विभावरि) विशेष दीप्ति वाली ! (सा) वह तू (बृहता रथेन) बड़े भारी वेगवान् आदित्य से युक्त होकर हमारी (हवम्) ईश्वर स्तुति का (श्रुधि) श्रवण कर। वैसे ही हे (सूनरि) उत्तम नायिके ! नववधू ! (यत् वि उच्छसि) जब तू उत्तम गुणों को प्रकट करे तो (त्वे विश्वस्य प्राणनं जीवनं) तेरे आधार पर समस्त घर भर का सुख से प्राण लेना, आजीविकादि निर्भर हो। वह तू हे (विभावरि) विशेष कान्तियुक्ते ! हे (चित्रमघे) अद्भुत धनधान्यवति ! (बृहता रथेन) बड़े सुन्दर स्वरूप या बड़े भारी रथ के समान भार वहन में समर्थ पति या गृहस्थ रूप रथ के साथ युक्त होकर (हवम् श्रुधि) ग्रहण योग्य बड़ों के वचनों को आदर से सुन। इति चतुर्थो वर्गः॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति कमनीये कन्ये ! (यः) जो अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल (चित्रः) अद्भुत आश्चर्यजनक (मानुषे जने) मनुष्यों के हित के लिये है। उस (वाजं) अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को तू (वंस्व) प्राप्त कर। (तेन) उससे हे स्त्री ! तू (सुकृतः) उत्तम पुण्यवान्, (अध्वरान्) न हिंसा करने योग्य उन पूज्य पुरुषों को (आवह) प्राप्त कर, (ये) जो (वह्नयः) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश को धारण करने हारे (त्वा उप गृणन्ति) तेरे प्रति उपदेश करते हैं।

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

भा०—हे (उषः) उषा के समान उज्वल कान्तिमति कन्ये ! (अन्तरिक्षात्) आकाश से जैसे प्रभात वेला, (सोमपीतये) उत्तम वायु

जल और औषधि रसों के पान करने के लिये (विश्वान् देवान् आवहति) समस्त सूर्य की किरणों और दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है वैसे ही गृहस्थ में (सोमपीतये) जल, अन्न आदि उत्तम पदार्थ गार्हस्थ सुखों के उपभोग के लिये (अन्तरिक्षात्) भीतर के अन्तःकरण से तू (विश्वान् देवान्) समस्त उत्तम गुणों को (आ वह) धारण कर । हे (उषः) पति की इच्छा करने हारी ! तू (सा) वह (अस्मासु) हम में भी (गोमत्) पशु आदि सम्पत्ति, सुन्दर वाणी और इन्द्रियों के बल से युक्त (अश्वावत्) वेग वाले अग्नि आदि यानों और अश्व आदि पशुओं से सम्पन्न (उक्थम्) प्रशंसा योग्य (सुवीर्यम्) उत्तम बल के देने वाले (वाजम्) ऐश्वर्य को (धाः) धारण कर ।

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३॥

भा०—(यस्याः) जिसकी प्रातः कालीन उषा के समान (रुशन्तः) दीप्तियुक्त एवं अन्धकार को नाश करने वाली (अर्चयः) किरणों के समान (रुशन्तः अर्चयः) पापों को नाश करने वाले, उज्वल (भद्राः) कल्याणकारी गुण, (प्रति अदृक्षत) प्रत्यक्ष रूप से दीखते हों, (सा) वह (उषा) पाप को नाश करने वाली, कान्तिमती कन्या (सुपेशसम्) उत्तम सुवर्णादि से युक्त सुन्दर रूप वाले, (विश्ववारम्) सबके मन को हरने वाले, (सुग्म्यम्) सुखजनक, (रयिम्) सौभाग्य को (नः ददातु) हमें प्रदान करे ।

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कमनीये ! उज्वल गुणों वाली स्त्री ! (ये चित् हि) जो भी (पूर्वे ऋषयः) पूर्व के विद्वान् लोग (ऊतये) ज्ञान आदि प्राप्त करने और (अवसे) गृहस्थ और व्रतादि के

पालन करने के लिये (त्वाम्) तुझको (जुहुरे) उपदेश करते हैं (सा) वह तू (नः) हमारे (स्तोमान्) उपदेश समूहों को (अभि गृणीहि) स्वयं और अन्यों को उपदेश कर, और (शोचिषा) प्रकाश, तेज (शुक्रेण) शुद्ध कर्म और (राधसा) धनैश्वर्य से युक्त हो।

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५॥

भा०—हे (उषः) उषा के समान कान्तिमति, तेजस्विनि स्त्री! (यत्) जैसे वह उषा (भानुना) सूर्य के प्रकाश से (दिवः द्वारौ) आकाश के दोनों द्वार, पूर्व और पश्चिम के आने जाने के मार्गों को (नि ऋणवः) प्राप्त होती है वैसे ही तू भी (भानुना) सूर्य के प्रकाश से और अपने गुण प्रकाश से (द्वारौ) ज्ञानवान् पुरुषों के आने जाने के मार्गों को (वि ऋणवः) खोल कर और (नः) हमें (अवृकम्) हिंसक प्राणी सर्पादि से रहित, (पृथु) विशाल, (छर्दिः) घर और (गोमतीः) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न (इषः) ऐश्वर्य को (प्र प्र यच्छतात्) खूब प्रदान किया कर।

सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६॥५॥

भा०—हे (उषः) उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारी विदुषी स्त्री! तू (नः) हमें (बृहता) बड़े परिणाम वाले (विश्वपेशसा) नाना प्रकारों के (राया) ऐश्वर्य से (नः) हमारी (सं मिमिक्ष्व) वृद्धि कर और (इळाभिः) उत्तम वाणियों, भूमियों, अन्न सम्पदाओं से (सं मिमिक्ष्व) हमें बढ़ा। (विश्वतुरा) समस्त शत्रुओं के नाशक एवं सेवकों को शीघ्र से शीघ्र कार्य कराने में समर्थ (द्युम्नेन) धन और प्रकाश से युक्त कर। हे (महि) अति पूजनीये! हे (वाजिनीवती) उत्तम

क्रिया और ज्ञान से युक्त ! तू (वाजैः) संग्रामों, ऐश्वर्यों और अन्नों से भी (सं मिमिक्ष्व) बढ़ा । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[४९] प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

उषो॑ भ॒द्रेभि॒रा ग॑हि दि॒वश्चि॑द्रोच॒नादधि॑ ।
वह॑न्त्वरु॒णप्स॑व॒ उप॑ त्वा सो॒मिनो॑ गृ॒हम् ॥ १ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभातवेला के समान सबको प्रिय लगने वाली कन्ये ! तू (भद्रेभिः) कल्याणकारी गुणों के सहित (रोचनात् दिवः चित्) उज्वल सूर्य से उषा के समान, ज्ञानी कुल से (आगहि) हमें प्राप्त हो और (अरुणप्सवः) जलों के सोखने वाले लाल रंग के किरण जैसे उषा को लाते हैं वैसे ही हे विदुषि कन्ये ! (त्वा) तुझको (अरुणप्सवः) लाल वर्ण के घोड़े (सोमिनः) ऐश्वर्यवान् बलवीर्य से युक्त ब्रह्मचारी, प्रिय पति के (गृहम् उप वहन्तु) घर तक सुखपूर्वक आवें ।

सु॒पेश॑सं सु॒खं रथं॒ यम॒ध्यस्था॑ उष॒स्त्वम् ।
तेना॑ सु॒श्रव॑सं॒ जनं॒ प्रावा॒द्य दु॑हितर्दिवः ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः) उषा के समान कमनीये कन्ये ! हे (दिवः दुहितः) सूर्य-कन्या उषा के समान तेजस्वी माता पिता की पुत्री ! (त्वम्) तू (यम्) जिस (सुखं) सुखप्रद विशाल (सुपेशसम्) उत्तम सुवर्ण आदि से बने रूप वाले (रथम्) रमण साधन रथ पर (अधि अस्थाः) विराजती है (तेन) उसी से (अद्य) आज शुभ अवसर पर (सुश्रवसम्) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त प्रिय (जनम्) जन को निर्विघ्न रूप से (प्र अव) प्राप्त हो ।

वय॑श्चित्ते पत॒त्रिणो॑ द्वि॒पच्चतु॑ष्पदर्जुनि ।
उषः॒ प्रार॑न्नृ॒तूँरनु॑ दि॒वो अन्ते॑भ्य॒स्परि॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभातवेला के समान सबको प्रयत्न और पुरुषार्थ

आच्छादन करने वाले मेघ के (अद्रिम्) अच्छिन्न खंड को जैसे वायु नचाता है वैसे ही (वावसानस्य) राष्ट्र पर अपना वश करने वाले शत्रु के (अद्रिम्) छिन्न भिन्न हुए बल समूह को भी (नर्त्तयन्) अपने पराक्रम से नचाता हुआ (विमदाय) विविध प्रकार के हर्षों और सुखों को प्राप्त करने के लिये (वसु) ऐश्वर्य (आवह) प्राप्त कर।

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (अपाम् अपिधाना) सूर्य जैसे जलों को आकाश में रखने वाले कारणों को दूर कर देता है वैसे ही तू (अपाम्) प्रजाओं और आप्त विद्वानों के (अभिधाना) शत्रु द्वारा उत्पन्न किये बन्धनों को (अप अवृणोः) दूर कर और जैसे सूर्य (पर्वते) मेघ में और पर्वत पर (दानुमत् वसु) दान योग्य और जीवन प्रदाता जल को (अधारयः) धारण करता है वैसे ही तू भी (पर्वते) पर्वत के समान स्थिर तथा मेघ के समान सबको निष्पक्ष होकर सुखजनक पदार्थ देने वाले पुरुष को (दानुमत् वसु) प्रजा हित के लिये देने योग्य ऐश्वर्य को (अधारयः) धारण करा और (यत्) जैसे वायु (शवसा अहिम् अवधीः) बल से मेघ को आघात करता है और (आत् सूर्यम् दृशे दिवि आरोहयः) अनन्तर सबको प्रकाश से दिखाने के लिये सूर्य को मध्य आकाश में स्थापित करता है वैसे ही हे सेनापते! तू (शवसा) बलपूर्वक (अहिम्) सब ओर से आघात करने वाले शत्रु, दस्यु आदि को (अवधीः) नष्ट कर और (आत्) उसके पश्चात् (दिवि) न्याय प्रकाशन के पद राज-सभा के ऊपर (दृशे) व्यवहारों के देखने और न्याय के मार्ग को दर्शाने के लिये (सूर्यम्) सूर्य समान तेजस्वी और ज्ञानवान् पुरुष को (आरोहयः) उच्च पद पर स्थापित कर।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥

भा०—(ये) जो दुष्ट, डाकू जन (सुप्तौ अधि) सोते हुए (अजुह्वत) दूसरों के पदार्थों को हर लेते हैं, अथवा जो स्वार्थी (मायाभिः) छल-कपटों से सब कुछ (शुप्तौ) अपने भोग विलास में ही फूंक देते हैं, उन (मायिनः) मायावी पुरुषों को (मायाभिः) अपनी नाना ज्ञानबुद्धियों द्वारा (अप अधमः) दूर मार भगा। हे (नृमणः) मनुष्यों को वश करने हारे! (त्वं) तू (पिप्रोः) अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाले शत्रु के (पुरः) दुर्गों को (प्र अरुजः) तोड़ फोड़ डाल और (दस्युहत्येषु) दस्युओं को मारने के अवसरों में, संग्रामों के बीच (ऋजिश्वानम) धार्मिक मार्गों पर चलने वाले उत्तम मनुष्य समूह या कुत्तों के समान सुशिक्षित अपनी इन्द्रियों और अधीन सैनिकों के वशकारी पुरुष की (प्र आविथ) अच्छी प्रकार रक्षा कर। इति नवमो वर्गः ॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

भा०—(त्वम्) तू (शुष्णहत्येषु) प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश करने के अवसरों में (कुत्सम् आविथ) वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र बल को धारण कर और (शम्ब-रम्) सूर्य या वायु जैसे मेघ को अपने तेज और वेग से आघात करता है वैसे ही (शम्बरम्) शस्त्रों के धारक शत्रु सैन्य को (अरन्धयः) पीड़ित कर और (अतिथिग्वाय) अतिथि या पूज्य पुरुषों के गमन या आश्रय लेने योग्य (महान्तं चित् अर्बुदम्) बड़े भारी मेघ के समान दानशील एवं असंख्यात ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से युक्त पद को (पदा) अपने सामर्थ्य से (नि क्रमीः) प्राप्त कर और (सनात् एव) सदा ही (दस्युहत्याय) दुष्ट पुरुषों के दलन के लिये (जज्ञिषे) तू उत्पन्न हो।

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! सेनापते! (त्वे) तेरे ही अधीन (विश्वा तविषी) समस्त बलवती सेना, (सध्र्यक्) सदा साथ रहने वाली (हिता) स्थिर है। (तव) तेरा (राधः) चित्त (सोमपीथाय) सोमरस के समान राष्ट्र के ऐश्वर्य को भोग करने के लिये (हर्षते) उत्कण्ठित होता है। (तव) तेरी (बाह्वोः) बाहुओं से (हितः) स्थापित, तेरे शासन या वश में रहने वाला (वज्रः) शस्त्रबल (चिकिते) सर्वत्र प्रसिद्ध है, अतः तू (शत्रोः विश्वा वृष्ण्यानि) शत्रु के सब बलों को (वृश्च) निर्मूल कर और अपने (विश्वानि वृष्ण्या) समस्त शस्त्रवर्षी सैन्य बलों की (अव) रक्षा कर।

वि जा॑नी॒ह्यार्या॒न्ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान्।
शाकी॑ भव॒ यज॑मानस्य चोदि॒ता विश्वेत्ता ते॑ सध॒मादे॑षु चाकन ॥८॥

भा०—हे विद्वन्! सेनापते! तू (आर्यान्) श्रेष्ठ पुरुषों को, सम्पत्ति के वास्तविक स्वामियों को भी (विजानीहि) विशेष विवेक से जान। (ये च) और जो (दस्यवः) प्रजा के पीड़क या वास्तविक स्वामी के सम्पत्ति को लूट खसोट लेने वाले, डाकू, दुष्ट पुरुष हैं उनको भी (विजानीहि) जान। तू (अव्रतान्) व्रत, सत्य भाषण आदि का पालन न करने वाले पुरुषों को (बर्हिष्मते) प्रजा से युक्त राष्ट्र या भूस्वामी के हित के लिये (शासत्) शासन करता हुआ (रन्धय) दण्डित कर। तू (यजमानस्य) तेरा आदर करने वाले राष्ट्रजन का (चोदिता) आज्ञापक होकर (शाकी) शक्तिमान् (भव) हो। (ते) तेरे (ता) उन २ नाना प्रकार के (विश्वा) समस्त कर्मों की (सधमादेषु) एक साथ मिल कर होने वाले विनोद और उत्सवों के अवसरों पर मैं (चाकन) प्रसिद्धि चाहता हूँ।

अनु॑व्रताय र॒न्धय॒न्नप॑व्रताना॒भूभि॒रिन्द्रः॑ श्न॒थय॒न्नना॑भुवः।
वृ॒द्धस्य॑ चि॒द्वर्ध॑तो॒ द्यामिन॑क्षतः॒ स्तवा॑नो व॒म्रो वि ज॑घान सं॒दिहः॑ ॥९॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (अनुव्रताय) अनुकूल होकर व्रतों और नियमों के पालक प्रजाजन के हितार्थ (अपव्रतान्) नियमों को न पालन करने वाले पुरुषों को (रन्धयन्) दण्डित करता हुआ और (आभूभिः) अपने अधीन भूमियों के स्वामी माण्डलिक अधीशों द्वारा वीर पुरुषों या सेनाओं द्वारा अपने (अनाभुवः) मुकाबले पर न आ सकने वाले शत्रु सेनाओं का (श्नथयन्) विनाश करता हुआ (स्तवानः) स्तुति का पात्र होकर (संदिहः) राष्ट्र की अच्छी प्रकार वृद्धि करने हारा (वम्रः) बल्मीक के समान गुप्त सुरंगों से युक्त दुर्गों को रच कर (वृद्धस्य) बढ़े हुए, (वर्धतः चित्) बढ़ते हुए और (द्याम् इनक्षतः) आकाश में फैलते हुए मेघ के समान तेजस्विता में बढ़ने वाले शत्रुबल को भी (विजघान) विविध उपायों से नाश करो।

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः॥१०॥१०

भा०—हे राजन्! (यत्) जब (ते सहः) तेरे बल को (उशनाः) तेरी मैत्री और वृद्धि करने वाला सहायक मन्त्री या मित्र राजा अपने (सहसा) शत्रु पराजयकारी बल से (तक्षत्) अति अधिक तीक्ष्ण कर देता है तब (मज्मना) अपने महान् सामर्थ्य से तेरा (शवः) सैन्यबल (रोदसी विबाधते) आकाश और भूमि के समान दोनों स्वपक्ष और परपक्ष को विविध प्रकार से पीड़ित करता है! हे (नृमणः) नेता पुरुषों के प्रति मनोयोग देने हारे एवं प्रजाओं को वश करने हारे! (वातस्य मनोयुजः) वायु के वेग से चलने वाले मन अर्थात् इच्छानुसार रथ में जुड़कर चलने हारे वेगवान् अश्व और अश्वारोही भृत्यगण (आ पूर्यमाणम्), सब प्रकार से भरे पूरे (त्वा) तुझको (श्रवः) धन और ऐश्वर्य (अभि आवहन्) सब तरफ से प्राप्त करावें। इति दशमो वर्गः॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वंकू वंकुतराधि तिष्ठति।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥

भा०—(यद्) जब (उशने) समस्त राष्ट्र को वश करने में समर्थ सभापति या राजमन्त्री, (काव्ये) विद्वानों के बीच सबसे मुख्यतम महामात्य के कर्म और पदाधिकार पर स्थित हो जाय तो उसके आश्रय पर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (मन्दिष्ट) खूब चमक जाता है। तब वह (सचा) सबके साथ (वङ्कू) वेगवान् (बङ्कूतरा) अति कुटिल मार्गों से दौड़ने वाले अश्वों पर महारथी के समान (वंकू) कुटिल चालों के चलने वाले और (वंकुतरा) कुटिल चालों से युक्त करने वाले, शत्रु और उदासीन राजाओं पर भी (अधितिष्ठति) अपना शासन जमा लेता है। (ययिं अपः स्रोतसा निर् असृजत्) वेग से जाने वाले मेघ को जैसे वायु या विद्युत् अपने आघात से टकराकर उसके जलों को प्रवाह रूप से भगा देता है वैसे ही (ययिं) आक्रमण करने वाले शत्रु के (अपः) प्राप्त सेनाओं को (स्रोतसा) बहते प्रवाह के समान वेग से (निः असृजत्) मैदान से निकाल देता है और स्वयं (दृंहिता) अपने बल को बढ़ाकर वह (शुष्णस्य) राष्ट्र के शोपक शत्रु के (पुरः) गढ़ों या दुर्गों को (वि ऐरयत्) विविध रीतियों से कंपा देता है।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु नाशक ! तू जब (वृषपाणेषु) मेघ के समान शरवर्षण करने वाले वीर पुरुषों के योग्य बलकारी ऐश्वर्यों, रसों, उपभोग और परिपालन के अवसरों में (रथम्) रथ पर (आतिष्ठसि स्म) जमकर बैठता और (येषु) जिनके बल पर तू (मन्दसे) सब आनन्द प्राप्त करता है वे भी (शार्यातस्य) शरों से मारने योग्य शत्रुओं के बीच बीच में विचरने के अवसर, संग्राम आदि के लिए (प्रभृता) अच्छी प्रकार

चेतन और अन्न द्वारा भरण पोषण किये जायं। (यथा) जैसे तू (सुतसोमेषु) अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यों या अभिषिक्त राजाओं के बीच (अनर्वाणम्) प्रतिद्वन्दी वीर से रहित, अद्वितीय राष्ट्र को (चाकनः) प्राप्त करना चाहता है वैसे ही (दिवि) राजसभा और विद्वानों के बीच भी (श्लोकम्) स्तुति वाणी को, ख्याति या उत्तम पद को (आरोहसे) प्राप्त कर।

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वन्! जैसे (महते वचस्यवे) बड़े गुणों से युक्त एवं ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाले (कक्षीवते) उत्तम हस्तांगुलियों वाले, (सुन्वते) क्रियाकुशल शिष्य को आचार्य (अर्भाम्) थोड़ी ही (वृचयाम्) विवेचनकारिणी अथवा छेदन भेदन करने की शिल्प विद्या का (अददाः) उपदेश करता है और वही (मेना) उपदेश-युक्त वाणी से (वृषणश्वस्य) बलवान् अश्व या उपकरणों के स्वामी को (सवनेषु) प्रेरणा कार्यों में (प्रवाच्या) कहनी आवश्यक होती है वैसे ही हे राजन्! (वचस्यवे) तेरी आज्ञा को चाहने वाले (कक्षीवते) कसे अश्व के समान पार्श्वों की सेनाओं से युक्त (महते) बड़े भारी (सुन्वते) सेना के शासक पुरुष को भी तू (अर्भाम्) छोटी सी ही (वृचयाम्) छेदन भेदन करने की संक्षिप्त आज्ञा को (अददाः) संकेतरूप से दिया कर। हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म वाले पुरुष! तेरी (मेना) मान योग्य आज्ञा जब (वृषणश्वस्य) वेगवान् अश्वों वाले वीर पुरुष के (सवनेषु) शासन के कार्यों में भी (प्रवाच्या) अच्छी प्रकार दी जाती है तब तू (विश्वा इत् ता) समस्त कार्यों के करने में (अभवः) समर्थ होता है।

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४॥

भा०—(पज्रेषु) स्तुति योग्य बचनों या स्तुति के कार्यों में जैसे

(स्तोमः) वेद के सूक्त मुख्य रूप से ग्रहण करने योग्य हैं और (दुर्यः यूपः न) द्वार पर स्थित मुख्य स्तम्भ जैसे घर के आश्रय के लिये मुख्य है वैसे ही (निरेके) संदेह रहित होकर केवल एकमात्र (सुध्यः) सुख पूर्वक चिन्तन योग्य (इन्द्रः) वह परमेश्वर ही (अश्रायि) आश्रय करने और भजन करने योग्य है। ऐसे ही (निरेके) सब धनों के व्यय हो जाने पर (वज्रेषु) युद्ध आदि कार्यों में (स्तोमः) सैनिक समूह तथा (दुर्यः यूपः) द्वारस्थ स्तम्भ के समान (सुध्यः) उत्तम रीति से चिन्तन या मनन करने में कुशल (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, विद्वान् पुरुष ही (अश्रायि) आश्रय करने योग्य है और (इन्द्रः इत्) वह ऐश्वर्यवान् राजा ही (अश्वयुः) अश्वों का स्वामी, (गव्युः) गवादि पशुओं और वाणियों का स्वामी (वसूयुः) समस्त राष्ट्र वासी प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी और अन्यों को अश्व, रथ, गौ, ऐश्वर्यादि देना और स्वयं प्राप्त करना चाहता हुआ (रायः) धनैश्वर्य का (प्रयन्ता) ऐश्वर्य को अच्छा देने वाला होकर अपने पास रखता है।

इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम॥१५॥११

भा०—(ऋषभाय) सुखों के वर्षक परमेश्वर और शत्रु पर शस्त्रादि वर्षाने वाले बलवान् सर्वश्रेष्ठ, (सत्यशुष्माय) सत्य के बल वाले सज्जनों के हितकारी बलवाले (स्वराजे) स्वयं अपने तेज से देदीप्यमान, (तवसे) महान् बलवान् पुरुष को (इदं नमः) यह नमस्कार (अवाचि) कहा जाता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अस्मिन्) इस (वृजने) शत्रु और कष्टों के निवारण के अवसर पर संग्रामादि कार्य में इस तेरे शत्रुवारक बल पर हम (सर्ववीराः) समस्त वीर गण (सूरिभिः) तेजस्वी नायक पुरुषों सहित (तव) तेरे (स्मत् शर्मन्) उत्तम शरण में (स्याम) रहें। इत्येकादशो वर्गः॥

[५२] सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप् । ९, १० स्वराट् त्रिष्टुप् । १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । २-४ निचृज्जगती । ६, ११ विराड जगती ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

भा०—हे पुरुष ! तू (मेषम्) मेघ जैसे भूमियों पर जलों की वर्षा करता है (यस्य साकं शतं सुभ्वः ईरते) जिसके वर्षण के साथ उत्तम उर्वरा भूमियों के स्वामी किसान गण (ईरते) एक साथ हल चलाते हैं उस (स्वर्विदम्) सुखकारी मेघ के समान (मेषम्) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले अथवा मेढ़े के समान शत्रुओं से मुकाबला लेने वाले, दृढ़ उस राजा का (सुमहय) अच्छी प्रकार आदर कर (यस्य) जिसके अधीन रहकर (शतं सुभ्वः) सैकड़ों उत्तम भूमिपति (साकम्) एक साथ ही (ईरते) युद्ध यात्रा करते हैं।

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् सूर्य या विद्युत् या वायु (यत्) जब (वृत्रम्) समस्त आकाश को घेरने वाले, (नदीवृतम्) अति वेग से बहने वाली नदियों के बहाने वाले मेघ को आघात करता है तब वह (अर्णांसि) जलों को (उब्जन्) नीचे फेंकता हुआ और (अन्धसा) अन्न सामग्री से (जर्हृषाणः) जगत् भर को हर्षित करता है। (सः) वह विद्युत् या सूर्य भी (धरुणेषु) मेघ के धारक जलों या वायुओं में ही (अच्युतः) स्थिर रह कर (सहस्रमूतिः) सहस्रों दीप्तियों से युक्त होकर (तविषीषु) बलवती शक्तियों के रूप में (वावृधे) बढ़ता है। ठीक वैसे ही (इन्द्रः) बलवान् राजा जो (नदीवृतम) नदियों से घिरे या समृद्धियों से भरे पूरे (वृत्रम्) नगर के घेरने वाले शत्रु को

(अवधीत्) मार लेता है वह (अर्णांसि) जलों के समान मनुष्यों को (उब्जन्) नमाता हुआ, गिराता या दबाता हुआ, (अन्धसा) ऐश्वर्य और अन्नादि भोग योग्य पदार्थों से (जर्हृषाणः) सबको हर्षित करता हुआ (पर्वतः न) पर्वत के समान अचल और नाना पालक सामर्थ्यों से युक्त होकर (सः) वह (धरुणेषु) राष्ट्र के धारक नाना मुख्य पुरुषों के बीच में (अच्युतः) कभी भी कर्त्तव्यच्युत या पराजित न होकर एवं स्वतः (अच्युतः) अस्खलित, ब्रह्मचारी रहकर (सहस्रमूतिः) सहस्रों ज्ञानों और रक्षाकारी सेना आदि बलों और तेज प्रभावों से सम्पन्न होकर (तविषीषु) सेनाओं के आधार पर (वावृधे) बढ़े।

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊर्धनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः। इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३॥

भा०—(सः) वह राजा (द्वरिषु) गुप्त रखने योग्य व्यवहारों और राज-कार्यों में (द्वरः) गम्भीर रहने वाला, (वव्रः) कूप के समान गहरा और अन्धकार से छुपे गार के समान अगम्य भाव होकर रहे और (ऊधनि) उषा-काल में (चन्द्रबुध्नः) चन्द्र को अन्तरिक्ष में रखने वाले सूर्य के समान (चन्द्रबुध्नः) स्वर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने मूल आश्रय में रखने वाला कोषसम्पन्न होकर (मनीषिभिः) विद्वान् मननशील पुरुषों के द्वारा (मदवृद्धः) स्वयं अपने हर्ष को बढ़ाने वाला, (स्वपस्यया धिया) धर्म कर्मानुष्ठान से युक्त, बुद्धि या ज्ञान से युक्त (तम्) उस पुरुष को मैं (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् एवं दयालु ज्ञानी उपदेशक आचार्य 'इन्द्र' (अह्वे) करके पुकारता हूँ। (सः हि) वह ही (अन्धसः पप्रिः) जीवन और ऐश्वर्यों को पूर्ण करने वाला होता है।

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः। तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥४॥

भा०—(सुभ्वः) वेग से बहने वाली नदियां जैसे (समुद्रम्)

समुद्र को (आ पृणन्ति) सब तरफ से पूर्ण करती हैं वैसे ही (यम्) जिस पुरुष को (अभिष्टयः) सब प्रकार की कामना वाली पूर्ण (स्वाः) अपनी ही प्रजाएं और (सद्मबर्हिषः) राजसभा में उत्तम आसन पर विराजने वाले विद्वान् पुरुष (आपृणन्ति) सब प्रकार से पूर्ण करते हैं (उतयः) रक्षाकारी, (शुष्मा) बलवान्, (अत्राता) प्रतिकूल शत्रुओं से रहित, (अह्रुतप्सवः) कुटिलता रहित आजीविका या वृत्ति वाले वीर पुरुष (वृत्रहत्ये) विघ्नकारी शत्रु के विनाश के कार्य में (इन्द्रम्), सेनापति, सभाध्यक्ष के ही (अनु तस्थुः) पीछे २ हो जावें।

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः॥१२

भा०—(अस्य) इस सेनाध्यक्ष के (मदे युध्यतः) अति आवेश और उत्साह पूर्वक युद्ध करते हुए (स्ववृष्टिम् अभि) अपने वाणों और ऐश्वर्यों की वृष्टि के सामने उसको लक्ष्य करके, (रघ्वीः इव) अति वेग से बहने वाली नदियों जैसे (प्रवणे सस्रुः) नीचे स्थान में बह जाती हैं वैसे ही (अस्य रघ्वीः ऊतयः) उसकी प्रचण्ड वेग से जाने वाली रक्षाकारी सेनाएं भी (प्रवणे) अपने से दबने वाले शत्रु पर या (प्रवणे) उत्कृष्ट कोटि के ऐश्वर्य पर (सस्रुः) टूट पड़ती हैं। (यत्) जैसे (इन्द्रः) सूर्य और वायु (बलस्य) मेघ के (परिधीन्) पटलों को (त्रितः) ऊपर, आड़े और तिरछे तीनों प्रकारों से (भिनत्) छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही (वज्री) बलवान्, खड्ग आदि शस्त्रों का धारक (इन्द्रः) सेनापति (त्रितः) त्रिगुण सैन्य से युक्त होकर (धृषमाणः) शत्रुओं का पराजय करता हुआ (बलस्य) बलवान् शत्रु के (परिधीन्) चारों ओर स्थापित रक्षा पुरुषों को (अन्धसा) अन्धकार को दूर करने वाले तेज के समान बल से (भिनत्) छिन्न भिन्न करे। इति द्वादशो वर्गः॥

परी घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

भा०—जैसे मेघ (अपः वृत्वी) जलों को अपने भीतर थाम कर (रजसः बुध्नम्) आकाश में (आ अशयत्) फैल जाता है और (दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य) जिसका विस्तार बेरोक हो उस मेघ के (हन्वोः) अगले पिछले मुखों पर (इन्द्रः) वायु (तन्यतुम्) विस्तृत वज्ररूप विद्युत् का (निर्जघन्थ) प्रहार करता है। तब (घृणा परि इम् चरति) दीप्ति सर्वत्र फैलती है और (शवः) उसका प्रबल बल भी (तित्विषे) चमकता है। ठीक वैसे ही जब शत्रु राजा भी (अपः वृत्वी) आप्त प्रजाओं को घेर कर (रजसः) इस पृथ्वी लोक के (बुध्नम् आ अशयत्) बांधने वाले मुख्य राजधानी पर चारों तरफ से घेरा डालकर बैठ जावे तब (प्रवणे) उत्तम सेना दल के बल पर या प्रयाणकाल में (दुर्गृभिश्वनः) जिसके फैलने वाले और कुत्तों के समान टुकड़ों पर जीने वाले वेतनधारी नौकर या भेदू लोग भी किसी प्रकार काबू न आ सकें, ऐसे (वृत्रस्य) बल वाले शत्रु के (हन्वोः) हननकारी प्रमुख सेना के भागों पर ही हे (इन्द्र) राजन्! तू (तन्यतुम्) विद्युत् समान गर्जनाकारी अस्त्र का प्रयोग करके (निः जघन्थ) शत्रु पर प्रहार कर। तब (घृणा) सूर्य की चमक के समान तेरा तेज भी (परिचरति) सब तरफ फैले और (शवः) तेरा बल भी (तित्विषे) खूब प्रकाशित होकर चमके।

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥

भा०—(ऊर्मयः) तरंगें जैसे आपसे आप (ह्रदं न) जलाशय को प्राप्त होती हैं अथवा जैसे (ऊर्मयः ह्रदं न) नाना जलधाराएं जलाशय में (नि ऋषन्ति) आ मिलती हैं वैसे ही हे परमेश्वर! (यानि) जितने भी (ब्रह्माणि) ये वेदमन्त्र, अथवा आकाशादि पदार्थ हैं वे (हि) निश्चय से

(तव) तेरी ही (वर्धना) महिमा को बढ़ाने वाले हैं, ऐसे ही हे राजन्! जैसे जलतरंग जलाशय को प्राप्त होते हैं और उसको बढ़ाते हैं वैसे ही (ब्रह्माणि) समस्त अन्नादि पदार्थ, बड़े बड़े राष्ट्र और वेद के अनुशासन (यानि) जितने भी हैं वे सब (तव वर्धना) तेरे ही को बढ़ाने वाले हों। (त्वष्टा वित्) जैसे मेघ या जल के अवयव को सूक्ष्म सूक्ष्म कणों में छेदन भेदन करने में समर्थ सूर्य या विद्युत् (युज्यम् शवः) संयोग से प्राप्त होने वाले और रथादि संचालन कार्यों में लगाने योग्य बल को (वावृधे) बढ़ाता है और (अभिभूति ओजसम्) सब शत्रुओं के पराजय करने वाले ओज, पराक्रम या बल को धारण करने वाले (वज्रम्) प्रबल शक्तिमान् अस्त्र को भी (ततक्ष) बना सकता है वैसे ही (त्वष्टा) सर्व सृष्टि का रचयिता परमेश्वर (युज्यं शवः) योग समाधि से प्राप्त होने वाले बल को (वावृधे) बढ़ाता है और (अभिभूत्योजसम्) सब प्रकार के काम, क्रोध आदि भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं को भी दबा लेने वाले एवं ऐश्वर्यों और पराक्रम को धारण करने वाले (वज्रम्) बल को (ततक्ष) पैदा कर देता है वैसे ही हे राजन्! (त्वष्टा) बढ़ई या शिल्पी, (ते युज्यं शवः वावृधे) तेरे योग्य सहकारी शस्त्रास्त्रबल को भी बढ़ावें और (अभिभूति-ओजसम् वज्रम्) शत्रुओं को दबाने, पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त महास्त्र को भी (ततक्ष) बनावे।

ज॒घ॒न्वाँ उ॒ हरि॑भिः संभृतक्रत॒विन्द्र॑ वृ॒त्रं मनु॑षे गातु॒यन्न॒पः।
अय॑च्छथा बा॒ह्वोर्वज्र॑माय॒सम॑धारयो दि॒व्या सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ ८ ॥

भा०—हे (संभृतक्रतो) समस्त क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने में एकत्र करने हारे! हे (इन्द्र) परमेश्वर! जैसे (मनुषे अपः गातुयन्) सर्व साधारण जनों के उपकार के लिए जलों को पृथ्वी पर डालता हुआ, (हरिभिः वृत्रं जघन्वान्) किरणों और वेगवान् आघातों से मेघ को आघात करता है और (बाह्वोः) भुजाओं के समान बल और

आकर्षण दोनों पर आश्रित (आयसं वज्रम्) वेगवती प्रबलशक्ति को (अयच्छथाः) धारण करता है और (दिवे दृशे सूर्यम् अधारयः) आकाश में सब पदार्थों को दिखाने के लिए सूर्य को धारण करता है, वैसे ही हे (संभृतक्रतौ) कर्त्ता जीवों का अच्छी प्रकार भरण पोषण करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हरिभिः) समस्त अज्ञानों और दुःखों को हर देने वाले, विद्वान्, परोपकारी पुरुषों तथा सुखप्रद पृथिवी, वायु आदि तत्वों से (मनुषे) मननशील प्राणियों के उपकार के लिए (अपः गातुयन्) मेघ के समान जलों को पृथिवी पर फेंकता हुआ (वृत्रं जघन्वान् उ) ज्ञान पर आवरण डालने वाले अज्ञान बन्धनों का नाश करता है। (बाह्वोः आयसम् वज्रम्) राजा जैसे हाथों में लोहे के बने शस्त्रास्त्र को धारण करता है वैसे ही दुःखों को बांधने वाले ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा (वज्रम्) पापों से निवारक बल को प्रदान कर और (दिवि) ज्ञान के प्रकाश में (दृशे) देखने या दिखाने के लिए (सूर्यम्) आकाश में सूर्य के समान सबको प्रेरक अपने ज्ञान विद्या प्रकाश को (अधारयः) धारण करा।

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (भियसा) सांसारिक दुःखों से भय खाकर (मानुष-प्रधनाः) मनुष्यों के हितार्थ उत्तम २ धनों का संग्रह करने हारे सम्पन्न पुरुष (बृहत्) उस महान् (स्व-चन्द्रम्) स्वयं स्वभाव से आह्लादकारक, (अमवत्) सब दुःखों के काटने हारे, (उक्थ्यं) स्तुति योग्य ब्रह्म की (अकृण्वत) स्तुति करते हैं तब वे (दिवः रोहणम्) आकाश में उदय होने वाले सूर्य के समान देदीप्यमान एवं (दिवः आरोहणं) ज्ञान और प्रकाश के प्रदाता (इन्द्रम्) परमेश्वर को वे (नृषाचः) अपने प्राणों पर वश करने हारे, उनको एकाग्र करने वाले (मरुतः)

विद्वान्‌जन (अनु) साक्षात् कर (स्वः अमदन्) सुख अनुभव करते हैं। ऐसे ही (मानुष प्रधनाः) मनुष्यों में धनसम्पन्न पुरुष (ऊतयः) प्रजाओं के रक्षक (मरुतः) विद्वान् और वीर लोग (नृषाचः) बहुत से मनुष्यों का समवाय बनाकर (भियसा) शत्रु के भय से (यत् यत्) जब जब भी (बृहत्) अपने में से बड़े (स्वचन्द्रम्) अनुयायी प्रजा के आह्लादक (उक्थ्यम्) स्तुति योग्य पुरुष को (दिवः आरोहणम्) विजयशील सेना और ज्ञानयुक्त सभा के ऊपर, आकाश में उदय होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी शासक रूप से बना देते हैं तब वे (इन्द्रम् अनु स्वः अमदन्) उस ऐश्वर्यवान् स्वामी के साथ साथ ही स्वयं भी बड़े सुख या समृद्ध राष्ट्र का उपभोग करते हैं।

द्यौश्चिद॒स्याम॑वाँ अ॒हेः स्व॒नादयो॑यवीद्भि॒यसा॒ वज्र॑ इन्द्र ते।
वृ॒त्रस्य॒ यद्ब॑द्बधा॒नस्य॑ रोदसी॒ मदे॑ सु॒तस्य॒ शव॒साभि॑न॒च्छिरः॑॥१०॥१३

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (अमवान् द्यौ. चित्) बलवान् सूर्य का प्रकाश जैसे (अहेः वृत्रस्य अयोयवीत्) मेघ के जल को छिन भिन्न कर देता और नीचे गिरा देता है और (अस्य) इस वज्र विद्युत् के (स्वनाद्) शब्द को सुनकर (भियसा) मारे भय के मानो मेघ भी कांप जाता है वैसे ही हे राजन्! (ते) तेरा (द्यौः) तेजस्वी (अमवान्) बलवान् (वज्रः) शस्त्रास्त्रबल (रोदसी बद्बधानस्य) आकाश और भूतल दोनों को बांधने या (वृत्रस्य) बल में बढ़ते हुए शत्रु के (शिरः) शिर, मुख्य भाग को (सुतस्य मदे) राजैश्वर्य के हर्ष में ही उत्पन्न (शवसा) बल से (अभिनत्) तोड़ दे और (अस्य स्वानाद् भियसा अहेः अयोयवीत्) इस शस्त्रास्त्र बल के कड़कड़ाते शब्द से, भय द्वारा छिन्न भिन्न करे। इति त्रयोदशो वर्गः॥

यदिन्न्विन्द्र पृथि॒वी दश॑भुजि॒रहा॑नि॒ विश्वा॑ त॒तन॑न्त कृ॒ष्टयः॑।
अत्राह॑ ते मघवन्विश्रु॑तं॒ सहो॒ द्यामनु॒ शव॑सा ब॒र्हणा॑ भुवत्॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो यह (पृथिवी) पृथिवी है वह (नु दशभुजिः इत्) निश्चय से 'दशभुजि' है। अर्थात् वह प्रकृति के समान दशों इन्द्रियों से जीवों द्वारा भोग करने योग्य है इसमें (विश्वा अहानि) सदा ही (कृष्टयः) अन्नादि को उत्पन्न करने वाले प्रजाजन (ततनन्त) फैलें या इसको विस्तृत करें। हे (मघवन्) हे राजन् ! (अत्र अह) निश्चय से इसी पृथ्वी पर (शवसा) पराक्रम से और (बर्हणा) प्रजा को बढ़ाने वाले उद्योग से (ते सहः) तेरे शत्रु को पराजित करने वाला बल भी (द्याम् अनु) सूर्य के प्रकाश के समान (विश्वतम्) खूब प्रसिद्ध (भुवत्) हो।

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥

भा०—हे (धृषन्मनः) सबके चित्तों को अपनी अद्भुत रचना से धर्षण या पराजित करने हारे परमेश्वर ! (त्वम्) तू (स्वभूति-ओजाः) स्वतः बिना किसी के सहयोग से अपने प्रचुर ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर (अस्य रजसः) इस भूलोक और (अस्य व्योमनः) विस्तृत आकाश के (पारे) परले पार भी (अवसे) रक्षण करने के लिये विद्यमान है। तू ही (ओजसः प्रतिमानम्) अपने बल के अनुरूप (भूमिम्) सब प्राणियों के उत्पन्न करने वाली भूमि को (चकृषे) बनाता और तू ही (परिभूः) सर्वव्यापक होकर (अपः) प्राणों को (स्वः) समस्त सुखों और अन्तरिक्ष या वायु को और (दिवम्) महान् आकाश या प्रकाश, तेजस्तत्व को भी (आ एषि) व्याप रहा है।

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू ही (पृथिव्याः) अति विस्तृत (भुवः) चराचर के मूल कारण प्रकृति और भूमि का (प्रतिमानं) प्रत्यक्ष देखने वाला

और भूमि के परिमाण का कर्त्ता, (बृहतः) बड़े भारी (ऋष्ववीरस्य) बड़े बड़े सामर्थ्यों वाले सूर्यादि लोकों, बड़े २ वीर पुरुषों से युक्त और राजाधिराजों का भी (पतिः भूः) पालक है। तू ही (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (विश्वम्) संसार को (अन्तरिक्षम्) महान् अन्तरिक्ष, सूर्यों, भूमियों के बीच के अवकाश भागों को, (सत्यम्) सत् रूप में व्याप्त हुए और सत् पदार्थों में विद्यमान यथार्थ तत्व को भी (आ अप्राः) सब तरफ से और सब तरह से पूर्ण कर रहा है। (अद्धा) सचमुच (त्वावान्) तुझ जैसा (अन्यः) और (न किः) कोई दूसरा नहीं।

न यस्य॒ द्यावा॑पृथि॒वी अनु॒ व्यचो॒ न सिन्ध॑वो॒ रज॑सो॒ अन्त॑मान॒शुः।
नोत स्ववृ॑ष्टिं मदे॒ अस्य॒ युध्य॑त॒ एको॑ अ॒न्यच्च॑कृषे॒ विश्व॑मानु॒षक् १४

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (अनु) समस्त पदार्थों में तदनुरूप होकर (व्यचः) व्यापन सामर्थ्य को (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी भी (न) अन्त नहीं पा सकते और (रजसः) उस रजस् स्वरूप, लोकविभूतिमय परमेश्वर के विस्तृत व्यापन या महान् स्वरूप का (सिन्धवः) आकाश, समुद्र आदि भी (अन्तम् न आनशुः) अन्त नहीं पा सके (उत) और (युध्यतः) वीर योद्धा के समान सबके साथ काल रूप से संग्राम करते हुए (अस्य) इसके (मदे) आनन्द राशि में इसकी (स्ववृष्टिम्) अपने ऐश्वर्यादि सुखों की वृष्टि का भी उपरोक्त पदार्थ पार नहीं पा सके और वह (एकः) अकेला (आनुषक्) सब में अनुरूप होकर, सूक्ष्म या व्यापक होकर (विश्वम्) समस्त संसार को और (विश्वम्) जीव को (अन्यत्) अपने से भिन्न या जुदा (चकृषे) प्रकट करता है। ऐसे ही (रजसः) प्रजानुरागी राजा के (व्यचः) विशेष महान् सामर्थ्य को, न (द्यावा पृथिवी) राजा प्रजा वर्ग, या ज्ञानी-अज्ञानी (सिन्धवः) और न नदी समुद्र ही पार पाते हैं। वह अकेला समस्त जगत् का शासन प्रेमपूर्वक, उनके (आनुषक्) अनुकूल, उनसे मिल कर करे।

आर्चन्नत्रं मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (सस्मिन्) उस (आजौ) परम पद के निमित्त (अत्र) इस लोक में (मरुतः) विद्वान् जन (त्वा आर्चन्) तेरी स्तुति करते हैं। (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् गण (त्वा अनु अमदन्) तेरे ही आश्रय में रह कर खूब हृष्ट और प्रसन्न रहते हैं (यत्) क्योंकि तू (भृष्टिमता) पापों को भून डालने वाले (वधेन) अज्ञाननाशक प्रकाश से (वृत्रस्य) शत्रु के बाधक बल के (आनं नि प्रति जघन्थ) जीवन या प्रमुख भाग को ही नाश कर देता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[५३] १—११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृज्जगती। २ भुरिग्जगती। ४ जगती। ५, ७ विराड्जगती। ८,९ त्रिष्टुप्। १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ११ (त्रिष्टुप्) विराट्-स्थाना। एकादशर्चं सूक्तम्।

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

भा०—हम विद्वान्जन (विवस्वतः) सूर्य के प्रकाश में, भक्त जनों के समान विविध ऐश्वर्य एवं ईश्वर्य की परिचर्या करने हारे पुरुष के (सदने) घर में (महे इन्द्राय) उस महान् परमेश्वर के लिये (उ) ही (वाचं) उत्तम वेदवाणी को और (गिरः) नाना स्तुतियों को भी (सु नि प्र भरामहे) उत्तम रीति से धारण करें। (ससताम् रत्नं चित्) सोते हुए आलसी लोगों के रमण योग्य धन और ऐश्वर्य के सुखों को जैसे अन्य लोग हर लेते हैं और सोते हुए लोग वंचित रह जाते हैं वैसे ही वह ज्ञानी और विद्वान् पुरुष भी ऐश्वर्य और ज्ञान के कोश को (अविदन्) प्राप्त करें और औरों को प्राप्त करावें। (द्रविणोदेषु) सुवर्ण आदि धनों और विद्या आदि सात्विक दान योग्य ज्ञानों को देने हारे स्वामी और आचार्य पुरुषों के लिये (दुः-स्तुतिः) बुरे वचन (न शस्यते) कभी न कहने चाहियें।

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! राजन् ! तू (अश्वस्य) अश्वों और अग्नि आदि व्यापक तत्वों का (दुरः) दाता है। तू (गोः दुरः असि) गौओं का दाता है। तू (यवस्य दुरः) जौ आदि अन्न का दाता है और तू (वसुनः इनः) ऐश्वर्यों का स्वामी है। तू (शिक्षानरः) शिक्षा देने वाला नायक आचार्य के समान गुरु है। तू (अकामकर्शनः) सत् संकल्पों को कृश न करने हारा यथोचित विवेकी है। तू (सखिभ्यः सखा) समस्त मित्रों का परम मित्र है। वह तू (प्रदिवः) उत्कृष्ट ज्ञान का भी (पतिः) पालक अथवा अति पुरातन, पुराण पुरुष है। हे परमेश्वर ! (तम् इदं) इस तुझको ही हम इस प्रकार से (गृणीमहे) तेरी स्तुति करें और अन्यों को उसका उपदेश करें।

शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः॥३॥

भा०—हे (शचीव) उत्तम कर्म और वाणी वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरुकृत्) प्रजाओं के बहुत से कामों और सुखों को उत्पन्न करने हारे ! हे (द्युमत् तम) प्रकाशवान् और ज्ञानवान् पुरुषों में श्रेष्ठ राजन् ! सभाध्यक्ष ! परमेश्वर ! (इदम्) यह (अभितः) सब ओर (वसु) जितना ऐश्वर्य या बसने वाला जीव संसार है यह सब (तव इत्) तेरा ही है। (चेकिते) ऐसा ही सब कोई जानता है। (अतः) इस कारण या इस राष्ट्र से हे (अभिभूते) शत्रुओं का पराभव करने हारे ! (संगृभ्य) उस समस्त ऐश्वर्य को संग्रह करके (मा आ भर) मुझ प्रजाजन को ऐश्वर्य से पूर्ण कर। (त्वायतः) तुझे चाहने वाले (जरितुः) स्तुति-वचनों के कर्त्ता विद्वान् पुरुष की (कामम्) अभिलाषा को तू (मा ऊनयीः) कभी नष्ट मत होने दे।

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४॥

भा०—जो पुरुष (सुमनाः) शुभ चित्त वाला, ज्ञानवान् और (गोभिः) ज्ञानवाणियों से हमारे (अमतिम्) अविद्या या दारिद्रय को (निरुन्धानः) रोकने वाला है, उसके साहाय्य से और (एभिः) इन नाना प्रकार के (द्युभिः) द्रव्यों और उत्तम गुणों से और (एभिः इन्दुभिः) इन आह्लादक पदार्थों और वेग से जाने वाले वीर पुरुषों से और (अश्विना) अश्व, अग्नि, जल आदि से युक्त रथ बल, तथा अश्व अर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति से और (इन्द्रेण) विद्युत् से बने अस्त्र से हम लोग (दस्युम्) प्रजा के नाशक अत्याचारी डाकू लोगों को (दरयन्तः) मारते काटते हुए और (इन्दुभिः) वेगवान्, द्रुतगामी, वीरों द्वारा (युतद्वेषसः) शत्रुओं को सदा के लिए दूर करके या (इन्दुभिः) ज्ञानवान्, उत्तम विद्वानों के द्वारा (युतद्वेषसः) परस्पर के द्वेष भावों को दूर करके (इषा) अन्नों द्वारा या प्रबल इच्छा से या प्रबल सेना से (संरभेमहि) युद्ध आदि कार्य प्रारम्भ करें।

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥१५॥

भा०—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष! सेनाध्यक्ष! हम लोग (राया संरभेमहि) ऐश्वर्य से युक्त होकर एक साथ मिलकर कार्य करें। (इषा संरभेमहि) अन्न और प्रबल इच्छा से युक्त होकर संग्राम तथा अन्य काय आरम्भ करें। (वाजेभिः सं) वेगवान् अश्वों, यानों से और (अभिद्युभिः) सब तरफ और सब प्रकार के ज्ञानों और प्रकाशों से युक्त होकर हम लोग मिलकर (पुरुचन्द्रैः) बहुतों के आह्लादक, एवं अति अधिक सुवर्णादि धनसम्पन्न ऐश्वर्यों से (सम्) युक्त होकर, हम संग्राम आदि कार्य आरम्भ करें। (देव्या) विजय करने वाली (प्रमत्या) विद्वानों को प्रमुख

रखने वाली एवं शत्रुओं को अच्छी प्रकार थामने वाली, (वीरशुष्मया) शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ बल से युक्त (गो अग्रया) भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखने वाली और (अश्वावत्या) अश्वों और वीरों तथा शीघ्रगामी यान वाली सेना से प्रबल होकर हम (सं रभेमहि) भली प्रकार शत्रुओं से संग्राम करें। और अन्य २ बड़े कार्यों को भी हम ऐश्वर्य, अन्न, धन और उत्तम मति वाली वीर सेना से युक्त होकर चलें। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥

भा०—हे (सत्पते) सज्जनों के पालक सेनापते ! (यत्) जब तू (बर्हिष्मते) राज्यासन तथा प्रजाजनों से युक्त (कारवे) राजा की रक्षा के लिए (दश सहस्राणि) दस हजारों, बहुत, (वृत्राणि) शत्रुओं के विघ्नकारी कार्यों और सैनिकों को (निबर्हयः) विनाश करने में समर्थ होता है तब (ते) वे (मदाः) अति हर्षित होने वाले (तानि वृष्ण्या) उन उन बलयुक्त प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने के कार्यों को करते हुए (सोमासः) सेनादलों के आज्ञापक, नायकगण (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के हनन करने के कार्यों में (त्वा अमदन्) तुझे भी हर्षित करें।

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (यत्) जिस कारण से (नम्या सख्या) शत्रु को दबा लेने में समर्थ एवं तेरे समक्ष विनय से झुकने वाले (सख्या) मित्र से मिलकर, उसकी सहायता से (नमुचिं) कभी जीता न छोड़ने योग्य, (नाम) सबसे प्रबलतम, (मायिनम्) छल की मायाओं को करने वाले शत्रु को (परावति) दूर देश में ही (नि बर्हयः) विनाश करता है और तू (युधा) शत्रु पर प्रहार करने वाले वीर पुरुष से (युधम्)

योद्धा शत्रु को (घ इत्) ही (उप एषि) जा पकड़ता है और (धृष्णुया) शत्रु को दबा देने वाले, (पुरा) अपने प्रबल दुर्ग से (पुरम्) शत्रु के दुर्ग को और (ओजसा) पराक्रम से (इदं) इस प्रत्यक्ष आंखों के समाने खड़े शत्रु बल को (सं हंसि) भली प्रकार मारने में समर्थ होता है, इसी से तू उत्तम सेनापति है।

त्वं करंञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी।
त्वं शता वंगृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

भा०—हे सेनापते ! तू (करंजम्) प्रजाजनों पर शस्त्रों के फेंकने वाले और (पर्णयम्) दूसरों के प्राप्त किये पालन योग्य पदार्थों को चोरने वाले शत्रु को (अति थिग्वस्य) अतिथि समान पूजनीय पुरुषों को प्राप्त होने वाले प्रजाजन को रक्षा के लिए (तेजिष्ठया) अति तेजस्विनी, अग्नि से दीप्त होने वाली (वर्तनी) शत्रु पर गोला या शस्त्रों को फेंकने वाली बन्दूक और तोप जैसी शक्ति से (बधीः) विनाश कर और (त्वं) तू (वंगृदस्य) टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलने वाले और (अनानुदः) अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देने वाले दुष्ट शत्रु पुरुष के (शता) सैंकड़ों (पुरः) दुर्गों को (ऋजिश्वना परिसूताः) सधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी, वशवर्ती सेनाबल द्वारा घेर कर (अभिनत्) तोड़ डाल।

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

भा०—हे वीर सेनापते ! (श्रुतः) प्रसिद्ध (त्वम्) तू (अबन्धुना) बन्धुओं से रहित और (सुश्रवसा) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, प्रजाजन के साथ युद्ध करने के लिये (एतान्) इन (उप अग्मुषः) युद्ध के लिए आने वाले (द्विः दश) बीसों धार्मिक राजाजनों तथा जनपदों के राजाओं

को (षष्टिं सहस्रा नवतिं नव) साठ हजार निन्यानवे पुरुषों को (दुष्पदा) दुष्प्राप्य (रथ्या चक्रेण) रथों या महारथियों से बने चक्र या चक्रव्यूह द्वारा रक्षा करके शत्रुओं को भी (नि अवृणक्) दूर करने में समर्थ हो। बीसों राजाओं के मुकाबले पर ६००९९ का एक प्रबल रथों का चक्रव्यूह रक्षा के लिए पर्याप्त है।

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम्।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः ॥ १० ॥

भा०—हे सेनापते ! (त्वम्) तू (सुश्रवसम्) उत्तम यशस्वी, राष्ट्र और राष्ट्रपति जो (तव ऊतिभिः) अपने रक्षा साधनों से (आविथ) सुरक्षित रख। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (तूर्वयाणम्) हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर सैनिकगण को भी (त्रामभिः) कवच आदि साधनों से (आविथ) सुरक्षित रख और (अस्मै) इस (महे) बड़े भारी (यूने) सबको अपने साथ मिलाने हारे या सबसे पृथक् हुए (राज्ञे) राजा के लिए (कुत्सम्) वज्र अर्थात् सेना, शस्त्रास्त्र बल को और (अतिथिग्वम्) अतिथि के समान पूज्य राजा के प्रति सर्वसमर्पण कर उसकी शरण में आने वाले (आयुम्) प्रजाजन को (अरन्धनायः) तू अपने वश कर।

य उ॒दृचीन्द्र दे॒वगो॑पाः सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा असा॑म।
त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः ॥११॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनाध्यक्ष ! (ये) जो (देवगोपाः) विद्वानों और विजिगीषु वीर पुरुषों से सुरक्षित (सखायः) तेरे मित्रगण हैं (ते) वे और हम तेरे लिए (शिवतमाः) अत्यन्त कल्याणकारी होकर (असाम) रहें। हम (सुवीराः) उत्तम वीरजन (त्वया सह) तेरे साथ (द्राघीयः) सौ वर्षों से भी अधिक दीर्घ (आयुः) जीवन को (प्रतरम्) खूब अच्छी प्रकार (दधानाः) धारण करते हुए (त्वाम्) तेरी (उद्-

ऋचि) युद्ध-यज्ञ की समाप्ति पर स्तुतियों द्वारा (त्वाम्) तेरी (स्तोषाम) स्तुति करें। इति षोडशो वर्गः ॥

[५४] सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, १० विराड्-जगती। २, ३, ५ निचृज्जगती। ७ जगती। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

मा नो॑ अ॒स्मिन्म॑घवन्पृ॒त्स्वंह॑सि न॒हि ते॑ अन्तः॒ शव॑सः परी॒णशे॑।
अक्र॑न्दयो न॒द्यो॒३॑ रोरु॑व॒द्वना॑ क॒था न क्षो॒णीर्भि॒यसा॒ समा॑रत ॥१॥

भा०—हे (मघवन्) परमेश्वर ! (ते शवसः) तेरे बल का (अन्तः नहि परीणशे) अन्त नहीं पाया जा सकता। तू (नः) हमें (अंहसि) पाप में और (पृत्सु) नाना संग्रामों, या नाना पीड़ाजनक आयासों में (मा अक्रन्दयः) मत रुला। तू (वना) जंगलों में (नद्यः) नदियों के समान (मा रोरवत्) भ्रमा २ कर मत रुला। (भियसा) भय के मारे त्रस्त हुए (क्षोणीः) पृथ्वी निवासी जन भी (कथा न) क्यों न (सम् आरत) एक संग मिलकर तेरी शरण में आवें।

अर्चा॑ श॒क्राय॑ शा॒किने॒ शची॑वते शृ॒ण्वन्त॒मिन्द्रं॑ म॒हय॑न्न॒भि ष्टु॑हि।
यो धृ॒ष्णुना॒ शव॑सा॒ रोद॑सी उ॒भे वृषा॑ वृष॒त्वा वृ॑ष॒भो न्यृ॒ञ्जते॑ ॥२॥

भा०—हे प्रजाजन ! तू (शाकिने) शक्ति से भरे हुए पदार्थों और पुरुषों के स्वामी, (शक्राय) स्वतः भी शक्तिशाली और (शचीवते) प्रज्ञावान् कर्मशक्ति से सम्पन्न और शक्तिशालिनी सेनाओं के स्वामी परमेश्वर की (अर्च) स्तुति कर। (इन्द्रम् शृण्वन्तम्) सब स्थानों और सब कालों में वह परमेश्वर सुन रहा है, ऐसा जान कर (महयन्) ईश्वर के प्रति आदर और श्रद्धा से पूजन और अर्चन करता हुआ तू (अभि स्तुहि) साक्षात् सा जानकर उसकी स्तुति किया कर। ऐसे ही (इन्द्रं शृण्वन्तम्) प्रजाओं के न्यायव्यवहारों और कष्टों को सुनते हुए

का (महयन्) आदर करता हुआ (अभिस्तुहि) राजा की साक्षात् स्तुति कर। (यः वृषाः) जो मेघ के समान प्रजाजनों पर, जल के समान सुखों की और बिजलियों के समान शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने हारा है, वह (वृषभः) सुखवर्षक होकर ही (उभे रोदसी) आकाश और पृथ्वी दोनों को सूर्य के समान (वृषत्वा) अपने वर्षण सामर्थ्य से राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (नि ऋञ्जते) अपने वश में करता है।

अर्चा दि॒वे बृ॑ह॒ते शू॑ष्यं॒१॒ वचः॒ स्वक्ष॑त्रं॒ यस्य॑ धृष॒तो धृ॒षन्मनः॑।
बृ॒हच्छ्र॑वा॒ असु॑रो ब॒र्हणा॑ कृ॒तः पु॒रो हरि॑भ्यां वृष॒भो रथो॒ हि षः॥३॥

भा०—(धृषतः) शत्रुओं के पराजित करने हारे (यस्य) जिसका (मनः) मन, या शासन और (स्वक्षत्रम्) अपना क्षात्रबल दोनों (धृषत्) शत्रु को पराजित करने वाले हैं और जिसकी (वचः) वाणी या आज्ञा भी (शूष्यम्) बलयुक्त और सुखजनक है उस (बृहते) बड़े भारी (दिवे) सूर्य के समान प्रतापी राजा का (अर्च) आदर कर। वह (बृहत्श्रवाः) बड़े भारी यश, अन्न, ज्ञान, (असुरः) प्राणबल से युक्त, शत्रुओं को परास्त करने हारा (बर्हणा) बड़े भारी सैन्यबल से (पुरः कृतः) अपना मुख्य सर्दार बनाया जावे। (सः हि) वह (वृषभः) बलवान् पुरुषों को प्रिय अथवा सर्वश्रेष्ठ, सुखों का वर्षक होकर (हरिभ्यां कृतः रथः इव) दो प्रबल अश्वों से युक्त रथ के समान (हरिभ्यां) दो विद्वान् पुरुषों से सहायवान् होकर (रथः) बलशाली हो।

त्वं दि॒वो बृ॑ह॒तः सानु॑ को॒पयोऽव॒ त्मना॑ धृष॒ता शम्ब॑रं भिनत्।
यन्मा॒यिनो॑ व्र॒न्दिनो॑ म॒न्दिना॑ धृ॒षच्छि॒तां गभ॑स्तिम॒शनिं॑ पृत॒न्यसि॑॥४॥

भा०—(यत्) जो तू (धृषत्) शत्रुओं का पराजय करने और दबाने में समर्थ होकर (व्रन्दिनः) समूह बनाकर रहने वाले, (मायिनः) मायावी पुरुषों को (मन्दिना) प्रसन्नचित से (पृतन्यसि) सेना द्वारा पराजित करना चाहता या स्वयं अपने अधीन सेना रखना चाहता है,

तब तू (गभस्तिम्) जैसे सूर्य मेघ पर अपनी किरण या दीप्ति को फेंकता है वैसे ही जो (शितां) अतितीक्ष्ण (गभस्तिम्) अपने हाथों से काबू करके चलाने योग्य (अशनिम्) विद्युत् के बने सर्वसंहारक अस्त्र को छोड़ और (बृहतः दिवः) बड़े भारी आकाश और सूर्य के प्रकाश को (सानु) रोक लेने वाले (शंबरं) मेघ को (धृषता) धर्षण या पराभव करने वाले (त्मना) अपने तेज से सूर्य या वायु जैसे छिन्न भिन्न करता या बिजली जैसे अपने तीव्र सामर्थ्य से ही (शंबरं अव कोपयः) जल को नीचे गिरा देता है वैसे ही (बृहतः दिवः) बड़े भारी ज्ञानी, या तेजस्वी राजा के ऐश्वर्य भोगने वाले (शंबरम्) शान्ति के नाशकारी, दुष्ट पुरुष को (अव कोपयः) क्रोध से हीन, निर्वीर्य करे और (अव भिनत्) नीचे तोड़ गिरावे ।

नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥१७

भा०—हे परमेश्वर ! (यत्) जो तू आज भी बराबर पूर्व कालों के समान (श्वसनस्य) सबके प्राणप्रद वायु के और (व्रन्दिनः) किरण समूहों से युक्त (शुष्णस्य) पृथ्वी के जलों को शोषण करने वाले सूर्य के भी (मूर्धनि) शिर पर, ससके भी ऊपर अधिष्ठाता होकर (प्राचीनेन) प्राचीन सनातन से चले आये (बर्हणावता) संसार की वृद्धि करने वाले (मनसा) ज्ञान से सबको उपदेश या गर्जना करता हुआ (वना) जलों और ज्ञानों को (नि वृणक्षि) नीचे गिराता या देता है तब (अद्यापि) आज भी (त्वा परि) तुझे छोड़ कर कौन दूसरा (कृणवः) ऐसा करने में समर्थ है, वैसे ही हे राजन् ! (श्वसनस्य) प्राणी के श्वासों या जीवनों के दाता और (व्रन्दिनः शुष्णस्य चित्) दुष्ट पुरुषों के जत्थे के स्वामी के भी (मूर्धनि) शिर पर तू विराज कर (रोरुवत्) प्रजाओं को उत्तम उपदेश या आज्ञा करता है और शत्रुओं को रुलाता हुआ (वना) भोग योग्य

ऐश्वर्यों के जलों के समान (नि वृणक्षि) मेघवत् वर्षा दे और (प्राचीनेन) आगे की तरफ बढ़ने वाले (बर्हणावत्) शत्रु के नाशकारी (मनसा) प्रबल चित्त से जो तू करता है उसको (त्वा परि कः यत् कृणवः) तुझ से दूसरा कौन हो, जो कर सके। इति सप्तदशो वर्गः॥

त्वमा॑विथ॒ नर्यं॒ तुर्व॑शं॒ यदुं॒ त्वं तु॒र्वीतिं॑ व॒य्यं॑ शतक्रतो।
त्वं रथ॒मेत॑शं॒ कृत्व्ये॒ धने॒ त्वं पुरो॑ नव॒तिं द॑म्भयो॒ नव॑॥ ६॥

भा०—हे राजन्! हे परमेश्वर! हे (सतक्रतो) सैकड़ों वीर कर्मों के स्वामिन्! (त्वं) तू (नर्यम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, उनमें श्रेष्ठ, (तुर्वशम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पर वश करने हारे! उनकी इच्छा करने हारे (यदुम्) यत्नशील, (तुर्वीतिम्) शत्रुओं को मारने में कुशल, (वय्यम्) तेजस्वी वा ज्ञानवान्, (रथम्) रथों पर चढ़ने हारे और (रथम् एतशम्) रथों और घोड़ों रथारोही घुड़सवारों की (धने कृत्व्ये) संग्राम करने के निमित्त (आविथ) रक्षा कर और शत्रु के (नवतिं नव) निन्यानवे अर्थात् अनेकों (पुरः) पुरों को (दम्भयः) विनाश कर।

स घा॒ राजा॒ सत्प॑तिः शूशुव॒ज्जनो॑ रा॒तह॑व्य॒: प्रति॒ यः शास॒मिन्व॑ति।
उ॒क्था वा॒ यो अ॑भिगृ॒णाति॒ राध॑सा॒ दानु॑रस्मा॒ उप॑रा पिन्वते दि॒वः॥७

भा०—(सः) वह (घ) ही निश्चय से (राजा) राजा है (यः) जो (जनः) मनुष्य (सत्पतिः) सज्जनों का पालक होकर (शूशुवत्) राष्ट्र की वृद्धि करे और उस पर अपनी आज्ञा चलावे और जो (रात हव्यः) उत्तम २ अन्न आदि ग्रहण करने और दान योग्य पदार्थों का दान करता हुआ (शासम् प्रति) शासन के साधन न्याय और दमन को प्रतिदिन और प्रत्येक जन के प्रति यथावत्, (इन्वति) करता है (आ) और (यः) जो (उक्था) वेदानुकूल वचनों का (अभिगृणाति) अन्यों को उपदेश करे और (राधसा) अपने ऐश्वर्य से (दानुः) दानशील होकर (अस्य) इस राष्ट्रवासी

प्रजा के लिए (दिवः उपरा) आकाश से बरसे मेघ के समान (पिन्वते) उन पर ऐश्वर्यों और सुखों का वर्षण करे।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (क्षत्रम्) राष्ट्रीय सेना बल (असमम्) सबसे बढ़कर और (मनीषा) बुद्धिबल, या मंत्रबल भी (असमा) अनुपम, सबसे बढ़ कर हो। (ये) जो (ददुषः) आजीविका आदि देने वाले (ते) तेरे अधीन रहकर, तेरे (महि) बहुत बड़े (क्षत्रम्) बल को (वृष्ण्यं च) और ऐश्वर्य को और (स्थविरम्) स्थिर करते और (वर्धयन्ति) बढ़ाने में समर्थ हों (नेमे) वे सब (अपसा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्यों सहित (सोमपाः) अन्न, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, ज्ञान और ओषधि आदि रस का पान, पालन, प्राप्ति करते हुए (प्र सन्तु) सुख से रहें।

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! (अद्रिदुग्धाः) मेघों की वर्षाओं से जैसे भरे पूरे पर्वती नाले वेग से तटों और वृक्षों को तोड़ते फोड़ते हुए निकलते हैं वैसे ही ये (चमू-सदः) सेनाओं में विराजमान वीर सैनिक भी (अद्रिदुग्धाः) मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्षाने वाले, पर्वतों के समान दृढ़ राजाओं से पालित पोषित हैं। वे (चमसाः) पात्रों के समान राष्ट्र के बहते और अस्थिर ऐश्वर्यों को भी धारण करने और राष्ट्र ऐश्वर्यरूप भोग्य रस को भोग करने के साधन होकर (इन्द्रपानाः) ऐश्वर्य से समृद्ध, राष्ट्र और राष्ट्रपति के पद का पालन और उपभोग करने में समर्थ हैं। (एते) वे सब (बहुकाः) बहुत से ऐश्वर्यों को शत्रु देश से ले आने वाले बहुत संख्या में (तुभ्य इत्) तेरी ही रक्षा के लिए हों। तू (एषाम्) इनकी

(कामम्) अभिलाषा को (तर्पय) पूर्ण कर और इनके आधार पर राष्ट्र को (वि अश्नुहि) विविध प्रकार से प्राप्त कर। (अथो) और (एषाम् मनः) इनके चित्त को (वसुदेयाय) देने योग्य धन अर्थात् वेतन, पुरस्कार आदि के लिए उत्सुक (कृण्व) बनाये रख।

अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते १०

भा०—(धरुणह्वरं तमः) आश्रयदाता, आधारस्वरूप, कुटिल, टेढ़े मेढ़े स्थान जिनमें सूर्य या विद्युत् का प्रकाश तुरन्त नहीं पहुँचता, वहां ही (तमः) अन्धकार (अपाम्) जलों के बीच (अतिष्ठत्) रहता है और (वृत्रस्य) जल को (जठरेषु) अपने गर्भ में धारण करने वाले और पुनः द्रव रूप से उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म रूपों के (अन्तः) भीतर ही (पर्वतः) ऊंचे कन्धे वाला मेघ पर्वताकार होकर दीखा करता है। (नद्यः) गर्जना करने वाली बिजलियां भी (विश्वाः) सब (वव्रिणा) आवरण करने वाले मेघ के रूप से (अन्तः हिता) भीतर रहती हैं (इम्) इनको (इन्द्रः) वायु या विद्युत् ही एक दूसरे के पीछे स्थित जल की तहों को (अभि) आघात करके (प्रवणेषु) नीचे प्रदेशों में (जिघ्नते) गिरा देता है। ठीक इसी प्रकार राष्ट्र में भी (तमः) अन्धकार (अपाम्) प्रजाओं के बीच (धरुणह्वरम्) आश्रय देने वाले बड़े २ लोगों की आड़ में ही कुटिलतापूर्वक दीवट के नीचे अन्धकार के समान रहा करता है। राजा उसको सूर्य के समान नाश करे। (वृत्रस्य) बढ़ते हुए राष्ट्र के (जठरेषु अन्तः) उत्पन्न या प्रकट करने वाले राष्ट्र के अवयवों के भीतर ही (पर्वतः) राष्ट्र के पालनकारी साधनों का स्वामी, पर्वत के समान अचल और मेघ के समान सुखों का वर्षक होकर रहे। मेघ या विद्युत् जैसे जल-धाराओं को नीचे के प्रदेशों में बहाता है वैसे ही (वव्रिणा) वरण करने योग्य, चाहने योग्य सुन्दर रूप वाली सुवर्ण आदि के रूप में (स्थिताः)

रक्खी हुई (विश्वा) समस्त (नद्यः) समृद्धियों को (अनुष्ठाः) अनुकूल, कर्मानुकूल या नियमानुकूल रखकर (प्रवणेषु) अपने आगे झुकने वाले विनीत भृत्यों में (अभि जिघ्नते) प्राप्त करावे, प्रदान करे ।

स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः॥११॥१८

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (सः) तू (जनाषाट्) समस्त जनों को अपने वश करने में समर्थ होकर (शेवृधम्) सुखों को बढ़ाने वाले (द्युम्नम्) ऐश्वर्य को और (महि) बड़े भारी (तव्यम्) बलशाली (क्षत्रम्) क्षत्रिय बल को (अस्मे) हमारी रक्षा के लिए (अधि धाः) खूब अधिक मात्रा में रख और (नः) हमारे (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए, (स्वपत्यै) गुणशाली पुत्रों को भरण पोषण करने वाले (इषे) अन्न-वृद्धि और रक्षा के लिए (नः) हममें से (मघोनः) ऐश्वर्यवान् और (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों की भी (रक्ष) रक्षा कर । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५५] सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—जगती । २, ५–७ निचृत् । ३, ८ विराड् । अष्टर्चं सूक्तम् ॥

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्मांश्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः॥१

भा०—(चित्) जैसे (अस्य) इस सूर्य की वरिमा, श्रेष्ठ गुण, बड़प्पन (दिवः चित्) आकाश के भी पार (वि पप्रथे) विविध दिशाओं में फैल जाता है और (इन्द्रम्) सूर्य के (मह्ना) महान् वैभव से (पृथिवी चन) पृथिवी भी (प्रति न) बराबरी नहीं करती, ठीक वैसे ही (अस्य वरिमा) उस राजा के श्रेष्ठ गुण (दिवः चित्) प्रकाशमान सूर्य एवं बड़ी विद्वत्-राज-सभा से भी अधिक (वि पप्रथे) विशेष रूप से विस्तृत हो और (पृथिवी चन) समस्त पृथिवी वासी प्रजा (मह्ना) अपने

बड़े बल से भी (इन्द्रं प्रति न) शत्रुनाशक राजा का प्रतिपक्षी न हो। वह राजा (भीमः) भयानक (तुविष्मान्) बलशाली होकर (चर्षणिभ्यः) समस्त मनुष्यों के हित के लिये (आतपः) सूर्य के समान तेज से शत्रु को संताप देने वाला होकर (वंसगः न) बलीवर्द जैसे भोग्य गो गण पर जाता है वैसे ही वह भूमियों का भोग करे। (तेजसे) सूर्य जैसे प्रकाश करने के लिये अपने अन्धकार-वारक (वज्रं शिशीते) किरण समूह को तीव्र करता है और मेघ जैसे प्रकाश के लिये (वज्रं) विद्युत् को तीक्ष्ण करता है वैसे ही (तेजसे) राजा भी अपने तेज पराक्रम और प्रभाव की वृद्धि के लिये (वज्रम्) अपने शस्त्रास्त्र बल को सदा (शिशीते) तीक्ष्ण, सदा तैयार और अति वेगवान् उग्र, बलवान् बनाये रक्खे।

सो अ॒र्ण॒वो न न॒द्यः॑ समु॒द्रियः॒ प्रति॑ गृभ्णाति॒ विश्रि॑ता॒ वरी॑मभिः।
इन्द्रः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ वृषायते स॒नात्स यु॒ध्म ओज॑सा पनस्यते ॥२॥

भा०—(अर्णवः नद्यः न) जैसे समुद्र नदियों को अपने भीतर ले लेता है, वैसे ही (इन्द्रः) सूर्य भी (नद्यः) अव्यक्त शब्द करनेवाले, (विश्रिताः) विविध प्रकारों और रूपों में स्थित जलों को (वरीमभिः) रोकनेवाले कारणों या किरणों द्वारा (प्रति गृभ्णाति) ले लेता है। वही (समुद्रियः समुद्र अर्थात् महान् आकाश या अन्तरिक्ष प्रदेश में उत्पन्न (इन्द्रः) सूर्य (सोमस्य पीतये) जल को अपने किरणों द्वारा पान कर लेने के कारण ही (वृषायते) बाद में वर्षा करने वाले मेघ के समान, मेघ का रूप होकर बरसता है। (सः) वह (सनात्) सदा से ही (युध्मः) प्रहार करनेवाला विद्युत् होकर (ओजसा) अपने पराक्रम या बलकर्म से (पनस्यते) नाना व्यापार अर्थात् वर्षण, गर्जन, विद्युत् आदि के कार्य करता है। ठीक वैसे ही यह राजा (समुद्रियः) समुद्र से उत्पन्न रत्न के समान उज्वल होकर (नद्यः न अर्णवः) जैसे सागर अपने भीतर जल से भरी पूर्ण नदियों को ले लेता है वैसे ही वह (नद्यः) गर्जना करनेहारी सेनाओं तथा समृद्धिशाली उन नाना प्रजाओं को भी (प्रति गृभ्णाति) ले लेता है, अपने वश

कर लेता है। जो (वरीमभिः) नाना रक्षा साधनों और बड़े बड़े सामर्थ्यों से (विश्रिताः) विविध उपायों, स्वार्थों तथा विविध देशों, दिशाओं और कार्यों में आश्रय पा रही हैं, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के भोग, राष्ट्र के पालन के लिए (वृषायते) वर्षणकारी मेघ या सूर्य के समान आचरण करे और (सनात्) सदा (सः) वह (ओजसा) अपने पराक्रम से (युध्मः) योद्धा के समान सन्नद्ध होकर (पनस्यते) स्तुति का पात्र हो।

त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (पर्वतम् न भोजसे) जैसे मेघ को सूर्य, विद्युत् या वायु समस्त प्रजाओं के लिये आघात करता, छिन्न भिन्न करता है वैसे ही (पर्वतम्) पर्वत के समान अभेद्य दृढ़ शत्रु को भी (त्वम्) तू (भोजसे) प्रजाओं के पालन और ऐश्वर्य भोग के लिये आघात करता है और तब तू (महः) बड़े भारी (नृम्णस्य) मनुष्यों को वश करने में समर्थ, ऐश्वर्य के (धर्मणाम्) धारक धनाढ्य पुरुषों के बीच में भी (इरज्यसि) ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। (वीर्येण) वीर्य या वीरोचित प्रताप या विविध प्रकार से शत्रु को उखाड़ फेंकने के बल से तू (देवता अति) समस्त दानशील स्वामियों और विजय करने वाले सेना जनों में से भी सबसे बढ़ कर (चेकिते) जाना जाता या स्वयं जानता है। तभी तू (विश्वस्मै) सब (कर्मणे) कामों के लिये (उग्रः) बड़ा प्रबल, भयकारी (पुरोहितः) आगे स्थापित साक्षी, द्रष्टा, निरीक्षक, शासक के रूप में स्थापित हो।

स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४॥

भा०—(नमस्युभिः वचस्यते) जैसे नमस्कार करने वाले, विनयशील

विद्यार्थियों के समान भक्तजनों द्वारा (वने) परमेश्वर अरण्य में, एकान्त में स्तुति किया जाता है और यह जनों और जन्तुओं में उत्तम उपभोग योग्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और ज्ञान का आचार्य के समान (प्रब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र होता है वैसे ही (सः इत्) वह राजा ही (वने) भोगने और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य के लिये (नमस्युभिः) उसके प्रति झुक २ कर आदर करने वाले बिनीत सेवकों द्वारा (वचस्यते) उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करे और वह (जनेषु) सर्व साधारण जनों पर (चारु) उत्तम, भोग्य (इन्द्रियम्) समृद्धि को प्राप्त करने का (प्रब्रुवाणः) उनको उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र हो। (यत्) जब भी राजा (वृषा) सब प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारा, मेघ के समान उदार या (वृषा धेनाम्) महा वृषभ जैसे गौ को प्राप्त करता है वैसे ही वह (धेनाम्) समस्त रसों के पान कराने वाली आज्ञापक वाणी और भूमि को या प्रजा की स्तुति को (इन्वति) प्राप्त करता है, तब वह (वृषा) वर्षक मेघ के समान उदार (छन्दुः) प्रजा का मनोरंजक और (क्षेमेण) प्रजा के कुशल क्षेम, परम हित करने से भी (हर्यतः) सबके मनों के हरण करने वाला (क्षेमेण) प्रजा के रक्षण द्वारा ही (छन्दुः) प्रजाओं के मन हरने वाला एवं स्वतंत्र (भवति) हो जाता है।

स इन्म॒हानि॑ समि॒थानि॑ म॒ज्मना॑ कृ॒णोति॑ यु॒ध्म ओज॑सा॒ जने॑भ्यः।
अधा॑ च॒न श्रद्द॑धति॒ त्विषी॑मत॒ इन्द्रा॑य॒ वज्रं॑ नि॒घनि॑घ्नते व॒धम् ॥५॥

भा०—(सः इत्) वह राजा या सेनापति ही (मज्मना) राष्ट्र कार्य में बाधा उत्पन्न करने वाले कण्टकों को शोधन करने में समर्थ सैन्यबल से और (ओजसा) बड़े पराक्रम, उत्साह और साहस से (युध्म) शत्रु पर प्रहार करने में समर्थ, योद्धा होकर (जनेभ्यः) प्रजाजनों के हित के लिये (महानि) बड़े २ (समिथानि) संग्राम (कृणोति) करता है और (वज्रं) शत्रुओं के बारण करने वाले (वधम्) उनको आघात करने वाले शस्त्र तथा वध आदि दण्ड का भी (निघनिघ्नते) प्रयोग करता है। (अध चन)

तभी (त्विषीमते) सूर्य के समान तेजस्वी उस (इन्द्राय) राजा से ऊपर भी (श्रत् दधति) लोग श्रद्धा करते हैं और विश्वास करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स हि श्र॒व॒स्युः सद॑नानि कृ॒त्रिमा॑ क्ष्म॒या वृ॑धा॒न ओज॑सा वि॒नाश॑यन्।
ज्योतीं॑षि कृ॒ण्वन्न॑वृ॒काणि॒ यज्य॒वेऽव॑ सु॒क्रतु॒ः सर्त॒वा अ॒पः सृ॑जत् ॥६॥

भा०—(सः) वह (हि) निश्चय से (श्रवस्युः) यश प्राप्त करने की इच्छा से (कृत्रिमा सदनानि) नाना शिल्पों द्वारा बनाये जाने वाले गृह, दुर्ग, रथ आदि (सृजत्) बनवावे और (श्रवस्युः) अन्न को प्राप्त करने की इच्छा से (कृत्रिमा) कृत्रिम, नये २ (सदनानि) जलों, जलाशय, सेतु और नहरों को (सृजत) बनवावे और (क्ष्मया) भूमि सम्पत्ति, जनपदवासी प्रजा के द्वारा (वृधानः) बढ़ता हुआ और (ओजसा) पराक्रम से शत्रुओं के (कृत्रिमा सदनानि) बनाये गृहों, दुर्ग और जलाशय सेतु, बन्ध आदि को (विनाशयन्) विनाश करता रहे। (ज्योतींषि अवृकाणि कृण्वन्) जैसे वायु अपने प्रबल झोकों से आकाश में सूर्य, चन्द्र आदि को मेघ आदि के आवरण से रहित कर देता और आकाश को स्वच्छ कर देता है वैसे ही राजा भी राज्य में (अवृकाणि) चोरों से और सिंह आदि रात्रिचारी प्राणियों के भय से रहित (ज्योतींषि) बड़े २ लैम्पों, ज्योतिस्तम्भों को नगरों और मार्गों में (कृण्वन्) करता रहे। जैसे (यज्यवे) यज्ञ करने वाले के लिये मेघ या सूर्य (सर्तवै अपः अवसृजत्) नीचे बहने के लिये जलों को नीचे बहाता है वैसे ही राजा भी (सुक्रतुः) शिल्प या इंजिनीयरी के कार्यों के करने में कुशल होकर, (सर्त्तवै) राष्ट्र में बहने और एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिये (अपः) जलों, नहरों और जल मार्गों को (अनसृजत्) बनवावे।

दा॒नाय॒ मन॑ः सोमपावन्नस्तु॒ तेऽर्वाञ्चा॒ हरी॑ वन्दनश्रु॒दा कृ॑धि।
यमि॑ष्ठास॒ः सार॑थयो॒ य इ॑न्द्र॒ ते॒ न त्वा॒ केता॒ आ द॑भ्नुवन्ति॒ भूर्ण॑यः ७

भा०—हे (सोमपावन्) राष्ट्र और अभिषिक्त राज्यपद के रक्षक राजन्! विद्वन्! (ते मनः) तेरा मन (दानाय अस्तु) सदा दान देने के

लिए हो और (ते मनः दानाय अस्तु) तेरा मन अर्थात् स्तम्भनबल, पराक्रम शत्रुओं के खण्डन, विनाश के लिए हो। हे (वन्दनश्रुत्) स्तुति को आदर से श्रवण करनेहारे! तू अपने (हरी) दोनों अश्वों को (अर्वाञ्चौ) आगे, अपने अधीन चलनेहारा (कृधि) कर। हे (इन्द्र) राजन्! (ये) जो (यमिष्ठासः) नियन्त्रण करने में कुशल, (सारथय) रथियों के साथ बैठने वाले सारथी लोग और उनके समान सहयोगी व्यवस्था के अधिकारी हैं, (ते) वे (केताः) ज्ञान वाले और (भूर्णयः) प्रजा के पोषण करने वाले होकर (त्वा) तुझ को (न आदभ्नुवन्ति) विनष्ट न करें।

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥८॥२०॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः राजन्! सेनापते! सभाध्यक्ष तू (हस्तयोः) अपने हाथों में (अप्रक्षितं वसु) अक्षय ऐश्वर्य को (बिभर्षि) धारण कर और (श्रुतः) कीर्तिमान होकर (तन्वि) अपने शरीर व विस्तृत राष्ट्र में (अषाट्) शत्रुओं से कभी पराजित न होनेवाले (सहः) बल को (दधे) धारण कर। (ते तनूषु) तेरे शरीरों के समान सुदृढ़ राज्यतन्त्रों में (भूरयः) बहुत से (क्रतवः) क्रियाशील तथा प्रज्ञावान् पुरुष भी ऐसे हों जो (अवतासः न)रक्षाकारी, ज्ञानी पुरुषों या जल से पूर्ण जीवनप्रद कूपों या छिपे खजानों के समान (कर्तृभिः) अधीनस्थ कर्म कुशल पुरुषों से (आवृतासः) घिरे हुए, सुरक्षित रहें। इति विंशो वर्गः ॥

[५६] सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृज्जगती। २ जगती। ४ विराड्जगती। ५ त्रिष्टुप्। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। षडर्चं सूक्तम् ॥

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥१॥

भा०—(अत्यः न) अश्व जैसे (योषाम्) घोड़ी को (उत् अयंस्त) प्राप्त हो अथवा (अत्यः न) जैसे स्वयम्बर में बल, शौर्य की प्रतिस्पर्द्धा में सबसे

अधिक बढ़ जाने वाला पुरुष ही (भुर्वणिः) भरण-पोषण करनेहारा पति होकर (योषाम्) स्वयंबरा कन्या को (उत् अयंस्त) विवाह लेता है, वैसे ही (भुर्वणिः) राष्ट्र को धारण पोषण करने में समर्थ (अत्यः) बलशौर्य की प्रतिस्पर्द्धा में सबसे अधिक बढ़ जाने हारा (एषः) यह वीर राजा भी (तस्य) उस राष्ट्र की (पूर्वीः) अग्रगण्य, (चम्रिषः) पात्रों में रक्खी, (पूर्वीः) भरी पूरी योग्य सम्पदाओं के समान (चम्रिषः) सेनाओं में आज्ञा पर चलने वाली, (पूर्वीः) अग्रगण्य, बल में परिपूर्ण सेनाओं को (उत् अयंस्त) अपने अधीन करके नियम में चलाता है और वह (ऋभ्वसम्) बहुत दीप्ति के साथ तीव्र वाण आदि अस्त्रों को फेंकने में समर्थ (हरियोगम्) अश्वों द्वारा जोते जाने वाले (हिरण्ययं) लोह के बने (रथम्) रथ या तोप को (आवृत्य) प्रयोग करके (महे) बड़े भारी विजय कार्य करने के लिए (दक्षं) बल या क्रिया सामर्थ्य को (पाययते) सुरक्षित रखता है।

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२

भा०—(गूर्त्तयः) उद्यमशील या उपदेशों से युक्त, (नेमन्निषः) लज्जा से विनीत और हृदय से पति को चाहने वाली, (परि-नसः) शुभनासिका वाली सुन्दर स्त्रियां जैसे (पतिम्) पति को प्राप्त होती हैं और (न) जैसे (सनिष्यवः) उत्तम रीति से भोगने योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाले धनाभिमानी पुरुष (संचरणे) परदेश में जाने के लिए (समुद्रं) समुद्र का आश्रय लेते हैं और (वेनाः) विद्वान् पुरुष जैसे (गिरिं न) पर्वत के समान अचल और ज्ञानोपदेश करने वाले मेघ के समान अचल ज्ञानवर्ती गुरु को (तेजसा) ब्रह्मचर्य के तेज से युक्त होकर प्राप्त होते हैं और (वेनाः) कामनाशील स्त्रियां जैसे विवाह के अवसर पर (तेजसा) बड़े साहस से (गिरिं न) शिलाखण्ड पर पैर रख देती हैं वैसे ही (गूर्त्तयः) स्तुतिशील (नेमन्-इषः) आदर से झुकने और अपने स्वामी को चाहने वाली तथा अपने नायक पति द्वारा प्राप्त होने चाहने योग्य (परीणसः) बहुत सी एवं

बहुत से देशों में बसने वाली प्रजाएं अथवा आगे बढ़ने वाली सेनाएं (दक्षस्य) ज्ञान और बल के और (विदथस्य) संग्राम और ऐश्वर्य के (पतिम्) पालक (सहः) बलवान् पुरुष को प्राप्त कर अपने (तेजसा) तेज से उस पर (अधिरोह) आरूढ़ हों, उस पर आश्रय करें।

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥

भा०—(सः) वह वीर पुरुष (तुर्वणिः) शीघ्र सुखजनक एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने और संगी जन को शीघ्र सुखी करने वाला (महान्) गुणों से महा आदर योग्य, (दुध्रः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला, स्वतः बलों से पूर्ण, दुष्टों को अपने अधीन रखने में समर्थ और उनके वश में न आने वाला (आयसः) कवच और शस्त्रास्त्र से युक्त सुरक्षित है, जो (पौंस्ये) पौरुष कर्म और पुरुषत्व के योग्य यौवनकाल में (तुजा) सब दुःखों और विरोधियों का नाशक (अरेणु) निर्दोष बल है (येन) जिस बल से वह स्वयं (गिरेः भृष्टिः न) मेघ से गिरने वाली तीव्र वृष्टि या विद्युत् के समान प्रतापशाली, या ऊंचे शिखर के समान (भ्राजते) चमकता है, उस (शुष्णं) बलवान् (मायिनम्) नाना प्रज्ञाओं से युक्त पुरुष को हे पतिंवरे कन्ये! तू (दामनि) दृढ़ता से बांधने वाले गृहस्थ बन्धन में (नि) अच्छी प्रकार बांध ले और वह तुझे (आभूषु) सब प्रकार की विभूतियों या देशों में (मदे नि रामयत्) हर्ष में अति प्रसन्न रक्खे। अथवा—(तुजा शवः आभूषु रामयत्) उसका दुःखनाशक, सबको सुभूषित करने वाला आनन्दप्रद बल है जिससे तू (दामनि नि) उसे गृहस्थ बन्धन में बांध और वह तुझे बांधे।

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४॥

भा०—हे राजन्! सेनापते! (यदि) यदि (तविषी) बलवती सेना

(त्वावृधा) तुझे अपने बलवीर्य और पराक्रम को बढ़ाने वाली और (देवी) विजय की कामना करने हारी होकर (देवी तविषी) कामनायुक्त महिला के समान (इन्द्रं सिषक्ति) ऐश्वर्यवान् अपने पति को प्राप्त होती है, स्वामी का आश्रय लेती है तब (यः) जो वीर पुरुष (धृष्णुना) शत्रुओं को पराजित करने वाले, प्रबल (शवसा) बल से (तमः) सूर्य जैसे अन्धकार का नाश करता है वैसे ही शत्रुबल का (बाधते) नाश करता है और जो (अर्हरिष्वणिः = अर्ह-रिष्-वनिः, अथवा अर्हरि-स्वनिः) पूज्य और शत्रुओं का विवेक करने हारा होकर (बृहत्) बड़े उद्योग से (रेणुम्) उत्तम रजो रेणु के समान गुणवती तुझको (इयति) प्राप्त हो। (सूर्यः उषसम् न) सूर्य जैसे उषा के पीछे २ अनुगमन करता है वैसे ही सेनापति भी सेना के पीछे चलता है।

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५॥

भा० — जैसे (यत्) जो (औब्जः) सबको अपने अधीन रखने हारा सूर्य (आतासु) दिशाओं में (दिवः) अपने प्रकाश और आकर्षण द्वारा (अच्युतम्) अविनाशी, अपने स्थान से न डिगने वाले (धरुणम्) समस्त चराचर के आश्रय रूप पृथिवी आदि (रजः) लोक को भी (तिरः) अधर आकाश में (अतिष्ठिपः) स्थापित करता है और (यत्) जो (इन्द्रः) सूर्य (मदे) सबके हर्षकारी (स्वर्मीळ्हे) सुखों और जल वर्षाने वाले अन्तरिक्ष में (हर्ष्या) हर्षों के जनक, वृष्टि, विद्युत् आदि कार्यों को उत्पन्न करता हुआ (अपां वृत्रम्) जलों को रोकने वाले मेघ को (अहन्) आघात करता है और (अर्णवम् निः) जल को नीचे गिरा देता है इसी प्रकार (औब्जः) सब शत्रुओं को अपने अधीन करने में समर्थ सेनापति (धरुणम्) राष्ट्र के धारण करने वाले आश्रयरूप (बर्हणा रजः) बड़े लोकसमूह या राजागण को (आतासु) समस्त दिशा में (तिरः अतिष्ठिपः) अपने अधीन स्थापित करता है और यही (इन्द्रः) राजा (स्वर्मीढे मदे) सुखपूर्वक आनन्द के

अवसर में (हर्ष्या) प्रजाजनों को हर्षित करने वाले शासन आदि कार्यों को करता हुआ (अपां अर्णवम्) जल के सागर रूप मेघ को सूर्य के समान (अर्णवम्) शत्रु के अपार सैन्यबल को भी (निर्-अहन्) मार गिराता है।

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्या रुजः॥६॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! सभाध्यक्ष! जैसे सूर्य या मेघ (पृथिव्याः सदने) पृथिवी के नाना प्रदेशों में (ओजसा) अपने बल से (दिवः धरुणम्) आकाश से जल प्रदान करता है वैसे ही (माहिनः) तू महान् शक्तिशाली होकर (ओजसा) अपने पराक्रम से (पृथिव्याः) पृथिवी के (सदनेषु) प्रजाओं के रहने, बसने योग्य गृहों और नगरों में (दिवः) उत्तम प्रकाश और ज्ञान वाले विद्वज्जनों से (धरुणं धिषे) सब प्रजा को धारण करने वाले ज्ञान तथा न्याय व्यवस्थापन को धारण करता है। (त्वं) तू (सुतस्य) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्याधिकार के (मदे) हर्ष और उत्साह में (अपः) आप्त प्रजाजनों को (अरिणाः) प्राप्त कर और (समया) समयानुसार बीच बीच में यथावसर (पाष्या) शत्रुगणों को चकनाचूर कर देने के उपाय से (वृत्रस्य) बढ़ते शत्रु को विद्युत् या वायु जैसे मेघ को समय समय पर आघात करता है वैसे ही (वि आरुजः) विविध उपायों से आघात कर। इत्येकविंशो वर्गः॥

[५७] सव्य आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—जगती (३ विराट्। ६ निचृत्) ५ भुरिक्, व्यूहेन स्वराट् त्रिष्टुप्। विराड् जगती वा। षडृचं सूक्तम्॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्॥१॥

भा०—(प्रवणे अपाम् इव) नीचे प्रदेश में वेग से जाते हुए जलों

के वेग को जैसे रोका नहीं जा सकता, वैसे ही (प्रवणे) अपने आगे विनय से रहने वाले भृत्य आदि जनों को प्राप्त होने वाला (यस्य) जिस वीर सभा और सेना आदि के अधिपति राजा का (विश्वायु) समस्त आयु भर (शवसे) बल की वृद्धि के लिए (अपावृतम्) खुला हुआ, बेरोक बहाता हुआ (राधः) धनैश्वर्य का प्रवाह भी (दुर्धरम्) ऐसा प्रबल हो, जिसको प्रतिपक्षी शत्रु रोक न सके। ऐसे (महिष्ठाय) भारी दानशील, (बृहते) गुणों में महान्, (बृहद्रये) भारी वेग वाले, (सत्यशुष्माय) सत्य बल वाले (तवसे) बलवान् पुरुष के लिये मैं (मतिम्) ज्ञान, स्तुति और अधिकार (भरे) प्रदान करूं।

अधं ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२॥

भा०—(आपः निम्ना इव) जैसे जल प्रवाह नीचे स्थानों पर आप से आप बह आते हैं वैसे ही (हविष्मतः) ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष के (सवना) ज्ञान और ऐश्वर्यों के वश में (इष्टये) अपनी उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने के लिये (विश्वम् अनु असत्) समस्त जगत् रहे। (अध) और (इन्द्रस्य) सूर्य का (हिरण्ययः वज्रः) अन्धकार का नाश करने वाला ज्योतिर्मय, प्रकाश रूप वज्र (न) जैसे (हर्यतः) अति कान्ति युक्त होकर (पर्वते सम् अशीत) मेघ में व्यापता और (श्नथिता) उसको छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर सेनापति का (हिरण्ययः) ऐश्वर्यमय और लोह आदि धातु का बना (वज्रः) शास्त्रस्त्र बल (हर्यतः) अति वेगवान्, (हर्यते) पर्वत के समान अचल और मेघ के समान अस्त्रवर्षी शत्रु पर भी (सम् अशीत) अच्छी प्रकार व्यापे और (श्नथिता) उसे मार कर शिथिल करने वाला हो।

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

भा०—जो (शुभ्रे उषः न) शोभा युक्त प्रकाश के करने में प्रभात के समान होकर (शुभ्रे अध्वरे) सुखजनक, उत्तम हिंसारहित प्रजापालन के कार्य में सूर्य के समान, दुष्ट पुरुषों के छल कपट आदि को दूर करने हारा है और (यस्य धाम) जिसका धारण सामर्थ्य, (नाम) ख्याति शत्रुओं को नमाने वाला बल, (इन्द्रियं) ऐश्वर्य और राजपद (ज्योतिः) प्रकाश, न्याय और विज्ञान भी (हरितः न) दिशाओं के समान (अयसे अकारि) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये किया जाता है (अस्मै) उस (भीमाय) बलों के लिये अति भयंकर, (पनीयसे) स्तुति योग्य एवं उत्तम कार्यकुशल पुरुष के लिये (नमसा) आदरपूर्वक भरण पोषण कर।

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥४॥

भा०—हे (पुरुस्तुत) बहुत सी प्रजाओं से स्तुति किये जाने हारे! हे (प्रभूवसो) सबको आश्रय देने हारे! (ये) जो हम लोग (त्वा आरभ्य) तेरा आश्रय लेकर और प्रथम तेरा नाम लेकर (चरामसि) सब कार्य करते हैं। हे (इन्द्र) परमेश्वर (ते इमे) वे (वयं) हम सब (ते) तेरे ही हैं। (क्षोणीः इव) जैसे पराक्रमी स्तुत्य, वीर पुरुष पराक्रम और यथार्थ सामर्थ्य से समस्त भूमियों का (सघत्) विजय करता है वैसे ही तू (गिरः) वेदवाणियों को (सघत्) प्राप्त है। (त्वद् अन्यः नहि सघत्) तेरे से दूसरा पुरुष कोई भी समस्त वेदवाणियों को यथार्थ रूप से पूर्णतया प्राप्त नहीं करता। (तद्) वह तू (नः) हमारे (वचः) स्तुति वचनों को (प्रति हर्य) स्वीकार कर।

भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! हे राजन्! सेनाध्यक्ष (ते) तेरा (वीर्यम्) सामर्थ्य, सैन्यबल भी (भूरि) बहुत अधिक है। हम (तव स्मसि) तेरे ही

अधीन हैं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतुः) स्तुति करने वाले और विद्वान् प्रजाजन की (कामम्) अभिलाषा को (आ पुण) पूर्ण कर। (ते वीर्यम् अनु) तेरे महान् सामर्थ्य के अधीन ही (बृहती द्यौः) यह बड़ा भारी आकाश और सूर्यादि लोक समूह (ममे) रहता है और (इयं पृथिवीच) यह पृथिवी भी (ते ओजसे) तेरे पराक्रम के आगे (नेमे) झुकती है।

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ६

भा०—हे (इन्द्र) हे राजन्! सेनाध्यक्ष! हे (वज्रिन्) बल और शस्त्रास्त्र के स्वामिन्! (वज्रेण) विद्युत् द्वारा जैसे प्रबल वायु (महान्) बड़े भारी (उरुम्) विस्तृत (पर्वतम्) कन्धों वाले, पर्वताकार मेघ को (पर्वशः) टुकड़े टुकड़े काट डालता है, वैसे ही (त्वं) तू भी (तम्) उस (पर्वतम्) पर्वत के समान ऊंचे शिखर वाले, अभेद्य, प्रबल स्कन्धावारों से युक्त (महान्) बड़े (उरुम्) दूर तक फैले हुए शत्रु को भी (पर्वशः) उसकी टुकड़ी टुकड़ी करके (चकर्त्तिथ) काट गिरा। जैसे वायु अपने प्रबल आघात से (निवृताः) भीतर छिपे (अपः) मेघस्थ जलों को (सर्त्तवे) बहने के लिए (अव सृजत्) नीचे गिरा देता है वैसे ही तू भी (निवृताः) भय के कारण छुपी हुई या प्रबलता से निवारण कर दी गई (अपः) जल-धाराओं के समान अस्थिर शत्रु सेनाओं को (सर्त्तवे) भाग जाने के लिए ही (अवः असृजः) नीचे दबा और उसी के निमित्त (सत्रा) सचमुच तू (विश्वं) समस्त (सहः) शत्रु के पराजयकारी बल को (केवलम्) केवल, अद्वितीय होकर (दधिषे) धारण कर। इति द्वाविंशो वर्गः। इति दशमोऽनुवाकः॥

[५८] नोधा गौतम ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ५ जगती। २ विराड् जगती। ४ निचृज्जगती। ३ त्रिष्टुप्। ६, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ८ विराड् त्रिष्टुप्। नवर्चं सूक्तम्॥

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति १

भा०—(अमृतः) कभी न मरने वाला जीव, (सहोजाः) जीवन के बाधक कारणों को पराजित करने वाले, सहनशील बल को उत्पन्न करता है। वह ही (होता) कर्मों के फलों का भोक्ता और गृहीता होकर भी (दूतः) दूत के समान सूक्ष्म प्राण के अवयवों से बने लिंग शरीर तथा कर्म वासनाओं को जन्मान्तर में भी साथ ले जाने हारा है। वह (देवताता) दिव्य पदार्थ सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रा और उनसे बने इन्द्रियगणों के बीच स्वतः बल देने वाला होकर (हविषा) अन्न द्वारा या प्राप्त कर्म फलों द्वारा (नि तुन्दते) व्यवस्थित होता है। (साधिष्ठेभिः पथिभिः) एक ही आश्रय, आकाश में विद्यमान मार्गों सहित (रजः) लोकों के बनाने वाले, (विवस्वतः) विविध वसु अर्थात् जीवों के आश्रय, परमेश्वर के अधीन (अभवत्) रहता, (वि आ ममे) विविध कार्यों को करता, (आ विवासति) ईश्वर की उपासना करता और नाना ऐश्वर्यों का सेवन करता है।

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२

भा०—(स्वम् अद्म) अपने भोग्य कर्मफल को भोग्य अन्न के समान (आ युवमानः) प्राप्त करता हुआ (अजरः) जरा से रहित आत्मा (तृषु) शीघ्र ही (अतसेषु) काष्ठों के बीच अग्नि जैसे उनका भोग करता हुआ भी उनके ही आश्रय में रहता है, वैसे ही (अतसेषु) व्यापक, आकाश, पृथ्वी आदि तत्वों के आश्रय पर ही और (तृषु) शीघ्र ही पिपासित के समान उन ही पदार्थों का (अविष्यन्) भोग करता हुआ उनके ही बीच में (तिष्ठति) रहता है और (अत्यः न) जैसे वेगवान् अश्व मार्ग को पार करता (रोचते) अच्छा मालूम होता है और जैसे (प्रुषितस्य) अति अधिक दाहकारी अग्नि का (पृष्ठ) ऊपर का भाग (रोचते) अति उज्वल होता है

वैसे ही (प्रुषितस्य) पापों को भस्म कर देने हारे इस जीवात्मा का (पृष्ठम्) आनन्द सेवन करने वाला स्वरूप भी (रोचते) बहुत ही प्रिय प्रतीत होता है। (दिवः सानुम् न) आकाश में स्थित मेघ के खण्ड के समान वह (दिवः) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर को भजन करने वाला जीव भी (स्तनयन्) गर्जते मेघ के समान ही (अचिक्रदत्) अन्तर्नाद करता है।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३॥

भा०—(वसुभिः रुद्रेभिः पुरोहितः होता) जैसे वसु और रुद्र नामक ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुषों द्वारा वरा जाकर, पुरोहित हो, वैसे ही (रुद्रेभिः) प्राणों द्वारा और (वसुभिः) देह में और ब्रह्माण्ड में वास के आश्रय पृथिवी आदि तत्वों द्वारा (पुरः हितः) सबसे प्रथम अपने भीतर धारण किया जाकर, (होता) समस्त ग्राह्य, भोग्य, रूप आदि विषयों का ग्रहण करने हारा है और (अमर्त्यः) कभी मृत्यु द्वारा भी विनाश न होकर, (नि षत्तः) स्थिर रह कर (रयिषाड्) रयि अर्थात् दैहिक विभूतियों को अपने वश करता है। वही जीव (रथः) एक देह से दूसरे देह में जाने वाला और (रथः) अपने को प्रिय लगने वाला, (रथः) रस स्वरूप या स्वतः आनन्दप्रद (विक्षु रथः न) प्रजाओं में रथी के समान (ऋञ्जसानः) सब कार्यों को सहज ही में साधता हुआ (आयुषु) बाल्य, यौवन, वार्धक्य आदि आयु की नाना दशाओं में (आनुषक्) अनुकूल या निरन्तर, एक समान परिवर्तन रहित रह कर (देवः) सुखप्रद, स्वयं द्रष्टा होकर (वार्या) नाना वरण योग्य ऐश्वर्यों को स्वयं (वि ऋण्वति) विविध उपायों से प्राप्त करता है।

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥४॥

भा०—(वातजूतः) वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जैसे (अतसेषु) तृणों और काष्ठों में (वि तिष्ठते) विविध रूप स फैलता है वैसे ही यह

आत्मा भी (वातजूतः) प्राणों द्वारा गतिमान् (अतसेषु) जल आदि तत्वों में (वि तिष्ठते) विविध देहों को धार कर विविध रूपों में स्थित है और जैसे (जुहूभिः) ज्वालाओं द्वारा और (सृण्या) अपने वेग से गमन करने की शक्ति से (तुवि-स्वनिः) अग्नि चटचटा आदि बहुत प्रकार के शब्द करता है वैसे ही वह (जुहूभिः) अपने भीतर आत्मा को धारण करने वाले प्राणों और (सृण्या) स्वयं सरण करने वाली वाणी द्वारा (वृथा) अनायास ही (तुवि-स्वनिः) बहुत से स्वन अर्थात् वर्ण ध्वनियों को उत्पन्न करता है। आत्मा प्राणों और स्वयं देह से देहान्तर में जाने वाली क्रिया या (सृण्या) भरण पोषण करने वाली अन्न प्राप्ति से (तुविस्-वनिः) बहुत से सुखों को भोगने में समर्थ होता है। हे (अग्ने) जीवात्मन्! हे (अजर) जन्म मरण रहित! हे (रुशदूर्मे) दीप्ति वाली ज्वाला से युक्त! (यत्) जैसे (वनिनः) वन में स्थित वृक्षों के प्रति तू (वृषायसे) महावृषभ के समान उनको चरता या खा लेना चाहता है वैसे ही आत्मा भी (वनिनः) नाना सुखप्रद पदार्थों की (वृषायसे) अत्यन्त अधिक कामना करता है। (एम कृष्णं) जैसे अग्नि का मार्ग कृष्ण है अर्थात् जिस पर अग्नि चली जाय वह काला कोयला हो जाता है वैसे ही हे जीवात्मन्! (ते एम) तेरा प्राप्त करने योग्य परमपद भी (कृष्णम्) अत्यन्त आकर्षण करने वाला है।

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः। अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥२३

भा०—(तपुर्जम्भः) ज्वाला रूप मुख वाला अग्नि जैसे (वातचोदित.) वायु से प्रेरित होकर (वने आ वाति) जङ्गल में फैल जाता है वैसे ही यह जीव भी (वातचोदितः) वायु रूप प्राणों से प्रेरित होकर (तपुर्जम्भः) संताप देने वाले जाठर अग्नि को अपना मुख या साधन बनाकर (वने) भोग्य विषय में या संसार में (आवाति) गति करता है। उत्तम जीव (वातचोदितः) ज्ञानवान् पुरुष से प्रेरित होकर (तपुर्जम्भः) तपस्या द्वारा बाधक

कारणों को नाश करता हुआ (वने) अरण्य में सेवनयोग्य परम ब्रह्म में (आ वाति) प्रवेश करता है। वह जीव (वंसगः यूथे न) वृषभ जैसे गो-समूह में (साह्वान्) प्रबल प्रतिस्पर्द्धी वाले वृषभ को पराजित करने में समर्थ होकर (अव वाति) गौओं के पीछे २ जाता है वैसे ही (वंसगः) नाना भोग योग्य पदार्थों के पीछे जाने हारा, तृष्णा युक्त जीव (यूथे) इन्द्रिय गण में (साह्वान्) प्रतिस्पर्द्धी काम, क्रोध आदि आभ्यन्तर शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ होकर भी (अव वाति) प्रायः इन्द्रियों के अधीन होकर नीचे गिर जाता है और जैसे (अभिव्रजन्) शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष (पाजसा) अपने बल वीर्य से (अक्षितं) अक्षय (रजः) ऐश्वर्य को (आवाति) प्राप्त करता है वैसे ही यह जीव भी (अभिव्रजन्) संसार के बन्धनों को परित्याग कर साक्षात् परमेश्वर को लक्ष्य कर उसी की तरफ चलता हुआ (पाजसा) अपने ज्ञान सामर्थ्य से (अक्षितम्) अक्षय (रजः) लोक, मोक्ष या परमेश्वर को (आवाति) प्राप्त होता है। जैसे व्यापनशील अग्नि से स्थावर जंगम सभी भय करते हैं वैसे ही (पतत्रिणः) देहान्तर में जाने वाले उस जीवात्मा से मृत्यु के अवसर में (स्थातुः) स्थावर और (चरथम्) जंगम सभी प्राणी (भयते) भय करते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

द॒धुष्ट्वा॒ भृग॑वो॒ मानु॑षे॒ष्वा र॒यिं न चारुं॑ सु॒हवं॒ जने॑भ्यः।
होता॑रमग्ने॒ अति॑थिं॒ वरे॑ण्यं मि॒त्रं न शेवं॑ दि॒व्याय॒ जन्म॑ने ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) काष्ठों में अग्नि के समान देहों में अव्यक्त रूप से रहने हारे! जीवात्मन् (मानुषेषु) मननशील ज्ञानी पुरुषों में से भी (भृगवः) परिपक्व विज्ञान वाले जन (जनेभ्यः) अपने से अधिक ज्ञान वाले गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त करके (चारुम्) उत्तम, (सुहवं) सुखप्रद, (रयिम् न) ऐश्वर्य के खजाने के समान (चारुम्) विषयों के भोक्ता, (सुहवम्) उत्तम सुख दाता और सुखपूर्वक ज्ञान और स्तुति करने योग्य, (रयिम्) वीर्य स्वरूप जानकर (त्वा दधुः) तुझे धारण करते हैं और (होतारम्) सब

को सुख और विविध ऐश्वर्य के देने वाले, (अतिथिम्) अतिथि के समान देह रूप गृह में अकस्मात् आने और चले जाने वाले (वरेण्यम्) वरण योग्य, प्रिय और (मित्रं न शेवम्) मित्र के समान सुखकारी, तुझको (दिव्याय) तेजोमय, सात्विक जन्म लेने के लिये (त्वा दधुः) धारण करते हैं।

होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥

भा०—(अध्वरेषु) यज्ञों में जैसे (सप्त) सात (वाघतः) ऋत्विक् (जुह्वः) आहुति देने हारे, (अग्निं) ज्ञानवान् (यजिष्ठं) यज्ञ को सबसे उत्तम रीति से करने वाले पुरुष को (होतारं) होता रूप से वरण करते हैं। उसी प्रकार (अध्वरेषु) हिंसा रहित प्राणों द्वारा शरीर के पालन आदि कार्यों में (जुह्वः) गन्धादि विषयों को ग्रहण करने वाले (सप्त) सातों प्राण (वाघतः) विद्वान् ऋत्विजों के समान गतिमान होकर (यं) जिस (यजिष्ठम्) सबसे उत्तम, बल दाता आत्मा को ही अपने (होतारम्) सुखों के दाता रूप से (वृणते) वरण करते हैं, उसको प्रमुख कर उसके अधीन रहते हैं, मैं उसी (अग्निम्) अग्नि के समान देह में अव्यक्त रूप से रहने वाले (विश्वेषां) समस्त (वसूनां) प्राणियों के बीच में (अरतिं) विद्यमान, उस जीवात्मा को (अग्निं) प्रकाशस्वरूप जान कर (सपर्यामि) उसका नित्य अभ्यास करूं और उसी (रत्नम्) परम सुन्दर, सुखप्रद आत्मा को (यामि) प्राप्त होऊं।

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥८॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के उत्पन्न करने हारे! हे (मित्रमहः) सूर्य के समान तेजस्विन्! (अद्य) आज के समान सदा, (स्तोतृभ्यः) सत्य गुणों के वर्णन करने वाले विद्वानों को तू (अच्छिद्रा) कभी विच्छिन्न न

होने वाले (शर्म) सुखों को (यच्छ) प्रदान कर। हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या प्रकाश से पदार्थों को प्रकाशित करने हारे विद्वन्! आत्मन्! तू (नपात्) कभी भी शिष्ट मर्यादा से न गिरता हुआ (गृणन्तम्) स्तुति करने वाले की (आयसीभिः पूर्भिः) राजा प्रजाजन की जैसे लोह की बनी या शस्त्रों से सजी प्रकोटों से रक्षा करता है वैसे ही तू ज्ञान साधनों से बनी (पूर्भिः) पालन करने वाली साधनाओं से (अंहसः) पाप और पाप से उत्पन्न हुए दुःख से (उरुष्य) रक्षा कर।

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥६॥२४॥

भा०—हे (विभावः) तेजस्विन्! हे (मघवन्) परमेश्वर! विद्वन्! आत्मन्! (गृणते) स्तुति करने हारे पुरुष के लिये (वरूथं भव) शत्रुओं के वार सैन्य के समान विघ्नों के दूर करने वाला और गृह के समान शरणप्रद (भव) हो। तू (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान्, विद्वानों और धनाढ्यों को भी (शर्म) सुख शान्तिदायक (भव) हो। तू (अंहसः) पापाचरण करने हारे, दुष्ट पुरुष से भी हे (अग्ने) प्रतापिन्! ईश्वर! राजन्! (गृणन्तम) स्तुतिशील पुरुष की (उरुष्य) रक्षा कर और (प्रातः) प्रातः काल ही (धियावसुः) ज्ञान और कर्म से हृदय में बसाने योग्य प्रभो! न्यायाचरण से ऐश्वर्य प्राप्त करने हारे राजन्! ज्ञान के धनी विद्वन्! और (धिया) मनोबल से प्राणों के स्वामिन्! तू शीघ्र ही (जगम्यात्) हमें प्राप्त हो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[५९] नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ निचृत्। २, ४ विराट्। ३ पंक्तिः। सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) सबको प्रकाशित करने हारे परमेश्वर (अन्ये अग्नयः) तेरे अतिरिक्त सूर्य, नक्षत्र, विद्युत् आदि तथा ज्ञानी, आचार्य, विद्वान् जन भी (ते) तेरी (वयाः) शाखाओं के समान हैं। (विश्वे) सब (अमृताः) अविनाशी आकाश आदि पदार्थ और (अमृताः) कभी मृत्यु को न प्राप्त होने वाले जीवगण (त्वे) तेरे आश्रय पर स्थित होकर (मादयन्ते) आनन्द अनुभव करते हैं। हे (वैश्वनर) समस्त पदार्थों के संचालन करने हारे। तू (क्षितीनां) समस्त मनुष्यों और पृथिवी आदि तत्वों का भी (नाभिः) आश्रय सबको अपने भीतर व्यवस्था में बांधने हारा (असि) है। (स्थूणा इव) बीच का स्तम्भ जैसे समस्त गृह के अवयवों को थामे रहता है वैसे ही तू भी (उपमित्) सबका आश्रय, सबका संचालक होकर (जनान्) सब जनों और जन्तुओं को (ययन्थ) नियम में रखता है।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥२॥

भा०—वह (अग्निः) सबका प्रकाशक परमेश्वर (दिवः) सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों का भी सूर्य के समान (मूर्धा) शिर, सबसे उच्च, सबका अधिष्ठाता है। वही (पृथिव्याः नाभिः) पृथिवी के भी बीच में केन्द्रवत् अग्नि या विद्युत् के समान उसको धारण करने वाला (अथ) और (रोदस्योः) भूमि और सूर्य प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के लोकों का (अरतिः) स्वामी, उनको धारण करने हारा (अभवत्) है। हे (वैश्वानर) समस्त लोकों के चलाने हारे! (तं) उस (त्वा) तुझ (देवं) सबके प्रकाशक परमेश्वर को ही (देवासः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (आर्याय) उत्तम गुण स्वभाव वाले पुरुषों के लिये (ज्योतिः इत्) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश देने वाला (अजनयन्त) प्रकट करते हैं।

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥३॥

भा०—(सूर्ये न) सूर्य में जैसे (रश्मयः) किरणें (ध्रुवासः) स्थिर रूप से हैं वैसे ही (वैश्वानरे) विश्व के पदार्थों के संचालक (अग्नौ) सबके आगे विद्यमान परमेश्वर में (अग्नौ) विद्युत् में समस्त ऐश्वर्यों के समान (वसूनि) अपने में प्रजाओं के बसाने वाले लोकगण और समस्त ऐश्वर्य (आदधिरे) स्थित हैं। (या) जितने ऐश्वर्य (पर्वतेषु) मेघों, (ओषधीषु) ओषधियों, (अप्सु) जलों और (या) जितने ऐश्वर्य (मानुषेषु) मनुष्यों में विद्यमान हैं, हे परमेश्वर ! तू (तस्य) उस सबका (राजा असि) प्रकाशक, राजा या स्वामी है।

बृ॒ह॒ती इ॑व सू॒नवे॒ रोद॑सी॒ गिरो॒ होता॑ मनु॒ष्यो॒३॒ न दक्षः॑ ।
स्व॑र्वते स॒त्यशु॑ष्माय पू॒र्वीर्वै॑श्वान॒राय॒ नृत॑माय य॒ह्वीः ॥४॥

भा०—(रोदसी) माता और पिता दोनों जैसे (सूनवे) अपने पुत्र के लिए (बृहती) बड़े उपकारक और उसकी वृद्धि करने वाले होते हैं ऐसे ही (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों ही (सूनवे) अपने उत्पादक परमेश्वर के लिए (बृहती) बड़ी विशाल होकर विद्यमान हैं। वे दोनों ही उस परमेश्वर की महिमा को बतलाते हैं। (मनुष्यः न) जैसे साधारण मनुष्य (नृतमाय) पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के लिए (यह्वीः) बड़ी स्तुतियाँ गाता है वैसे ही (होता) ज्ञानी विद्वान् (दक्षः) क्रियाकुशल पुरुष भी (स्वर्वते) अनन्त सुख आकाश और प्रकाश के स्वामी (सत्यशुष्माय) सत्य के बल से बलवान् (वैश्वानराय) समस्त पदार्थों के सञ्चालक, सबके हितकारी, (नृतमाय) नायक, गुरु, आचार्य, राजा आदि में सबसे श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम के वर्णन और उपासना के लिए (पूर्वीः) पूर्ण रूप से उसका वर्णन करने वाली (यह्वीः) बड़ी भारी, विशद अर्थों से युक्त (गिरः) वेदवाणियों का पाठ करे।

दि॒वश्चि॑त्ते बृह॒तो जा॑तवेदो॒ वैश्वा॑नर॒ प्र रि॑रिचे महि॒त्वम् ।
राजा॑ कृष्टी॒नाम॑सि॒ मानु॑षीणां यु॒धा दे॒वेभ्यो॒ वरि॑वश्चकर्थ ॥५॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त लोकों के नेता ! मनुष्यों में व्यापक ! हे (जातवेदः) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! समस्त उत्पन्न पदार्थों में सत्ता और नियामक रूप से विद्यमान ! (ते) तेरा (महित्वम्) महान् सामर्थ्य (बृहतः चित्) बड़े भारी (दिवः) सूर्यादि लोकों से मण्डित आकाश से भी (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है। हे परमेश्वर ! तू (मानुषीणाम्) मननशील (कृष्टीनाम्) प्रजाओं का भी (राजा असि) राजा, स्वामी, उनमें ज्ञान प्रकाश का करने हारा है और तू ही (देवेभ्यः) विद्वानों और विजय की कामना करने वाले वीरों को (युधा) युद्ध या परस्पर प्रबल प्रहार करने के सामर्थ्य द्वारा (वरिवः) उत्तम २ धनैश्वर्य (चकर्थ) प्रदान करता है।

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥६॥

भा०—(यं) जिस (वृत्रहणम्) विघ्नकारी, बाधक शत्रु के नाशक परमेश्वर का (पूरवः) समस्त-मनुष्य (सचन्ते) आश्रय लेते हैं उस (वृषभस्य) जलों के वर्षक, मेघ के समान सब सुखों के वर्षक परमेश्वर के (महित्वम्) बड़े भारी सामर्थ्य का (नु) निरन्तर (प्र वोचम्) मैं उपदेश करता हूँ। (वैश्वानरः) समस्त विश्व का प्रणेता, सब मनुष्यों का हितकारी, (अग्निः) सबका प्रकाशक प्रभु (दस्युं) प्रजापीड़कों का (जघन्वान्) नाश करे। (शम्बरम्) जलों के प्रदान करने वाले मेघ को (अव भेत्) बिजुली के समान अज्ञान को नाश करना और (काष्ठाः अधूनोत्) समस्त दिशाओं को कम्पा देता है।

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥७॥२५॥

भा०—(१) परमेश्वर या राजा अपने (महिम्ना) महान सामर्थ्य से (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी, और (विश्वकृष्टिः) मनुष्यादि

प्रजाओं का स्वामी (भरद्वाजेषु) भरणपोषण करने वाले और ज्ञानोपदेश करनेवाले पुरुषों में भी (यजतः) सबका उपास्य और (विभावा) विशेष दीप्ति से युक्त है। वह (शतिनीभिः) सैकड़ों उत्तम कार्योंवाली शक्तियों सहित (अग्निः) ज्ञानवान् अग्रणी (सूनृतावान्) शुभ सत्यवाणी, तथा ज्ञान और अन्न सम्पदा से सम्पन्न होकर (पुरुनीथे) बहुत से सहायकों से चलाये जाने योग्य (शातवनेये) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामियों से पूर्ण राष्ट्र और जगत् में (जरते) वही स्तुति किया जाता है। इति पंचविंशो वर्गः ॥

[६०] १–५ नाधो गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् । १ विराट् । २, ४ विराट् स्थाना । २, ४ भुरिक् पंक्तिः । पंचर्चं सूक्तम् ॥

वह्निं॑ य॒शसं॑ वि॒दथ॑स्य के॒तुं सु॑प्रा॒व्यं॑ दू॒तं स॒द्यो॑अ॑र्थम् ।
द्वि॒जन्मा॑नं र॒यिमि॑व प्रश॒स्तं रा॒तिं भ॑र॒द्भृग॑वे मा॒तरि॒श्वा॑ ॥१॥

भा०—(मातरिश्वा) वायु जैसे (वह्निम्) अग्नि को (भृगवे भरत्) अधिक ताप से भून देने या परिपाक करने के लिए उसको अधिक प्रबल कर देता है, वैसे ही (मातरिश्वा) भूमि माता में शत्रु पर बल से आक्रमण करने वाला विजिगीषु राजा (वह्निम्) कार्यभार को उठा लेने में समर्थ (यशसम्) यशस्वी, (विदथस्य केतुम्) ज्ञान के जानने हारे और औरों को जनाने में कुशल, (सु प्राव्यम्) उत्तम रक्षक (दूतम्) दूत के समान संदेशहर, (सद्यो अर्थम्) शीघ्र ही स्थानान्तर में जाने में समर्थ (द्विजन्मानम्) द्विज, माता पिता और आचार्य से उत्पन्न, (रयिम् इव) ऐश्वर्य के समान (प्रशस्तम्) अति उत्तम, (रातिम्) दानशील विद्वान् को भी (भृगवे) शत्रु को सन्तप्त करने के लिए (भरत्) पुष्ट करे।

अ॒स्य शासु॑रु॒भया॑सः सचन्ते ह॒विष्म॑न्त उ॒शिजो॒ ये च॒ मर्ताः॑ ।
दि॒वश्चि॒त्पूर्वो॒ न्य॑सादि॒ होता॒पृच्छ्यो॑ वि॒श्पति॑र्वि॒क्षु वे॒धाः ॥२॥

भा०—(ये) जो (मर्त्ताः) मनुष्य (हविष्मन्तः) अन्नादि ऐश्वर्यों और

अधिकारों से सम्पन्न हैं और (ये च) जो मनुष्य (उशिजः) धन की कामना करने हारे हैं (उभयासः) वे दोनों राजा और प्रजा वर्ग (अस्य शासुः) इस महान् शासक अधीश्वर की (सचन्ते) शरण प्राप्त करते हैं। वह (होता) सब सुखों और ऐश्वर्यों का दाता, राष्ट्र का वशीकर्त्ता (दिवः-चित् पूर्वः) दिन के प्रारम्भ में सूर्य के समान (पूर्वः) सबसे मुख्य होकर (नि असादि) मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है। वही (विश्पतिः) प्रजा पालक और (वेधाः) न्याय विधान का कर्त्ता मेधावी होकर (विक्षु) प्रजाओं के बीच में (आपृच्छयः) निर्णय आदि पूछने योग्य है।

तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥३॥

भा०—(हृदः) हृदय के प्रिय, मित्रगण (ऋत्विजः) प्रति ऋतु में यज्ञ करने वाले, राष्ट्र में ऋतुओं के समान मुख्य पदों के अधिकारी और देह में प्राणों के समान प्रधान सभासद्, (मानुषासः) मननशील, (प्रयस्वन्तः) उत्तम कोटि के ज्ञानवान्, (आयवः) सब प्रकार से तत्वों को पृथक् पृथक् करके देखने वाले और दीर्घायु पुरुष (यम्) जिसको (वृजने) शत्रु और दुर्व्यसनों के वारण करने के अवसर पर (जीजनन्त) मुख्य रूप से नियुक्त कर देते हैं (तम्) उस (आजायमानम्) सब दिशाओं में उदय को प्राप्त होने वाले (मधुजिह्वम्) मधुरभाषी पुरुष को (नव्यसी) नई नई स्तुति या नई राज्य लक्ष्मी प्राप्त हो और वह तू (अस्मत् सुकीर्त्तिः) हमारे बीच उत्तम ख्यातिमान होकर उस नई राज्यलक्ष्मी को (अश्याः) भोग करे।

उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥४॥

भा०—(उशिक्) प्रजाओं को हृदय से चाहने वाला, तेजस्वी, (पावकः) अग्नि के समान मलों, कण्टकों और दुष्ट पुरुषों को दूर करने

हारा (मानुषेषु) मनुष्यों में सबको समान रूप से (वसुः) बसाने वाला (वरेण्यः) सबको वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ है। वही (रयीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों, अधिकारों के स्वामी और प्रदान करने हारे के रूप में (विक्षु) प्रजाओं के ऊपर (अधायि) स्थापित किया जाय और वही (दमूनाः) सबका दमन करने वाला, स्वयं जितेन्द्रिय (गृहपतिः) गृहस्वामी के समान राष्ट्रवासी प्रजाओं को अपनी सन्तान के समान पालन करने वाला (अग्निः) दीपक या तेजस्वी सूर्य के समान सबका अग्रणी हो। वही (रयिपतिः) ऐश्वर्यों का पालक भी (अ भुवत्) बनाया जावे।

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥२६॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतिम्) पालक (तम्) उस (त्वाम्) तेरी हम (गोतमासः) उत्तम स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष (मतिभिः) ज्ञानशील पुरुषों से मिलकर (प्रशंसामः) तुझे उत्तम वचनों का उपदेश करें और स्तुति करें। (वाजम्भरं) संग्राम में अपने बलवान् स्वामी के ले जाने हारे (अश्वं न) अश्व को (मर्जयन्तः) जैसे झाड़ पोंछकर, थपक २ कर तैयार करते हैं वैसे ही (आशुम्) अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले, (वाजम्भरं) युद्ध में जाने वाले, युद्धार्थ सेनादलों का भरण पोषण करने हारे (त्वाम्) तुझ राजा को (मर्जयन्तः) शोधित और सुशोभित करते हुए हम तेरी प्रशंसा करें। (प्रातः मक्षु) और जैसे ध्यानी पुरुष अपने कार्यों में प्रातःकाल ही फुर्ती से लग जाता है वैसे ही प्रातःकाल ही, वह विद्वान्, ध्यानी पुरुष (मक्षु) शीघ्र, सबसे प्रथम (धियावसुः) अपनी धारणावती बुद्धियों से अपने भीतर बसने वाला और उद्योगी होकर (जगम्यात्) कार्य में लग जावे। इति षड्विंशो वर्गः॥

[६१] नोधा गौतम ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट्

त्रिष्टुप् । २, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ८, १०, १२ पंक्तिः । ३, ५, १५ विराट् पंक्तिः । ११ भुरिक् पंक्तिः । १३ निचृत्पंक्तिः । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१॥

भा०—(प्रयः न) अति आदर और स्नेह से दिये जाने योग्य अन्न और ज्ञान या अर्घ पाद्य आदि जल जैसे योग्य पुरुष को दिया जाता है वैसे ही (तवसे) महान् (तुराय) राज्य-कार्यों को शीघ्रता से करने वाले, (महिनाय) सामर्थ्यों के कारण महान् और (ऋचीषमाय) स्तुति-वचनों के समान, यथार्थ स्तुत्य गुणों के धारक (अध्रिगवे) शत्रु से न सहने योग्य, वीरों को धारण करने और भयंकर प्रयाण करने वाले, (इन्द्राय) शत्रुहन्ता पुरुष को (इत् उ) ही मैं (ओहम्) शत्रुओं को पीड़ित करने वाले (स्तोमम्) स्तुति वचन, अधिकार पद और वीरों का संघ और (ब्रह्माणि) वेदवचन, अन्न, धन और बड़े बड़े बलशाली अश्वादि, (राततमा) समस्त उत्तम उत्तम देने योग्य पदार्थ (प्रहर्मि) प्रदान करता हूँ ।

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२॥

भा०—हे मनुष्य ! तू जैसे (प्रयः) अन्न (प्रयंसि) प्रदान करता है, वैसे ही मैं (अस्मा) इस उत्तम (इन्द्राय इत्) ऐश्वर्ययुक्त राजा की वृद्धि के लिये, (बाधे) शत्रुओं की ताड़ना करने के लिए (सुवृक्ति) शत्रु का वर्जन करने वाले यान आदि वाहन और (आंगूपं) स्तुति योग्य मान और आदर पद को (प्र भरामि) प्रदान करूं । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (प्रत्नाय) सबसे वृद्ध, आदरणीय, (पत्ये) प्रजा के स्वामी राजा के लिए (हृदा) हृदय से (मनीषा) बुद्धि या ज्ञान से (धियः अपनी बुद्धियों और कर्मों को (मर्जयन्त) शुद्ध और पाप रहित करो ।

अस्मा इदु त्यमुप॒मं स्व॒र्षां भरा॑म्याङ्गू॒षमा॒स्ये॑न।
मंहि॑ष्ठ॒मच्छो॑क्तिभिर्मती॒नां सु॑वृ॒क्तिभिः॑ सू॒रिं वा॑वृ॒धध्यै॑ ॥३॥

भा०—(अस्मै इत् उ) इस राजा व सभाध्यक्ष के उत्तम पद के लिये ही मैं (त्यम्) उस (उपमम्) सर्वोपमायोग्य, (स्वर्षाम्) सुख और ज्ञानोपदेश के दाता, (आंगूषम्) उत्तम वचन के बोलने वाले (मंहिष्ठम्) अति पूजनीय, (सूरिम्) शास्त्रवेत्ता पुरुष को (आस्येन) मुख से (सुवृक्तिभिः) उत्तम रूप से अज्ञानों को दूर हटा देने वाली (अच्छोक्तिभिः) उत्तम उक्तियों द्वारा (मतीनाम्) मननशील पुरुषों को और अपनी बुद्धियों की भी (वावृधध्यै) बढ़ोतरी के लिए (प्र भरामि) प्राप्त करूं।

अस्मा इदु स्तोमं॒ सं हि॑नोमि॒ रथं॒ न तष्टे॑व॒ तत्सि॑नाय।
गिर॑श्च॒ गिर्वा॑हसे सुवृ॒क्तीन्द्रा॑य विश्वमि॒न्वं मेधि॑राय ॥४॥

भा०—(तत्सिनाय) रथ के निमित्त द्रव्य या अन्न से बांध लेने वाले स्वामी के उपयोग के लिए (तष्टा) शिल्पी जैसे (रथं न) रथ को बनाता है वैसे ही मैं (अस्मा इत् उ) इस (तत्सिनाय) स्तुति के साथ यथार्थ अर्थों से सम्बद्ध उसके प्रतिपाद्य उन नाना प्रकार की प्रजाओं को व्यवस्था में बांधने वाले ऐश्वर्यों तथा उपायों के स्वामी राजा के लिए (इत् उ) ही (स्तोमं) स्तुति समूह तथा अधिकार और सैन्यदल (संहिनोमि) प्रेरित करता हूँ। उसी (गिर्वाहसे) समस्त आज्ञाओं को धारण करने वाले मुख्य अध्यक्ष को ही मैं (गिरः च) समस्त आज्ञाएं भी प्रदान करता हूँ और (मेधिराय) उस बुद्धिमान् पुरुष को मैं (सुवृक्ति) दोषों को छुड़ाने, विघ्नों और शत्रुओं के वर्जन करने वाला (विश्वमिन्वम्) जगद्व्यापक अधिकार प्रदान करता हूँ।

अस्मा इदु सप्ति॑मिव श्रव॒स्येन्द्रा॑या॒र्कं जु॒ह्वा॒३॒॑ सम॑ञ्जे।
वी॒रं दा॒नौक॑सं व॒न्दध्यै॑ पु॒रां गू॒र्तश्र॑वसं द॒र्माण॑म् ॥५॥२७॥

भा०—(सप्तिम् इव) रथ के संचालन के लिए जैसे वेगवान् घोड़े को लगाया जाता है वैसे ही (अस्मै) इस (इन्द्राय एत् उ) परम ऐश्वर्य दाता, राष्ट्र पालक, या सेनापत्य पद को अच्छी प्रकार संचालन करने के लिए (जुह्वा) अपनी वाणी या आज्ञा से (अर्कं) स्तुति योग्य (वीरम्) शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ, (दानौकसम्) दान देने योग्य ऐश्वर्यों के एकमात्र आश्रय स्थान (गूर्तश्रवसम्) गुरु के श्रवण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाले या यशस्वी, (पुरां) शत्रुओं के नगरों और दुर्गों के (दर्माणम्) तोड़ने हारे पुरुष को (बन्दध्यै) प्रस्तुत करने के लिये (श्रवस्या) अन्न और ऐश्वर्य की वृद्धि कामना से (सम् अंजे) मैं सबके सामने प्रकट करूं और उसे मुख्य पद पर स्थापित करूं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

भा०—(अस्मा इत् उ) इस ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्रपति के विजय के लिए ही (त्वष्टा) शिल्पीगण (सु-अपस्तमम्) सूर्य जैसे अपने तेजस्वी किरण समूह को प्रकट करता है वैसे ही उत्तम, अति अधिक क्रियासामर्थ्य से युक्त, (स्वर्यं) अति तापजनक (वज्रं) शत्रुवर्जन करने वाले ऐसे शस्त्रास्त्र समूह को (तक्षत्) गढ़ गढ़ कर बनावे, (येन) जिस (तुजता) घात करते हुए प्रयुक्त अस्त्र से (तुजन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ (कियेधाः) कितने ही शत्रुदलों को थामने और कितने ही असंख्य बलों और शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, (ईशानः) सेनापति (वृत्रस्य) आगे बढ़ते हुए शत्रु के (मर्म चित्) मर्मों तक को (विदत्) पहुँच जाय।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७॥

भा०—(मातुः) अपना मुख्य पदाधिकारी नियत करने वाले (अस्य इत् उ) इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ही (सवनेषु) अभिषेकों के आश्रय पर

(विष्णुः) व्यापक अधिकार वाला होकर सेनापति और राष्ट्रपति (सद्यः) शीघ्र ही (पितुम्) पालक राज्यपद को और (चारु अन्ना) उत्तम २ अन्नों और ऐश्वर्यों को (पपिवान्) प्राप्त करे वह (सहीयान्) शत्रुओं को परास्त करने में बलवान् होकर (पचतं) परिपक्व राष्ट्र के ऐश्वर्य को (मुषायद्) गूढ़ रूप से लेता हुआ (अस्ता वराहम्) वाणों के फेंकने में कुशल धनुर्धर जैसे शूकर को एक ही प्रहार से वेध देता है और सूर्य जैसे मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही (अस्ता) वह वीर सेनापति शत्रुओं पर शस्त्रास्त्र प्रहार करने में चतुर होकर (वराहम्) अपने उत्तम खाद्य के समान सुगमता से जीत लेने योग्य शत्रु को (तिरः) प्राप्त करके, (अद्रिम्) पर्वत को वज्र के समान अथवा पर्वत के समान अभेद्य शत्रु को भी (विध्यत्) वेध डाले।

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

भा०—(ग्नाः देवपत्नीः इन्द्राय अर्कम् ऊवुः) जैसे ऋतुकाल में गमन करने वाली, कमनीय पतियों की स्त्रियां अपने २ ऐश्वर्य या सौभाग्यावन् पति की वृद्धि के लिये तेजस्वी पुत्र सन्तति को बढ़ाती हैं और (ग्नाः देवपत्नीः इन्द्राय अर्कम् ऊवुः) जैसे ज्ञान करने योग्य विद्वानों के पालने योग्य वेद-वाणियां परमेश्वर की महिमा को प्रकाश करने के लिये स्तुति सूक्त को प्रकट करती हैं वैसे ही (ग्नाः) वेग से गमन करने वाली (देवपत्नीः) वीर पुरुषों का पालन करने योग्य आज्ञाएं और सेनाएं (अस्मै इन्द्राय) इस राष्ट्र और राष्ट्रपति के हित के लिये (अर्कम्) स्तुति योग्य वीर पुरुष को (अहिहत्ये) शत्रु के नाश के कार्य, संग्राम के अवसर में (ऊवुः) आश्रय बनाती हैं। वह राजा या वीर सेनापति (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी को सूर्य के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा विद्वान् और अविद्वान् दोनों वर्गों को (परि जभ्रे) सब प्रकार से अपने वश कर लेता है। (ते) वे दोनों वर्ग (अस्य) उसके (महिमानम्) भारी सामर्थ्य

को (न परि स्तः) कभी अतिक्रमण नहीं करते । [मन्त्र संख्या सप्त शतानि (७००)]

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥

भा०—(अस्य इत् एव) इस ऐसे सम्राट् का ही (महित्वं) आदर और महान् सामर्थ्य (दिवः) आकाश, (पृथिव्याः) पृथिवी और (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से भी (प्ररिरिचे) कहीं अधिक बढ़ जाता है। जो (स्वराट्) स्वयं अपने तेज से सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (विश्वगूर्त्तः) समस्त ऐश्वर्यों को अपने वश कर लेने हारा होकर (स्वरिः) शत्रुओं को पराजय करने हारा अथवा उत्तम स्वामी, (अमत्रः) अपरिमित बलशाली होकर (रणाय) संग्राम के लिए (दमे) दमन करने के सामर्थ्य में (ववक्षे) मुख्य पद या राष्ट्र-भार को धारण करता है।

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥२८॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (अस्य इत् एव) इस वीर पुरुष या समृद्ध राष्ट्र के ही (शवसा) पराक्रम द्वारा, विद्युत के प्रहार बल से क्षीण होते हुए मेघ के समान (वज्रेण) शस्त्रास्त्र बल से (शुषन्तम्) क्षीण होते हुए शत्रु को (वि वृश्चत्) विविध प्रकारों से छिन्न भिन्न करे। (गाः न) जैसे गवाला बाड़े में से गौओं को छुड़ा देता है वैसे ही वह वीर पुरुष या राजा (व्राणाः) घिरी हुई (अवनीः) भूमियों, भूमिवासिनी प्रजाओं को शत्रु बन्धन से (अमुञ्चत्) मुक्त करे। उसी प्रकार वह (दावने) कर और दान आदि देने वाले प्रजावर्ग पर (सचेताः) प्रजा के सुख दुःख में समान चित्त होकर (श्रवः) अन्न आदि पदार्थों को (अभि अमुञ्चत्) प्रदान करे। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥

भा०—(यद्) जब वह (वज्रेण) अपने शत्रुओं के वारक शस्त्रास्त्र समूह के बल से (सीम्) उन शत्रु सेनाओं के वीरों को (परि अयच्छत्) सब ओर से रोक लेता है तब (अस्य इत् उ) इसके ही (त्वेषसा) सूर्य के समान चमचमाते प्रकाश और प्रताप से (सिन्धवः) वेगवान् जलप्रवाहों के समान अदम्य बल वाले शूरवीर (रन्त) रमण करते हैं। वह (दाशुषे) दानशील प्रजाजन को (इशानकृत्) स्वामी बना देने हारा, (तुर्वणिः) शत्रुओं का नाशक और शीघ्रकारी सैनिकों और भृत्यों को अपने अधीन रखकर (तुर्वीतये) अति शीघ्रता से राष्ट्र भर में फैल जाने के लिए (गाधं) अपना मुख्य प्रतिष्ठा स्थान, दुर्ग या राजधानी आदि (कः) बनाता है ।

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥

भा०—(तूतुजानः वृत्राय वज्रम्) अति वेग से बहनेवाला वायु जैसे मेघ को वेगवान् आघात या विद्युत् का प्रहार करता है और वह (ईशानः कियेधाः) मेघ पर शक्तिशाली होकर वेग से बहता हुआ उसे धारण किये रहता है वैसे ही सभा और सेना का अध्यक्ष भी (तूतुजानः) अति शीघ्रकारी शत्रु पर प्रहार करता हुआ, (ईशानः) शक्तिशाली, (कियेधाः) कितने ही ऐश्वर्यों और बलों का धारक होकर (अस्मै) इस प्रत्यक्ष में आगे खड़े, (वृत्राय इत् उ) शक्ति और बल में बढ़ते हुए शत्रु के विनाश के लिए तू (वज्रम्) शस्त्रास्त्रयुक्त सेनाबल का (प्र भर) प्रयोग कर। सूर्य जैसे (अपां) सूक्ष्म जलों के संयोग से (अर्णांसि चरध्यै) जल प्रवाहों को बहा देने के लिए अपने (तिरश्चा) तिरछे प्रकाश और वेग से मेघ के अंग २ को छिन्न भिन्न कर देता है और (तिरश्चा) तिरछी चाल से (गोः पर्व न) चर्मकार तिरछे शस्त्र से जैसे मृत पशु का जोड़ जोड़

काटता है और वक्ता (तिरश्चा) जिह्वा आदि के तिरछे आघात से (गोः पर्व न) वाणी के प्रत्येक अंग अर्थात् प्रत्येक वर्णों या पर्वों को ज्ञानपूर्वक विभक्त करता है वैसे ही (अपां अर्णांसि चरध्यै) शत्रु की प्राप्त सेनाओं के प्रवाहों को भगा देने के लिए शत्रु बल के (पर्व) पोरु २ अंग प्रत्यंग को (इष्यन्) जानता हुआ (वि रद) विविध प्रकार से काट।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (यः) जो वीर पुरुष (ऋघायमाणः) शत्रुओं का नाश करने वाले योद्धा के समान अभ्यास करने वाला (नव्यः) नया ही (आयुधानि इष्णानः) शस्त्रों और अस्त्रों का अभ्यास करता हुआ (युधे) संग्राम विजय के लिए (शत्रून् निरिणाति) शत्रुओं के नाश का नित्य अभ्यास करे। तू (अस्य इत् उ) उस (तुरस्य) अति शीघ्रकारी क्रिया-कुशल पुरुष को (पूर्व्याणि) पूर्व पुरुषों के आविष्कार किये हुए (कर्माणि) युद्धोपयोगी कार्यों के (उक्थैः) प्रवचनों द्वारा (प्र ब्रूहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, सिखा।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥

भा०—जैसे (दृढा) दृढ़ (गिरयः) पर्वत भी विद्युत् के उग्र बल से कांप जाते हैं वैसे ही (अस्य इत्) इस (वेनस्य) कान्तिमान् विद्वान् सेनापति के (भिया) भय से (दृढ़ा) दृढ़ (गिरयः) पर्वत के समान अचल शत्रुगण (च) भी कांपें और (द्यावा च भूमा) आकाश और भूमि तथा उनके समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा (जनुषः) अन्य जन भी (तुजेते) कांपें। (वेनस्य) ओणिम् उपो जोगुवानः नोधाः) तेजस्वी विद्वान् आचार्य के अज्ञान को दूर करने वाला ज्ञानधारी और व्रतधारी शिष्य जिस

प्रकार (सद्यः वीर्याय भुवत्) शीघ्र ही ब्रह्मचर्य, व्रतपालन, और शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल वीर्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है वैसे ही उस (वेनस्य उपो ओणिम् जोगुवानः) तेजस्वी सभापति, सेनापति के दुःखनाशक रक्षण के अधीन रहकर उसके साथ मन्त्रणा करता हुआ (नोधाः) नायकों का धारक, प्रेरक आज्ञाओं या उसकी वाणियों का धारक प्रजागण या अधीन उप अधिकारी भी (सद्यः) शीघ्र ही (वीर्याय) अपनी बल वृद्धि करने में (भुवत्) समर्थ होता है।

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥

भा०—(यत्) जो पुरुष (भूरेः) बड़े भारी ऐश्वर्य और संख्या में बहुत अधिक बल का (ईशानः) स्वामी है और जो (एकः) अकेला (एषाम्) इन समस्त प्रजाओं और अधीनस्थ भृत्यों का (वव्ने) भोग करता है, उन पर शासन करता है (त्यत् इन्द्रः) वह ही परम ऐश्वर्यवान् पुरुष है। (अस्मा इत् उ) उसको ही (त्यत्) यह सर्वोच्च राष्ट्रपति का बड़ा पद (अनु दायि) योग्य जान कर दिया जाता है। (सौवश्व्ये) उत्तम व्यापक किरणों वाले (सूर्ये) सूर्य के साथ (पस्पृधानं) स्पर्धा करने वाले और (सुष्विम्) उत्तम अभिषेक योग्य, (एतशम्) अश्व के समान, निर्भीक, राष्ट्रपति पुरुष को ही वह राष्ट्र चक्र (आवत्) प्राप्त होता और उसकी रक्षा करता है।

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६।२६।४

भा०—हे (हारियोजन) रथ में अश्वों को जोड़ने वाले सारथी के समान! हे (हारियोजन) प्रजा के दुःखहारी विद्वानों को नियुक्ति और प्रबल उपायों का प्रयोग करने वाले राजन्! आग्नेयादि अस्त्रों के संचालक

वीर सेनापते ! (इन्द्र) विद्वन्, (शत्रुहन्तः) जैसे मेघ के बल पर कृषक-गण अन्नों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (गोतमासः) बड़े वाणियों के धारक विद्वान् पुरुष (ते) तेरे (एव) ही (ब्रह्माणि) बड़े सुखकारी, ज्ञानमय वेदमन्त्रों के समान, उत्तम, बलप्रद अन्नों, ऐश्वर्यों और बलों को (अक्रन्) उत्तम रूप से सम्पादित करते हैं, प्राप्त करते हैं तथा औरों को प्राप्त कराते हैं। (धिया-वसुः) अपने प्रज्ञा और कर्म के बल से राष्ट्र में स्वयं बसने, प्रजा को बसाने हारा तू (एषु) इन अधीनस्थ प्रजाजनों में (विश्वपेशसम्) सब प्रकार के सुवर्ण आदि नाना धनों के देने वाले (धियम्) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य का (प्रातः मक्षू) जैसे सूर्य प्रातःकाल अपना प्रकाश और आचार्य प्रातःकाल शिष्यों में अपना ज्ञान प्रदान करता है वैसे ही शीघ्र ही (धाः) प्रदान कर। जिससे वह प्रजाजन सब सुखों और विद्याओं को (आ जगम्यात्) प्राप्त हो। इति एकोनत्रिंशद् वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पंचमोऽध्यायः

[६२] नोधा गौतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता छन्दः—त्रिष्टुप्। १, ४, ६ विराड्। २, ५, ९ निचृद्। ३ विराड्रूपा। ७, ८ विराट्स्थाना (अथवा ३, ७, ८ भुरिगार्षी पंक्तिः)। त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१॥

भा०—हम लोग (शवसानाय) ज्ञानबल से युक्त (गिर्वणसे) स्तुति प्रार्थनाओं को स्वीकार करने वाले, (स्तुवते) सत्य ज्ञान को स्पष्ट रूप से सबके आगे प्रकट करने वाले, (ऋग्मियाय) ऋचाओं द्वारा अन्यों को उपदेश करने वाले (विश्रुताय) विविध गुणों के कारण नाना प्रकार से श्रवण करने योग्य, (नरे) सबके नायक, परमेश्वर के (शूषम्) बल और

यश बतलाने वाले, (आंगूषम्) समस्त ज्ञानों के उपदेशक (अर्कम्) अर्चना योग्य, (अंगिरस्वत्) शरीर में प्राणों के समान सर्वत्र स्थित ज्ञानी पुरुषों के स्तुत्य रूप को (सुवृक्तिभिः) अच्छी प्रकार से दोषों और भीतरी मलों को दूर करने वाली साधनाओं, स्तुतियों से हम लोग (अर्चाम) स्तुति करें। ऐसे ही (शवसानाय) बल से पराक्रमी स्तुति योग्य, सत्य ज्ञान के उपदेष्टा, विविध गुणों से प्रसिद्ध, वेद ऋचाओं के उपदेष्टा, पुरुष के (शूषं आंगूषम्) बलयुक्त आघोषणा वचन कहें और देह में प्राण या बल के समान पदाधिकारी की और (अर्कं) स्तुति योग्य तेजस्वी रूप की हम स्तुति करें।

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों में से भी (पूर्वे) पहले के, पूर्व शिक्षित (पितरः) मा बाप के समान विद्या आदि देने वाले व्रत-पालक गुरुजन (पदज्ञाः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के ज्ञाता, (अंगिरसः) ज्ञानी और अग्नि के तुल्य तेजस्वी पराक्रमी जन (येन) जिसके द्वारा (अर्चन्तः) स्तुति प्रार्थना और सत्कार करते हुए (गाः) उत्तम वाणियों को (अविन्दन्) प्राप्त करते, उनका ज्ञान और सत्य साक्षात् करते हैं आप लोग उस ही (महि) बड़े (आंगूष्यम्) विज्ञान प्रवचन के लिए उत्तम (साम) प्रतिस्पर्द्धी अज्ञान के नाशक (नमः) नमस्कार रूप भक्ति भाव को (महे शवसानाय) बड़े बलशाली विज्ञानमय परमेश्वर के लिए (प्र भरध्वम्) उच्चारण करो। ऐसे ही (महे शवसानाय) बलवान् राजा या सभाध्यक्ष के लिए (महि साम नमः प्र भरध्वं) बड़े भारी शत्रुनाशक, शत्रुओं को नमाने वाला बल और ऐश्वर्य प्राप्त कराओ (येन) जिससे (नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः अंगिरसः) हमारे पूर्व के परिपालक प्राप्तव्य पद के वेत्ता और तेजस्वी पुरुष (अर्चन्तः) आदर सत्कार करते हुए ही (गाः अविन्दन्) वाणियों के समान भूमियों और पशु सम्पदाओं को भी प्राप्त करते हैं।

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम्।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥३॥

भा०—(सरमा) माता जैसे (तनयाय) पुत्र के लिए (धासिम्) पोषक अन्न (विदत्) प्राप्त करती है वैसे ही (इन्द्रस्य) राजा या सभाध्यक्ष और (अंगिरसां च) बलवान्, तेजस्वी पुरुषों के (इष्टौ) इच्छानुकूल संचालित नीति के युद्ध मार्ग में चलती हुई (सरमा) वेग से आगे बढ़ने वाली सेना और (तनयाय) अपने सन्तान के लिए (धासिम्) अन्न आदि शरीर धारक भोग्य पदार्थ को (विदत्) प्राप्त करे और (अद्रिम्) सूर्य जैसे मेघ को (उस्रियाभिः) किरणों से छिन्न भिन्न करता है (बृहस्पतिः) बड़े भारी बल और राष्ट्र का स्वामी वैसे ही (अद्रिम्) पर्वत के समान अचल शत्रु को भी (उस्रियाभिः) उदय को प्राप्त होने वाली, सहोत्थायी वीर सेना द्वारा (भिनत्) तोड़ डाले। (गाः विदत्) जैसे सूर्य मेघ के छिन्न भिन्न हो जाने पर अपनी किरण को पुनः तेजोरूप से प्राप्त करता है वैसे ही वह राजा भी नाना भूमियों को प्राप्त करे और (नरः) नायक जन (सं वावशन्तु) उसको एक साथ ही मिलकर प्रकाशित करें।

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥४॥

भा०—(स्वर्यः) प्रकाशों को उत्पन्न करने वाला सूर्य जैसे (नवग्वैः) नये कोमल २ ताप से प्रवेश करने वाले और (दशग्वैः) दशों दिशाओं में फैलने वाले, (सरण्युभिः) वेग से जाने वाले, (विप्रैः) किरणों से और (स्तुभा) स्थिर (स्वरेण) ताप से (फलिगम्) कण २ हुए जलों के दाता (अद्रिम्) अखण्डित पर्वताकार, (वलम्) अपने भीतर जलों को और विस्तार से आकाश का आच्छादन करने वाले मेघ को (दरयः) छिन्न-भिन्न करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (शक्र) शक्ति शालिन्! तू भी (सः) वह (सुष्टुभा) उत्तम द्रव्य गुण क्रिया से स्थिर करने वाले (स्तुभा) स्थायी

प्रबन्ध से और (सप्त विप्रैः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूरने वाले सात विद्वान् पुरुषों के द्वारा, (स्वरेण) बड़े उपदेश से, (नवग्वैः) नये-नये प्रदेशों और ज्ञानमार्ग में जाने वाले, (दशग्वैः) दश दिशाओं में जाने वाले राज-पुरुषों और (सरण्युभिः) वेग से जाने वाले सैनिकों के द्वारा (अद्रिम्) पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शस्त्रवर्षी (फलिगम्) फल वाले बाणों के फेंकने वाले योद्धा और (वलम्, बलम्) शस्त्र वर्षा द्वारा आकाश को रोक लेने वाले बलवान् शत्रु को (रवेण) दुन्दुभि आदि के घोर शब्द तथा (स्वर्येण रवेण) संतापजनक आग्नेयास्त्र की घोर गर्जना से (दरयः) भयभीत कर।

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः॥५॥१॥

भा०—जैसे जीव (अंगिरोभिः अन्धः वि वः) प्राणों के द्वारा अन्न का परिपाक करता है और जैसे (उषसा) प्रभात द्वारा और सूर्य अपने प्रकाश से (अन्धः) अन्धकार को दूर कर देता है वैसे ही हे (दस्म) दर्शनीय! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अंगिरोभिः) ज्ञानवान् पुरुषों और बलवान् प्रतापों और सैनिकों से उपदेश करता हुआ और स्तुति किया जाता हुआ (उषसा) शत्रु के संताप देने वाले (सूर्येण) अपने तेज से और (गोभिः) आज्ञावाणियों, भूमियों से (अन्धः) अन्न, ऐश्वर्य को (विवः) विशेष रूप से प्रकट कर। हे राजन्! (भूम्याः) भूमि के (सानु) उच्च भाग, उत्तम प्रदेश को (वि अप्रथयः) विस्तृत कर। (दिवः) आकाश और प्रकाश के समान (रजः) विद्वानों की बनी सभा को, (रजः) लोक समूह को और (उपरम्) मेघ के समान उन पर ज्ञानों और धनैश्वर्यों के दाता विद्वानों और समृद्ध जनों को भी (अस्तभायः) शिक्षक और पोषक रूप से स्थापित कर। इति प्रथमो वर्गः॥

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः।

उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥६॥

भा०—जैसे (अस्य) इस (दस्मस्य) मेघ को छिन्न-भिन्न तथा दुःखों के नाशक बिजली रूप इन्द्र का (तत् उ प्रत्यक्षतमम् चारुतमम् कर्म दंसः अस्ति) यही सबसे अधिक प्रशंसनीय और उत्तम कर्म है (यत् उपह्वरे) कि आकाश में ही (चतस्रः उपराः) चारों मेघ युक्त दिशाएं (मध्वर्णसः) मधुर जल से युक्त होकर (अपिन्वन्) तृप्त हो जाती हैं और (मध्वर्णसः नद्यः अपिन्वन्) मधुर जल से पूर्ण नदियां भी भर जाती हैं वैसे ही (अस्य दस्मस्य) शत्रुओं और प्रजापीड़कों के नाशक दर्शनीय सेनाध्यक्ष राजा का (तत् उ) यह ही (प्रत्यक्षतमम्) अति आदर योग्य (कर्म) कार्य है और यही (चारुतमम् दंसः अस्ति) सबसे श्रेष्ठ कर्म है (यत्) कि (उपह्वरे) इस आश्रय योग्य भूप्रदेश पर (चतस्रः उपराः) चारों दिशाओं की प्रजाएं (मध्वर्णसा नद्यः इव) मेघ बरसने पर मधुर जल से भरी नदियों के समान (अपिन्वन्) वही पूज्यतम खूब ऐश्वर्य से भरपूर हो सबको तृप्त करती हैं।

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥७॥

भा०—(अयास्यः) मुख्य प्राण जैसे (अर्कैः) अन्नों द्वारा (सनीडे) एक आश्रय पर रहने वाले (सनजा) चिरकाल से विद्यमान, (द्विता) प्राण और अपान दोनों को (वि वव्रे) प्रकट करता है और अपने वश रखता है और जैसे (अयास्यः) मुख्य स्थान पर स्थित सूर्य (अर्कैः) किरणों से (सनीडे) समान आश्रय वाली (सनजा) सदा से विद्यमान आकाश और भूमि (द्विता) दोनों को (वि वव्रे) विशेष रूप से व्यापता है वैसे ही (अयास्यः) अनायास कार्यों को सिद्ध करने हारा वीर सेनापति और सभापति (स्तवमानैः) सत्य ज्ञानों का उपदेश करने वाले (अर्कैः) सूर्य के समान तेजस्वी अर्चनीय विद्वानों और वीर पुरुषों द्वारा, उनकी सहायता

से (सनजा) शाश्वत काल से चली आई (सनीडे) एक ही आश्रय, राष्ट्र-भूमि पर बसने वाले (द्विता) राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (वि वव्रे) विशेष रूप से पालन करता और उन दोनों से स्वयं वरण किया जाता है। (भगः न) सूर्य जैसे (सुदंसाः) वर्षा आदि कार्यों को करता हुआ (व्योमन्) आकाश में, (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों को (अधारयत्) धारण और पोषण करता है वैसे ही (भगः) ऐश्वर्यवान् (सुदंसाः) प्रजा के लिए शुभ कार्यों का कर्त्ता पुरुष (मेने) मान योग्य, अपने आश्रय पर उठाये रखने योग्य (रोदसी) राजा प्रजावर्ग को (परमे व्योमन्) रक्षा करने हारे सर्वोच्च राजपद पर स्थित होकर (अधारयत्) धारण करे।

सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥८॥

भा०—(अक्ता) रात्रि (कृष्णभिः) काले अन्धकार से बने (वपुर्भिः) रूपों से और (उषाः) दिन वेला (रुशद्भिः) कान्तिमय (वपुर्भिः) रूपों से (अन्या अन्या) एक दूसरे के पीछे क्रम से (आचरतः) आती जाती है और वे दोनों (सनात्) अनादिकाल से (विरूपे) एक दूसरे से भिन्न रूप या कान्ति वाली (पुनः-भुवा) पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले होकर (स्वेभिः एवैः) अपने आगमनों, व्यवहारों से (दिवं भूमा) सूर्य और पृथ्वी की (परिचरतः) सेवा या परिक्रमा करती अर्थात् उन पर आश्रित हैं। ऐसे ही (युवती) एक दूसरे से सम्बद्ध होकर युवावस्था में स्थित स्त्री पुरुष दोनों (सनात्) अनादि कारण से और अनादि काल से (दिवं भूमा परि) सूर्य और पृथ्वी के समान (स्वेभिः एवैः) अपने कार्य व्यवहारों से (परि आचरतः) आचरण करें। वे दोनों (विरूपे) शरीर रचना में एक दूसरे से भिन्न आकृति, रुचि और चेष्टा वाले (पुनः भुवा) बार २ एकत्र रहने वाले तथा सन्तान रूप में पुनः उत्पन्न होने वाले हों। उन दोनों में से स्त्री, (अक्ता) रात्रि के समान (अक्ता) नाना गुणों को प्रकट करने वाली तथा

अभ्यंग और उज्ज्वल आभूषणादि से कान्तिमती होकर (कृष्णेभिः) आकर्षण करने वाले रूपों से युक्त हो और (उषा) दिन या सूर्य के समान प्रति-पक्षियों को तापकारी और स्त्री के प्रति कामनावान् अभिलाषुक होकर पुरुष (रुशद्भिः) उज्ज्वल कान्तिमय (वपुर्भिः) स्वरूपों से युक्त होकर रहे और वे दोनों (अन्या-अन्या) एक दूसरे के प्रति (आचरतः) अनुकूल आचरण करें।

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९॥

भा०—सूर्य जैसे (सुदंसा) उत्तम कर्मों को करने वाला, अपने (शवसा) बल से सबका (सूनुः) प्रेरक होकर आकाश और पृथिवी को धारण करता है वैसे ही (सूनुः) पुत्र भी (सुदंसाः) उत्तम सदाचारी होकर (अवसा) अपने बल और ज्ञान से माता पिता का (दाधार) भरण पोषण करे, वैसे ही राजा (सूनुः) सबका आज्ञापक होकर (शवसा) अपने बल से (दाधार) राष्ट्र के शासकवर्ग और प्रजावर्ग का पोषण करे और जैसे सूर्य (सु-अपस्यमानः) वर्षण आदि उत्तम कर्मों का आचरण करता है (सनेमि) सनातन से (सख्यं दाधार) लोकों पर प्रेम भावनायें रखता है वैसे ही राजा भी (सु-अपस्यमानः) उत्तम आदर योग्य उपकार करता हुआ (सनेमि) राजपरम्परा से चले आये (सख्यं) प्रेमभाव को बनाये रक्खे। सूर्य जैसे (अमासु रोहिणिषु अन्तः पक्वं पयः) कच्ची कोमल लताओं में पकने योग्य रस को भरता है और (कृष्णासु रोहिणीषु) रसों को आकर्षण कर लेने वाली गहरे रंग की लताओं में (रुशत् पयः) दीप्तिकारक तीव्र रस देता है वैसे ही हे राजन्! तू भी (अमासु रोहिणीषु) अपक्व, सन्तति प्रसन्तति से बढ़ने वाली प्रजाओं में से कच्ची उमर की प्रजाओं में (पक्वम् पयः) पकने योग्य, अन्न के समान अभ्यास द्वारा पका लेने योग्य बल (दधिषे) धारण करा और (कृष्णासु रोहिणीषु) शत्रुओं का कर्षण अर्थात्

विनाश करने में समर्थ प्रजाओं में (रुशत्) अति तेजस्वी उग्र बल (दधिषे) धारण करा।

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम्॥१०॥२

भा०—(सनीडाः) एक ही आश्रय में रहने वाली (अवनीः) भूमिवासिनी प्रजाएं भी (अवनीः) अंगुलियों के समान रहकर (सहोभिः) शत्रु पराजयकारी बलों से युक्त होकर (अमृताः) कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं और वे (अवाताः) प्रबल शत्रु रूप प्रचण्ड वायु से रहित होकर (व्रता) अपने २ कर्त्तव्यों, धर्मों का (रक्षन्ते) पालन करती हैं। ऐसे ही (सहोभिः अमृताः) बलों से नाश को न प्राप्त होने वाले विद्वान् और रक्षक भूपति गण (सनीडाः) एक ही देश में रहने वाले (सनात्) सदा ही (व्रता रक्षन्ते) आपस में स्थिर धर्मों, कर्त्तव्यों का पालन करें। (जनयः) पुत्रोत्पादक, समर्थ पुरुष (पत्नीः न) जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं वैसे ही वे भूपति लोक (पुरु सहस्रा अवनीः) सहस्रों भूमियों की रक्षा करें। (स्वसारः) बहिनें जैसे (अह्रयाणम्) बिना संकोच के आने जाने वाले बन्धु भाई की (दुवस्यन्ति) सेवा करती हैं वैसे ही (स्वसारः) बहिनों के समान या धनों को प्राप्त करने वाली वे (अवनयः) प्रजाएं भी (अह्रयाणम्) विना संकोच और भय के शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर नृपति की (दुवस्यन्ति) परिचर्या करें। इति द्वितीयो वर्गः॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः॥११॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय! हे प्रजा के दुःखों के नाशक! तू (नव्यः) स्तुति योग्य है। (उशतीः) कामना युक्त पत्नियां जैसे (उशन्तम् पतिम् स्पृशन्ति) कामनायुक्त अपने पति के पास जातीं और उससे

आलिंगन करती हैं वैसे ही हे (शवसावन्) बलवन्! (मनीषाः) मननशील, विज्ञान युक्त (सनायुवः) सनातन से चले आये, अनादि वेद के ज्ञान और कर्मों के कर्ता, (वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक, (मतयः) मननशील, विद्वान् (उशन्तं त्वा) कान्तिमान्, प्रजा के इच्छुक, तुझ (पतिम्) प्रजा के पालक को स्वयं (उशन्तीः) कामना युक्त होकर (दद्रुः) प्राप्त हों और (स्पृशन्ति) तुझे बलपूर्वक पकड़ लें।

सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः १२

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर एवं राजन्! (दस्म) दुःखों और दुष्ट शत्रुओं के नाशक! (सनात् एव) अनादि काल से (तव गभस्तौ) तेरे हाथ में, वश में विद्यमान (रायः) ऐश्वर्य (न क्षीयन्ते) कभी क्षीण नहीं होते, (न उपदस्यन्ति) वे कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। तू (द्युमान्) तेजस्वी (क्रतुमान्) कर्म और ज्ञानवान्, (धीरः) ध्यानवान् (असि) हो। हे (शचीवः) उत्तम वाणी और उत्तम बुद्धि वाले! हे (इन्द्र) विद्वन्! तू (तव शचीभिः) अपनी वाणियों, बुद्धियों और शक्तियों से (नः शिक्ष) हमें शिक्षा दे।

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३॥३

भा०—(गोतमः हरियोजनाय नव्यम् ब्रह्म अतक्षत्) जैसे अति शीघ्र गमन करने की विद्या में निपुण शिल्पी वेगवान्, दूर देश में ले जाने वाले अश्व और अग्नि आदि साधनों के प्रयोग के लिये नये से नये बड़े (ब्रह्म) विज्ञान या रथ को बनाता है वैसे ही हे (इन्द्र) परमेश्वर (गोतमः) विद्वानों में श्रेष्ठ पुरुष (हरियोजनाय) प्राणों को समाधि से एकाग्र करने के लिये (नव्यम्) स्तुति योग्य (ब्रह्म) आत्मज्ञान या वेद-वचन को (अतक्षत्) प्राप्त करे और (सनायते) सनातन के समान यथापूर्व आच-

रण करता रहे। हे (शवसान) बलवन्! (धियावसुः) बुद्धिबल और कर्मबल से सबको बसाने वाला विद्वान् धार्मिक (नोधाः) ज्ञानी पुरुष (नः) हमें (सुनीथाय) उत्तम मार्ग में ले जाने के लिये (प्रातः) प्रतिदिन, प्रातः काल ही, या प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में ही (जगम्यात्) प्राप्त हो। इति तृतीयो वर्गः।

[६३] नोधा गौतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९ भुरिगार्षी पंक्तिः। ३, ६ विराड् त्रिष्टुप्। ५ भुरिगार्षी बृहती। नवर्चं सूक्तम् ॥

त्वं म॒हाँ इ॑न्द्र॒ यो ह॒ शुष्मै॒र्द्यावा॑ जज्ञा॒नः पृ॑थि॒वी अमे॑ धाः।
यद्ध॑ ते॒ विश्वा॑ गि॒रय॑श्चि॒दभ्वा॑ भि॒या दृ॒ळ्हासः॑ कि॒रणा॒ नैज॑न् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर! (त्वम् महान्) तू महान् है। (यः ह) जो निश्चय से (जज्ञानः) शक्ति रूप से प्रकट होकर (शुष्मैः) बलों से (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि को (अमे धाः) गति के आश्रय पर इस आकाश में स्थापित करता है। तू महान् है जो (शुष्मैः) नाना बलों से (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी, दोनों के समान ज्ञानी और अज्ञानी, राज वर्ग और प्रजा वर्ग दोनों को (अमे) एक गृह के समान अपने शरण में धारण कर। हे परमेश्वर! (ते अभ्वा) तेरे महान् सामर्थ्य से (विश्वा गिरयः) समस्त पर्वत (किरणाः) प्रकाशों को दूर तक फेंकने वाले महान् सूर्य भी मानो (भिया) भय से (न ऐजन्) नहीं कांपते, मर्यादा से विचलित नहीं होते। ऐसे ही हे राजन्! (विश्वा) समस्त (दृढासः) दृढ़ (गिरयः) पर्वत के समान अचल राजा, ज्ञानोपदेशक विद्वान् और (किरणाः) शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने वाले धनुर्धर भी (भिया) मानो तेरे भय से (न ऐजन्) नहीं विचलते, तेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते।

आ यद्धरी॑ इन्द्र॒ विव्र॑ता॒ वेरा ते॒ वज्रं॑ जरि॒ता बा॒ह्वोर्धा॑त्।
येना॑विहर्यतक्रतो अ॒मित्रा॒न्पुर॑ इ॒ष्णासि॑ पुरुहूत पू॒र्वीः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सभापते ! सेनापते (यत्) जब तू (विव्रता) विविध व्रतों और शीलों के पालक (हरी) उत्तम व्यवहारों के प्रवर्त्तक न्याय व्यवस्था और सेनाविभाग दोनों को (हरी) रथ में दो अश्वों के समान राष्ट्र के सञ्चालन के लिये (वेः) प्राप्त करे और उनको सञ्चालित करे तभी (गिरवः) विद्वान् पुरुष, (ते बाह्वोः) तेरी बाहुओं में (वज्रम्) शासन दण्ड को (धात्) धारण करावे । (येन) जिस जिस अधिकार बल से हे (अविहर्यत क्रतो) अविरुद्ध, सबके प्रति हितजनक उत्तम कार्यों और प्रज्ञाओं के स्वामिन् ! हे (पुरुहुत) स्तुति योग्य ! तू (अमित्रान्) शत्रुओं और (पूर्वीः) अपने राज्यरोहण से पूर्व के शत्रु राजाओं के (पुरः) नगरों पर (इष्णासि) चढ़ाई कर ।

त्वं सत्य इ॑न्द्र धृष्णुरे॒तान्त्वमृ॑भु॒क्षा नर्य॒स्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं॑ वृजने॑ पृ॒क्ष आ॒णौ यूने॒ कुत्सा॑य द्यु॒मते॒ सचाहन् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सभा-सेनापते ! तू (सत्यः) सत्यव्यवहारी होकर (एतान् धृष्णुः) इन समस्त शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ हो। (ऋभुक्षाः) सत्य से भासित, विद्वानों, तेजस्वी वीरों और शिल्पियों के बीच में उनका स्वामी होकर रहने वाला, सबसे महान्, (नर्यः) सब नरों में श्रेष्ठ, उत्तम नेता (त्वं षाट्) तू सबको हराने वाला हो। तू (वृजने) शत्रुओं को वर्जन करनेवाले, (पृक्षे) मित्र शत्रु सबको एकत्र मिला देने वाले, (आणौ) अतितुमुल युद्ध में (यूने) जवान, (कुत्साय) वज्रधर शस्त्रास्त्र से युक्त (द्युमते) तेजस्वी सेना बल को (शुष्णम्) अपना बल प्रदान कर और (सचा) संघशक्ति से आक्रमण करके (अहन्) शत्रुओं का नाश कर।

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र चोदीः सखा॑ वृ॒त्रं यद्व॑ज्रिन्वृषकर्मन्नु॒भ्नाः ।
यद्ध॑ शूर वृषमणः परा॒चैर्वि दस्यूँ॒र्योना॒वकृ॑तो वृथा॒षाट् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! (ह) निश्चय से (त्वम्) तू ही (त्यत्)

उस दूरस्थ (वृत्रम्) मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को भी (पराचैः चोदीः) दूर से ही परास्त कर। हे (वृषकर्मन्) वर्षणशील मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे! (वज्रिन्) उत्तम शस्त्र अस्त्रों से युक्त! तू (सखा) सबका मित्र है। हे (शूर) शूरवीर! हे (वृषमनः) शूरवीरों के समान उदारचित्त वाले! (यत् ह) जिससे तू (वृथाषाट्) अनायास ही शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर (दस्यून्) प्रजा पीड़कों को (योनौ) उनके घर में ही (वि अकृतः) विविध उपायों से छेदता भेदता है, इसलिये तू आदर योग्य है।

त्वं ह त्यदि॑न्द्रारि॑षण्यन्दृ॒ळ्हस्य॑ चि॒न्मर्ता॑ना॒मजु॑ष्टौ।
व्य॑१॒स्मदा काष्ठा॒ अर्व॑ते वर्घ॒नेव॑ वज्रिञ्छ्नथिह्य॒मित्रा॑न् ॥५॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! सभाध्यक्ष! (त्वम्) तू (त्यत्) उस (दृढस्य) प्रबल शत्रु को (अरिषण्यन्) स्वयं न मारना चाहता हुआ भी (चित्) केवल (मर्त्तानम् अजुष्टौ) प्रजा पुरुषों के अप्रीतिकारक होने से (काष्ठाः) दिशाओं के विजय के लिये (अस्मद् अर्वते) हमारे घोड़ों के लिये (वि वः) मार्ग खोल, उनको विजय करने की आज्ञा दे। हे (वज्रिन्) बलशालिन् (घना इव) जैसे हतौड़ों से दृढ़ लोहे को भी कूट डाला जाता है वैसे ही (घना) शत्रुओं को हनन करने वाले नाना साधनों से (अमित्रान्) शत्रुओं का (श्नथिहि) नाश कर।

त्वां ह॒ त्यदि॑न्द्रार्ण॑सातौ॒ स्व॑र्मीळ्हे॒ नर॑ आ॒जा ह॑वन्ते।
तव॑ स्व धाव इ॒यमा स॑म॒र्य ऊ॒तिर्वाजे॑ष्वत॒साय्या॑ भूत् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते! परमेश्वर! राजन्! (अर्णसातौ) जलों के प्राप्त कराने और (स्वर्मीढे) जल के वर्षण आदि अवसर पर जैसे लोग विद्युत् और मेघों को ला बरसाने वाले वायुओं को चाहते हैं वैसे ही (नरः) वीर नायक पुरुष (अर्णसातौ) धन प्राप्त करने वाले (स्वर्मीढे) सुखों के वर्षण करने वाले (आजौ) युद्धकाल में (त्यत् त्वा ह) तुझको ही

(हवन्ते) पुकारते और स्मरण करते हैं। हे (स्वधावः) स्वयं समस्त राष्ट्र के धारक, सामर्थ्य से युक्त ! हे वज्रवन् ! हे जलों के धारक, मेघ के समान अन्नों, जीवों के स्वामिन् ! (समर्ये) संग्राम में, (वाजेषु) ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्त करने के अवसरों में (तव) तेरा (इयन्) यह (ऊतिः) प्रजा के रक्षा का कार्य (अतसाय्या भूत्) बराबर चलता रहे।

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! हे (वज्रिन्) अस्त्र समूह के स्वामिन् ! हे (राजन्) राजन् ! (त्वं ह) तू निश्चय से (युद्धयन्) युद्ध करता हुआ (पुरुकुत्साय) बहुत से शस्त्रास्त्रों के स्वामी, वीर राजा के लिए और (सुदासे) उत्तम २ ऐश्वर्यों के देने वाले, (अंहः) विजय करने और प्राप्त करने योग्य राष्ट्र के (पूरवे) समस्त प्रजाजन को पालन करने वाले, जनपदवासी राज प्रजावर्ग की रक्षा के लिए (सप्त) सभा, सभापद, सभापति, सेना, सेनापति, भृत्य और प्रजागण इन सातों अथवा सहायक-गण, साधन और साम, दान, भेद और दण्ड और देश विभाग और काल विभाग इन सातों के द्वारा अथवा स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेनाबल इन सातों के द्वारा शत्रु के इन सातों को और उसके (पुरः) नगरियों, गढ़ों और किलों को (दर्दः) तोड़ फोड़ डाल।

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन्।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! वीर सेना-सभाध्यक्ष ! जैसे मेघ या विद्युत् (परिज्मन्) इस पृथ्वी के ऊपर (आपः) जलों को वर्षाता, सबको बढ़ाता है। (त्मनं उर्जं क्षरध्यै यंसि) जल के रूप में सब तरफ बहने के लिए अपने को त्याग देता है वैसे ही हे (देव) दानशील राजन् ! (त्वं) तू भी (परिज्मन्) इस पृथिवी पर (आपः न) जलों के समान (त्यां)

उस उस, नाना प्रकार की (चित्राम्) अद्भुत २ (इषम्) अन्न, समृद्धि तथा सेनाओं को (पीपयः) बढ़ा। हे (शूर) शूरवीर ! (यया) जिसके द्वारा तू (अस्मभ्यम्) हमारे उपकार और रक्षा के लिए (त्मनम्) अपने को (ऊर्जं न) अन्न के समान (प्रति यंसि) दूसरों के उपकारार्थ समर्पित करता है अर्थात् जैसे अन्न अपनी सत्ता को खोकर अन्य प्राणियों के देहों को पुष्ट करता है वैसे ही हे राजन् ! तू हम प्रजाओं की रक्षा और पुष्टि के लिए युद्धादि में अपने आप को बलि कर। हे (विश्वध) समस्त राष्ट्र के धारक ! तू (ऊर्जं न) अन्न और जल के समान ही (क्षरध्यै) सर्वत्र पराक्रम और त्याग द्वारा बरसने के लिए तैयार रह।

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम्।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥६॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (गोतमेभिः) उत्तम किरणों से जैसे (नमसा) अन्न की वृद्धि के साथ (ब्रह्माणि) ऐश्वर्य और नाना सुख भी उत्पन्न होते हैं वैसे ही (गोतमेभिः) विद्वान्‌गण (ते हरिभ्याम्) तेरे हरणशील अश्वों के समान आगे बढ़ने वाले बल और पराक्रम दोनों की वृद्धि के लिए (नमसा) आदर और अन्नादि के साथ साथ (ब्रह्माणि) स्तुति ज्ञानोपदेश और नाना धन भी (अकारि) प्रस्तुत करते हैं। तू (नः) हमारे लिए (धियावसुः) कर्म, शक्ति और प्रज्ञा के बल से स्वयं प्रजा में रहने और राष्ट्र में सुख से प्रजा के बसाने वाला होकर (प्रातः) अपने राज्य के प्रारम्भ काल में ही (सुपेशसम्) उत्तम सुवर्ण आदि धनों और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न (वाजम्) ऐश्वर्य को (आभर) प्राप्त करा और (मक्षू) शीघ्र ही (जगम्यात्) हमें पुनः २ प्राप्त हो। इति पंचमो वर्गः ॥

[६४] नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्मरुतश्च देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ६, ९, १४ विराड् जगती। २, ३, ७, १०, ११, १३ निचृज्जगती। ८, १२ जगती। १५ निचृत्‌त्रिष्टुप्। पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१॥

भा०—हे (नोधः) सत्यज्ञान के उपदेश और प्रवचन को धारण करने हारे विद्वन्! तू (वृष्णे) जल वर्षक मेघ और (शर्धाय) घोर गर्जन करने वाले विद्युत्, (सुमखाय) पृथ्वी से सूर्य की किरणों द्वारा जल का वायु में आना और फिर वृष्टि द्वारा बरसना, अन्न का उत्पन्न होना, पुनः प्राणियों द्वारा खाया जाकर सन्तति रूप से उत्पन्न होना आदि उत्तम यज्ञ के लिये और (वेधसे) विविध जल आदि पदार्थों के धारण करने के लिये (मरुद्भ्यः) वायुओं की (सुवृक्तिम्) उत्तम रीति से अज्ञान को दूर करने वाली स्तुति या वर्णन (प्र भर) कर। ऐसे ही (वृष्णे) सब सुखों के वर्षक राजा की वृद्धि के लिये, (शर्धाय) राष्ट्र बल वृद्धि के लिये, (सुमखाय) राष्ट्र में उत्तम यज्ञों, धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिये और (वेधसे) राष्ट्र में विविध ऐश्वर्यों और व्यवस्थाओं के धारण के लिये (मरुद्भ्यः) विद्वान् और वायु के समान बलशाली वीर पुरुषों के (सुवृक्तिम्) उत्तम, दोष निवारक गुण स्तुति को (प्र भर) प्रकट कर। (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष जैसे (मनसा) मन से विचार कर (गिरः) ज्ञान वाणियों को प्रकट करता है और (सुहस्त्यः) उत्तम हस्त क्रियाओं में कुशल पुरुष जैसे (अपः न) नाना कर्मों, विज्ञानों तथा हाथों द्वारा बनाये जाने योग्य उत्तम शिल्पों को प्रकट करता है वैसे ही मैं (सुहस्त्यः) सिद्धहस्त होकर (विदथेषु) संग्राम आदि कार्यों में (आभुवः) सब तरफ सामर्थ्य प्रकट करने वाले, (अपः) कर्म कौशलों और अस्त्र संचालन, सेना संचालन आदि क्रियाओं को (सम् अञ्जे) प्रकट करूं और मैं ही (धीरः) धीर होकर (मनसा) ज्ञानपूर्वक (आभुवः) सब प्रकार से सफल होने वाली (गिरः) आज्ञाओं का (सम् अञ्जे) प्रकाश करूं।

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२॥

भा०—(ते) वे वायुओं के समान वीर और विद्वान् (दिवः) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित होकर जैसे वायुएँ प्रबल हो जाती हैं वैसे ही ज्ञान प्रकाश से युक्त आचार्य, राजा या सेनापति से प्रेरित होकर (ऋष्वासः) अन्यों को ज्ञान देने वाले, विद्वान् तथा शत्रुओं को मारने वाले अति उग्र हो जाते हैं और (रुद्रस्य) समष्टि प्राण के अधीन रह कर ज्ञानोपदेष्टा के शिष्य भी (उक्षणः) ज्ञानसुखों के वर्षक एवं वीर्यवान् वृषभों के समान विशालकाय वाले और (रुद्रस्य उक्षणः) वीर जन शत्रुओं को रुलाने वाले सेनापति के अधीन मेघ के समान शस्त्रास्त्रों के वर्षण करने वाले हों। वे (मर्याः) मर्द, जवान (असुराः) बलवान्, प्राणों में रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी और (असुराः) शत्रु सेनाओं को उखाड़ फेंकने वाले, (अरेपसः) पापरहित, स्वच्छचित्त, (पावकासः) अग्नि के समान तेजस्वी, (शुचयः) मन, वाणी, काय, तीनों में शुद्ध, (सूर्याः इव) सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी (सत्वानः न) हस्ती आदि बलवान् प्राणियों के समान बलवान् और सात्विक गुणों वाले, (द्रप्सिनः) वीर्यवान्, मेघों के समान ज्ञान जलों के वर्षक (घोरवर्पसः) भयानक, या शान्तिदायक स्वरूप वाले, (जज्ञिरे) बन कर रहें।

युवा॑नो रु॒द्रा अ॒जरा॑ अभो॒ग्घनो॑ वव॒क्षुरध्रि॑गावः॒ पर्व॑ता इव।
दृ॒ळ्हा चि॒द्विश्वा॒ भुव॑नानि॒ पार्थि॑वा॒ प्र च्या॑वयन्ति दि॒व्यानि॑ म॒ज्मना॑ ।३

भा०—(युवानः) युवा, बलशाली, (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने हारे, (अजराः) कभी जीर्ण न होने हारे (अभोग्घनः) किसी के अधीन होकर दण्डनीय न होने वाले (अध्रिगावः) शत्रुओं से असह्य वेगवान्, (पर्वताः इव) पर्वतों के समान अचल वीरगण (विश्वा) समस्त (दिव्यानि) आकाशस्थ (पार्थिवा) अथवा राजसभा और साधारण प्रजागण के (दृढा) दृढ (भुवनानि) समस्त जनों को (यत्) भी (मज्मना) अपने बल से (प्र च्यावयन्ति) विचलित कर देने वाले हों।

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४॥

भा०—(दिवः) तेजस्वी राजा के (नरः) नायक, वीरगण, (चित्रैः) नाना प्रकार के (अंजिभिः) अपने को प्रकट करने वाले चिह्नों, अङ्कों या पोशाकों और बैजों द्वारा (वपुषे) अपने शरीर को (वि अन्जते) विविध रूप से प्रकट करते या सजावें और (शुभे) शोभा के निमित्त वे अपने (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्मान्) स्वर्णपदकों को (येतिरे) लगावें और (एषां अंसेषु) इनके कन्धों पर (ऋष्टयः) शत्रुनाशक हथियार, दण्ड, भाले आदि (नि मिमृक्षुः) शोभा देवें। वे ऐसे (स्वधया) पृथिवी के विजय और पालन की शक्ति के साथ (साकम्) एक साथ (जज्ञिरे) प्रकट हों।

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥५॥६॥

भा०—वीर सैनिकगण (ईशानकृतः) राजा को राष्ट्र का शासक बना देने हारे, (धुनयः) शत्रुओं को कम्पा देने हारे, (रिशादसः) हिंसकों को उखाड़ फेंकने वाले होकर (तविषीभिः) अपने बलों या अस्त्रशस्त्रों से (वातान्) प्रचण्ड वायु के झकोरों और (विद्युतः) विद्युत् के समान आघातकारी अस्त्रों का भी (अक्रत) प्रयोग करें। (ऊधः) दुग्ध रस का इच्छुक पुरुष जैसे गाय के थनों को दोहता है वैसे ही वे (धूतयः) शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष (भूमिम्) भूमि रूप गौ से (दिव्यानि) नाना दिव्य पदार्थों, शक्तियों और सारयुक्त ओषधियों को (दुहन्ति) प्राप्त करें। वे (परिज्रयः) सब देशों और स्थानों में जाने हारे विद्वान् वीरजन (पयसा) दूध से जैसे बालक को पुष्ट किया जाता है वैसे ही और जल जैसे क्षेत्र को सींचता है वैसे ही (भूमिं) भूमि को (पयसा) पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थों और ऐश्वर्य से (पिन्वन्ति) सेचन करते हैं, उसे पुष्ट करते हैं।

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ।६

भा०—जैसे (मरुतः) वायुगण (अपः) जलों को (पिन्वन्ति) मेघों में पूर्ण करते और भूमियों पर सेचन करते हैं और (सुदानवः) उत्तम जलप्रद और (आभुवः) सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। वैसे ही उत्तम, वीर जन भी (विदथेषु) यज्ञादि उत्तम कार्यों में और युद्धों में (आभुवः) सब प्रकार से सामर्थ्यवान् और (सुदानवः) उत्तम रीति से शत्रुओं के खण्डन और प्रजा के पालन करने वाले, दानशील (मरुतः) और वायुवत् वेगवान् होकर (घृतवत् पयः) घृत से युक्त दुग्ध और अन्न का और (अपः) जलों का (पिन्वन्ति) सेवन करते हैं। (न) जैसे (वाजिनम्) बलवान् (अत्यम्) वेगवान् अश्व को (मिहे) वीर्य सेचन के कार्य के लिए (वि नयन्ति) घोड़ी के पास ले जाते हैं और जैसे वायुगण (वाजिनम्) वेग से जाने वाले या अन्न के उत्पादक मेघ को अश्व के समान (मिहे) वृष्टि करने के लिए (वि नयन्ति) विविध दिशाओं में ले जाते हैं वैसे ही वीर पुरुष भी (वाजिनम्) अन्नादि ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति को भी (मिहे) शत्रु पर अस्त्रों और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने के लिए (वि नयन्ति) प्राप्त करें। (उत्सं) जैसे मनुष्य कूप से जल को प्राप्त करते हैं और जैसे वायुगण (स्तनयन्तम्) गर्जना करते हुए या आकाश रूप गोमाता के स्तनों के समान विद्यमान (अक्षितम्) अक्षय मेघ से जलों को दोहते हैं वैसे ही वीर प्रजाजन भी (उत्सं) उत्तम ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करने वाले (स्तनयन्तम्) सिंहनाद करते हुए (अक्षितम्) अक्षय कोष के समान अक्षय बल वाले पुरुष से (दुहन्ति) ऐश्वर्य और सामर्थ्य को दोहते या प्राप्त करते हैं।

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥७॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (महिषासः) बलवान्, (मायिनः)

बुद्धिचातुरी से युक्त, (चित्रभानवः) अद्भुत कान्तिमान् (गिरयः न) पर्वतों और मेघों के समान (स्वतवसः) अपने पराक्रम पर खड़े होने वाले (रघुष्यदः) अति वेग से जाने वाले हों। (यत्) जब आप लोग (अरुणीषु) लाल वर्ण वाली, तेजस्विनी सेनाओं में (तवीषीः) समस्त बलों या सैन्य-दलों को (अयुग्ध्वम्) जोड़ दें तब भी (हस्तिनः) हाथी (मृगाः) पशु जैसे (वनानि) जंगलों को खा जाते, उपभोग करते हैं वैसे ही तुम भी (हस्तिनः) सिद्धहस्त बनकर (मृगाः) शत्रुओं को खोजनेवाले होकर (वना) शत्रु सेनासमूहों का (खादथ) विनाश करो और (वना) भोग्य ऐश्वर्यों का (खादथ) भोग करो।

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः॥८॥

भा०—(प्रचेतसः) उत्कृष्ट विद्वान्, वीर पुरुष (सिंहाः इव) शेरों के समान बलवान् होकर (नानदति) गर्जना करें और वे (विश्ववेदसः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी और समस्त विद्याओं के जाननेहारे, (सुपिशः) सुदृढ़ अंगों वाले होकर (पिशाः इव) बलवान् शरीरों वाले गजों के समान गम्भीर वेदी हों। (क्षपः) रात्रियां जैसे (पृषतीभिः) सेचनेवाली जलबिन्दु-पंक्तियों से भूमि को छा देती हैं वैसे ही ये वीर भी (क्षपः) शत्रुओं के नाशक होकर (ऋष्टिभिः) आयुधों से (जिन्वन्तः) पृथ्वी का विजय करते हुए (सबाधः) एक साथ शत्रुओं को पीड़न करनेवाले, (अहिमन्यवः) सर्प के क्रोध के समान शत्रु के एक ही वार में प्राण हरण करनेवाले कोप से युक्त होकर (सम् इत्) एक साथ ही युद्ध में (शवसा) बल से जावें।

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः।
आ बन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः॥९॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो और वीर पुरुषो! हे (गणश्रियः) सैन्यगणों को अपने आश्रय या अधीन रखनेवाले, सेना समूहों से शोभा

देनेवाले हे (नृषाचः) वीर नायकों के अधीन, संगठन बनाकर रहनेवाले, (शूराः) शूरवीर (अहिमन्यवः) सर्प के समान शत्रु के प्राणहारी क्रोधवाले पुरुष ! आप लोग (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (शवसा) अपने बल और ज्ञान सामर्थ्य से (आ वदत) सर्वत्र उपदेश करो, हे विद्वानो ! और वीरो ! आप सब लोग (अमतिःन) सुन्दर रूप के समान दर्शनीय और (विद्युत् न) विद्युत् के समान अपनी कान्ति से स्वतः देखने योग्य होकर (बन्धुरेषु) दृढ़ बन्धनों से बंधे (रथेषु) रथों पर (वः) तुम्हारा पराक्रम (तस्थौ) स्थिर हो। विद्वानों का ज्ञान (रथेषु) रमण योग्य आत्मानन्द रूप रसों में विद्युत् के समान मनोहर और दीप्ति रूप से विराजे ।

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥१०॥

भा०—(विश्ववेदसः) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामी, विश्व को जानने, उसे धन रूप में प्राप्त करने वाले, (रयिभिः) अपने पराक्रमों और ऐश्वर्यों से (समोकसः) एक समान या उत्तम स्थान के रहने वाले, (संमिश्लासः) अच्छी प्रकार सम्मिलित, (तविषीभिः) बलों और सेनाओं के द्वारा (विरप्शिनः) गुणों और कार्यों में महान्, (अस्तारः) अस्त्रों के चलाने हारे, (वृषखादयः) वीर्यवर्धक अन्न और जल के खाने वाले, (नरः) वीर पुरुष (अनन्तशुष्माः) अनन्त बल से युक्त होकर (गभस्त्योः) बाहुओं में (इषुं दधिरे) बाण आदि अस्त्रों को धारण करें।

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११॥

भा०—(आपथ्यः न) जैसे मार्ग में चलने वाला रथ (हिरण्ययेभिः पविभिः उत् जिघ्नते) लोहे के बने या उससे मढ़े हुए चक्रों से उत्तम

रीति से चलता है वैसे ही (आपथ्यः) वीर पुरुष सब तरफ के मार्गों के जानने और वश करने हारे होकर (हिरण्ययेभिः) लोहे के बने हुए (पविभिः) खड्गों और शस्त्रास्त्रों से (पर्वतान्) पर्वत के समान अचल होकर शत्रु राजाओं और प्रतिपक्षी वीरों को (उत् जिघ्नन्ते) उत्तम या अधिक बल से विनाश कर दें। वे (पयोवृधः) बल वर्धक (मखाः) पूजा योग्य, (स्वसृतः) अपने बल से आगे बढ़ने वाले, (ध्रुवच्युतः) स्थिर राज्यों को भी डावांडोल करने वाले, (दुध्रकृतः) धारण योग्य या असह्य पराक्रमों के करने वाले, (भ्राजदृष्टयः) चमचमाते शस्त्रों वाले होकर (मरुतः) वीर पुरुष (अयासः) सर्वत्र रण में जाने वाले हों।

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२॥

भा०—हम लोग (घृषुम्) शत्रुओं के बल के नाशक (पावकम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (वनिनम्) ऐश्वर्य या वेतन को प्राप्त करने वाले, (विचर्षणिम्) विविध मनुष्यों से बने हुए, (रुद्रस्य) शत्रु-दल को रुलाने वाले, संग्राम के अथवा वीर सेनापति के (सूनुम्) पुत्र के समान, उनके अधीन, (रजस्तुरम्) राजस भाव, ऐश्वर्य की प्राप्ति से शीघ्र कार्यकारी, (तवसम्) बलवान् , (ऋजीषिणम्) ऋजु अर्थात् धर्म और न्याय के मार्ग पर चलने वाले, (वृषणं) बलवान् , दुष्टों पर शर वृष्टि करने वाले, (मारुतं गणम्) वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रुओं के मारने वाले सैनिकों के गण को हम (हवसा) देने योग्य वेतन, उपहार तथा भक्ष्य आदि द्वारा (गृणीमसि) शिक्षित करें या उनका आदर करें। हे प्रजाजनो! तुम उनको (श्रिये) ऐश्वर्य और शरण प्राप्त करने के लिये (सश्चत) प्राप्त करो।

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान वेग से जाने हारे वीर एवं विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोग (ऊती) रक्षा के लिये (यम्) जिस पुरुष की (आवत) रक्षा करते और जो (अर्वद्भिः) अश्वारोही वीर पुरुषों के द्वारा (वाजं) संग्राम को (भरते) विजय करता है, (नृभिः) नायक पुरुषों के साथ मिलकर जो (धना) ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है और जो (आपृच्छ्यम्) परस्पर पूछकर जिज्ञासा को प्राप्त करने योग्य (क्रतुम्) ज्ञान को (आ क्षेति) प्राप्त करता है (सः मर्तः) वह मनुष्य (शवसा) बल और ज्ञान से (नु) शीघ्र (जनान् अति) समस्त जनों से बढ़ कर (तस्थौ) उच्च आसन पर विराजता है ।

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप लोग (चर्कृत्यं) समस्त करने योग्य कार्यों में कुशल (पृत्सु दुस्तरं) संग्रामों में शत्रुओं से पराजित न होने वाले, (द्युमन्तम्) सूर्य के समान तेजस्वी, (शुष्मम्) बलवान् (धनस्पृतम्) ऐश्वर्यों को कमाने वाले (विश्वचर्षणिम्) समस्त राष्ट्र के द्रष्टा, (तोकम्) शत्रु के नाशक (तनयम्) राष्ट्र के विस्तार करने वाले पुरुष को (मघवत्सु) धन सम्पन्न पुरुषों के ऊपर (धत्तन) स्थापित करो । अपने पुत्र और पौत्र के समान प्रिय, ऐसे (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय जन को हम (शतं हिमाः) सौ बरसों तक (पुष्येम) पुष्ट करें ।

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥८॥११॥

भा०—हे (मरुतः) वीर जनो ! आप लोग (नु) शीघ्र ही (स्थिरम्) चिरस्थायी (वीरवन्तम्) वीर पुरुषों से युक्त (ऋतीषाहम्) युद्ध के विजय करने वाले, (रयिम्) ऐश्वर्य को (अस्मासु) हम में (धत्त) धारण करो और (सहस्रिणम्) हजारों के स्वामी और (शतिनं) सैकड़ों के स्वामी,

शतदलपति, सहस्रदलपति, (शूशुवांसं) समस्त सुखों के दाता महापुरुष को भी हममें (धत्त) स्थापित करो और (धियावसुः) प्रज्ञा और कर्म के धनी पुरुष (मक्षु) शीघ्र ही (प्रातः) दिन के प्रारम्भ समय में (जगम्यात्) प्राप्त हों। इत्यष्टमो वर्गः। इति एकादशोऽनुवाकः॥

[६५] पराशरः शाक्त्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ पंक्ति (२, ३, ५ निचृत्। ४ विराट्) अथवा १—१० द्विपदा विराट्। (३, ६, ७, ८, ९ निचृत्) पंचदशर्चं सूक्तम्॥

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैरनुग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः॥१॥

भा०—(धीराः) बुद्धिमान् पुरुष जैसे (गुहा चतन्तम्) गुफा में छिपे हुए (पश्वा) पशु के साथ विद्यमान (तायुम्) चोर को (पदैः) उसके चरणचिह्नों से (अनुग्मन्) पीछा करते हैं, वैसे ही परमेश्वर! (पश्वा) सबके द्रष्टा रूप से (गुहा चतन्तं) ब्रह्माण्ड रूप गुहा या हृदय रूप गुहा में व्यापक, (तायुम्) सबके पालक (नमः) ऐश्वर्य या सर्व वशकारी बल को (युजानं) अपने में धारण करने वाले (नमः वहन्तम्) सबके पोषक अन्न और सबके भक्तिभाव को धारण अर्थात् स्वीकार करते हुए (त्वा) तुझको (सजोषाः) समान प्रेम से तेरा सेवन करने हारे, (धीराः) ध्यानवान्, (विश्वे) समस्त (यजत्राः) उपासक पुरुष (पदैः) ज्ञान साधनों से (अनुग्मन्) तुझे प्राप्त होते हैं और (विश्वे) वे सब (त्वा उपसीदन्) तेरे ही आश्रय पर रहते हैं।

ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम्॥२॥

भा०—(देवाः) अग्नि आदि तेजस्वी पदार्थ, भूमि आदि सुखप्रद लोक तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियां, विद्वान् और वीरगण (ऋतस्य) सत्य

स्वरूप परमेश्वर के तथा (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय, वेद और (ऋतस्य) सबके संचालक सत्यव्यवहार वाले, शासनव्यवस्था के (व्रता) उपदेश किये कर्त्तव्यों का (अनुगुः) अनुसरण करते हैं। उनकी (परिष्टिः) परीक्षा करना और ज्ञानदर्शन भी (द्यौः न) सूर्य के समान स्पष्ट और (भूम) पृथ्वी के समान दृढ़ आश्रय है। (आपः) गर्भस्थ जल या आप्त पुरुष जैसे (सुशिश्विम्) उत्तम रीति से पुष्टि पाने वाले (सुजातम्) उत्तम बालक को (वर्धन्ति) बढ़ाते और पुष्ट करते हैं वैसे ही (आपः) आप्त पुरुष (ऋतस्य) सत्य, न्याय, शासन कार्य के (गर्भे) समस्त प्रजा को वश करने वाले राजपद पर (सुजातम्) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हुए (ईम) इस राजा को (पन्वा) उत्तम व्यवहार सत् उपदेश और स्तुति युक्त वाणी से (वर्धन्ति) बढ़ावें।

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥३॥

भा०—ज्ञान करने योग्य परमेश्वर, अग्नि, राजा वा सभाध्यक्ष (पुष्टिः न रण्वा) शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सुख को बढ़ानेवाली पुष्टि के समान अग्नि, विद्युत्, राजा और परमेश्वर तीनों में से प्रत्येक सुख देने वाला है। वह (क्षितिः न पृथ्वी) भूमि के समान सबको अपने में आश्रय देने वाला है। (गिरिः न भुज्म) पर्वत के समान सबको पालने वाला है। (अज्मन् अत्यः न) वेग में, शत्रुओं के उखाड़ फेंकने में अश्व के समान (सर्गप्रतक्तः) छूटते ही शत्रु के पास पहुँचने और पहुँचाने वाला है। (क्षोदः) जल समूह जैसे (सिन्धुः) वेग से बहता है, वह रोके नहीं रुकता वैसे ही ईश्वर भी (सर्ग-प्रतक्तः) सृष्टि द्वारा जाना जाकर (सिन्धुः न) अगाध सागर के समान सर्जनशक्ति का आश्रय भण्डार है। (ईं) इन सबको (कः) कौन (वराते) धारण कर सकता है।

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥४॥

भा०—(अग्निः) अग्नि (वातजूतः) जैसे वायु से प्रचण्ड होकर (वना) जङ्गलों में (वि अस्थात्) विविध रूपों से फैलता है तब वह (वनानि) जंगलों को (अत्ति) खा जाता है, जला डालता है तभी मानो वह (पृथिव्याः) पृथिवी के (रोमा) लोमों के समान उत्पन्न ओषधि आदि वनस्पतियों को (दाति) कुठार के समान काट डालता है, वैसे ही (अग्निः) अग्रणी नेता पुरुष जो (वातजूतः) वायु के समान प्रचण्ड वेगवाले वीर पुरुषों के बल से प्रचण्ड होकर (वना) सत्रु के सैनिक दलों पर (वि अस्थात्) विविध दिशाओं से जा चढ़ता है, (ह) वह निश्चय से (पृथिव्याः रोमा) पृथिवी पर स्थित लोमों के समान, उसको छा लेने वाले या (रोमा) मार काटकर गिरा देने योग्य शत्रुसैन्य को (दाति) काट गिराता है। वह राजा (वनानि) नाना ऐश्वर्यों का (अत्ति) भोग करता है। वह (सिन्धूनां जामिः) बहती नदियों के समान वेगवाला होने से उसका बन्धु है। वह (स्वस्राम् भ्राता इव) बहिनों की रक्षा करने वाले भाई के समान स्वयं अपने बल से रणक्षेत्र में शत्रु पर धावा बोलने वाली सेनाओं का (भ्राता) पोषण करनेवाला रक्षक है। (इभ्यान् न राजा) हाथियों को वश करने वाले ऐश्वर्यवान् पुरुषों का राजा के समान वश करने हारा है।

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥५॥६॥

भा०—(अप्सु हंसः न) हंस जैसे जलों में (श्वसिति) डुबकी लगाकर भी श्वास लेता रहता है, वैसे ही राजा (अप्सु) आप्त प्रजाजनों के बीच (सीदन्) विराजता हुआ (श्वसिति) प्राण लेता, जीता जागता रहे। वह (क्रत्वा) यज्ञादि से अग्नि के समान उत्तम ज्ञान और कर्म के द्वारा (चेतिष्ठः) अति ज्ञानवान् होकर (विशाम्) प्रजाओं के बीच में (उषर्भुत्) प्रातः चेतने वाले अग्नि के समान ही सबको (उषर्भुत्) जीवन के प्रारम्भ के वयस् में ही बोध कराने वाला हो। (सोमः न वेधाः) ओषधि आदि जैसे शरीर का पोषक है वैसे ही वह राजा भी राष्ट्र का पोषक हो। वह

(ऋतप्रजातः) सत्य व्यवहार, न्यायशासन, ज्ञान में कुशल और प्रसिद्ध होकर (शिश्वा) छोटे बछड़े से युक्त (पशुः न) गौ आदि पशु के समान प्रजा के प्रति प्रेमवान्, कृपालु होकर रहे और (विभुः) विशेष सामर्थ्यवान् होकर भी अग्नि के समान (दूरे-भाः) दूर दूर तक अपने तेज को फैलाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी हो । इति नवमो वर्गः ॥

[६६] पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता । छन्दः—पंक्तिः । ४, ५ विराट् अथवा १-१० द्विपदा विराट् (७, द्व्यूना, ९, १० एकोना) पंचर्चं सूक्तम् ॥

र॒यिर्न चि॒त्रा सूरो॒ न सं॒दृगायु॒र्न प्रा॒णो नित्यो॒ न सू॒नुः ।
तक्वा॒ न भूर्णि॒र्वना॑ सिषक्ति॒ पयो॒ न धे॒नुः शुचि॒र्वि॒भावा॑ ॥१॥

भा०—(रयिः न) जैसे ऐश्वर्यमय द्रव्य (चित्रा) नाना प्रकार के संग्रह योग्य पदार्थों से पूर्ण होता है वैसे ही नायक भी (चित्रः) आश्चर्य-जनक गुणों वाला हो । वह (सूरः न) विद्वान् पुरुष या सूर्य के समान (संदृक्) सम्यक् दृष्टि वाला तत्वज्ञानी और अन्यों को अच्छे प्रकार दीखने और दीखाने वाला हो । (आयुः न प्राणः) वह प्राण के समान राष्ट्र में आयु का वर्धक हो । (सूनुः न नित्यः) वह पुत्र के समान सबका स्थिर दायभागी, सबकी जायदाद का स्वामी है और (भूर्णिः) हिंसाकारी (तक्वा) चोर पुरुष जैसे (वना सिषक्ति) प्रजा को लूटकर जंगलों में जा छिपता है वैसे ही वह भी (तक्वा) शत्रुओं को कठोर दण्ड देने वाला और (भूर्णिः) प्रजापालक होकर (वना) संविभाग करने और देने योग्य ऐश्वर्यों को (सिषक्ति) प्रदान करे । वह (धेनुः न) दुहार गाय के समान (पयः) प्रजा को पुष्टिकारक अन्न प्रदान करे । (शुचिः) वह ईमानदार होकर (विभावा) अग्नि के समान विशेष दीप्ति से चमके ।

दा॒धार॒ क्षेम॒मोको॒ न र॒ण्वो यवो॒ न प॒क्वो जेता॒ जना॑नाम् ।
ऋषि॒र्न स्तुभ्वा॑ वि॒क्षु प्र॑श॒स्तो वा॒जी न प्री॒तो वयो॑ दधाति ॥२॥

भा०—जो नायक, सेनापति (जनानाम् जेता) सब मनुष्यों का विजय करने हारा (ओकः न) घर के समान (रण्वः) सुखदायी होकर (क्षेमम् दाधार) प्राप्त धन के रक्षा का उपाय करता है, जो (यवः न पक्वः) पके जौ के समान स्वयं परिपक्व अनुभव से युक्त होकर प्रजा को पुष्ट करता है और जो (ऋषिः न स्तुभ्वा) ज्ञानी ऋषि के समान यथार्थ का वर्णन करता है वह (विक्षुः प्रशस्तः) प्रजाओं के बीच सबसे श्रेष्ठ (वाजी न) वेगवान् अश्व के समान धुरन्धर, (प्रीतः) अन्न ऐश्वर्य से प्रसन्न, तृप्त किया जाकर (वयः) राष्ट्र में बल को (दधाति) धारण कराता है ।

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥३॥

भा०—अग्नि जैसे (दुरोकशोचिः) दूर २ स्थानों तक अपनी दीप्ति को फैलाता है और उसकी ज्वाला को कोई पकड़ नहीं सकता वैसे ही नेता भी (दुरोकशोचिः) दूर दूर स्थानों, देशों तक अपने असह्य तेज को फैलाने वाला हो । वह (क्रतुः न) कर्मों और प्रज्ञाओं के कर्त्ता के समान (नित्यः) स्थायी होकर अपने कर्मों के फलों का भोक्ता हो । वह (योनौ जाया इव) घर में स्त्री के समान, राष्ट्र सबका अन्न वस्त्र से पोषक और सुखदायक हो । वह (विश्वस्मै) सम्पूर्ण राष्ट्र की व्यवस्था के लिये (अरं) अति अधिक हो । वह (चित्रः) आश्चर्यजनक कर्मों का कर्त्ता (यत्) जो (विक्षु) प्रजाओं के बीच (श्वेतः न) तीव्र तेजस्वी सूर्य के समान (अभ्राट्) अन्यों से प्रकाशित न होने वाला, (रथः न रुक्मी) रथ या सूर्य के समान दीप्तिमान्, उज्ज्वल कर्मों का करने वाला और (समत्सु) संग्रामों में (त्वेषः) दीप्तिमान् हो ।

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥४॥

भा०—राजा (सृष्टा) युद्ध के लिये भेजी या तैयार हुई (सेना इव)

सेना के समान शत्रु के हृदय में (अमं दधाति) भय को उत्पन्न करे और राष्ट्र में बल और सुख की वृद्धि करे (अमं दधाति) और निर्बल राष्ट्रवासी जन की रक्षा करे। (अस्तुः) बाणों के फेंकने वाले वीर पुरुष की (त्वेषप्रतीका) दीप्ति के अग्रभाग में रखने वाले, तेज मुख वाले (दिद्युत् न) खूब गहरे छेदने वाले बाण के समान शत्रुओं को छेदन भेदन करने वाला हो। वह (यमः) राष्ट्र का नियन्ता होकर (जातः) जो प्रकट वर्त-मान उसका स्वामी और (यमः) अपने समान बलशाली पुरुष के साथ मिलकर युगल पति पत्नी के समान (जनित्वम्) उत्पन्न होने वाले सब पदार्थों को वश करने वाला हो। वह ही (कनीनाम्) कन्याओं के समान नव कान्ति से युक्त, उषाओं के (जारः) प्रथम वयस की समष्टि करके प्रौढ़ता में आने वाले सूर्य के समान तेजस्वी और (कनीनाम्) विवाहित पत्नियों के (पतिः) पति के समान सब दशाओं में प्रजाओं का सब प्रकार से भरण पोषण करने वाला हो।

तं वंश्चराथां वयं वंसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥५॥१०॥

भा०—(गावः) गौएं (न) जैसे (अस्तं) घर को (नक्षन्ते) आ जाती हैं वैसे ही (तं) उस (इद्धम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शरण को (वः) तुम लोग और (वयं) हम लोग भी (चराथा) चर सम्पत्ति, पशु गण और (वसत्या) बसने योग्य गृह आदि स्थिर सम्पत्ति के सहित (नक्षन्ते) प्राप्त हों। (सिन्धुः क्षोदः न) जैसे बहने वाला जल (नीचीः) नीचे जाने वाली धाराओं को (प्र एनोत्) प्रबल वेग से बहाता है वैसे ही (सिन्धुः) सिन्धु के समान प्रबल सेनापति समस्त सेनागणों को नियम में बांध कर (क्षोदः) आज्ञा द्वारा प्रेरणा किये जाने वाले सेना बल या भृत्य वर्ग को (नीचीः) नीचे प्रदेशों, पदों या अधीन रहने वाली प्रजाओं के प्रति (प्र एनोत्) भेजे। (गावः) किरणें जैसे (दृशीके) दर्शनीय (स्वः) सूर्य में (नवन्त) प्राप्त हैं वैसे ही (गावः) विद्वान् पुरुष और बलवान् पुरुष पुंगव

भी (दृशीके) दर्शनीय, (स्वः) प्रतापी, तेजस्वी राजा को (नवन्त) प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

[६७] पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्ति। १, २, ४ निचृत्। ५ विराट्। अथवा—द्विपदा विराट् (२, ३, ८-१० निचृत्। ५ भुरिक्) पंचर्चं सूक्तम् ॥

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥१॥

भा०—जो वीर (वनेषु) बनों में भस्म कर देने वाले अग्नि के समान, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के बीच (जायुः) शत्रुओं का विजय करने वाला हो, सो (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच उनका (मित्रः) प्राण के समान स्नेही (श्रुष्टिम्) अन्नादि भोग्य पदार्थ को एवं शीघ्रकारी कुशल पुरुष को (वृणीते) वरण करता है और जो (राजा इव) राजा के समान (अजुर्यम्) जरा रहित, जवान मर्द को अपने कार्य के लिये चुन लेता है वह (क्षेमः न साधुः) रक्षक पुरुष के समान सब कार्यों का साधक और सज्जन पुरुष के समान कल्याणकारी (क्रतुः न) क्रिया कुशल, प्रजावान् पुरुष के समान (भद्रः) सबको सुख देने और कल्याण करने वाला, (स्वाधीः) उत्तम आचरण करने वाले प्रजाओं का पालक पोषक, (होता) सबको उचित ऐश्वर्यों का दाता तथा (हव्यवाट्) ग्राह्य और देने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाला (भुवत्) हो।

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद् गुहा निषीदन्।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥

भा०—(गुहा) गुफा या उत्तम ज्ञान में स्थित विद्वान्, आचार्य (देवान्) अन्य ज्ञानेच्छु पुरुषों को (अमे धात्) अपने ज्ञान में धारण करता है और जैसे (गुहा निषीदन्) सुरक्षित स्थान में स्थित राजा

(देवान्) विजयी पुरुषों को (अमे धात्) अपनी शरण में रखता है वैसे ही परमेश्वर (विश्वानि नृम्णा) समस्त ऐश्वर्यों को (हस्ते दधानः) अपने हाथों में या वश में रखता हुआ (गुहा निषीदन्) ब्रह्मांड आकाश या बुद्धिरूप गुहा में विराजता हुआ (अमे) अपने ज्ञान और बल के अधीन (देवान्) पृथिवी सूर्य आदि समस्त दिव्य लोकों, विद्वान् पुरुषों और प्राणों को (धात्) स्वयं धारण करता है और (अत्र) इसी बुद्धिरूप गुहा में (इम्) इसको वे (धियं धाः) ज्ञान, उत्तम प्रज्ञा और श्रेष्ठ कर्मों के धारक योगी जन (विदन्ति) साक्षात् करते हैं। (यत्) जब वे (हृदा) हृदय से (तष्टान्) अति तीक्ष्ण किये हुए, अति सूक्ष्म रीति से विवेचित किये हुए (मन्त्रान्) विचारों और वेदमन्त्रों का (अशंसन्) उपदेश करते हैं।

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।

प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥३॥

भा०—(अजः) गतिमान् और अन्यों को गति देने वाला सूर्य (न) जैसे (पृथिवीं) पृथिवी को धारण करता है (द्यां तस्तम्भ) और आकाश या उसमें स्थित पिण्डों को भी आकर्षण द्वारा स्थिर करता है और (अज) जैसे अजन्मा परमेश्वर (सत्यैः मन्त्रेभिः) सत्य ज्ञानों और सत्य वैज्ञानिक नियमों के द्वारा (पृथिवीं द्यां) सब लोकों के निवास योग्य भूमि और आकाश को भी (दाधार, तस्तम्भ) धारण करता है वैसे ही विद्वान् राजा भी (सत्यैः मन्त्रेभिः) सत्य विचारों और ज्ञानों से स्वयं (अजः) ज्ञानवान् और शत्रुओं का पराजेता होकर (क्षां) प्रजा में बसी (पृथिवीं) पृथिवी और (द्याम्) ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वत्-सभा को (दाधार) धारण करे और (तस्तम्भ) विजयशालिनी सेना को भी थामे। हे परमेश्वर और राजन्! हे (अग्ने) विद्वन्! (विश्वायुः) समस्त प्रजाजनों का स्वामी होकर (प्रिया) हृदय को संतुष्ट करने वाले (पदानि) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों और पदाधिकारों को प्रदान कर और (पश्वः) पशुओं अर्थात् अज्ञान के

बन्धन से हमें (निपाहि) बचा। (अग्ने गुहा गुहं गाः) हे विद्वन्! तू बुद्धि में स्थिर होकर गूढ़ विज्ञान को प्राप्त कर।

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥४॥

भा०—(यः) जो मनुष्य (गुहा भवन्तन्) बुद्धि या हृदय में विद्यमान परमेश्वर को (चिकेत) जान लेता है और (यः) जो (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय वेदविद्या की (धाराम्) वाणी को या सत्य व्यवहार को धारण करने वाली विद्या, शास्त्रव्यवस्था को (आ ससाद) प्राप्त कर लेता, अपने वश कर लेता है और (ये) जो विद्वान् पुरुष (सपन्तः) परस्पर एक स्थान पर संगत होकर (ऋता) सत्य तथा सत्य ज्ञानों को (विचृतन्ति) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से खोलते, उनको प्रकट करते हैं। (आत् इत्) वह पूर्वोक्त शासक पुरुष (अस्मै) उस विद्वान् जन के लिए (वसूनि) नाना ज्ञानों को प्राप्त करने का (प्रववाच) प्रवचन करे।

वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥५॥११॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (वीरुत्सु) विविध रूपों से छुपे कार्यों को प्रकट करने वाले कारणों में से (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (प्रजाः) आगे उत्पन्न होने वाले कार्यों को (वि रोधत्) विविध रूपों से प्रकट करता है और (यः वीरुत्सु प्रजाः वि रोधत्) जो लताओं में विविध पुष्प फलों को भी विशेष रूपों से प्रकट करता है, (उत्) और (प्रसूषु अन्तः) माताओं के गर्भ में जो प्रजाओं को (वि रोधत्) विविध प्रकारों से उत्पन्न करता है, वह (चित्तिः) ज्ञानवान्, सबमें चेतना का देने वाला (विश्वायुः) सबका जीवनाधार होकर (अपां दमे) प्राणों और जलों के बीच में समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करता है। (धीराः) बुद्धिमान् पुरुष (संमाय) निर्माण करके जैसे (सद्म इव) अपना घर खड़ा कर लेते हैं वैसे

ही विद्वान् पुरुष जिसे (संमाय) अच्छी प्रकार जान कर (सद्म इव चक्रुः) अपना परम आश्रय या शरण बना लेते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

[६८] पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पंक्ति। १, ४ निचृत्। अथवा—द्विपदा विराट् (१, ६ निचृत्)। पंचर्चं सूक्तम् ॥

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत्।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥१॥

भा०—जैसे सूर्य (भुरण्युः) सबका पालक होकर (श्रीणन्) ओषधियों को पकाता है, ऐसे ही परमेश्वर (श्रीणन्) समस्त ब्रह्माण्ड का कालाग्नि द्वारा परिपाक करता हुआ (दिवम्) ज्योतिर्मय प्रकाश को तथा महान् आकाश और समस्त तेजोमय सूर्य आदि को (उप स्थात्) व्यापता है। वह (भुरण्युः) सबका पालक पोषक प्रभु (स्थातुः चरथम्) स्थावर और जंगम संसार को और (अक्तून्) जगत् को प्रकाशित करने वाले किरणों या रात्रियों को (वि ऊर्णोत्) विविध प्रकार से प्रकट करता है, उनके अन्धकारों के आवरणों को दूर करता है। (यत्) जो (एकः) अकेला ही (एषां विश्वेषां) इन सब (देवानाम्) प्रकाशक और सुखप्रद लोकों और पदार्थों के बीच (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (देवः) सबसे बड़ा प्रकाशक और सुखदाता (परिभुवत्) होकर सर्वत्र विद्यमान है। विद्वान् और राजा (दिवं श्रीणन्) ज्ञान और विद्वत्-सभा को दृढ़ करता हुआ स्थावर और जंगम को पोषण करे।

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥२॥

भा०—(यत्) जो तू हे जीवात्मन्! (जीवः) जीव (शुष्कात्) सूखे काष्ठ से प्रज्वलित अग्नि के समान (शुष्कात्) कार्य आदि के शोषण रूप तप से (जनिष्ठाः) विशेष रूप से प्रकाशित होता है (आत् इत्)

२१ प्र.

तब ही (विश्वे) समस्त प्राण आदि और मनुष्य (ते) तेरे (क्रतुम्) ज्ञान और कर्म का (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते हैं और (एवैः) ज्ञान मार्गों से (अमृतम्) अविनाशी (ऋतम्) मोक्षमय परम सत्य को (सपन्तः) प्राप्त होते हुए (विश्वे) सभी वे विद्वान् (देवत्वं) दिव्य गुण से युक्त (नाम) स्वरूप को (भजन्त) प्राप्त करते हैं।

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर ! (ऋतस्य) सत्य स्वरूप ! तेरी ही (प्रेषाः) ये उत्तम प्रेरणाएं हैं और (धीतिः) ध्यान और उस द्वारा आनन्द रस का पान भी (ऋतस्य) सत्य स्वरूप तेरे ही जल के पान समान शान्तिदायक और जीवन के वर्धक हैं। इसी से तू (विश्वायुः) समस्त लोकों और प्राणियों का जीवन स्वरूप है। (विश्वे) समस्त जन (अपांसि) तेरे उपदिष्ट सत्य कर्मों को ही (चक्रुः) करें। (यः) जो (तुभ्यम्) तेरे निमित्त अपने आपको (दाशात्) समर्पण करें और (यः वा) जो कोई (ते) तेरे विषय की (शिक्षात्) अन्यों को शिक्षा दे तू (चिकित्वान्) सब कुछ जानता हुआ (तस्मै) उसको (रयिम्) ऐश्वर्य प्रदान कर।

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणां।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥४॥

भा०—(होता) सब सुखों का दाता परमेश्वर (मनोः) मननशील पुरुष के (अपत्ये) होने वाले सन्तान में भी (निषत्तः) अधिष्ठातृ रूप से है। (स चित् नु) वह ही (आसां रयीणाम्) इन रमण करने हारी शक्तियों का (पतिः) पालक है। इसी कारण (अमूराः) मूढ़ता रहित, ज्ञानवान् प्रजाजन (इच्छन्त) पुत्र प्राप्त करने की चाह करते हैं और (मिथः) परस्पर मिलकर (स्वैः दक्षैः) अपने प्राण बलों से (तनूषु) एक

दूसरे के शरीर में (रेत:) सन्तान उत्पादक वीर्य को पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ (जानत) जानते हैं ।

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥५॥१२॥

भा०—(पुत्राः पितुः न) पुत्रगण जैसे प्रेम से पिता के (क्रतुं) ज्ञानमय उपदेश को (जुषन्त) प्राप्त करते हैं वैसे ही (ये) जो विद्वान् पुरुष (तुरासः) अति शीघ्रकारी आलस्य रहित होकर (अस्य) इस परमेश्वर, आचार्य या नायक के (शासं) शासन को प्रेम और आदर से श्रवण करते और पालन करते हैं, (दमूनाः) दमन करने वाला वह विद्वान् या परमेश्वर (पुरुक्षुः) बहुत से कर्मफलों का स्वामी होकर (रायः) ऐश्वर्यों और (पुरः) द्वारों को (वि और्णोत्) खोल देता है (स्तृभिः नाकम्) नक्षत्रों से आकाश के समान उनके दुःखरहित सुख को (स्तृभिः) उत्तम २ गुणों से (पिपेश) जड़ देता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

[६९] पराशरः शक्तिपुत्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पंक्तिः । २, ३ निचृत् । ४ भुरिक् । ५ एकोना विराट् । अथवा—द्विपदा विराट् (४, ६, ९ निचृत् । ८ भुरिक् । १० विराट्) पंचर्चं दशर्चं वा सूक्तम् ॥

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥१॥

भा०—(शुक्रः) कान्तिमान्, (उषः जारः न) प्रभात वेला को अपने उदय और प्रवेश से समाप्त करने हारे सूर्य के समान (शुशुक्वान्) तेजस्वी, और (दिवः ज्योतिः न) सूर्य का प्रकाश जैसे (समीची) परस्पर संगत भूमि और आकाश दोनों को प्रकाशित करता है वैसे ही (दिवः ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाशक, सूर्य के तुल्य विद्वान् पुरुष (समीची) परस्पर मिले हुए पुरुष दोनों को (पप्रा) ज्ञान से पूर्ण करने हारा हो । हे विद्वन् ! तू

(क्रत्वा) विज्ञान और उन्नत कर्मों द्वारा ही (परि) ऊपर (प्रजातः) उत्तम रीति से विराजमान (बभूथ) हो और तू (देवानां) विद्वान् उत्तम पुरुषों का (पुत्रः सन्) पुत्र, शिष्य होकर ही (देवानां) अन्य विद्या के अभिलाषी शिष्यों का भी (पिता) पिता के समान आचार्य, गुरु (भुवः) हो।

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम्।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥२॥

भा०—(वेधाः) मेधावी, उत्तम कर्त्तव्यों का उपदेशक (अग्नि) ज्ञानी पुरुष (विजानन्) विशेष रूप से और विविध विद्याओं का ज्ञाता होकर भी (अदृप्तः) गर्व रहित हो। (गोनां ऊधः न) वह गौओं के थन के समान उत्तम ज्ञान रसों का देने वाला और (पितूनाम् स्वाद्मा) पुष्टिकारक अन्नों का खाने वाला और अन्यों को खिलाने वाला हो। वह (जने शवः न) जनों के बीच में सबको सुखकारी सर्वप्रिय के समान (आहूर्यः) आदर से बुलाने योग्य हो। (सन्) वह प्राप्त होकर (मध्ये) समस्त सभाजनों के बीच में (निषत्तः) विराजमान हो और (दुरोणे) घर में (रण्वः) सबको आनन्द देने हारा हो।

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥३॥

भा०—(जातः पुत्रः न) उत्पन्न हुए पुत्र के समान (दुरोणे) घर में (रण्वः) सबको सुखी करने हारा, (प्रीतः) स्वयं प्रसन्न रह कर (वाजी न) अश्व के समान वेगवान्, ज्ञानवान् होकर (विशः) प्रजाओं को विद्वान् सभापति या राजा (वि तारीत्) विविध संग्रामों और कष्टों से पार कर देता है। वह (अग्निः) पुरुष अग्नि के समान तेजस्वी होकर (अह्वे) राष्ट्र के व्यापक, हितकारी कार्य में (सनीड़ा) एक ही देश में रहने वाली (विशः)

प्रजाओं को (नृभिः) अपने नायक पुरुषों द्वारा वश करे और (विश्वानि) सब (देवत्वा) विद्वानों के योग्य पदों और उत्तम २ कार्यों को (अदयाः) अन्यों को प्राप्त करावे और स्वयं प्राप्त करे।

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थं।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥४॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! (ते) तेरे नियत किये हुए एवं उपदिष्ट (एता) इन (व्रता) कर्तव्यों और धर्मों का (नकिः) कोई भी (मिनन्ति) नाश नहीं करे (यत्) जिससे तू (एभ्यः) इन (नृभ्यः) मनुष्यों के हित के लिये (श्रुष्टिम्) अति शीघ्र सुख जनक कार्य, अन्नादि भोग्य पदार्थ (चकर्थ) प्रदान करता है और (यत्) जिस कारण से तू (समानै) अपने समान आदर और बल से युक्त विद्वान् (नृभिः) नेता पुरुषों के साथ (युक्तः) मिलकर (रपांसि) आज्ञा वचनों को (विवेः) प्रकट करता है और उनसे मिलकर (यत्) जब (ते) तेरा (यत्) जो भी कार्य होता है (तत्) उसको भी (नकिः अहन्) कोई नाश नहीं करे।

उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥५॥१३॥

भा०—(उषः जारः न) प्रभात को अपने उदय से जीर्ण कर देने वाले सूर्य के समान (विभावा) विशेष प्रभा से युक्त तेजस्वी राजा और विद्वान् को (उस्त्रः) समस्त प्रजाओं को (संज्ञातरूपः) समस्त रूपों, प्रजाजनों को जानने वाला होकर (अस्मै) उस प्रजाजन को (चिकेतत्) जाने, उसके अभिमत फल प्रदान करे और (विश्वे) समस्त जन (त्मना) स्वयं (दृशीके) उस दर्शनीय पुरुष के अधीन रहकर (स्वः) सुखजनक ऐश्वर्य को (वहन्तः) धारण करते हुए (नवन्त) उसके आगे आदर से

झुकें और (दुरः) द्वारों को (वि ऋणवन्) उसके स्वागत के लिये खोल दें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७०] पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द — पंक्तिः । १, ४ विराट् । ३ निचृत् । ६ याजुषी । षडर्चं एकादशर्चं वा सूक्तम् ॥

वनेम पूर्वीर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥१॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जैसे (सुशोकः) उत्तम कान्ति, ज्वाला और दीप्ति से युक्त होकर (विश्वानि) समस्त पदार्थों को (अश्याः) व्यापता है या भस्म कर देता है वैसे ही (मनीषा) बुद्धि और विज्ञान के बल से (अर्यः) सबका स्वामी (अग्निः) ज्ञानवान् राजा (सुशोकः) तेजस्वी होकर (पूर्वी) ऐश्वर्य से समृद्ध, धनधान्य से पूर्ण प्रजाओं और (विश्वानि) समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्यों को (अश्याः) व्यापता और उनका भोग करता है। वह (दैव्यानि) विद्वानों के बताये (व्रता) प्रजा के हितकारी कर्त्तव्यों को और (मानुषस्य) मननशील (जनस्य) जनों के (जन्म) जन्म को भी (आ अश्याः) पालन करे, उसको सफल करे। हम सब उसकी ही (वनेम) शरण जावें।

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥२॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अपां गर्भः) व्यापक प्रकृति के परमाणुओं और लोकों के बीच गर्भ के समान छुपा है, जो (वनानां) किरणों के बीच सूर्य के समान सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को (गर्भः) वश करता है, जो (स्थाताम् गर्भः) स्थावर पदार्थों के भीतर व्यापक है, जो (चरथाम् गर्भः) विचरने वाले जंगम पदार्थों के बीच व्यापक और उनका भी वशीकर्त्ता है और जो (अद्रौ चित् अन्तः) पर्वत के समान अभेद्य, कठिन पदार्थ के बीच

में और (दुरोणे) गृह के समान द्वारवान्, सच्छिद्र पदार्थों में भी व्यापक है, जो (विशाम्) प्रजाओं को (विश्वः न) सुख से बसाने वाले राजा के समान (विश्वः) समस्त पदार्थों में विद्यमान, (अमृतः) अमृतमय (स्वाधीः) और संसार को उत्तम रीति से धारण करने हारा है, (अस्मै चित् आ वनेम) हम उसी परमेश्वर का भजन करें। [मन्त्र संख्या अष्टौ शतानि]

स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर और ज्ञानी पुरुष (अस्मै) इस मनुष्य प्राणी को (सुक्तैः) उत्तम उपदेश वचनों से (अरम्) बहुत अधिक ज्ञान (दाशत्) देता है वह ही (अग्निः) अग्नि जैसे रात्रि के अन्धकार को नाश करने से रात्रि का स्वामी कहाता है, वैसे ही (क्षपावान) अज्ञानमय मोहरात्रि का नाशक (अग्निः) ज्ञानमय परमेश्वर (रयीणां) ऐश्वर्यों को (अरं दाशत्) बहुत अधिक देता है। हे (चिकित्वः) विद्वन्! और परमेश्वर ! (देवानां जन्म) विद्वानों और उत्तम गुणों की उत्पत्ति और (मर्त्तान् च) सब मनुष्य को भी उनके विषय में (विद्वान्) अच्छे प्रकार जानते हुए (एता) इन समस्त (भूमा) भूमिवासी जीवों और पदार्थों की (नि पाहि) रक्षा कर।

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्।
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥४॥

भा०—(क्षयः) अंधेरी रात्रियें जैसे उगते सूर्य या प्रकाशमान् अग्नि को (वर्धाद्) बढ़ाती हैं, उसके महान् सामर्थ्य को प्रकट करती हैं वैसे ही (यम्) जिस अग्रणी नायक को (विरूपाः) विविध रूपों वाली (पूर्वीः क्षपः) पूर्व से ही विद्यमान या पूर्व शिक्षित, सिद्धहस्त, नाना साधनों से पूर्ण शत्रु नाशकारिणी सेनाएं (वर्धान्) बढ़ावें और (ऋतप्रवीतम्) जल

से युक्त वा सूर्य से प्रेरित (स्थातुः चरथम्) स्थावर वृक्ष से बने रथ के तुल्य स्थिर पार्थिव जड़ पदार्थ से ही जगत् के रमण के योग्य भूमण्डल को रथवत् बनाता है। वैसे ही जो राजा (ऋत-प्रवीतम्) सत्य न्याय और ज्ञान से उज्वल हुए (स्थातुः चरथम्) स्थावर पदार्थों से रथ के तुल्य, रमणीय स्थिर राजा के लिये उत्तम आनन्दप्रद राज्य का निर्माण करता है, वह (विश्वा) समस्त (अपांसि) कर्मों को (सत्या) सर्व हितकारी, सत्य, न्यायानुकूल, ठीक ठीक (कृण्वन्) करता हुआ (स्वः निषत्तः) प्रजा का सुखकारी, तेजस्वी राज-पद पर विराज कर (होता) विद्वान् के समान ऐश्वर्यों का दाता होकर (अराधि) सेवित और आश्रय किया जाता है।

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥५॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (गोषु) पृथिवी आदि लोकों, ज्ञान वाणियों में, (वनेषु) सेवन योग्य किरणों और जलों में सूर्य के समान (प्रशस्तिम्) उत्तम कथन करने योग्य गुण को (धिषे) धारण कराता है। (विश्वे) सब ही (नः) हममें से (स्वः) आदित्य के समान तेजस्वी (बलिम्) बलवान् तुझको (भरन्त) प्राप्त होते हैं। (पुरुत्रा) बहुत से (नरः) मनुष्य (त्वा) तेरी (वि सपर्यन्) विविध प्रकार से उपासना करते हैं। (जिव्रेः पितुः न) बूढ़े पिता के धन को जैसे पुत्र ले लेते हैं वैसे ही (जिव्रेः) अति पुराण, सनातन पालक तुझसे (वेदः) परम ज्ञान और ऐश्वर्य को सब मनुष्य (वि भरन्त) प्राप्त करें।

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥६॥१४॥

भा०—यह परमेश्वर (साधुः न) साधना करने वाले भक्त के समान ही (गृध्नुः) उसकी उन्नति करने का अभिलाषी होता है। वह (अस्ता इव) शस्त्रास्त्र की वर्षा करने वाले शूरवीर के समान दुःखों को दूर फेंक

देने वाला या पृथिवी आदि लोकों का संचालक और (शूरः) सर्वत्र व्यापक है। वह (याता इव) चढ़ाई करने वाले राजा के समान (त्वेषः) सदा अन्धकार पर विजय पाने वाला अति कान्तिमय होकर (समत्सु) आत्मा का परमात्मा के साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य आनन्द लाभ के अवसरों पर अनुभव करने योग्य है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१] पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता छन्दः—त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत् । ३, ४, ८, १० विराट् । ६ एकोना विराड् । त्रिष्टुप् भुरिक्पंक्तिर्वा ॥

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुषूञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥१॥

भा०—(उशन्तीः) कामनाशील स्त्रियें (उशन्तं पतिं न) अपने कामना युक्त पति को जैसे (उप प्र जिन्वन्) प्राप्त होकर उसे प्रसन्न करती हैं वैसे ही (सनीळाः) एक ही देश में रहने वाली (जनयः) प्रजाएं (उशतीः) प्रेमपूर्वक (उशन्तं पतिम्) अपने प्रति प्रेम करने वाले पालक राजा को (उप प्र जिन्वन्) प्राप्त होकर उसे अच्छी प्रकार समृद्ध करें। (गावः) किरणें जैसे (उच्छन्तीम्) अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई (श्यावीम्) कुछ कुछ अन्धकार से अन्धियारी, (अरुषीम्) कुछ २ ललाई लिए हुए (उषसम् न) उषःकाल को प्राप्त होती हैं वैसे ही (स्वसारः) स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाली (गावः) भूमियें, उनके निवासी प्रजागण या विद्वान् जन (श्यावीम्) ज्ञान से सम्पन्न, आगे बढ़ने वाले (अरुषीम्) तेजस्वी (चित्रम्) संग्रह योग्य अद्भुत ऐश्वर्य को (उच्छन्तीम्) प्रकट करने वाले (उषसम्) शत्रुओं को जला डालने वाले, राजा या विद्वत्सभा को (अजुषन्) प्राप्त हों।

वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥२॥

भा०—(पितरः) विश्व का पालन करने वाले (अंगिरसः) वायु गण जैसे (वीलुचित्) बड़े बलवान् , (दृढा) दृढ़ (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्) छिन्न भिन्न कर देते हैं और (अंगिरसः) अग्नि से बलवान् विद्युतें या बारूद की नालें जैसे (रवेण) बड़े गर्जना सहित दृढ़ पर्वत को तोड़ फोड़ देती हैं वैसे ही (पितरः) प्रजापालक (अंगिरसः) ज्ञानी पुरुष और (अंगिरसः) देह में प्राणों के समान देश के रक्षक वीर जन (उक्थैः) ज्ञानोपदेशों से (वीडु दृढाचित्) बड़े वलवान् , दृढ़ (अद्रिम) अभेद्य अज्ञान अन्धकार को और शत्रु गढ़ को (रवेण) बड़े भारी वेदमय श द और घोर गर्जना से (रुजन्) तोड़े, विनाश करे । (उस्राः) किरणें जैसे (केतुम् अहः) सब पदार्थों के ज्ञान कराने वाले प्रकाश को उत्पन्न करते हैं और (स्वः विविदुः) आदित्य को प्राप्त होते हैं वैसे ही (अंगिरसः) विद्वान् पुरुष (बृहतः दिवः) बड़े भारी ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होने के लिये (अस्मे) हमें (गातुम् चक्रुः) मार्ग का उपदेश करें और (उस्राः) अधीन होकर वास करने वाले शिष्यगण (केतुम्) ज्ञानवान् गुरु को (विविदुः) प्राप्त हों ।

दध॑न्नृ॒तं ध॒नय॑न्नस्य धी॒तिमादिद॒र्यो दि॑धि॒ष्वो॒३॒॑ विभृ॑त्राः ।
अतृ॑ष्यन्ती॒रप॑सो य॒न्त्यच्छा॑ दे॒वाञ्जन्म॒ प्रय॑सा व॒र्धय॑न्तीः ॥३॥

भा०—(अर्यः) वैश्यगण जैसे (धनयन्) धन का संग्रह करते हैं, उसकी वृद्धि करते हैं और स्वयं उसका भोग न करके साधु सज्जनों और सन्तानों पर व्यय कर देते हैं वैसे ही (अर्यः) विद्याभिलाषिणी कन्याएं (दिधिष्वः) ज्ञान ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली, (विभृत्राः) विविध उपायों से प्रजाओं का भरण पोषण करने में कुशल होकर (ऋतम्) वेद ज्ञान को (दधन्) धारण करें । (धनयन्) धन का लाभ करें या उसे धन के समान सञ्चय करें और (आत् इत्) बाद में भी (धीतिम्) उसका अध्ययन, चिन्तन, स्मरण और पोषण करें । वे (अतृष्यन्तीः) लोलुपता से धन का लोभ न करतीं हुई (अच्छ) अच्छी प्रकार

(देवान्) विद्वान् पुरुषों को और (जन्म) अपने से उत्पन्न हुए पुरुषों को (प्रयसा) उत्तम ज्ञान और अन्न से (वर्धयन्तीः) बढ़ाती हुईं (अपसः) उत्तम कर्मों को (यन्ति) प्राप्त हों।

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय ॥४॥

भा०— यत्) जैसे (विभृतः) विशेष बल को धारण करने वाला (मातरिश्वा) वायु (ईम्) इस अग्नि को (मथीत्) मथता है, नाना प्रकार से तेज करता है, तब वह (गृहे गृहे) घर २ में (श्येतः) शुभ्रवर्ण का होकर (जेन्यः) प्रकट होता, प्रकाशित होता है। तभी वह (भृगवाणः) भूनने वाला तीव्र अग्नि के रूप में होकर (दूत्यं आविवाय) ताप क्रिया को प्रकट करता है। वैसे ही (विभृतः) विशेष रूप से धारित और पोषित (मातरिश्वा) पृथिवी पर वेग से प्रयाण करने वाला राजा (ईम्) इस नायक को (मथीत्) मथे अर्थात् संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा जो सबसे अधिक उत्तम सिद्धि हो उसको अग्रणी सेनापति बनावे। वह (गृहे गृहे) प्रत्येक स्वीकार करने, प्रजा और देश को अपने वश करने के अधिकार पर (श्येतः) प्रबल और सम्पन्न होकर (जेन्यः) विजयशील (भूत्) हो। (आत् इम्) अनन्तर (भृगवाणः) सब पदार्थों को भून देने वाले अग्नि के समान शत्रुओं को पीड़ित करने में समर्थ होकर राजा (ईम्) उस नायक को (सचा सन्) समवाय बल से प्राप्त होकर (सहीयसे राज्ञे न) राजा के समान प्रबल राष्ट्र के विजय के (दूत्यम्) दूत अर्थात् अपने प्रतिनिधि के कार्य पर (आ विवाय) स्थापित करे।

महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान्।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥५॥

भा०— मनुष्य (यत्) जब (महे पित्रे) सबसे बड़े पालक परमेश्वर

के (दिवे) ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने के लिए (ईम्) प्राप्त करने योग्य साक्षात् (रसम्) रस रूप आत्मानन्द का (कः) सम्पादन करता है तब वह (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (पृशन्यः) परमेश्वर को स्पर्श करता हुआ योगाभ्यास द्वारा आनन्द लेता हुआ (अवत्सरत्) बन्धन से मुक्त हो जाता है। (अस्ता) धनुर्धर जैसे (धृषता) प्रगल्भता से बाण फेंकता है वैसे ही (अस्ता) कर्मबन्धनों को दूर फेंकने हारा (धृषता) बाधक कारणों को पराजित करने वाले सामर्थ्य से (अस्मै) साधक के इस हित के लिए (दिद्युम्) अज्ञान नाशक प्रकाश को (सृजत्) प्रदान करता है, (देवः) सूर्य जैसे (दुहितरि) अपनी कन्या के समान उषा में (त्विषिम् धात्) कान्ति को धारण कराता है और (देवः दुहितरि) कामनावान् पति अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली अपनी भार्या में (त्विषिं धात्) तेज अर्थात् वीर्य को धारण कराता है वैसे ही (देवः) दानशील ज्ञानों का प्रकाशक परमेश्वर या प्रकाश का द्रष्टा आत्मा (स्वायाम्) अपनी (दुहितरि) कन्या के समान अपने ही से उत्पन्न होने वाली चिति शक्ति में (त्विषिम्) दीप्ति को (धात्) धारण कराता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे आचार्य ! (तुभ्यम्) तुझे प्रसन्न करने के लिये (यः) जो पुरुष (स्वे दमे) अपने घर में या अपने इन्द्रियों के दमन कार्य में (आ विभाति) सब प्रकार से विशेष तेजस्वी होकर सूर्य समान चमकता है, (अनु द्यून्) प्रति दिन (उषतः) देव और आचार्य के लिये (नमः) आदर और अन्नादि पदार्थ (वा) भी (दाशात्) देता है हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आचार्य ! परमेश्वर ! तू (द्विबर्हाः) विद्या और शिक्षा से बढ़ाने हारा होकर (अस्य) इस शिष्य या साधक के (वयः) ज्ञान, बल और आयु को (वर्धः) बढ़ा और तू (यं) जिस (सरथम्) रथवान्, देहवान्,

आत्मवान् या आनन्द रस से युक्त पुरुष को (जुनासि) सन्मार्ग पर चलाता है वह (राया यासत्) ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है ।

अ॒ग्निं विश्वा॑ अ॒भि पृक्षः॑ सचन्ते समु॒द्रं न स्र॒वतः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ।
न जा॒मिभि॒र्वि चि॑कि॒ते वयो॑ नो वि॒दा दे॒वेषु॒ प्रम॑तिं चिकि॒त्वान् ॥७

भा०—(स्रवतः) झरने वाली (सप्त) देशों में सर्पण करने वाली, बहती (यह्वीः) बड़ी २ नदियां (समुद्रम् न) जैसे समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे ही (विश्वाः) समस्त (पृक्षः) विद्याभिलाषी जन (अग्निम्) ज्ञानवान् आचार्य को (अभि सचन्ते) प्राप्त करते हैं और (विश्वा पृक्षः) परस्पर सहयोग से मिलकर एक हुई समस्त सेनाएं और संगठित प्रजाएं (अग्निं) नायक और सेनापति का (अभि सचन्ते) आश्रय लेती हैं । (नः) हमारा (वयः) सेना बल और अन्नादि ऐश्वर्य (जामिभिः) बन्धुओं द्वारा (न) नहीं (विचिकिते) जाना जाय (चिकित्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजयी पुरुषों के द्वारा उनके बल पर (नः) हमें (प्रमतिम्) उत्तम ज्ञान और स्तम्भन बल (विदाः) प्राप्त करावें ।

आ यदि॒षे नृ॒पतिं॒ तेज॒ आन॒ट् छुचि॒ रेतो॒ निषि॑क्तं॒ द्यौर॒भीके॑ ।
अ॒ग्निः शर्ध॑मनव॒द्यं युवा॑नं स्वा॒ध्यं॑ जनयत्सू॒दय॑च्च ॥८॥

भा०—(यत् तेजः) जो तेज या ओज, आग्नेय तत्व, (नृपतिम्) शरीर में जीवन के रक्षा करनेवाले या प्राणों के पालन करनेवाले पुरुष को (इषे) अन्न खाने पचाने तथा कामना और संकल्प करने के लिये (आ आनट्) प्राप्त होता है वही (शुचि) अति शुद्ध (रेतः) वीर्य (अभीके) स्त्री-पुरुष के परस्पर संग काल में (निषिक्तम्) गर्भ में स्थापित किया जाता है । तभी (द्यौः) सूर्य के समान (अग्निः) अग्नि के समान कामना से युक्त पुरुष (शर्धम्) वीर्यवान् (अनवद्यम) दोष रहित (युवानं) युवा होने वाले (स्वाध्यम्) उत्तम गुणों और कर्मों को धारण करने वाले पुत्र

को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत्) सबको उत्तम मार्ग में प्रेरित करता है ।

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥९॥

भा०—(यः) जो राजा और विद्वान् (मनः) मन के समान तीव्र होकर (एकः) अकेला (सद्यः) शीघ्र ही (अध्वनः) युद्ध के मार्ग के समान इस संसार के आवागमन के मार्ग को भी (एति) पार कर जाता है और जो दूसरा (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (सत्रा) एक ही साथ सत्य गुणों और (वस्वः) ऐश्वर्यों का (ईशे) स्वामी हो जाता है, वे दोनों (मित्रावरुणा) शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र में रहते हुए ज्ञानवान् ब्राह्मण और दुष्टों का वारक क्षत्रिय दोनों (राजाना) गुणों से प्रकाशमान् मन्त्री और राजा, (सुपाणी) उत्तम बलवान् बाहुओं वाले (गोषु) गौओं से (प्रियम् अमृतम्) तृप्तिकारी दुग्ध रस के समान (गोषु) विद्वानों और प्राणों में प्रिय, आत्मज्ञान या आत्मतत्व के समान (गोषु) भूमियों और प्रजाओं में (प्रियम्) सबको तृप्त करने वाले (अमृतम्) जल और अन्न की (रक्षमाणा) रक्षा करते हुए रहें ।

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१०।१६॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमारे (पित्र्याणि) पितामह आदि से चले आये (सख्या) मैत्री भावों को (मा प्रमर्षिष्ठाः) नष्ट मत होने दे । तू (कविः) विद्वान् और (विदुः) सब पदार्थों का ज्ञाता होकर (अभिसन्) सदा हमारे सन्मुख रह । (जरिमा) बुढ़ापा (रूपं) इस रूप को (नभः न) जल के समान या मेघखण्ड के समान (मिनाति) नाश कर देता है (तस्याः अभिशस्तेः) संकट या मृत्यु के (पुरा) पहले ही

तू हमें (अधि-इहि) ज्ञान प्रदान कर अर्थात् जीवनमुक्त कर। इति षोडशो वर्गः ॥

[७२] पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १, २, ५, ६, ९ विराट्। ७ निचृत्। ३, ८ एकोना विराट् त्रिष्टुप्। भुरिक्पंक्तिर्वा।

नि काव्या॑ वे॒धसः॒ शश्व॑तस्क॒र्हस्ते॒ दधा॑नो॒ नर्या॑ पु॒रूणि॑।
अ॒ग्निर्भु॑वद्रयि॒पती॑ रयी॒णां स॒त्रा च॑क्रा॒णो अ॒मृता॑नि॒ विश्वा॑ ॥१॥

भा०—जो पुरुष (शश्वतः) अनादि (वेधसः) सनातन जगत् के विधाता परमेश्वर के (काव्या) विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों का (नि कः) अच्छी प्रकार अभ्यास करता है वह (नर्या) मनुष्यों के हितकारी (पुरूणि) बहुत से ज्ञानों को (हस्ते) अपने वश में (दधानः) रखता हुआ (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (विश्वा) समस्त (अमृतानि) जलों के समान जीवन प्रद, अन्नों के समान सुखप्रद अमृत, आत्म ज्ञानों को और (सत्रा) नित्य सत्यार्थ प्रतिपादन करने वाले वेद ज्ञानों को (चक्राणः) अपने आत्मा में प्रकाशित करता हुआ (रयीणाम्) सब ऐश्वर्यों का (रयिपतिः) स्वामी (भुवत्) हो जाता है।

अ॒स्मे व॒त्सं परि॒ षन्तं॒ न वि॑न्दन्नि॒च्छन्तो॒ विश्वे॑ अ॒मृता॒ अमू॑राः।
श्र॒म॒युवः॑ पद॒व्यो॑ धिय॒न्धास्त॒स्थुः प॒दे प॑र॒मे चार्व॒ग्नेः ॥२॥

भा०—(अस्मे) हममें से (वत्सं) सबमें व्यापक होकर बसने वाले (परि सन्तं) सबके ऊपर विद्यमान प्रभु को (इच्छन्तः) चाहते हुए भी (विश्वे) सब कोई उसे (न विन्दन्) नहीं पाते। प्रत्युत (अमूराः) मोह रहित (श्रमयुवः) श्रमशील (पदव्यः) परम पद को प्राप्त कराने वाले (धियं-धाः) ज्ञान और कर्म के धारक (अमृताः) अमर जीव, सूक्ष्म जल जैसे सूर्य के किरणों द्वारा आकाश में चले जाते हैं वैसे ही (अग्नेः) उस

ज्ञानमय प्रभु के (परमे पदे) परम प्राप्तव्य स्वरूप मोक्ष में (तस्थुः) विराजते हैं ।

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! आचार्य ! राजन् ! (यत्) जो (शुचयः) शुद्ध पवित्र होकर (शुचिम्) शुद्ध पवित्र (त्वाम्) तुझको (तिस्रः शरदः) तीन वर्षों तक (सपर्यान्) सेवन करे, तेरा ही सत्संग करे वे (सुजाताः) उत्तम क्रिया कुशल और आवरणीय, उत्तम चरित्रवान् पुरुष (यज्ञियानि) यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना, प्रार्थना तथा उत्तम श्रेष्ठ कर्मों के अनुसार ही समस्त व्यवहारों और (नामानि) उत्तम नामों को भी (दधिरे) धारण करें और वे (घृतेन) जल से (तन्वः) अपने देहों को (असूदयन्त) स्नान करावें, गुरुओं के पास विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये तीन वर्ष उनका सत्संग करके निष्णात हों ।

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४॥

भा०—(रुद्रियाः) मरण समय में प्राणियों को रुलाने वाले, प्राणों के साधक अर्थात् उनको वश करने वाले (वेविदानाः) निरन्तर ज्ञान सम्पादन करने वाले, (यज्ञियासः) परमेश्वर के उपासक विद्वान् जन (बृहते रोदसी) बड़े २ भारी सूर्य और पृथिवी के समान देह में स्थित प्राण और अपान, भूमि और राज्य या विद्या और कर्म दोनों को (प्र जभ्रिरे) उत्तम रीति से धारण करते और पुष्ट करते हैं । (चिकित्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (नेमधिता) समस्त प्राप्त शक्तियों को धारण करता हुआ (परमे) सर्वोच्च (पदे) प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में (तस्थिवांसम्) स्थित (अग्निम्) परमेश्वर का (विदत्) साक्षात् करे ।

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥५॥१७

भा०—हे आचार्य ! विद्वन् ! (संजानानाः) अच्छी प्रकार परस्पर जानने हारे जैसे (अभिज्ञु) गोडे समेट करके सभ्यता से बैठते हैं वैसे ही शिष्यगण गुरुजन के समीप (उपसीदन्) बैठें और साधन जन भी वैसे ही आसन लगा कर ईश्वरोपासना के लिए बैठें । (पत्नीवन्तः) गृहपत्नियों से युक्त गृहस्थजन भी (नमस्यं) नमस्कार और आदर सत्कार योग्य पुरुष को (नमस्यन्) नमस्कार और आदर सत्कार करें । (सख्युः) मित्र के लिये जैसे (सखा) मित्र (निमिषि) उसके देखते ही अपने शरीर तक को आलिंगन आदि द्वारा त्याग देता है वैसे ही (रक्षमाणः) परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुए आप लोग (निमिषि) स्पर्द्धा पूर्वक एक दूसरे के ज्ञान और बल की वृद्धि में (स्वाः) अपने (तन्वः) शरीरों तक को भी (रिरिक्वांसः) परित्याग कर दो । इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूँश्च स्थातॄँश्चरथं च पाहि ॥६॥

भा०(यज्ञियासः) परमेश्वर की उपासना में कुशल पुरुष (यत्) जिन (त्रिः सप्त) २१ (पदा) ज्ञान करने योग्य (गुह्यानि) गुहा अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य तत्वों का (अविदन्) साक्षात् ज्ञान करते हैं वे सब (त्वे इत् निहिता) तुझमें ही स्थित हैं । (तेभिः) उन इक्कीसों के द्वारा (सजोषाः) समान आश्रय पर स्थित, समान रूप से एक ही को सेवन या प्रेम करने वाले मित्र के समान प्रेम से (अमृतं) अमृत, आत्म-तत्त्व की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं । हे प्रभो ! तू विद्वान् जन (पशून्) पशुओं के समान मूर्ख जनों को और (स्थातॄन्) स्थावर वृक्ष और भूमि आदि लोकों को और (चरथम् च) अन्य समस्त जंगम प्राणिसमूह को

(पाहि) पालन कर । पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, आत्मा और परमात्मा ये २१ तत्त्व हैं ।

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥७॥

भा०—(अग्ने) राजन् ! ईश्वर ! तू (वयुनानि) समस्त जानने योग्य पदार्थों और ज्ञानों को (विद्वान्) जानता हुआ (क्षितीनां) प्रजाओं के (जीवसे) जीवन धारण करने के लिए (शुरुधः) दुःखदायी, अज्ञान, क्षुधा, पीड़ा आदि रोकने वाले अन्नादि ओषधियों और उपायों को (आनुषक्) निरन्तर उनके स्वभाव के अनुकूल (विधाः) विविध प्रकार से रचता और प्रदान करता है और (अन्तः) आत्मा के भीतर समस्त तत्त्वों को (विद्वान्) जानता हुआ तू (अतन्द्रः) आलस्य रहित होकर (देवयानान् अध्वनः) विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मोक्ष मार्गों को (विधाः) नाना प्रकार से विधान या उपदेश कर । तू (हविर्वाट्) ग्राह्य ज्ञानों को प्राप्त कराने हारा, (दूतः) सबको ज्ञानवाणी का संदेश सुनाने हारा (अभवः) हो ।

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥८॥

भा०—(स्वाध्यः) उत्तम रीति से आत्मचिंतन करने वाले (ऋतज्ञाः) वेदवेत्ता पुरुष, (सप्त यह्वीः) सातों इन बड़े प्राणों को (दिवः) मूर्धा स्थान के या ज्ञान प्रकाशक (रायः) ज्ञानैश्वर्य के (द्वारः) सात द्वार ही (वि अजानन्) जानते हैं । (सरमा) बोध कराने वाली बुद्धि (गव्यम्) इन्द्रियों में होने वाले (दृढम्) दृढ़ (ऊर्वं) बल को (विदत्) प्राप्त करती है जिससे (मानुषी विट्) मानुष प्रजा (कं नु भोजते) सुख प्राप्त करती है । राष्ट्रपक्ष में—(यह्वीः सप्त दुरः) स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सुहृत्, कोष और बल इन सातों को विद्वान् जन ऐश्वर्य का द्वार जानें । (सरमा)

अपने आक्रमण से शत्रु का नाश करने वाली सेना (गव्यम् दृढम् ऊर्वम्) पृथ्वी के शासन करने वाले प्रबल शत्रु नाशक बल को प्राप्त करती है और (येन) जिससे मानुष प्रजा भी सुख और अन्नैश्वर्य का भोग करती है। अथवा—(सप्त यह्वीः) पूर्वोक्त ७ अथवा वेद और उनके ६ अंग इन सातों को वेदज्ञ पुरुष ऐश्वर्यों का द्वार जानते हैं।

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥९॥

भा०—(ये) जो विद्वान् (सु-अपत्यानि) अपनी उत्तम सन्तानों को (कृण्वानासः) उत्पन्न कर सुशिक्षित कर चुकते हैं वे (अमृतत्वाय) अमरपद ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए (गातुम्) मोक्षमार्ग का (आतस्थुः) आश्रय लेवें। (माता पुत्रैः) माता जैसे अपने पुत्रों सहित विराजती है वैसे ही (पृथिवी) समस्त पृथिवी (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्य वाली होकर (मरुद्भिः) अपने सामर्थ्यों से (वेः) कर्मफलों के भोक्ता या देह से देहान्तर में जाने वाले आत्मा, जीवगण के (धायसे) धारण पोषण के लिए (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (वितस्थे) विविध रूपों से स्थित होती है अथवा (पृथिवी अदितिः) वह विस्तृत अखण्ड परमेश्वरी शक्ति (वेः) तेजस्वी सूर्य के समान मुमुक्षु को (मह्ना धायसे) महान् सामर्थ्य और आनन्द रस से धारण पोषण के लिए (महद्भिः पुत्रैः माता इव) बड़े बड़े पुत्रों से माता के समान (वितस्थे) विशेष रूप से स्थित रहती है।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥१८

भा०—(ये) जो (अमृताः) मरणभय से रहित, मुमुक्षु या मुक्त जन (अक्षी) बाह्य और आभ्यन्तर दोनों चक्षु या इन्द्रियों को (दिवः) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त (अकृण्वन्) कर लेते हैं वे (अस्मिन्) इस

परमेश्वर के आश्रय में (चारुम् श्रियम्) उत्तम शोभा को (अधि निदधुः) धारण करते हैं। (सृष्टाः सिन्धवः) मेघ से गिरती जलधाराएं जैसे (नीचीः) नीचे की ओर बह आती हैं हे (अग्ने) विद्वन्! हे ईश्वर! (अध) वैसे ही साधकों की पूर्वोक्त दशा में भी (सिन्धवः) रसधाराएं (नीचीः) साक्षात् (क्षरन्ति) स्रवित हों। (अरुषीः) ज्योतिष्मती, प्रजाओं को (प्र अजानन्) जानें या साक्षात् करें।

[७३] पराशर शाक्त्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्द—त्रिष्टुप्। १, २, ४, ५, ७, ६, १० निचृत्। ८ एकोना विराट्। दशर्चं सूक्तम्॥

र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शा॒सुः।
स्यो॒न॒शीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत्॥१॥

भा०—(पितृवित्तः) पिता से प्राप्त (रयिः न) धन जैसे (वयो धाः) सन्तान को सुखमय जीवन देता है वैसे ही विद्वान् और राजा भी (पितृवित्तः) आचार्यादि पालक जनों से सुशिक्षित, उत्तम शासकों द्वारा स्वीकृत होकर (वयोधाः) बल तथा दीर्घायु धारण करे। (चिकितुषः) वह ज्ञानवान् शासक के (सुप्रणीतिः शासुः न) उत्तम रीति से प्रयोग किये गये शासन आदेश के समान (सुप्रणीतिः) उत्तम मार्ग पर ले जाने वाला और (शासुः) सर्व शास्त्रों का उपदेष्टा हो। वह (स्योनशीः) सुख से शयन करनेहारे (अतिथिः न) अतिथि के समान (स्योन-शीः) सुखजनक पुरुषार्थों में स्थित हो। वह (होता इव) दाता के समान (प्रीणानः) प्रसन्न और सबको सुखी करनेहारा हो। वह विद्वान्, राजा (विधतः) विशेष काम या राजसेवा करनेवाले पुरुष को (सद्म) आश्रय व रहने का घर (वितारीत्) देवे।

दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑।
पु॒रु॒प्र॒श॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत्॥२॥

भा०—(यः) जो (सविता) सबका आज्ञापक (देवः न) सूर्य के समान सत्य का प्रकाशक (सत्यसन्मा) यथार्थ ज्ञान का दाता और सज्जनों का हितचिन्तक होकर (क्त्वा) अपने कर्म और ज्ञान द्वारा (विश्वा) समस्त (वृजनानि) शत्रु और बाधक विघ्नों के वर्जन करने में समर्थ सैन्य-बलों को (निपाति) सब प्रकार से सुखी रखता है, वह राजा और विद्वान् पुरुष ही (पुरु प्रशस्तः) बहुत सी प्रजा द्वारा प्रशंसा योग्य (अमतिः न) तेजस्वी, दीपक आदि के समान (सत्यः) तत्व का दर्शानेवाला और (आत्मा इव) आत्मा के समान (शेवः) सुखप्रद एवं सेवा योग्य और (दिधिषाय्यः) राष्ट्र के समस्त अंगों और प्रजाओं को धारण पोषण करने में समर्थ (भूत्) हो।

दे॒वो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टे॒व नारी॑ ॥३॥

भा०—(यः) जो (देवः) सर्वप्रकाशक, मेघ और सूर्य के समान (विश्वधायाः) समस्त विश्व और जीवगण का धारण पोषण करनेहारा है, जो (हितमित्रः) जलांशों को अपने भीतर धारण करनेवाले सूर्य के समान हितकारी मित्रों से युक्त राजा (पृथिवीम् उपक्षेति) भूमि पर सुख से निवास करता है। (शर्मसदः) एक ही शरण या आश्रय स्थान में रहने वाले (वीराः न) वीरगण जैसे प्रेम से रहते हैं वैसे ही जिस राजा के अधीन (पुरः सदः) पुरों में रहने वाले प्रजागण तथा (पुरः सदः) आगे बढ़कर शत्रु पर टूट पड़नेवाले या उच्च पदों पर स्थित नायकगण भी (शर्मसदः) एक वृत्तिदाता के आश्रय रहते हुए (वीराः) शत्रुओं को विविध रीति से उखाड़नेहारे हों। (नारी) स्त्री जैसे (अनवद्या) बुरे लक्षणों और पापों से रहित (पतिजुष्टा इव) पति के प्रति प्रेम से बद्ध होकर रहती हुई कभी उसके विपरीत नहीं होती वैसे ही (नारी) नायकगणों से बनी हुई प्रजा या सेना भी (पतिजुष्टा) अपने पालक राजा या सेनापति को प्रेम करनेहारी होकर (अनवद्या) पापाचारों से रहित हो।

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (नरः) लोग जैसे (दमे) अपने शासन कार्य या देहरूप गृह में (नित्यम् इद्धम् सचन्ते) नित्य प्रज्वलित अग्नि को पाक आदि कार्यों में सेवन करते, उसको प्रयोग में लाते हैं और जैसे (नरः) प्राणगण (नित्यम्) नित्य आत्मा को (दमे) अपने शासन कार्य या देहरूप गृह में (इद्धम् सचन्ते) जीवित जागृत आत्मा का आश्रय लिए रहते हैं और जैसे (नरः) लोग (दमे) अपने गृहों में (नित्य) निरन्तर (इद्धम्) ज्ञान से दीप्त विद्वान् पुरुष की सेवा करते हैं वैसे ही (ध्रुवासु क्षितिषु) इन अचल भूमियों में (नरः) नायकगण (दमे) दमन या शासन कार्य में नियुक्त होकर (नित्यम्) चिरस्थायी (इद्धम्) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी राजा को (सचन्त) प्राप्त हों, उसका आश्रय लें और (अस्मिन्) इस अपने राजा में उसके अधीन ही (भूरि) बहुत अधिक (द्युम्नं) यश, तेज और ज्ञान (निदधुः) प्राप्त करें। हे राजन् ! ईश्वर ! तू (विश्वायुः) सबको जीवन देनेवाला, सब प्रजागण का स्वामी, सबको प्रेम से प्राप्त होने वाला और (धरुणः) सबका पालक होकर (रयीणाम्) ऐश्वर्यों का दाता (भव) हो।

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥५॥१९॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! राजन् ! (मघवानः) धनाढ्य लोग (ददतः) दान करते हुए ही (पृक्षः) खूब जलादि से परिसेचित और परिवर्धित बल और वीर्य के देने वाले अन्नों को और (विश्वम् आयुः) समस्त आयु को (वि अश्युः) विविध प्रकारों से भोग करें। (सूरयः) सूर्य-किरणों के समान ज्ञानवान्, विद्वान्जन (पृक्षः) सुख को सेचन करने वाले ज्ञानों को (ददतः) देते हुए ही (विश्वम् आयुः वि अश्युः)

पूर्ण आयु का विशेष रूप से भोग करें और (समिथेषु) ज्ञान प्राप्ति के निमित्त एकत्र होने के अवसरों पर (अर्यः) स्वामी या ज्ञानी के (भागं वाजं) सेवने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें और (समिथेषु) संग्रामों में (अर्यः भागं वाजं) शत्रुगण के भोग योग्य ऐश्वर्यों को (देवेषु) विद्वानों और वीर पुरुषों में (श्रवसे) उनकी रक्षा के लिए परितोषिक रूप में (भागं) उनके भाग को (दधानाः) देते हुए (सनेम) हम उन वीरों और विद्वानों को प्राप्त करें ।

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६॥

भा०—(वावशानाः) बछड़ों को प्रेम से चाहती हुई (स्मदूध्नीः) बड़े स्तनमण्डलों वाली (द्युभक्ताः) स्वच्छ अन्न खाने वाली (धेनवः) गौएं जैसे (ऋतस्य) दूध का (पीपयन्त) पान कराती हैं वैसे ही (द्युभक्ताः) ज्ञान प्रकाश का सेवन कराने वाले (धेनवः) ज्ञानरस का पान कराने में कुशल, (वावशानाः) उपदेश करते हुए विद्वान् लोगों को (ऋतस्य) सत्यज्ञान, सत् व्यवस्था शासन का (पीपयन्त) पान करावें। जैसे (सिन्धवः) नदियें और जलधाराएं (अद्रिम् समया) मेघ या पर्वत से निकल कर (परावतः) दूर दूर देशों तक (वि सस्रुः) विविध दिशाओं में बह जाती हैं वैसे ही (सिन्धवः) ज्ञान के सागर एवं प्रजाओं को प्रेमसूत्र में बांधने वाले नायकगण (अद्रिम् समया) कभी भी खण्डित न होने वाले परमेश्वर, राजा का आश्रय लेकर (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान और (भिक्षमाणाः) अन्नमात्र की याचना या प्राप्ति करते हुए (परावतः) दूर २ देशों तक (वि सस्रुः) जावें और (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान को विस्तृत करें।

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! (त्वे) तेरे अधीन ही (यज्ञियासः) अध्यनाध्यापन या ज्ञान का आदान प्रदान करने हारे ! गुरु, शिष्यजन, अथवा ईश्वर के उपासक (दिवि) सूर्य के समान तेजस्वी तुझ गुरु के अधीन रहकर (सुमतिम्) उत्तम ज्ञान और अन्न की (भिक्षमाणाः) याचना करते हुए (श्रवः) उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान और अन्न को (दधिरे) धारण करें और वे (नक्ता च उषसा च) रात और दिन उनके समान ही (विरूपे) विपरीत स्वरूप वाले (कृष्णं अरुणं च वर्णम्) कृष्ण और अरुण वर्ण को धारण करें अर्थात् रात और दिन जैसे क्रम से अन्धकार और प्रकाश को धारण करते हैं वैसे ही शिष्य और गुरुजन भी 'कृष्ण' मृगछाला और 'अरुण' काषाय वस्त्र धारण करें।

यान्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! ईश्वर ! (यान्) जिन (सुसूदः) उत्तम दृढ़, नश्वर देहों से युक्त (मर्त्तान्) पुरुषों को (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (सिसक्षि) एकत्र कर उनको संघटित करता है (ते) वे और (वयम्) हम प्रजाजन भी (ते) तेरे अधीन रहकर (मघवानः) ऐश्वर्यवान् (स्याम) हों। तू (विश्वम् भुवनम्) समस्त संसार (रोदसी) आकाश और भूमि तथा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी (आपप्रिवान्) सब तरह से पूर्ण करता हुआ (छाया इव) छाया के समान उनके भीतर व्याप्त है।

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥९॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! सेनापते ! राजन् ! (त्वा उताः) तेरे से सुरक्षित हम (अर्वद्भिः) अश्वों, अश्वारोहियों से (अर्वतः) अश्वों, अश्वारोहियों को, (नृभिः नॄन्) नायकों से नायकों को और (वीरैः वीरान्) वीरों से

वीरों को (आ वनुयाम) प्राप्त हों और युद्ध में अश्वारोही, नायक और पैदल वीरों से शत्रु के अश्वारोहियों, नायकों और पैदल वीरों का (वनुयाम) विनाश करें। हम (पितृवित्तस्य) अपने पिता, पितामह और गुरुजनों द्वारा प्राप्त (रायः) ऐश्वर्य के (ईशानासः) स्वामी हों और (नः) हमारे (सूरयः) विद्वान् (शतहिमाः) सौ वर्षों तक दीर्घजीवी होकर उस ऐश्वर्य का (वि अश्युः) विविध प्रकार से भोग करें।

एता ते॑ अग्न उ॒चथा॑नि वेधो॒ जुष्टा॑नि सन्तु॒ मन॑से हृ॒दे च॑।
श॒केम॑ रा॒यः सु॒धुरो॑ य॒मं तेऽधि॒ श्रवो॑ दे॒वभ॑क्तं॒ दधा॑नाः १०।२०।१२।

भा०—हे (वेधः) समस्त शासन-विधानों के विधातः विद्वन् और परमेश्वर ! हे (अग्ने) नायक ! ज्ञानवन् ! (ते) तेरे (एता) ये नाना (उचथानि) ज्ञानमय वचन (मनसे) मन और (हृदे) हृदय या आत्मा को (जुष्टानि) प्रिय लगें। हम लोग (सुधुरः) धुरा के समान उत्तम रीति से कार्यभार को उठाने में समर्थ होकर (ते) तेरे अधीन (देवभक्तं) विद्वानों और वीरों से सेवन योग्य (श्रवः) ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य को (दधानाः) धारण करते हुए (रायः) राज्य आदि ऐश्वर्यों का (यमं) संयमन अर्थात् प्रबन्ध करने में (अधिशकेम) अच्छी प्रकार समर्थ हों। इति विंशो वर्गः ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः ॥

[७४] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्री। १, २, ४, ६ निचृत्। १ पिपीलिकामध्या। ७ विराट्। ८ द्व्यूना विराट्। व्यूहेनं वा गायत्री ॥

नवर्चं सूक्तम् ॥

उ॒प॒प्र॒यन्तो॑ अध्व॒रं मन्त्रं॑ वोचेमा॒ग्नये॑। आ॒रे अ॒स्मे च॑ शृण्व॒ते ॥१॥

भा०—हम लोग (उप प्रयन्तः) समीप प्राप्त होते हुए अर्थात् प्रभु की उपासना करते हुए (आरे) दूर (च) और समीप (शृण्वते) हमारी प्रार्थनाओं को श्रवण करने वाले (अग्नये) परमेश्वर की स्तुति के लिए

(अध्वरम्) हिंसा या पीड़ा से रहित (मन्त्रम्) वेदमन्त्रों का (वोचेम) उच्चारण और मनन करें ।

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२

भा०—(यः) जो ईश्वर (स्नीहितीषु) स्नेह करने वाली (संजग्मानासु) अतएव परस्पर प्रेमभाव से सत्संग करने वाली (कृष्टिषु) प्रजाओं में (पूर्व्यः) सदा पूर्व उत्पन्न शिक्षित विद्वानों द्वारा अपने आगे आने वालों के प्रति साक्षात् उपदेश करने योग्य है और जो (दाशुषे) अन्यों को विद्या आदि को देने वाले तथा अपने आपको ईश्वर के प्रति समर्पण करने वाले उपासक के (गयम्) धनैश्वर्य और प्राण जीवन की भी (अरक्षत्) रक्षा करता है उसी की उपासना की जाय ।

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥३॥

भा०—(उत) और (जन्तवः) समस्त प्राणी (ब्रुवन्तु) उसकी स्तुति और प्रवचन करें कि (धनंजयः) ऐश्वर्य के लिए विजय प्राप्त करने वाला (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर और राजा (वृत्रहा) विघ्नों का और बढ़ते हुए शत्रुओं का नाशक होकर (रणेरणे) प्रत्येक युद्ध तथा प्रत्येक रमण योग्य आनन्दप्रद अवसरों में (उत् अजनि) सबसे उत्तम पद पर विराजे ।

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ४

भा०—हे विद्वन् ! तू (यस्य क्षये) जिसके घर में (दूतः असि) मार्गदर्शक होकर ज्ञान का संदेश श्रवण कराने हारा होता है और (हव्यानि) अन्नों को (वीतये) खाने के लिए (वेषि) जावे वह तू उसके लिए (दस्मत्) सब दुःखों के नाश करने वाले (अध्वरम्) सुखदायी, ज्ञानोपदेश और यज्ञोपासना (कृणोषि) कर ।

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ५ २१

भा०—हे (अङ्गिरः) समस्त देह के अवयवों में प्राण के समान समस्त ब्रह्माण्ड में शक्तिरूप में व्यापक ! हे (सहसः यहो) शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले प्रभो ! (जनाः) विद्वान् लोग (तम् इत्) उस तुझको ही (सुहव्यम्) उत्तम स्तुति योग्य (सुदेवम्) उत्तम दानी, ज्ञानप्रकाशक, द्रष्टा तथा (सुबर्हिषम्) उत्तम ज्ञान, बल और आश्रय वाला (आहुः) बतलाते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥

आ च॒ वहा॑सि॒ ताँ इ॒ह दे॒वाँ उप॒ प्रश॑स्तये । ह॒व्या सु॑श्चन्द्र वी॒तये॑ ॥६

भा०—हे (सुश्चन्द्र) उत्तम रीति से सबको आह्लादित करने हारे ! तू (इह) इस राष्ट्र या गृह पर (तान्) उन नाना (देवान्) ज्ञान के द्रष्टा और उपदेष्टा पुरुषों को (प्रशस्तये) उत्तम रीति से ज्ञानोपदेश करने और (हव्या) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों के (वीतये) प्रकाश करने अन्नों की रक्षा और खाने के लिये (उप आवह) प्राप्त करा ।

न योरु॑प॒ब्दिरश्व्यः॑ शृ॒ण्वे रथ॑स्य॒ कच्च॒न । यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ॥७

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! (यत्) जब तू (दूत्यम्) उपासना के कर्म को (यासि) प्राप्त होता है अर्थात् उपासना किया जाता है तब (योः) सब दुःखों के दूर करने वाले (रथस्य) रस स्वरूप तेरा (उपब्दिः) अति समीप होकर प्राप्त करने योग्य अज्ञान का नाशक और भक्तों का पालक (अश्व्यः) भोक्ता आत्मा का हितकारी शब्द (कच्चन) क्या (न शृण्वे) नहीं सुनाई देता है ? हे (अग्ने) नायक ! (यत् दूत्यम् यासि) जब तू इस अर्थात् शत्रु के पीड़न कार्य पर (उपब्दिः) उनको प्राप्त होकर उनका भेदन करने हारा और (अश्व्यः) अश्वबल में कुशल होकर (यासि) प्रयाण करता है तब (योः रथस्य) जाते हुए रथ का (कत् चित्) क्या (न शृण्वे) शब्द नहीं सुनाई देता है ? देता ही है ।

त्वोतो॑ वा॒ज्य॑ह्र॒यो॒ऽभि पूर्व॑स्मा॒दप॑रः । प्र दा॒श्वाँ अ॑ग्ने अस्थात् ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! (त्वा-उतः) तेरे से संगत और सुरक्षित होकर (वाजी) वेग से जाने हारा (अह्रयः) लज्जा और संकोच से रहित (दाश्वान्) शस्त्रादि फेंकने में कुशल होकर (पूर्वस्मात्) पूर्व अर्थात् मुख्य पद से (अपरः) दूसरा होकर भी (अभि प्र अस्थात्) आगे बढ़े।

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदंग्न विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे ॥६॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (देव) द्रष्टः! दातः! तू (दाशुषे) दान देने हारे या अपने को त्याग देने वाले उपासक और (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों के हित के लिये (बृहत्) बहुत बड़ा (द्युमत्) उत्तम प्रकाशयुक्त (सुवीर्यम्) उत्तम बल या बलवान् वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य (विवाससि) प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[७५] गोतमो राहूगण ऋषिः॥ अग्निर्देवता। छन्दः—आर्षी गायत्री। २, ५ निचृद्। ३ विराड्। ४ एकोना विराड्। पंचर्चं सूक्तम्॥

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥१

भा०—हे विद्वन्! तू (आसनि) मुख में (हव्या) उत्तम भोजन करने योग्य अन्नों को (जुह्वानः) खाता हुआ (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को बहुत अधिक प्रसन्न करने वाले (सप्रथस्तमम्) अति विस्तृत (वचः) वाणी का (जुषस्व) सेवन कर।

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२

भा०—हे (अंगिरस्तम) तेजस्वी पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ (अग्ने) ज्ञानवन्! (वेधस्तम) बुद्धिमान्! (अथ) तेरी अनन्तर जिज्ञासा के निमित्त (ते) तुझे हम (प्रियम्) प्रिय (सानसि) सनातन से चले आये एवं सबको सेवने योग्य (ब्रह्म) वेद ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति का (वोचेम) उपदेश करें।

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३

भा०—शिष्य बनाने के पूर्व आचार्य शिष्य से पूछे—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! शिष्य ! (ते जामिः कः) तेरा कौन बन्धु है ? (कः दाश्वध्वरः) तुझे अन्न वस्त्र देने वाला और तेरा रक्षक कौन है ? (कः ह) तू निश्चय से कह, तू कौन है ? (कस्मिन्) किसके आश्रय पर (श्रितः असि) स्थित है ?

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! परमेश्वर ! (त्वं) तू ही (जनानां जामिः) समस्त जनों का बन्धु है। तू ही (प्रियः मित्रः असि) प्रिय मित्र है। तू (सखिभ्यः) हित मित्र जनों का (ईड्यः) स्तुति योग्य (सखा) सखा है।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥५॥२३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (स्वं दमम्) अपने गृह के और उसके समान इन्द्रियों के दमन कार्य का (यक्षि) अभ्यास कर। (नः) हमारे (मित्रावरुणा) प्राण और अपान को (यज) सुसंगत कर। (बृहत् ऋतम् यज) बड़े भारी वेद ज्ञान को प्राप्त कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७६] १–५ गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता। छन्दः—त्रिष्टुप्। १, ३, ४, ५ निचृत्। २ विराट्। पंचर्चं सूक्तम् ॥

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! (मनसः वराय) संकल्प विकल्प वाले चित्त और ज्ञान को वरण करने, प्राप्त करने या श्रेष्ठ बनाने के लिये (ते) तुझे (का उपेतिः) क्या भेंट उचित है ? हे परमेश्वर, ज्ञान-प्राप्ति और चित्त को उत्तम बनाने के लिए (ते) तेरी (का उपेतिः) किस प्रकार की प्राप्ति या उपासना आवश्यक है ? हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तेरी (का मनीषा)

कौनसी स्तुति या अभिलाषा (शंतमा) अति सुखकारिणी (भुवत्) है? (ते) तेरे (दक्षं) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य को (यज्ञैः) अध्ययनाध्यापनादि कर्मों, दानयोग्य पदार्थों तथा उपासनाओं द्वारा (कः) कौन (परि आप) पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है ? (केन वा मनसा) किस चित्त से हम अपने को (ते) तुझे (दाशेम) अर्पण करें ?

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजामहे सौमनसाय देवान् ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे (अग्ने) सबके पूर्व विद्यमान, आप (होता) सब सुखों और ज्ञान के दाता होकर (इह) यहां (निषीद) विराजमान हों । आप (अदब्धः) कभी तिरस्कार और बध पीड़ा आदि न प्राप्त करके (नः) हमारे (पुरः एता) आगे २ नायक के समान पथप्रदर्शक होकर (भव) रहो । (विश्वमिन्वे) समस्त संसार को अन्न और प्रकाश से पूर देने वाले (रोदसी) सूर्य और भूमि दोनों के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग (त्वा अवतां) तेरा ज्ञान करें । हे राजन् ! वे दोनों तेरी रक्षा करें । हम लोग (सौमनसाय) मन को पवित्र प्रेमयुक्त बनाये रखने के लिये (देवान्) विद्वानों का (यजामहे) सत्संग करें ।

प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू (विश्वान् रक्षसः) समस्त दुष्ट मनुष्यों और दोषों को (प्र सु धक्षि) अच्छी प्रकार भस्म कर और (यज्ञानाम्) दानशील पुरुषों, उत्तम कर्मों और परस्पर के सत्संगों को (अभिशस्तिपावा) घात-प्रतिघात या विनष्ट होने से बचाने वाला (भव) हो और (हरिभ्याम्) धारण और आकर्षण से युक्त (सोमपतिम्) सूर्य के समान दो अश्वों से युक्त या दो प्रमुख विद्वानों सहित (सोम-

पतिम्) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति को (वह) प्राप्त कर । (सुदाग्ने) सुखों और ऐश्वर्यों के दाता का हम (आतिथ्यम्) आतिथ्य (चकृम) करें ।

प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥४॥

भा०—हे (प्रयन्तः) उत्तम नियन्त्रण करने हारे ! हे (वसूनाम् जनितः) बसने वाली प्रजाओं के पालक ! हे (यजत्र) पूजने योग्य ! तू (इह) इस राष्ट्र में इस मुख्य पद पर (देवैः) विद्वानों और वीरों के साथ और (प्रजावता वचसा) प्रजा की संगति से युक्त वाणी, व्यवस्था शास्त्र से हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर (वह्नि) और समस्त शासनभार को अपने कंधों पर उठाकर (निसत्सि) नियमपूर्वक राज्यासन पर विराजमान हो । मैं (आसा) मुख से (हुवे) तेरी स्तुति और तुझे राजा स्वीकार करता हूँ । हे विद्वन् ! राजन् ! तू (होत्रम्) प्रजा से त्याग की हुई कर आदि सामग्री (उत) और (पोत्रम्) दुष्टों को दमन करके राष्ट्र को बुरे पुरुषों से स्वच्छ पवित्र करने के कार्य को (वेषि) प्राप्त कर ।

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥५॥२४॥

भा०—(यथा) जैसे कोई (कविः) उत्तम विद्वान् (कविः) अन्य ज्ञानी पुरुषों के साथ मिलकर (विप्रस्य) विविध धनों से पूर्ण (मनुषः) मनुष्य के घर में (हविर्भिः) उत्तम वचनों द्वारा (देवान् अयजः) उत्तम २ व्यवहारों का उपदेश करता और (हविर्भिः) उत्तम अन्न आदि हवियों से (देवान् अयजः) अपने प्राणों को तृप्त करता और (देवान् अयज.) विद्वानों का आदर सत्कार करता और कराता है (एवा) वैसे ही हे (होतः) सब सुखों के दातः ! विद्वन् ! हे (सत्यतर) सज्जनों के बहुत अधिक हित-कारिन् ! (अग्ने) नायक ! (त्वम्) तू (अद्य) आज के समान दिन या

शीघ्र ही (मन्द्रया) अति हर्षजनक (जुह्वा) वाणी से (यजस्व) सबको सुख दे, उनको संगठित कर। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[७७] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ विराट् स्थाना। २ निचृत्। ३, ५ विराट्। पंचर्चं सूक्तम् ॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥१॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) प्राणियों में (अमृतः) स्वयं कभी न मरने वाला, (ऋतावा) सत्य ज्ञानों से युक्त, (होता) सुखों का दाता, (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूजनीय है। जो (देवान्) दिव्य सूर्य आदि लोकों को बनाता है (अस्मै अग्नये) उस सर्व प्रकाशक परमेश्वर के लिये (कथं) किस प्रकार से और क्योंकर हम (दाशेम) प्रदान करें अर्थात् उसको क्योंकर हम आत्म समर्पण करें ? और (देव जुष्टा) विद्वानों के हृदय को प्रिय लगने वाली (का) कौनसी (गीः) वाणी (भामिने) दुष्टों के प्रति कोप करने वाले इस प्रभु के लिये (उच्यते) कही जाय ?

यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥२॥

भा०—पूर्व मन्त्र में कहे 'कथं' का उत्तर इस मन्त्र में बतलाते हैं। (यः) जो (अध्वरेषु) हिंसा रहित, न नाश करने योग्य श्रेष्ठ कर्मों और श्रेष्ठ पुरुषों में भी (शंतमः) अत्यन्त शान्तिदायक, (ऋतावा) सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला, (होता) सब सुखों का दाता है (तम् उ) उसको ही (नमोभिः) नमस्कारों द्वारा (आकृणुध्वम्) अपने अभिमुख करो, उसको प्राप्त करो और (या) जो स्वयं (अग्निः) ज्ञान-प्रकाशक (मताय) मनुष्य के हित के लिये (देवान्) दिव्य ज्ञानों, प्रकाश की किरणों तथा उत्तम विद्वानों को (वेः) प्रकाशित करता और स्वयं धारण करता है (सः च)

वही (बोधाति) सबको ज्ञान प्रदान करता और (मनसा) ज्ञान से (यजाति) सबको युक्त करता है। इससे यह सबके पूजा के योग्य है।

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥३॥

भा०—(स हि) वह ही (क्रतुः) उत्तम कर्मों का कर्त्ता और उत्तम ज्ञानों का प्रकाशक, (सः मर्यः) वह मनुष्य, शत्रुओं का मारने वाला, (सः साधुः) वही परोपकार, सन्मार्ग में स्थित सब कार्यों का साधक, शत्रु को वश करने में समर्थ, (मित्रः न) सूर्य के समान तेजस्वी, (अद्भुतस्य) आश्चर्यजनक युद्ध करने वाले सैन्यबल का (रथीः) महारथी (भूत्) हो। (तम्) उस (दस्मम्) शत्रुओं के नाशक पुरुष को (देवयन्तीः) चाहती हुई (आरीः विशः) ज्ञानयुक्त प्रजाएं (मेधेषु) यज्ञों, श्रेष्ठ कार्यों और संग्राम के अवसरों में भी (प्रथमम्) सबसे प्रथम (उपब्रुवते) प्रस्तुत करती हैं।

स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥४॥

भा०—जो (रिशादाः) हिंसक पुरुषों और शत्रुओं का नाशक (अग्निः) तेजस्वी है (सः) वह ही (नः) हमारे (नृणां) नायकों में से (नृतमः) सबसे श्रेष्ठ पुरुष होकर (अवसा) अपने ज्ञान और पालन सामर्थ्य से (धीतिम्) राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति, (गिरः) उपदेश युक्त वाणी और शासनकारिणी आज्ञाओं को (वेतु) प्राप्त करें। (ये च) और जो (शविष्ठाः) अति बलवान्, (वाजप्रसूतः) ज्ञान और ऐश्वर्यों से उत्तम पदों को प्राप्त (मघवानः) ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष हैं, वे (तना) नाना धन और (मन्म) मनन योग्य ज्ञान को (इषयन्त) प्राप्त करें। वे भी (अवसा धीतिम् गिरः यन्तु) अपने ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से उत्तम वाणियें प्रकाशित करें।

एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः । स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥५॥२५॥

भा०—(एव) निश्चय से वही (अग्निः) ज्ञानवान्, नायक (ऋतावा) सत्य न्यायवान् (जातवेदाः) ऐश्वर्यों का स्वामी, (विप्रेभिः) विद्याओं के वेत्ता विद्वान् (गोतमेभिः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, वाग्मी पुरुषों द्वारा (अस्तोष्ट) प्रस्तुत किया जावे, (सः) वह ही (एषु) इन धार्मिक विद्वान् पुरुषों के बीच (द्युम्नं) धन (पीपयत्) प्राप्त कराता है (सः वाजम्) वही ज्ञान और बल को प्राप्त कराता और (सः पुष्टिं पीपयत्) वह अन्नादि समृद्धि और गौ आदि पशु सम्पत्ति की वृद्धि करता है, वही (चिकित्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (आ जोषम् याति) सबके सेवन योग्य हो जाता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[७८] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—आर्षी गायत्री ॥

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः॥१॥

भा०—हे (विचर्षणे) सबके देखने हारे ! हे (जातवेदः) समस्त धनों और ज्ञानों के उत्पादक परमेश्वर ! (गोतमा) ज्ञान-वाणियों के उत्तम विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन (त्वा अभि) तुझे ही लक्ष्य कर (गिरा) वेदवाणी से स्तुति करते हैं। हम भी (द्युम्नैः) तेरे गुणों और ऐश्वर्यों से मुग्ध होकर (त्वा अभि) तुझे (प्र नोनुमः) सदा नमस्कार करें।

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! विद्वन् ! (रायः कामः) ज्ञान और ऐश्वर्य का इच्छुक (गोतमः) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन (तम् उ त्वा) उस स्तुति योग्य तुझको ही (गिरा) वाणी से (दुवस्यति) भजन करता है। हम भी (द्युम्नैः) गुणों के प्रकाशक स्तुति वचनों और यश कीर्तनों से (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य करके (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार स्तुति करें।

तमु॑ त्वा वाज॒सात॑ममङ्गिर॒स्वद्ध॑वामहे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥३॥

भा०—(वाजसातमम्) अन्नों और ऐश्वर्यों के उत्तम दाता (अंगिरस्वत्) शरीर में प्राणों के समान सबको चेतना देने वाले (तम् त्वा उ) उस तेरी ही हम (हवामहे) स्तुति करते हैं (द्युम्नैः अभि प्र नोनुमः) उत्तम संकीर्तनों से हम तुझे बार २ नमस्ते करते हैं ।

तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑म॒ं यो दस्यूँ॑रवधूनु॒षे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥४॥

भा०—(यः) जो तू (दस्यून्) प्रजा नाशक दुष्ट पुरुषों को (अव धूनुषे) दण्डों से भयभीत कर देता है (तम् उ त्वा) उस (वृत्रहन्तमम्) अन्धकार के समान शत्रु को सूर्य के समान छिन्न भिन्न करने वाले तुझको हम (द्युम्नैः) धनों और चमचमाते शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित होकर (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार स्तुति करें ।

अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑म॒द्वचः॑ । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ५।२६

भा०—(रहूगणाः) अधर्म को त्यागने वाले और शत्रु से अपने देश को छुड़ा लेने वाले हम सदा (अग्नये) वीर नायक के आदर के लिये (मधुमत्) मधुर और मनन योग्य, विचार पूर्ण, (वचः) वचन (अवोचाम) कहा करें और (द्युम्नैः) उत्तम गुण प्रकाशक स्तुति-वचनों से (अभि प्र नोनुम) उसके गुणों को सर्वत्र प्रकाशित करें । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[७९] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१-३ त्रिष्टुप् । (१ विराट् । २-३ निचृत्) । ४-६ आर्ष्युष्णिक् । (५, ६ निचृद्) । ७-१२ गायत्री । (७,८,१०,१२ निचृत् । ८ पिपीलिका मध्या) ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो विसा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः ॥१॥

भा०—पुरुष कैसा हो ? (रजसः) अन्धकार और राजस आवरण

को दूर करने के कार्य में और (विसारे) विविध दिशाओं में फैलने या आक्रमण करने में (हिरण्यकेशः) सुवर्ण के समान तेज से युक्त हो और (विसारे) विविध सार अर्थात् बलों के प्राप्त करने के कार्य में (अहिः) मेघ के समान निष्पक्षपात भाव से सब पर सुखों का वर्षक हो। (वातः इव) प्रचण्ड वायु के समान (ध्रजीमान्) वेगवान् होकर (धुनिः) शत्रुओं को भय से कंपा देने वाला हो। स्त्रियें कैसी बनें ? स्त्रियें और कुमारी कन्याएं (शुचि-भ्राजाः) शुचि, निष्कलङ्क आचार के प्रकाश या कान्ति से सुशोभित, (उषसः न) नव प्रभात के समान हृदय को आह्लादित तथा पवित्र करने वाली (नवेदाः) लौकिक कुटिल, अधार्मिक कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ, निष्पाप (Innocent and Ignorant) और (यशस्वतीः) उत्तम यश वाली, (उपस्तुवः) नित्य उत्तम कर्म और ज्ञानों को प्राप्त करने की इच्छा वाली, (नः) और (सत्याः) सत्य व्यवहार करने वाली हों।

आ ते॑ सु॒प॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवै॑ः कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम्।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑माना॒भि॒राग॒ात्पत॑न्ति॒ मिह॑ः स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा ॥२॥

भा०—(सुपर्णाः) किरण गण जैसे (एवैः) गति देने वाले वायुगण से मिलकर (यदि इदम्) जब मेघ पर (आ अमिनन्त) सब तरफ से आघात करते हैं तब (कृष्णः) श्याम रंग का (वृषभः) बरसने वाला बादल (नोनाव) गर्जन करता है और वह (शिवाभिः) शान्तिदायक (स्मयमानाभिः) मुस्कराती हुई विद्युतों से (आगात्) युक्त हो जाता है तब (मिहः) जल वृष्टियां (पतन्ति) गिरती हैं और (अभ्रा स्तनयन्ति) मेघ गरजते हैं। (न) ऐसे ही (ते) वे (सुपर्णाः) उत्तम पालन और ज्ञान सामर्थ्य वाले विद्वान् पुरुष (एवैः) अपने प्रकाशक ज्ञानों से (आ अभिनन्त) सब तरफ व्यापते हैं। (कृष्णः) अज्ञान अंधकार को काटने वाला, विद्वान् पुरुष मेघ के समान (वृषभः) ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने वाला होकर (यदि इदम्) जैसे वह वृष्टि का कार्य होता है वैसे ही

(नोनाव) उत्तम उपदेश करे और (शिवाभिः) कल्याण करने वाली, (स्मयमानाभिः) किञ्चित हास से खिले मुख वाली सुन्दरियों के समान सबका उपकार करने वाली, विकसित भावों वाली वाणियों से वह (आ अगात्) सबको प्राप्त हो और (मिहः) जल वृष्टियों के समान ज्ञानवर्षाएं (पतन्ति) हों और (अभ्राः) ज्ञानों के देने वाले गुरुजन मेघों के समान गम्भीरता से (स्तनयन्ति) उपदेश करें ।

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥३॥

भा०—(यत्) जैसे (ऋतस्य पयसा पियानः) आकाश को पूर देने वाले जल के वाष्पमय रूप से खूब भरपूर, तृप्त होकर वायु (ईम्) इस मेघ या जल को (ऋतस्य) अन्तरिक्ष के (रजिष्ठैः) धूलिकणों से युक्त मार्गों से (नयन्) ले जाता है तब (अर्यमा) सूर्य (मित्रः) वायु, (वरुणः) जल (परिज्मा) सर्वत्र व्यापक भूमि के अंश धूलि आदि ये सब पदार्थ (उपरस्य योनौ) मेघ के उत्पन्न होने के स्थान में (त्वचं) जल की त्वचा को अर्थात् जल के बाह्यांश को (पृञ्चन्ति) संयुक्त करते हैं और तब वह मिलकर जल का वृन्द तैयार हो जाता है । वैसे ही (ऋतस्य) अन्न के (पयसा) परिपोषक सूक्ष्म अंश शुक्र से (पियानः) परिपुष्ट होकर पुरुष (ऋतस्य) मूल सत्कारण के (ईम्) उस वीर्यांश को (रजिष्ठैः पथिभिः) रजो युक्त मार्गों से (नयन्) प्राप्त कराता है और (अर्यमा) सूर्य का तेज, (मित्रः) प्राण, (वरुणः) उदान और (परिज्मा) सर्वत्रगामी जीव ये सब (योनौ) गर्भाशय के उत्पत्ति कमल में (त्वचं) त्वग् को (पृञ्चन्ति) सम्पर्क करते हैं तब उस स्थान में जीव की उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार—(अर्यमा) सूर्य, (मित्रः) वायु, (वरुणः) जल और भूमि ये जब (त्वचं पृञ्चन्ति) भूमि की त्वचा पृष्ठ पर संयुक्त होते हैं ।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥४॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त पदार्थों के जानने हारे परमेश्वर ! विज्ञानों से युक्त विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! (सहसः यहो) शक्ति के एकमात्र आश्रय प्रभो ! विद्वन् ! (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! तू (गोमतः) गौ आदि पशुओं से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य का (ईशानः) स्वामी है । तू (अस्मे) हमें (महि श्रवः) बड़ा भारी धन (धेहि) प्रदान कर । हे विद्वन् ! तू (गोमतः वाजस्य) वेद वाणियों से युक्त ज्ञान का (ईशानः) स्वामी है । तू (महिः श्रवः) बड़ा भारी श्रवण योग्य ज्ञानोपदेश (अस्मे धेहि) हमें दे ।

स इ॑धानो वसु॑ष्क॒विर॒ग्निरी॒ळेन्यो॑ गि॒रा । रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि

भा०—(सः) वह परमेश्वर, विद्वान् और राजा (अग्निः) तेजस्वी, प्रकाशक और प्रतापी (इधानः) दीप्त होकर (वसुः) सबको सुख से बसाने हारा (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) स्तुति करने योग्य है । हे (पुर्वणीक) बहुत सी सेनाओं से युक्त, बहुत से बलों और ज्ञानोपदेशक मुखों या वचनों से युक्त (कविः) परम मेधावी, ज्ञानी होकर तू (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (रेवत्) उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त (श्रवः) ज्ञान का (दीदिहि) प्रकाश कर ।

क्ष॒पो रा॑जन्नु॒त त्मनाग्ने॒ वस्तो॑रु॒तोषसः॑ । स ति॑ग्मजम्भ र॒क्षसो॑ दह॒ प्रति॑

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (अग्ने) विद्वन् ! परमेश्वर ! तू (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों और विघ्नकारी दुष्टभावों का (क्षपः) विनाश कर (उत) और हे (तिग्मजम्भ) अग्नि के समान तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों वाले ! (सः) वह तू (त्मना) अपने बल और सामर्थ्य से (वस्तो उत उषसः) दिन और रात (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (प्रति दह) काठों को आग के समान भस्म कर डाल । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अवा॑ नो अग्न ऊ॒तिभि॑र्गाय॒त्रस्य॒ प्रभ॑र्मणि । विश्वा॑सु धी॒षु व॑न्द्य ॥७॥

भा०—हे (वन्द्य) स्तुति योग्य (अग्ने) परमेश्वर ! तू (नः) हमें

(गायत्रस्य) गान करने वाले पुरुष की रक्षा करने में समर्थ वेद ज्ञान के (प्रभर्मणि) अच्छी प्रकार धारण करने के कार्य में और (गायत्रस्य प्रभर्मणि) इस पृथिवी लोक के उत्तम रीति से भरण पोषण के कार्य में (नः) हमारा (ऊतिभिः) ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा (अव) पालन कर और (विश्वासु धीसु) समस्त ज्ञानों और कर्मों के प्राप्त करने के अवसरों में हमारी रक्षा कर ।

आ नो॑ अग्ने र॒यिं भ॑र सत्रा॒साहं॒ वरे॑ण्यम् । विश्वा॑सु पृ॒त्सु दु॒ष्टर॑म् ८

भा०—हे (अग्ने) नायक ! हे ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (सत्रासाहम्) एक ही साथ विद्यमान समस्त शत्रुओं और कष्टों को पराजित कर देने वाले (वरेण्यम्) उत्तम मार्ग में ले जाने वाले (विश्वासु) समस्त (पृत्सु) सेनाओं और संग्रामों में भी (दुस्तरम्) न समाप्त होने वाले, अक्षय (रयिम् आ भर) ऐश्वर्य को प्राप्त करा ।

आ नो॑ अग्ने सुचे॒तुना॑ र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम् । मा॒र्डी॒कं धे॑हि जी॒वसे॑ ६।२७

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! हे प्रभो ! तू (नः) हमें (जीवसे) दीर्घजीवन को प्राप्त करने के लिए (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान विज्ञान के साथ २ (विश्वायुपोषसम्) समस्त प्राणियों के जीवनों और आयु की वृद्धि और पुष्टि करने वाले (मार्डीकम्) सुखों के देने वाले (रयिम् आ धेहि) ऐश्वर्य का प्रदान कर ।

प्र पू॒तास्ति॒ग्मशो॑चिषे॒ वाचो॑ गोतमा॒ग्नये॑ । भर॑स्व सु॒म्नयु॒र्गिरः॑ ॥१०॥

भा०—हे (गोतम) ज्ञानवाणियों के उत्तम विद्वन् ! तू (तिग्मशोचिषे) तीक्ष्ण ज्वाला या दीप्ति वाले (अग्नये) अग्नि के समान तेजस्वी, परमेश्वर, विद्वान् और राजा के वर्णन करने के लिए स्वयं (सुम्नयुः) सुख की इच्छा करता हुआ (पूताः) आचारादि में पवित्र, प्रभावजनक (वाचः) वाणियों

को और (गिरः) ज्ञानोपदेश युक्त वेदवाणियों को (प्र भरस्व) अच्छी प्रकार धारण कर और अन्यों को धारण करा।

यो नो॑ अग्नेऽभि॒दास॒त्यन्ति॑ दू॒रे प॑दी॒ष्ट सः। अ॒स्माक॒मिद्वृ॒धे भ॑व ॥११

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! अग्रणी नायक! ज्ञानवन्! (यः) जो (नः) हमें (दूरे अन्ति) दूर और पास सर्वत्र ही (अभिदासति) सब प्रकार से देना चाहते हों और (पदीष्ट) प्राप्त होना चाहते हों (सः) वह आप (अस्मान्) हमारे (वृधे भव) वृद्धि के लिए हूजिये।

स॒ह॒स्रा॒क्षो विच॑र्षणिर॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति। होता॑ गृणीत उ॒क्थ्यः॑॥१२॥२८

भा०—(सहस्राक्षः) हजारों देखने वाले साधनों वाला, (विचर्षणिः) विशेष रूप से द्रष्टा (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर, विद्वान् और तेजस्वी राजा (रक्षांसि) समस्त विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (सेधति) दूर करे और (होता) वह ज्ञान का दाता, (उक्थ्यः) स्तुति योग्य एवं वेदज्ञान का विद्वान् होकर (गृणीते) उपदेश करे। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८०] गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—पथ्यापंक्ति (पंचपदा)। १, ११ निचृत्। ५, ६, ९, १०, १३, १४ विराट्। २–४, ७, १२, १५ एकोना विराट्। ८, १६ द्व्यूना विराट्। षोडशर्चं सूक्तम्॥

इ॒त्था हि सोम॒ इन्मदे॑ ब्र॒ह्मा च॒कार॒ वर्ध॑नम्।
शवि॑ष्ठ वज्रि॒न्नोज॑सा पृथि॒व्या निः श॑शा॒ अहि॒मर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् १

भा०—(मदे) हर्षजनक (सोमे) राज्यशासन के व्यवस्थित हो जाने पर (ब्रह्मा) महान् ज्ञानवान् एवं बड़े भारी ब्रह्म, आचार्य या पुरोहित पर विराजमान विद्वान् (इत्) ही (इत्था) इस प्रकार से (वर्धनम्) राज्य-शासन बढ़ाने का उपदेश (चकार) करे। हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र सेना बल के स्वामिन्! हे (शविष्ठ) सबसे अधिक शक्ति वाले! तू (स्वराज्यम् अनु

अर्चन्) अपने राज्य की निरन्तर वृद्धि और मान आदर करता हुआ (ओजसा) अपने पराक्रम से (पृथिव्याः) इस पृथिवी में (अहिम्) सूर्य जैसे मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है वैसे ही सर्प के समान कुटिलाचारी और मेघ के समान शस्त्रवर्षी शत्रु को (निः शशाः) सर्वथा दण्डित कर, परास्त कर।

स त्वा॑मदद्वृषा॒ मदः॒ सोमः॑ श्येना॒भृतः॑ सु॒तः।
येना॑ वृत्रं निर॒द्भ्यो ज॒घन्थ॑ वज्रि॒न्नोज॒सार्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥२॥

भा०—हे (वज्रिन्) सेनाबल के स्वामिन्! (सः) वह (वृषा) सब सुखों का वर्षक (श्येनाभृतः) बाज के समान आक्रमण द्वारा बलपूर्वक प्राप्त किया हुआ (सुतः) अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्ययुक्त (सोमः) राष्ट्र वैभव (त्वा) तुझे (अमदद्) हर्षित करे। (येन) जिसके बल पर तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यशासन को निरन्तर आदर देता हुआ, (ओजसा) पराक्रम से (अद्भ्यः वृत्रं) जलों से मेघ को सूर्य के समान (अद्भ्यः) आप्त प्रजाओं के बीच में से (वृत्रम्) बढ़ते हुए या नाना चाल चलते हुए शत्रु को (निर्जघन्थ) सर्वथा निकाल बाहर कर।

प्रेह्य॒भीहि धृष्णु॒हि न ते॒ वज्रो॒ नि यं॑सते।
इन्द्र॑ नृ॒म्णं हि ते॒ शवो॒ हनो॑ वृत्रं जया॑ अ॒पोऽर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥३॥

भा०—हे राजन्! तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यपद की ही प्रतिष्ठा करता हुआ (प्र इहि) आगे बढ़, (अभि-इहि) अभिमुख शत्रु को लक्ष्य करके उनके सामने जा और (धृष्णुहि) उनको परास्त कर। (ते) तेरा (वज्रः) शस्त्रास्त्र बल सूर्य की किरणों के समान (न नियंसते) कभी रोका नहीं जा सकता, क्योंकि हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (ते शवः) तेरा बल (नृम्णं हि) ही परम धन है। वह सब मनुष्यों और नायकों को अपने अधीन दबाकर रखने में समर्थ है। तू (वृत्रं हनः) मेघ के समान फैलते हुए शत्रु को (हनः) मार। (अपः जय) समस्त राष्ट्रवासिनी प्रजाओं को विजय कर।

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) नित्य अपने ही राज्य या राजशासन के महत्व को बढ़ाता हुआ, (वृत्रं) मेघ को जैसे सूर्य (निर्जघन्थ) अपनी किरणों से छिन्न भिन्न करता है और (मरुत्वतीः) वायुओं में विद्यमान (जीवधन्याः) जीवों को तृप्त करने वाली (इमाः अपः) इन जलधाराओं को (दिवः अव) आकाश से नीचे गिराता है वैसे ही हे (इन्द्र) राजन्! तू भी (भूम्या अधि) भूमि पर अधिकार करने के लिये (वृत्रं निर् जघन्थ) अपने बढ़ते हुए शत्रु को मार और (मरुत्वतीः) प्रजाओं को या वीरों की बनी (इमाः) इन (जीवधन्याः) जीवन को ही धन के समान जानने वाली (अपः) प्रजाओं को (अव सृज) अपने अधीन कर।

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ।५।२६

भा०—(इन्द्रः) सूर्य या विद्युत् जैसे (दोधतः वृत्रस्य) वायु वेग से कांपते हुए मेघ के (सानुम्) उन्नत भाग को (वज्रेण) विद्युत् के आघात से (अभिक्रम्य) आक्रमण करके (अपः सर्माय) जलों के बह जाने के लिये प्रेरित करता है, वैसे ही (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राजत्व पद की वृद्धि और प्रतिष्ठा करता हुआ (दोधतः वृत्रस्य) क्रोध करते हुए शत्रु के (सानुम्) एक २ अंग को (हीळितः) स्वयं क्रुद्ध होकर (इन्द्रः) राजा (अभिक्रम्य) सब ओर से आक्रमण करके और (अपः) जलधाराओं के समान सेनाओं को (सर्माय) भाग निकलने के लिये प्रेरित करता हुआ (अव जिघ्नते) उसे मार गिरावे।

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।

मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ।६

भा०—(स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राजत्वपद की प्रतिष्ठा करता हुआ (इन्द्रः) राजा, सूर्य के समान तेजस्वी होकर (शतपर्वणा वज्रेण) सैकड़ों अंगों वाले शस्त्रास्त्र बल से (जिघ्नते) प्रहार करने वाले शत्रु के (सानौ अधि) प्रत्येक अंग पर (नि) अच्छी प्रकार प्रहार करे और स्वयं (अन्धसः) अन्नादि ऐश्वर्य का (इन्द्रः) स्वामी होकर (मन्दानः) सबको प्रसन्न करता हुआ (सखिभ्यः) मित्र राजाओं के हित के लिये (गातुम्) भूमि को (इच्छति) चाहे ।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (वज्रिन्) वीर्यवन् (अद्रिवः) अखण्ड राज्य शासन के स्वामिन् ! (यत्) जिस बल से तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यपद की प्रतिष्ठा करता हुआ (त्यं) उस (मायिनं) मायावी (मृगं) इधर उधर भागते या आक्रमण करते हुए शत्रु को (त्वं) तू (मायया) अपने बुद्धि कौशल से (अवधीः) विनाश करता है, वह (अनुत्तं) अपराजित (वीर्यम्) बल (तुभ्यम् इत्) तेरे ही वृद्धि के लिये है ।

वि ते वज्रासोऽअस्थिरन्नवतिं नाव्याऽ३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (वज्रासः) शस्त्र अस्त्र बल (नवतिं नाव्याः अनु) नावों से खेये जाने वाली ९० नदियों को भी (वि अस्थिरन्) अपने शासन में रखने में समर्थ हों । (ते) तेरा (वीर्यम्) सैन्य-बल (महत्) बहुत बड़ा हो । और तेरी (बाह्वोः) बाहुओं में और शत्रु को पीड़न करने वाली सेना के दोनों बाजुओं में भी (महत् बलं

हितम्) बड़ा बल हो। उससे तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्य शासन की वृद्धि करता रह।

स॒हस्रं॑ सा॒कम॑र्चत॒ परि॑ ष्टोभत विंश॒तिः।
श॒तैन॒मन्व॑नोनवु॒रिन्द्रा॑य ब्र॒ह्मोद्य॑त॒मर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म्॥९॥

भा०—जो राजा (स्वराज्यम्) अपने राज्यपद का (अनु) प्रतिदिन (अर्चन्) आदर और वृद्धि करता रहे उस (सहस्रं) बलवान्, असंख्य ऐश्वर्यों और राष्ट्र कार्यों के आश्रय स्वरूप पुरुष का आप सब लोग (साकम्) एक साथ मिल कर (अर्चत) सत्कार करो। (विंशतिः) बीसों अमात्य मिलकर (परिस्तोभत) सब प्रकार से राज्य कार्य को संभालें। (एनम्) इस राज्य का (शता) सैकड़ों सेना के पुरुष (अनु अनोनवुः) सत्कार करें। (ब्रह्म) यह महान् राष्ट्र और ज्ञानमय वेद (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा की वृद्धि के लिये (उद्यतम्) उत्तम रीति से व्यवस्था पूर्वक स्थिर हो।

इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॒ तवि॑षीं॒ निर॑ह॒न्त्सह॑सा॒ सहः॑।
म॒हत्तद॑स्य॒ पौंस्यं॑ वृ॒त्रं ज॑घ॒न्वाँ अ॑सृज॒दर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म्॥१०॥३०॥

भा०—(इन्द्रः) विद्युत् या वायु सूर्य के समान तेजस्वी राजा (वृत्रस्य) मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु की (तविषीम्) बलवती सेना को और उसके (सहः) सामर्थ्य को (सहसा) अपने बल से (निर् अहन्) सब प्रकार से नष्ट करे। जो वह (वृत्रं जघन्वान्) बढ़ते हुए शत्रु का नाश कर (असृजत्) जल धाराओं के समान प्रजाओं को आनन्द से युक्त सुखी कर देता है (तत्) वह ही (अस्य) उसका (महत्) बड़ा भारी (पौंस्यम्) पौरुष है। वह (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपनी राज्यशक्ति को नित्य बढ़ाता रहे।

इ॒मे चि॒त्तव॑ म॒न्यवे॒ वेपे॑ते भि॒यसा॑ म॒ही।
यदि॑न्द्र वज्रि॒न्नोज॑सा वृ॒त्रं म॒रुत्वाँ॒ अव॑धी॒रर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म्॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (यत्) जब तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपनी राज्य शक्ति को बराबर बढ़ाता हुआ (मरुत्वान्) वायु के वेग से युक्त विद्युत् के समान शत्रु के मारने में समर्थ वीर सेनागण या स्वामी होकर (ओजसा) पराक्रम से (वृत्रं) मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु का (अवधीः) विनाश करता है तब जैसे (मही) बड़ी विशाल आकाश और पृथिवी दोनों सूर्य या विद्युत् के प्रकोप से कांपते हैं वैसे ही (तव मन्यवे) तेरे क्रोध के (भियसा) भय से (इमे) ये राजवर्ग और प्रजावर्ग, स्वसेना और परसेना दोनों (वेपेते) कांपें ।

न वेप॑सा न त॑न्य॒तेन्द्रं॑ वृ॒त्रो वि बी॑भयत् ।
अ॒भ्ये॑नं॒ वज्र॑ आय॒सः स॒हस्र॑भृष्टिराय॒तार्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१२॥

भा०—जैसे (वृत्रः) मेघ (इन्द्रं) सूर्य या विद्युत् को (न वेपसा) न वेग से और (न तन्यता) न गर्जन से ही (वि बीभयत्) विशेष रूप से भयभीत कर सकता है प्रत्युत (आयसः) तेजोमय, (सहस्र-भृष्टिः) बलपूर्वक गिरने वाला (वज्रः) विद्युत् ही (एनम् अभि आयत) उसको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्य को बढ़ाता हुआ राजा (एनम् अभि) उस शत्रु को लक्ष्य करके (आयसः) लोहमय शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और (सहस्र-भृष्टिः) सहस्रों दाहों को उत्पन्न करने वाला (वज्रः) साक्षात् खड्ग के समान नाशकारी होकर (आयत) सब तरफ से उनका नाश करे। वह (वृत्रः) शत्रु (इन्द्रम्) उस राजा को (न वेपसा) न अपने वेग से और (न तन्यता) न गर्जनामात्र से (बीभयत्) डरा सकता है।

यद्वृ॒त्रं तव॑ चा॒शनिं॒ वज्रे॑ण स॒मयो॑धयः ।
अहि॑मिन्द्र॒ जिघां॑सतो दि॒वि ते॑ बद्बधे॒ शवोऽर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! (यत्) जैसे (अशनिम्) विद्युत् को प्रेरित करके वायु (वृत्रम्) मेघ को छिन्न भिन्न करता है वैसे ही तू भी

(तव) अपने (वज्रेण) शत्रु के वारक सैन्य बल या शस्त्र से (अशनिम्) शत्रु सैन्य को खा जाने वाले, व्यापक शक्ति वाले अस्त्र का प्रहार करके (वृत्रम् सम् अयोधयः) युद्ध करते हुए शत्रु से युद्ध कर और (दिवि) जैसे आकाश में (अहिम्) सर्वत्र फैला मेघ छिन्न भिन्न हो जाता है वैसे ही (अहिम्) आगे से प्रहार करने वाले शत्रु को (जिघांसता) नाश करते हुए (ते) तेरा (शवः) बल शत्रु का (बद्धधे) नाश करे । तू (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) इस प्रकार अपनी राज्य की खूब वृद्धि करता रह ।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड बल के स्वामिन् ! सेनापते ! हे (इन्द्र) राजन् ! (यत्) जब (ते) तेरे (अभिस्तने) गर्जना और आज्ञा में (स्थाः) स्थावर और (जगत् च) जंगम सभी (रेजते) कांपता है । (तव मन्यवे) तेरे क्रोध के (भिया) भय से (त्वष्टा चित्) सूर्य के समान तेजस्वी तथा छेदन भेदन करने वाला सैन्य गण और शिल्पीगण भी (वेविज्यते) भय से कांपा करे । तू इस प्रकार (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपनी राजसत्ता की निरन्तर वृद्धि करता रह ।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५

भा०—(क नहि नु इन्द्रं यात्) कोई क्यों नहीं राजा की शरण में जावे ? (अधि इमसि इन्द्रं) हम राजा को ही शरण रूप से प्राप्त करें। हम विचार करें कि (वीर्या) बल वीर्य में (परः कः) राजा से बढ़ कर दूसरा कौन है जो (स्वराज्यम् अर्चन् अनु) अपने राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाता रहे (तस्मिन्) उसका आश्रय लेकर (देवाः) ज्ञानी और ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष (नम्णम्) मनुष्यों के अभिलाषा योग्य, मन चाहे धन, (उत क्रतुम्)

ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और (ओजांसि) समस्त बल पराक्रमों को (संदधुः) अच्छी प्रकार स्वयं धारण करते हैं और उस ही में वे सब ऐश्वर्यों, सामर्थ्यों और पराक्रमों को (संदधुः) स्थापित करते हैं।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत। तस्मिन्ब्रह्माणि।
पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६॥३१॥५॥

भा०—(अथर्वा) प्रजा का पीड़न न होने देने वाला (मनुः) ज्ञानवान् (पिता) सबका पालक गुरु (दध्यङ्) प्रजाओं का धारण पोषण करने वाले समस्त उपायों और गुणों को प्राप्त करने और अन्यों को प्राप्त कराने वाला होकर (याम्) जिस (धियम्) ज्ञान या कर्म को करता, उसी कर्म को तुम लोग भी (अत्नत) करो और (तस्मिन्) उस (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् वीर पुरुष के आश्रय रहकर (पूर्वथा) पूर्व पुरुषों के (ब्रह्माणि) समस्त ऐश्वर्य और (उक्था) स्तुति योग्य गुणों को (सम् अग्मत) प्राप्त करो। वह (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्य को सदा बढ़ावे।

यह समस्त सूक्त परमेश्वरोपासना परक भी है। 'स्वराज्य' अपने आत्मा के प्रकाशस्वरूप का साक्षात्कार या स्वतः प्रकाशक परमेश्वर परम स्वरूप ही स्वराज्य है। उसकी प्राप्ति उसकी अर्चना है। इन्द्र यह आत्मा है। (१) 'सोम' परमानन्द रस है। उसमें मग्न आत्मा ईश्वर की स्तुति अपनी वृद्धि के लिये करे, अज्ञान का नाश करे (२) 'वज्रिन' ज्ञानवान् पुरुष है, 'वृत्र' अज्ञान है। (३) नृ—इन्द्रियां। उनको दबाने वाला सामर्थ्य 'नृम्ण' है। 'अपः' प्राणगण। 'वज्र' ज्ञान है। (४) 'भूमि' चित्तभूमि। 'मरुत्वती अपः' प्राणमय वृत्तियां (६) 'अंधसः', आनन्द रस। 'सखायः' प्राण गण, (७) 'मायी' मृत मन है। (८) 'नवतिः नाव्या' ९० वर्ष है। (९) 'विंशति' दश २ बाह्य और आभ्यन्तर प्राणगण, 'शत' सौ वर्ष। (११) 'मही', प्राण और अपान (१४) 'त्वष्टा'-प्राण। (१६) 'दध्यङ्'—ध्यानी पुरुष। 'ब्रह्माणि' उत्तम स्तुतियां। इतिदिक्। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८१] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—पंचपदा पंक्तिः । विराट् पंक्तिः । १, २, ७-६ विराट् । ३, ५ निचृत ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रो मदा॑य वावृधे शव॑से वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजे॑षु प्र नो॑ऽविषत् ॥१॥

भा०—(वृत्रहा) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी, बढ़ते हुए शत्रु का नाश करने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा (नृभिः) अपने नायक पुरुषों के साथ ही (मदाय) प्रजागण के हर्ष और (शवसे) बल की वृद्धि करने के लिये (वावृधे) बढ़े और ऐश्वर्य प्राप्त करे । (महत्सु आजिषु) बड़े २ संग्रामों (उत अर्भे) और छोटे २ संग्राम में भी (तम इत् हवामहे) हम उसको ही शरण रूप से प्राप्त करें । (सः) वह (वाजेषु) संग्राम-कार्यों में (नः प्र अविषत्) हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करे ।

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि॑ परादृदिः ।
असि॑ दभ्रस्य॑ चिद्वृधो यज॑मानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि॑ ते वसु॑ ॥२॥

भा०—हे (वीर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे शूर राजन् ! सेना-पते ! तू (सेन्यः असि) सेनाओं में सबसे श्रेष्ठ और उनका हितकारी है, तू सेना द्वारा संग्राम कुशल (असि) हो । तू (भूरि) बहुत से उपायों से (परादृदिः) शत्रुओं को पराजित करने हारा (असि) हो । (दभ्रस्य चित्) छोटे, अल्प बल वाले को भी तू (वृधः भव) बढ़ाने वाला हो और (सुन्वते यजमानाय) अन्यों के लिये सुख उत्पन्न करने वाले धर्मात्मा की वृद्धि के लिये तू (ते) अपना (भूरि वसु) बहुत सा ऐश्वर्य (शिक्षित) प्रदान कर।

यदुदीर॑त आजयो॑ धृष्णवे॑ धीयते धना॑ ।
युक्ष्वा म॑दच्युता हरी॑ कं हनः कं वसौ॑ दधोऽस्माँ इ॑न्द्र वसौ॑ दधः ३

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! राजन् ! (यत्) जब (आजयः) नाना संग्राम (उत् ईरते) उठ खड़े होते हैं तब (घृष्णवे) शत्रुओं का पराजय करने वाले बल को दृढ़ करने के लिये (धना धीयते) नाना प्रकार के धनों को धारण किया जाता है। उसी समय (मदच्युता) अति हर्ष से, आवेग को प्राप्त होने वाले, शत्रुओं का गर्व ढीला कर देने वाले (हरी) रथ में दो घोड़ों के समान राज्य के भार को उठाने के लिये दो मुख्य विद्वानों को भी (युक्ष्व) नियुक्त कर। तू (कं हनः) किसी शत्रु को मार और (कं) किसी को (वसौ) ऐश्वर्य या राष्ट्र के ऊपर अधिकारी रूप से (दधः) स्थापित कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अस्मान्) हमें (वसौ) बसने योग्य राष्ट्र में या ऐश्वर्य के बल पर (दधः) पालन पोषण कर।

क्रत्वा॑ म॒हाँ अ॑नुष्व॒धं भी॒म आ वा॑वृधे॒ शवः॑। श्रि॒य ऋ॒ष्व।
उ॑पा॒कयो॒र्नि शि॒प्री हरि॑वान्दधे॒ हस्त॑यो॒र्वज्र॑माय॒सम् ॥४॥

भा०—(क्रत्वा) कर्म और बुद्धि में (महान्) बड़ा शक्तिशाली, (भीमः) भयङ्कर (ऋष्वः) शत्रुओं का नाशक (शिप्री) तेजस्वी (हरिवान्) वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों और वीरों विद्वानों का स्वामी, सेनापति या राजा (अनुस्वधम्) अपने अन्न आदि धारण पोषण के सामर्थ्य के अनुसार ही (शवः) सैन्य-बल की वृद्धि करे और (श्रिये) राज्यलक्ष्मी की विजय के लिये (हस्तयोः) हाथों में (आयसम् वज्रम्) लोह के खड्ग के समान ही (उपाकयोः) पार्श्ववर्त्ती, बाजुओं में स्थित सेनाओं में भी (आयसम्) वेग से जानने वाले बल वीर्य को (निदधे) धारण करावे।

आ प॑प्रौ पार्थि॑वं॒ रजो॑ बद्ब॒धे रो॑च॒ना दि॒वि।
न त्वावाँ॑ इन्द्र॒ कश्च॒न न जा॒तो न ज॑निष्य॒तेऽति॒ विश्वं॑ ववक्षिथ॥५॥१॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (पार्थिवं रजः) पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित परमाणु आदि वस्तुओं और समस्त लोक समूह को (आ पप्रौ)

सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है । तू उनमें भी व्यापक है । तू (दिवि) सूर्य में (रोचना) प्रकाशमय दीप्ति को तथा आकाश में (रोचना) चमकते सहस्रों सूर्यों को (बद्बधे) थाम रहा है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वावान्) तेरे जैसा (कः चन) कोई भी (न जातः) न पैदा हुआ और (न जनिष्यते) न पैदा होगा। तू (विश्वं) समस्त विश्व को (अति ववक्षिथ) बहुत अच्छी प्रकार से धारण करने में समर्थ है ।

यो अर्यो मर्त्तभोजनं परादुदाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६

भा०—(यः) जो परमेश्वर और राजा (अर्यः) स्वयं सबका स्वामी होकर (दाशुषे) दान देने हारे (मर्तभोजनम्) मनुष्यों को पालन करने और भोग योग्य ऐश्वर्य (परादुदाति) प्रदान करता है वह (इन्द्रः) परमेश्वर और राजा (अस्मभ्यम्) हमें भी (भूरि) बहुत सा ऐश्वर्य (शिक्षतु) प्रदान करे। हे प्रभो ! तू (ते) एकत्रित अपने (भूरिवसु) राष्ट्र में ऐश्वर्य का (विभज) विविध रूपों में प्रजाओं में विभक्त कर । हम राष्ट्रवासी, (तव राधसः) तेरे ऐश्वर्य का (भक्षीय) सेवन कर आनन्द लाभ करें ।

मदेमदे हि नो दुदिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (ऋजुक्रतुः) अति ऋजु, सुखप्रद और सामर्थ्यवान् है । तू (नः) हमें (मदेमदे) प्रत्येक हर्ष के अवसर में (गवां यूथा) सूर्य जैसे किरणों को प्रदान करता है वैसे ही (गवांयूथा) ज्ञानमय किरणों, ज्ञानवाणियों, लोकसमूहों, विद्वानों तथा पशु आदि समूहों को और इन्द्रियों को (नः ददिः) हमें प्रदान करता है । (उभया हस्त्या) दोनों हाथों से देने वाले महादानी के समान (पुरू शता) बहुत सैकड़ों (वसु) ऐश्वर्यों को या बसने वाले जीवों और लोकों को (संगृभाय) अच्छी

प्रकार धारण करता है और एकत्र किये हुए (रायः) ऐश्वर्यों को तू (शिशीहि) प्रदान कर और (आ भर) हमारा सब प्रकार भरण पोषण कर ।

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८॥

भा०—हे (शूर) शत्रुओं के नाशक राजन् ! तू (सुते) अभिषेक द्वारा प्राप्त, एवं ऐश्वर्यमय राष्ट्र में (शवसे राधसे) बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि और उसके उपभोग के लिये (मादयस्व) सबको तृप्त कर, उनको भरपूर धन दे । (त्वा पुरूवसुम्) नाना ऐश्वर्यों के स्वामी तुझको (उप-विद्म हि) हम आश्रय लें और (कामान् ससृज्महे) समस्त अभिलाषाओं को प्राप्त करें । (अथ) तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो ।

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ।९।२

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (एते जन्तवः) ये समस्त जीवगण तथा पशु आदि (ते) तेरे (विश्वं वार्यं) सब वरण योग्य ऐश्वर्य की (पुष्यन्ति) वृद्धि करते हैं । तू (अर्यं) सबका स्वामी (जनानाम् अन्तः ख्यः हि) जनों के भीतर देखता और उनको ज्ञान उपदेश करता है, (वेदः) उनके भीतर ज्ञान को प्रदान कर । (अदाशुषां) दान न देने वाले (तेषां) उनका (वेदः) धन (नः, आभर) हमें प्रदान कर ।

[८२] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—पंचपदा पंक्तिः । १, ४ निचृत् । २, ३, ५ विराड् । ६ विराड् जगती ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! विद्वन् ! हे (मघवन्) धनों के स्वामिन् ! तू (अतथाः इव) प्रतिकूल पुरुष के समान अन्यथा भाव होकर (मा) मत रह और (उपो) अति समीप सावधान होकर (सु) उत्तम रीति से (गिरः) वाणियों अर्थात् प्रजा की पुकार का श्रवण कर। (आत् अर्थयासे) अनन्तर तुझसे यही प्रार्थना है कि (नः) हमें (सूनृतावतः) उत्तम सत्य वाणी तथा अन्नादि से युक्त (करः) कर। (हरी) तथा रथ में दो अश्वों के समान दुःखों के हरने वाले दो मुख्य विद्वानों को (योज नु) नियुक्त कर।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥२

भा०—(स्वभानवः) अपने तेज से चमकने वाले सूर्य के समान तेजस्वी होकर (विप्राः) ज्ञानी पुरुष (नविष्ठया) नूतन बुद्धि से युक्त होकर (अस्तोषत) ईश्वर की स्तुति करें तथा नाना विद्याओं का उपदेश करें। वे (अक्षन्) सब उत्तम गुणों को प्राप्त करें और सब ऐश्वर्यों का भोग करें। वे (अमीमदन्त) निरन्तर प्रसन्न रहें और (प्रियाः) सबके प्रति प्रेम भाव से युक्त होकर (अव अधूषत) अपने दुर्व्यसनों, दोषों और बुरे पुरुषों का त्याग करें। हे (इन्द्र) राजन् ! तू (ते) अपने (हरी) प्राण और अपान के समान और ज्ञानी और कर्मनिष्ठ विद्वानों को रथ में अश्वों के समान (योज नु) नियुक्त कर। वे राष्ट्र की व्यवस्था करें।

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णबन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजान्विन्द्र ते हरी ॥३॥

भा०—हे (मघवन्) राजन् ! विद्वन् ! ईश्वर ! (सुसंदृशं) राष्ट्र कार्यों, ज्ञानों और जगत् के समस्त व्यवहारों को उत्तम रीति से देखने हारे (त्वा) तुझको हम (वन्दिषीमहि) नमस्कार करें। तू (पूर्णबन्धुरः) पूर्ण रीति से स्नेहबन्धन से बंधकर (नूनं) निश्चय से (स्तुतः) स्तुति किया

जाकर (प्र याहि) आगे बढ़ (अनु वशान्) और शत्रुओं को वश कर।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजान्विन्द्र ते हरी ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र)! शत्रु नाशक! राजन्! (यः) जो (हारियोजनम्) वेगवान् अश्वों और अश्वारोहियों और विद्वानों को अपने अधीन नियुक्त करने वाले, (पूर्णं) पूर्ण (पात्रं) सबके पालक रक्षक सेनाबल को (चिकेतति) अच्छी प्रकार वश करता है (सः घ) वह ही (तं) उस (वृषणं) प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने वाले (गोविदम्) भूमि राज्य को प्राप्त करने वाले विजयी (रथम् अधितिष्ठाति) रथ पर विराजे। वैसा सामर्थ्यवान् होकर (ते) तू अपने (हरी) अश्वों और दोनों बाजू के सेना दलों को (योजनु) नियुक्त कर, संचालित कर।

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजान्विन्द्र ते हरी ॥५॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रकार के कर्म और प्रज्ञानों के ज्ञाता विद्वन्! (ते) तू अपने (हरी) दोनों अश्वों को (योज नु) रथ में जोड़। (ते) तेरे (दक्षिणः) दायें पार्श्व का (उत) और (सव्यः) बायें पार्श्व का अश्व भी (युक्तः अस्तु) अच्छी प्रकार से जुड़े। (तेन) उस रथ से (प्रियां जायां मन्दानः) पुत्रों की उत्पादक प्रिय स्त्री को और ऐश्वर्यों की उत्पादक प्रिय भूमि को (मन्दानः) हर्षित करता हुआ (अन्धसः उप याहि) ऐश्वर्यों को प्राप्त कर।

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥६॥

भा०—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्रास्त्र सेनाबल से युक्त सेनापते!

राजन्! विद्वन्! (ते) तेरे (केशिना) उत्तम केशों वाले (हरी) रथ को ले जाने वाले बलवान् अश्वों को मैं सारथि (ब्रह्मणा) अन्न धन के निमित्त या ज्ञान के साथ, रथ संचालन की कला के ज्ञान सहित (उपयुनज्मि) रथ में जोड़ूं (गभस्त्योः) अपने बाहुओं के अधीन उन दोनों अश्वों को तथा अपने अधीन राज्य-शकट के संचालक दोनों मुख्य पुरुषों को (दधिषे) रख। (उप प्र याहि) इस प्रकार तू विजय के लिए प्रयाण कर। (त्वा) तुझे (रभसाः) अति वेगवान् (सुतासः) दीक्षा प्राप्त सुभट (उत् अमन्दिषुः) खूब प्रसन्न करें और तू (पूषण्वान्) राष्ट्र पोषक वीर पुरुषों और भूमि का स्वामी होकर (पत्न्या) अपनी स्त्री, राजसभा, उत्तम नीति तथा पालक राजशक्ति के साथ (सम् अमदः) अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर। इति तृतीयो वर्गः॥

[८३] १–६ गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृज्जगती। २ जगती। ६ त्रिष्टुप्। व्यूहेन जगती वा॥ षडर्चं सूक्तम्॥

अश्वा॑वति प्रथ॒मो गोषु॑ गच्छति सुप्रा॒वीरि॑न्द्र॒ मर्त्य॒स्तवो॒तिभिः॑।
तमित्पृ॑णक्षि॒ वसु॑ना॒ भवी॑यसा॒ सिन्धु॒मापो॒ यथा॒भितो॒ विचे॑तसः॥१

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते! राजन्! (अश्वावति) अश्व से युक्त रथ या रथारोहियों के सेनादल में (प्रथमः) सबसे मुख्य (मर्त्यः) पुरुष (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षा साधनों से स्वयं (सुप्रावीः) सुख से समस्त प्रजाजनों की अच्छी प्रकार रक्षा करने में समर्थ होकर (गोषु) भूमियों, पशुओं के विजय द्वारा लाभ के निमित्त (गच्छति) जावें अथवा उत्तम प्रजारक्षक पुरुष तेरे किये रक्षार्थ विधानों द्वारा (अश्वावति) रथ पर बैठ कर (गोषु गच्छति) भूमियों पर विचरण करें। तू (तम् इत्) उसको ही (भवीयसा वसुना) बहुत ऐश्वर्य से ऐसे (पृणसि) पूर्ण कर (यथा) जैसे (विचेतसः आपः) चेतना रहित जलधाराएं अनायास (अभितः) सब तरफ से आ कर (सिन्धुम्) महान् सागर को पूर देती हैं।

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥

भा०—(आपः न) जैसे जलधाराएं स्वयं नीचे स्थल को प्राप्त हो जाती हैं वैसे ही (देवीः) विदुषी स्त्रियें (होत्रियम्) प्रेम पूर्वक स्वीकार करने वाले विद्वान् पुरुष को (उप यन्ति) प्राप्त हों । (यथा) जैसे लोग (रजः) सूर्य को (विततम्) विस्तृत रूप में देखते हैं वैसे ही वे स्त्रियें तथा विद्वान् (अवः) रक्षा-स्थान तथा ज्ञान का भी साक्षात् करें । (देवासः) विद्वान्, ज्ञान की कामना करने हारे पुरुष (प्राचैः) अपने आगे २ या अपने उत्तम रीति से आगे २ चलने वाले उत्तम विद्वानों सहित (देवयुम्) योग्य शिष्यों के स्वामी पुरुषों को (प्र नयन्ति) प्रमुख स्थान पर स्थापित करते हैं और वे सब मिलकर (वराः इव) वरण योग्य या श्रेष्ठ पुरुष जैसे कन्या के स्वयंवर में आकर कन्या की अभिलाषा करते हैं वैसे ही (ब्रह्म प्रियम्) वेद ज्ञान, परमेश्वर और ऐश्वर्य से पूर्ण उनके प्रिय विद्वान् पुरुष को (जोषयन्ते) प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं ।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! परमेश्वर ! (या) जो दोनों (मिथुना) परस्पर सम्मिलित स्त्री पुरुष, गुरु, शिष्य, राजा प्रजा आदि (यतस्रुचा) मन, वाणी, प्राणी और इन्द्रिय गण पर वशी होकर (समर्यतः) तेरी सेवा या आज्ञा पालन करते हैं तू (द्वयोः) उन दोनों के हित के लिये (उक्थ्यं वचः) उपदेश योग्य वचन (अदधाः) प्रदान कर । हे परमेश्वर ! जो (असंयत्तः) संयम वा जितेन्द्रियता से न रहने वाला पुरुष भी (ते व्रते) तेरे उपदेश किये नियम में (क्षेति) रहता है उस (सुन्वते यजमानाय) ऐश्वर्य के अभिलाषी, अपने आपको अधीन शिष्य रूप से अर्पण करने वाले दानशील

पुरुष की (भद्रा) कल्याण करने वाली (शक्ति) शक्ति (पुष्यति) पुष्ट हो जाती है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

भा०—(ये) जो (अङ्गिराः) जलते अंगारों के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष (इद्धाग्नयः) बाहर की यज्ञाग्नियों और भीतर की प्राणाग्नियों को प्रज्वलित करके (सुकृत्यया) उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त (शम्या) शान्ति-जनक साधना से (प्रथमं) प्रथम (वयः) अवस्था को ब्रह्मचर्य पूर्वक (दधिरे) धारण करते हैं (अङ्गिरा: पशुम्) बछड़ा जैसे अपनी माता को प्राप्त होता है और दूध आदि भोजन वा सुख पाता है वैसे ही वे (नरः) मनुष्य (पणेः) स्तुति योग्य उत्तम व्यवहार और उपदेश योग्य वेद-ज्ञान के (भोजनम्) पालन सामर्थ्य और (अश्वावन्तं) अश्वों और (गोमन्तम्) गौओं से युक्त ऐश्वर्य को (सम् अविन्दन्त) प्राप्त करते हैं।

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

भा०—(अथर्वा) प्रजाओं को पीड़ा न देने हारा, प्रजापालक पुरुष (यज्ञैः) उत्तम परस्पर के सङ्गति कराने वाले विद्या, विज्ञान, प्रचार तथा अन्य अन्य उत्तम साधनों से (प्रथमः) सबसे मुख्य पद पर स्थित होकर (पथः) नाना मार्गों, विधानों को (तते) बना लेता है, (ततः) उसके पश्चात् जैसे (सूर्यः) सूर्य उदय होकर (गा आ आजत्) अपनी किरणों को सब तरफ फेंकता है वैसे ही (वेनः) तेजस्वी (व्रतपा) व्रतों, धर्म नियमों का पालक पुरुष संसार में (आ अजनि) प्रकट होता है। (काव्यः) विद्वान् पुरुष संसार का पुत्र या शिष्य, सुशिक्षित, (उशना) प्रजा की हित कामना वाला पुरुष (गाः आजत्) समस्त वेदवाणियों को सर्वत्र प्रकाश करता है

और (काव्यः उशना) तेजस्वी, राज्यलक्ष्मी का इच्छुक राजा (गाः आजत्) भूमियों को प्राप्त करता है। (सचा) तब सब मिलकर हम (यमस्य) यम नियम में निष्ठ, सर्वनियन्ता परमेश्वर के (जातम्) प्रसिद्ध या प्रकाशित (अमृतम्) सब दुःखों से रहित, अमृतमय मोक्षसुख को सूर्य द्वारा वृष्टि जल के समान शान्तिदायक रूप में (यजामहे) प्राप्त करते हैं। उत्तम विद्वान् के भूमियां प्राप्त कर लेने पर (सचा) हम सब परस्पर संगठित होकर (यमस्य) सर्वनियन्ता राजा के (जातम्) प्रकट रूप से (अमृतम्) स्थिर शासन के सुख को (यजामहे) सुव्यवस्थित करते हैं। सूर्य के समान ज्ञानी आचार्य नव वाणियों का उपदेश करता है तब (यमस्य) यम नियम पालन रूप ब्रह्मचर्य के प्रकट (अमृतम्) अविनाशी वीर्य को हम प्राप्त करते हैं।

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति॥६॥

भा०—(वा) जैसे (स्वपत्याय) नीचे न गिरने देने वाले, श्रेष्ठ यज्ञ कर्म या उत्तम फल के प्राप्त करने के लिये (बर्हिः) कुशा घास (वृज्यते) काट ली जाती है वैसे ही (यत्) जिस राज्य में (सु-अपत्याय) उत्तम सन्तान के लिये (बर्हिः) यह समस्त भूलोक और उसमें रहने वाले प्रजाजन (वृज्यते) त्यागे जाते हैं और जहां (दिवि) आकाश में (अर्कः) सूर्य के समान (दिवि अर्कः) ज्ञान प्रकाश में अर्चना योग्य पुरुष (श्लोकम्) वेदवाणी का (आघोषते) सर्वत्र उपदेश करता है और (यत्र) जिस देश में (उक्थ्यः) उत्तम उपदेश करने योग्य वचनों में कुशल (कारुः) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष (ग्रावा) मेघ के समान गम्भीर ध्वनि से उपदेश करता हुआ (वदति) उपदेश करता है (तस्य इत्) उस प्रजाजन के हित के लिये (अभिपित्वेषु) सब प्रकार के प्राप्त करने योग्य व्यवहारों में (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्यों का दाता पुरुष (रण्यति) उपदेश करता है। इति चतुर्थो वर्गः॥

[८४] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता । छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ४ विराडनुष्टुप् । ६ भुरिगुष्णिक् । ७–६ उष्णिक् । १०, १२ विराट् पथ्यापंक्तिः । ११ निचृत् पथ्यापंक्तिः । १३–१५ निचृद्गायत्री । १६, १८ त्रिष्टुप् । १७ विराट् त्रिष्टुप् । १८ त्रिष्टुप् । (प्रगाथः =) । १९ एकोना विराट् पथ्या बृहती । २० निचृत् सतो बृहती पंक्तिः ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१॥

भा०—हे (घृष्णो) शत्रुओं का धर्षण करने हारे ! हे (शविष्ठ) अति शक्तिशालिन् ! हे (इन्द्र) राजन् ! सभाध्यक्ष विद्वन् ! तू (आगहि) हमें प्राप्त हो । (ते) तेरे लिये ही (सोमः) यह ओषधि रस, अन्न और ऐश्वर्य और अध्यात्म में परमानन्द रस (असावि) उत्पन्न होता है । (रश्मिभिः) किरणों से (सूर्यः न) सूर्य जैसे (रजः) समस्त अन्तरिक्ष को व्याप लेता है वैसे ही (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य, आत्मिक बल और सामर्थ्य (त्वा आपृणक्तु) तुझे सब प्रकार से पूर्ण करे ।

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥२॥

भा० —(हरी) वेगवान् अश्व (अप्रतिधृष्टशवसम्) जिसके बल को कोई परास्त नहीं कर सके ऐसे (इन्द्रम्) राजा को (इत्) ही (हरी) वेगवान् दोनों अश्व तथा दो ज्ञानवान् पुरुष (ऋषीणां च) वेदमन्त्रार्थों के ज्ञाता विद्वानों की स्तुतियों और (मानुषाणां यज्ञं च) मनुष्यों के यज्ञ को भी (वहतः) प्राप्त कराते हैं ।

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥३॥

भा०—हे (वृत्रहन्) सूर्य के समान शत्रु दल को छिन्न भिन्न करने हारे ! (ते हरी) तेरे अधीन कार्य निर्वाहक दो विद्वान्, दो अश्वों के समान (रथम्) रथ रूप राज्य-कार्य-भार में (युक्ता) नियुक्त हों। तू उस कार्य पर (आतिष्ठ) अधिष्ठाता रूप से विराज । (ग्रावा) उत्तम वचनोपदेशों का देने वाला वाग्मी पुरुष (वग्नुना) उत्तम ज्ञानोपदेश से (ते मनः) तेरे चित्त को (सुते) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य की ओर (अर्वाचीनम् कृणोतु) आकर्षित करे ।

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सदने ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (इमम्) इस (ज्येष्ठम्) सबसे उत्तम (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों को प्राप्त न होने वाले (मदम्) सबको सन्तुष्ट करने वाले, (सुतं) उत्तम ओषधि रस के समान (सुतम्) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यपद को (पिब) प्राप्त कर, उसका उपभोग कर । (त्वा) तुझे (शुक्रस्य ऋतस्य धाराः) शुद्ध जल की धाराओं के समान (शुक्रस्य) शुद्ध, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की व्यवस्थापुस्तक वेद की (धाराः) ज्ञानवाणियां (अभि अक्षरन्) सब प्रकार से तेरा अभिषेक करें, तुझे प्राप्त होकर ज्ञान प्रदान करें ।

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥५॥५॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा का (नूनम्) अवश्य (अर्चत) आदर करो और उसके लिये (उक्थानि च) शास्त्रोपदेशों का भी (ब्रवीतन) उपदेश करो । (सुताः) अभिषेक को प्राप्त होकर (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अमत्सुः) हर्ष को प्राप्त हों । हे प्रजाजनो ! आप लोग (ज्येष्ठं सहः) सबसे उत्तम बली का (नमस्यत) आदर किया करो ।

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (यत् हरी यच्छसे) जब तू अश्वों को जोड़ता है तब क्या (त्वत् रथीतरः नकिः) तुझसे बढ़कर उत्तम रथारोही कोई नहीं होता ? और (त्वा अनु) तेरे बराबर क्या (मज्मना) बल में भी (नकिः) कोई दूसरा नहीं होता ? और क्या (स्वश्वः नकिः आनशे) उत्तम अश्वारोही भी तुझसे दूसरा नहीं होता ? होता है। तब तू अति गर्व में मत भूल। सावधान होकर राज्य शासन कर। (त्वा अनु मज्मना नकिः) तेरे जैसा बल में दूसरा नहीं। (स्वश्वः नकिः आनशे) और न ही तुझसे दूसरा उत्तम अश्वारोही कोई राष्ट्र को भोग सकता है।

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥७॥

भा०—(यः) जो (एकः इत्) अकेला ही (दाशुषे) दानशील (मर्त्ताय) मनुष्य को (विदयते) ऐश्वर्य भी नाना प्रकार से देता है (अंग) हे विद्वान् लोगो ! वह ही (अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूल शब्द अर्थात् निन्दा से रहित अथवा जिसके समान पद पर दूसरे किसी को प्रस्तुत न किया जा सके ऐसा अद्वितीय अथवा किसी से पराजित न होने वाला (ईशानः) राष्ट्र का स्वामी हो।

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥८॥

भा०—(अंग) हे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (कदा) न जाने कब (अराधसं मर्त्तम्) वश न आने वाले धनहीन या बलहीन शत्रु को (पदा क्षुम्पम् इव) पैर से अहिच्छत्र के समान (स्फुरत्) उछाल

फेंक दे, नष्ट कर दे और वह (नः गिरः) हमारी वाणियां (कदा शुश्रवत्) न जाने कब सुन ले। 'क्षुम्पम्'—अहिच्छत्रकं भवति। इति यास्कः। अहिच्छत्रक को भाषा में 'पदबहेड़ा' कहते हैं जो बरसात में पड़े काठ पर गोल २ छतरी सी पैदा हो जाती है जिसे 'सांप की छतरी' या पंजाबी में 'खुम्बी' कहते हैं (क्षुम्प = खुम्ब)।

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग॥९॥

भा०—(अंग) हे राजन्! (यः चित्) जो पुरुष (हि) भी (बहुभ्यः) बहुतों में से (सुतावान्) ऐश्वर्य का स्वामी होकर (त्वा) तेरे अधीन (आविवासति) रह कर तेरी सेवा करता है (तत्) उसको (इन्द्र) तुझ राजा का (उग्रं शवः) भयकारी बल (पत्यते) प्राप्त होता है।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् १०।६

भा०—(गौर्यः) दीप्तियें, किरणें जैसे (वृष्णा) वृष्टि के कारणस्वरूप (इन्द्रेण) सूर्य के साथ २ (सयावरीः) रहने वाली (शोभसे) उसी की शोभा बढ़ाने के लिये (मदन्ति) प्रकाशित होती हैं और वे (स्वादोः) स्वादयुक्त (विषू-वतः) व्याप्ति से युक्त, सूक्ष्म होकर फैल जाने वाले, वाष्पमय (मधोः) जल को (पिबन्ति) पान कर लेती हैं (इत्था) वैसे ही (याः) जो (गौर्यः) अपने सेनापति की आज्ञा में रहने वाली या राष्ट्र में आनन्द से रमण करने वाली उत्तम वीर प्रजाएं और सेनायें (इन्द्रेण) अपने शत्रुहन्ता सेनापति के (सयावरीः) साथ २ रह कर चलती हैं वे (स्वादोः) आनन्दप्रद, (विषुवतः) व्यापक (मध्वः) अन्न और ऐश्वर्य का (पिबन्ति) भोग करती हैं और (स्वराज्यम् अनु) स्वराज्य प्राप्त करके (वृष्णा वस्वीः) वृषभ के साथ गौओं के समान (वस्वीः) राष्ट्र में रहने

वाली प्रजाएं (शोभसे) राष्ट्र की शोभा को बढ़ाने और नायक की तेजोवृद्धि के लिये उसके साथ ही (मदन्ति) हर्षित होती हैं।

ता अ॑स्य पृश॒नायुव॒ः सोम॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः।
प्रि॒या इन्द्र॑स्य धे॒नवो॒ वज्रं॑ हिन्वन्ति॒ साय॑कं॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ११

भा०—(धेनवः वस्वीः) दुधार गौएं जैसे (अस्य पृशनायुवः) अपने बच्चे से मिलना चाहती हुईं उसके लिये (सोमं श्रीणन्ति) दुग्ध रस प्रदान करती हैं वैसे ही (स्वराज्यम् अनु) अपने ही राज्य की वृद्धि के लिये (वस्वीः) राष्ट्रवासिनी प्रजाएं (इन्द्रस्य धेनवः) ऐश्वर्यवान् राजा को धारण और पोषण करने वाली और (इन्द्रस्य प्रियाः) उस राजा की प्रिय होकर उसके (सायकं) शत्रु का अन्त कर देने वाले (वज्रं) शस्त्रास्त्रयुक्त सैन्यबल की (हिन्वन्ति) वृद्धि करें और (ताः) वे (पृशनायुवः) आपस का स्पर्श अर्थात् एक दूसरे के साथ दृढ़ संगति, प्रेम रखती हुई (पृश्नय) किरणों के समान परस्पर मिश्रित होकर (सोमं) ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) परिपक्व करें।

ता अ॑स्य॒ नम॑सा॒ सह॑ः सप॒र्यन्ति॒ प्रचे॑तसः।
व्र॒तान्य॑स्य सश्चिरे पु॒रूणि॑ पू॒र्वचि॑त्तये॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१२॥

भा०—(ताः) वे (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान से युक्त, विदुषी (वस्वीः) प्रजाएं, (अस्य) इस नायक के (सहः) शत्रु पराजयकारी बल की (नमसा) अपने शत्रु को नमाने वाले शस्त्रास्त्र बल, सत्कार और अन्नादि से (सपर्यन्ति) आराधना करती हैं, उसकी वृद्धि करती हैं। (स्वराज्यम् अनु) अपने राज्यैश्वर्य की वृद्धि के लिये, (पूर्वचित्तये) अपने पूर्व पुरुषों के अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अस्य) अपने राजा के (पुरूणि व्रतानि) बहुत नियमों, विधानों और कर्तव्यों को (सश्चिरे) धारण करें, उनका पालन और रक्षण करें।

इन्द्रो॑ द॒धीचो॑ अ॒स्थभि॑र्वृ॒त्राण्यप्र॑तिष्कुतः। ज॒घान॑ नव॒तीर्नव॑ ॥१३॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जैसे (दधीचः) समस्त पदार्थों को धारण करने वाले वायु आदि पदार्थों में भी व्यापक प्रकाश के (अस्थभिः) आघात करने वाले, इधर उधर गति देने वाले किरणों से (वृत्राणि) मेघस्थ जलों को (जघान) आघात करता है, उनको छिन्न भिन्न करता है वैसे ही (अप्रतिष्कुतः) मुकाबले के प्रतिस्पर्धी शत्रु सेना से पराजित न होने वाला (इन्द्रः) अस्त्रों को छिन्न भिन्न करने वाला राजा (दधीचः) बल धारण या अस्त्रों को धारण करने वाले वीरों को अपने वश में रखने वाले वीर सेनापति के (अस्थभिः) बाण फेंकने में कुशल वीर सैनिकों से (नवतीः नव) नवगुण नब्बे [८१०] वृत्राणि बढ़ते शत्रुसैन्यों को (जघान) पराजित करे। 'नवतिः नव ८१० वृत्राणि–'८१० शत्रुसैन्य कैसे ! शत्रु, मित्र और उदासीन भेद से तीन हुए, उनके मित्र और मित्रों के मित्र इस प्रकार प्रत्येक के तीन तीन होकर ९ भेद हुए। उत्तम, अधम और मध्यम भेद से प्रत्येक के २७ हुए। इनमें भी प्रत्येक प्रभाव, उत्साह और मंत्र इन तीन शक्तियों के भेद से ८१ हुए। दश दिशा भेद से ८१० हुए।

इ॒च्छन्नश्व॑स्य॒ यच्छिरः॒ पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितम्। तद्वि॑दच्छर्य॒णाव॑ति ॥१४॥

भा०—(अश्वस्य) शीघ्रगामी मेघ का (शिरः) मुख्य भाग, अथवा (यत्) जो (शर्यणावति) आकाश में और (पर्वतेषु) मेघों के खण्ड २ में व्यापक है उसको जैसे सूर्य अपनी किरणों से व्याप लेता है और छिन्न भिन्न करता है वैसे ही (इच्छन्) विजय की कामना करता हुआ पुरुष (अश्वस्य) तुरग बल या व्यापक राष्ट्र का (यत् शिरः) जो मुख्य भाग (पर्वतेषु) पर्वत अर्थात् पालक बल से सुरक्षित भागों में या पर्वत के समान उन्नत और प्रजापालक पुरुषों पर (अपश्रितम्) आश्रित है (तत्) वह उसको (शर्यणावति) हिंसा वाले, संग्राम या सैन्यबल के आश्रय पर (विदत्) प्राप्त करे।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।१५।७

भा०—(अत्र) इस संसार में विद्वान् जन (त्वष्टुः) सूर्य के (गोः) किरणों के जैसे (अपीच्यम्) उत्तम, प्रकट, उज्ज्वल (नाम) स्वरूप को (अमन्वत) जानते हैं (इत्था) ऐसे ही स्वरूप को वे (चन्द्रमसः गृहे) चन्द्रमा के भीतर भी जानें अर्थात् वहां भी वही सूर्य रश्मियों का प्रकाश है ।

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१६॥

भा०—[प्रश्न] (अद्य) आज के समान सदा (कः) कौन समर्थ पुरुष (ऋतस्य धुरि गाः) गतिशील रथ में जैसे बैलों या वेगवान् अश्वों को जोड़ा जाता है वैसे ही (ऋतस्य धुरि) सत्य न्याय प्रकाशन, वेद ज्ञान अध्ययनाध्यापनादि कार्यों के धुरा उठाने के कार्यों में (शिमीवतः) उत्तम कर्मों वाले (भामिनः) विरोधियों पर असह्य क्रोध करने वाले (दुर्हृणायून्) विरोधियों से असह्य, पराक्रम और कोप करने वाले (आसन् इषून्) मुख्य लक्ष्य पर वाण फेंकने वाले, लक्ष्यवेधी (हृत्स्वसः) शत्रु के हृदय आदि मर्मस्थानों पर निशाना लगाने वाले, (मयोभून्) प्रजा को शान्ति देने वाले वीर, मर्मच्छेदी सुखप्रद पुरुषों को (युङ्क्ते) कार्य में लगाये रखता है ? [उत्तर] (कः) वह प्रजापति, राजा ही इनको राष्ट्र के उचित कर्मों में नियुक्त करे । (यः) जो राजा (एषाम्) इन उक्त लोगों की (भृत्याम्) भरण पोषण या जीविका पर लगी सेना को, (ऋणधत्) खूब प्रबल, समृद्ध कर लेता है (सः) वही राजा (जीवात्) जीया करता है, उसका राज्य चिरस्थायी रहता है ।

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥१७॥

भा०—(कः ईषते) कौन युद्ध में आगे बढ़ता, शत्रुओं को मारता या सब प्रजा और सेना पर निरीक्षण या शासन करता है ? (कः तुज्यते) कौन मारा जाता है ? (कः बिभाय) कौन डरता या शत्रु को डराता है ? (कः मंसते) कौन मान आदर करता है ? (सन्तम् इन्द्रम्) विद्यमान राजा के (कः) कौन (अन्ति) समीप रहता है ? (कः) कौन (तोकाय) प्रजा के सन्तानों की रक्षा के लिये योग्य है ? (कः इभाय) हाथी आदि युद्धोपयोगी पशुओं की रक्षा के लिये कौन उपयोगी है ? (उत) और (राये अधि) धन या कोश की रक्षा के लिये, (तन्वे) विस्तृत राष्ट्र या (जनाय तन्वे कः) प्रजाजनों की शारीरिक उन्नति के लिये (कः) कौन (ब्रवत्) शिक्षा देता है ? इत्यादि बातों का राजा विचार कर यथायोग्य पुरुषों को नियुक्त करे ।

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥१८॥

भा०—(अग्निम् हविषा घृतेन) अग्नि को जैसे हविष्य आहुति और घृत से यज्ञ में बढ़ाया जाता है और जैसे अन्न और घृत के भोजन से (अग्निम्) जाठराग्नि या जीवन को पुष्ट किया जाता है वैसे ही (हविषा) सबके स्वीकारने योग्य धन, विज्ञान और (घृतेन) तेजोयुक्त पराक्रम से (अग्निम्) युद्ध के बीच आग्नेयास्त्र और राष्ट्र के बीच में स्थित तेजस्वी राजा को पुष्ट करता है और (ध्रुवेभिः) स्थिर, नियम से अवश्य आने वाले (ऋतुभिः) ऋतुओं से (स्रुचा) स्रुच् नाम यज्ञपात्र से (कः यजाते) कौन यज्ञ करता है ? और (ध्रुवैः ऋतुभिः) स्थिर राजसभा के सदस्यों द्वारा या (स्रुचा) ज्ञानयुक्त वाणी द्वारा (कः यजाते) कौन सत्संग करने और परस्पर वादानुवाद करने में निपुण है ? (देवाः) विद्वान् और वीर पुरुष (कस्मै) किसके हितार्थ (आशु) शीघ्र ही (होम) ग्राह्य, एवं स्वीकार्य पदार्थों को (आवहान्) लाते और किसके वचनों को आदर से धारते हैं ? (कः) कौन (वीतिहोत्रः) नाना विज्ञानों को प्राप्त करने वाला, (सुदेवः) उत्तम

द्रष्टा, तेजस्वी और युद्धकुशल है ? (कः मंसते) कौन सब कुछ जानता है और सब पर ध्यान रखने और चलाने में समर्थ है ? राजा कर्मचारियों को नियुक्त करने के पूर्व ही विचार ले ।

त्वम॒ङ्ग प्र शं॑सिषो दे॒वः श॑विष्ठ॒ मर्त्य॑म् ।
न त्वद॒न्यो म॑घवन्नस्ति मर्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवी॑मि ते॒ वचः॑ ॥१९॥

भा०—(अङ्ग) हे राजन् ! (शविष्ठ) शक्तिशालिन् ! (त्वम् देवः) तू विजयेच्छु और सब कार्यदर्शी होकर ही (मर्त्यम्) मनुष्यों को (प्र शंसिषः) उत्तम मार्ग का उपदेश कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) शत्रु-नाशक ! (त्वद् अन्यः) तेरे अतिरिक्त दूसरा कोई (मर्डिता न अस्ति) प्रजाओं को सुख देने हारा नहीं है । (ते वचः) तेरे लिये मैं धर्मयुक्त वाणी का (ब्रवीमि) उपदेश करूं ।

मा ते॒ राधां॑सि॒ मा त॑ ऊ॒तयो॑ वसो॒ऽस्मान्कदा॑ च॒ना द॑भन् ।
विश्वा॑ च न उपमिमी॒हि मा॑नुष॒ वसू॑नि चर्ष॒णिभ्य॒ आ ॥२०॥८॥१३॥

भा०—हे (वसो) समस्त प्रजाजनों को राष्ट्र में सुख से बसाने हारे ! (ते राधांसि) तेरे ऐश्वर्य, समृद्धियां या समृद्ध होने के साधन (अस्मान्) हम प्रजाजनों को (कदाचन) और कभी भी (मा दभन्) विनाश न करें । (ते ऊतयः) तेरे राष्ट्र की रक्षा करने के उपाय और शत्रुओं को कंपा देने वाली सेना चतुरंग आदि भी (अस्मान् कदाचन मा दभन्) कभी हमारा नाश न करें । हे (मानुष) मननशील पुरुष ! (विश्वा च वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नः) हमारे (चर्षणिभ्यः) दीर्घदर्शी प्रजा पुरुषों के उपकार के लिये (आ उप मिमीहि) प्राप्त कर ।

[८५] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता छन्दः—१, २, ६, जगती । ३, ७, ८ विचृज्जगती । ४, १० विराड्जगती । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप्, व्यूहेन जगती । १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१॥

भा०—(यामन्) जाने के अवसर पर (जनयः न) जैसे स्त्रियें (शुम्भन्ते) अपने को सजाती हैं और (यामन्) जाने योग्य मार्ग में जिस प्रकार (सप्तयः) वेग से जाने वाले अश्व (शुम्भन्ते) शोभा प्राप्त करते हैं, वैसे ही (रुद्रस्य सूनवः) शत्रुओं को रुलाने वाले राजा और उपदेष्टा आचार्य के (सूनवः) पुत्र के समान पदाभिषिक्त शासक वीर सैनिक और शिष्य गण (सुदंससः) उत्तम कर्म और आचरण वाले (मरुतः) विद्वान्, वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले (घृष्वयः) पर-पक्ष वालों से संघर्ष करने वाले (वीराः) वीरगण, (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या स्वपक्ष और परपक्ष दोनों की (वृधे) वृद्धि के लिये, (चक्रिरे) कार्य करते हैं और (विदथेषु) संग्रामों और ज्ञान लाभ के अवसरों पर (मदन्ति) हर्षित होते हैं।

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२॥

भा०—जैसे (उक्षितासः) जलों को बरसाने वाले (रुद्रासः) वायुगण (दिवि सदः चक्रिरे) आकाश में स्थान प्राप्त करते या सूर्य के प्रकाश से आश्रय लेते हैं और (महिमानम् आशत) महान् बल को प्राप्त करते हैं। (अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः) सूर्य का आश्रय लेते हुए वे बल और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं। वे (पृश्निमातरः श्रियो दधिरे) आदित्य से उत्पन्न होने वाले या मेघ के उत्पादक वायुगण शोभा को धारण करते हैं वैसे ही (ते) वे (उक्षितासः) अपने २ पदों पर नायक रूप से अभिषिक्त हुए (रुद्रासः) शत्रुओं को रुलाने हारे वीर नायकगण (महिमानम्) अपने महान् सामर्थ्य को (आशत) प्राप्त करें और (दिवि) सूर्य के समान तेजस्वी

पद पर (सदः चक्रिरे) अपना उत्तम स्थान बनवावें। वे (अर्कम् अर्चन्तः) सूर्य के समान तेजस्वी, आदर योग्य प्रधान राजा का आदर करते हुए (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (जनयन्तः) उत्पन्न करते हुए (पृश्निमातरः) भूमि को अपनी माता मानते हुए (श्रियः) राज्यवासियों पर (अधिदधिरे) अपना पूर्ण अधिकार करें।

गोमा॑तरो॒ यच्छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑स्त॒नूषु॑ शु॒भ्रा द॑धिरे वि॒रुक्म॑तः। बाध॑न्ते॒ विश्व॑मभिमा॒तिन॒मप॒ वर्त्मा॑न्येषा॒मनु॑ रीयते घृ॒तम्॥३॥

भा०—जैसे (गोमातरः) सूर्य, पृथिवी या वायुगण (अञ्जिभिः) विद्युतों से सुशोभित होते हैं और अपने में (विरुक्मतः) विविध कान्ति वाले मेघों को धारण करते हैं, (विश्वम् अभिमातिनम् बाधन्ते) विविध दिशाओं में फैलने वाले मेघ को पीड़ित करते हैं तब (एषां वर्त्मानि घृतम् रीयते) उनके मार्गों पर ही मेघ का जल भी जाता है अर्थात् जिधर वायु बहता है मेघ की वृष्टि उधर ही जाती है। ठीक ऐसे ही (गोमातरः) पृथिवी माता के पुत्र (यत्) जब (अञ्जिभिः) नाना पदों और मान प्रतिष्ठा से (शुभयन्ते) अपने को सुशोभित करते हैं और (शुभ्राः) शुद्ध होकर (तनूषु) शरीरों पर (विरुक्मतः) दीप्ति वाले आभूषणों, वस्त्रों और शस्त्रास्त्रों को (दधिरे) धारते हैं और (विश्वम्) सब प्रकार के (अभिमातिनम्) गर्वीले शत्रु को (बाधन्ते) पीड़ित अर्थात् परास्त करते हैं तब (एषां वर्त्मानि) इन मार्गों पर ही (घृतम्) तेजस्वी शस्त्रास्त्र बल, राज्यपद (रीयते) चलता है।

वि ये भ्राज॑न्ते॒ सुम॑खास ऋ॒ष्टिभिः॑ प्रच्य॒ावय॑न्तो॒ अच्यु॑ता चि॒दोज॑सा। म॒नो॒जुवो॒ यन्म॑रुतो॒ रथे॒ष्वा वृष॑व्रातासः॒ पृष॑ती॒रयु॑ग्ध्वम्॥४॥

भा०—जैसे (मरुतः) वायुगण (सुमखासः) सूर्य प्रकाश को धारण करने वाले होकर (ऋष्टिभिः) आघात करने वाली विद्युतों से चमकते हैं

और (ओजसा) बल से (अच्युता प्रच्यावयन्तः) न गिरने वाले जलों को बरसाते हुए (मनोजुवः) मन के समान तीव्र वेग वाले तथा (वृषव्रातासः) वर्षणशील मेघ से युक्त होकर (पृषतीः) वर्षणशील मेघमालाओं को एकत्र करते हैं, वैसे ही (ये) जो (सुमखासः) संग्राम में कुशल होकर (ऋष्टिभिः) शत्रुबल नाशक शस्त्रों से (भ्राजन्ते) चमचमाते और अपने (अच्युता ओजसा) अक्षय पराक्रम से (प्रच्यावयन्तः) प्रबल शत्रुओं को पदभ्रष्ट और रण से विमुख करते हुए (यत्) जब (मनोजुवः) मन के समान अति तीव्र वेग वाले होकर (रथेषु) रथों पर विराजते हो तब हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप लोग (वृषव्रातासः) शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों के वर्षण करने वाले वीर पुरुषों के गणों को साथ लिये हुए (पृषतीः) प्रबल सेनाओं को (अयुग्ध्वम्) अपने अधीन नियुक्त करो, (ओजसा अच्युता प्रच्यावयन्तः) पराक्रम से प्रबल शत्रुओं को गिराते हुए (रथेषु) अपने रथों में (पृषतीः) हृष्ट पुष्ट घोड़ियों के समान (रथेषु पृषतीः) रथों के अधीन शस्त्रवर्षी अगल बगल में पदाति सेनाओं का संचालन करो।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

भा०—(मरुतः) वायुएं जैसे (वाजे) पृथ्वी पर अन्नादि की उत्पत्ति के लिये (अद्रिं रंहयन्तः) मेघ को लाते व (पृषतीः) जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को एकत्र करते हैं, (अरुषस्य) चमचमाते सूर्य के बल से (धाराः) जलधाराओं को (वि स्यन्ति) विविध दिशाओं में बरसा देते हैं और (उदभिः भूम व्युन्दन्ति) जलों से समस्त भूमि को (चर्म इव) चमड़े के समान तरबतर करते हैं, वैसे ही (मरुतः) हे विद्वान् जनो ! आप लोग (यत्) जब २ और जिन २ यन्त्र आदि में (पृषतीः) जल सेचन करने वाली यन्त्र-कलाओं को (अयुग्ध्वम्) जोड़ कर बनाओ तब (वाजे) वेग उत्पन्न करने के लिये (अद्रिम्) स्थिर मेघ के समान जल-वर्षक यन्त्र को

(रंहयन्तः) चलाते रहो (उत) और (अरुषस्य) दीप्त अग्नि के बल से (धाराः) नाना जल-धाराएं (वि स्यन्ति) विविध दिशाओं में छूटें और वे (उदभिः) जलों से (चर्म इव भूम व्युन्दन्ति) थोड़ी सी भूमि के समान ही बहुत बड़ी भूमि को तरबतर कर दें।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥६॥

भा०—(मरुतः) जैसे वायुगण के (सप्तय रघुष्यदः) वेगवान् झकोरे शीघ्रगामी होते हैं, (बर्हिः) अन्तरिक्ष में व्यापते (मध्व:) जलों और (अन्धसः) अन्नों से सबको तृप्त करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों को (रघुष्यदः) वेग से मार्गों में भागने वाले, (रघुपत्वानः) अति स्वल्प काल में बहुत सा मार्ग चले जाने वाले (सप्तयः) अश्व गण (वहन्तु) धारण करें। आप वेगवान् अश्वों पर सवारी करें। आप लोग (बाहुभिः) अपने बाहुबलों से (प्र जिगात) अच्छी प्रकार आगे बढ़ो। (बर्हिः सीदत) इन भूमिवासी प्रजाओं पर शासक रूप से विराजमान होवो। (वः सदः) आप लोगों का गृह, सभास्थान आदि (उरुकृतम्) विशाल रूप में बनाया जावे। आप (मध्वः) मधुर जल और (अन्धसः) अन्न आदि रसों का (मादयध्वम्) उपभोग करके स्वयं तृप्त और आनन्दित हो। इति नवमो वर्गः ॥

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७॥

भा०—वायुगण जैसे (स्वतवसः) अपने बल से युक्त होकर (नाकं तस्थुः) आकाश में स्थित हैं वैसे ही (ते) वे वीर जन भी (स्वतवसः) अपने बल से बलशाली होकर (महित्वना) भारी सामर्थ्य से (अवर्धन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं। और (उरु) विशाल (नाकं सदः) सुखप्रद गृह को

(चक्रिरे) बनावे और (तस्थुः) उसमें रहे । (बर्हिषि) आकाश में जैसे (मदच्युतं) जल के गिराने वाले (वृषणं) वृष्टिकारक मेघ को (विष्णुः आवत्) व्यापक या भीतर २ तक प्रविष्ट होने वाला प्रकाशक सूर्य (आवत्) प्राप्त होता है और उसमें व्यापता है और उसके ऊपर के आकाश में (वयः न) पक्षी के समान ऊपर २ रहता है वैसे ही (विष्णुः) व्यापक शक्ति और ज्ञान वाला विद्वान् (मदच्युतं वृषणम्) शत्रुओं के मद को नाश करने और प्रजा के हर्ष को बढ़ाने वाले सैन्य गण को (आ आवत्) सब प्रकार से रक्षा करे (प्रिये) ऐश्वर्य से तृप्ति करने वाले और प्रिय (बर्हिषि अधि) अन्तरिक्ष के समान उच्चासन या भूमि-शासक के पद पर (वयः) आकाश में सूर्य समान तेजस्वी होकर (अधितस्थुः) अधिष्ठित होकर रहे ।

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

भा०—जैसे वायुगण (पृतनासु) समस्त मनुष्यों में प्राण रूप से सब प्रकार के प्रयत्नों और चेष्टाओं को करते हैं वैसे ही वे (युयुधयः न) युद्ध करने वाले (शूरा इव) शूरवीर पुरुषों के समान विद्वान् सदा सावधान होकर (जग्मयः) अपने कार्यों पर जाने वाले (श्रवस्यवः न) ज्ञानों के धर्त्ता और यशों के अभिलाषी होकर (पृतनासु) प्रजाओं और संग्रामों के बीच (येतिरे) नाना प्रयत्न और उद्योग करें । उन (मरुद्भ्यः) विद्वान् और उद्योगी पुरुषों से (विश्वा भुवना) समस्त लोक और प्राणी (भयन्ते) भय करते हैं । वे (राजानः) राजाओं के (नरः) नायक पुरुष (त्वेषसंदृशः) पराक्रम को दिखलाने वाले हों ।

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्त्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९॥

भा०—(त्वष्टा यद्वद्) सूर्य जैसे (सहस्रभृष्टिं) सहस्रों पाक करने वाले, तापदायक और (हिरण्ययं) तेजोमय (वज्रम्) किरण समूह को (अवर्तयत्) प्रकट करता है और उसको (अपांसि कर्तवे धत्ते) नाना कर्म करने के लिये धारण करता है उससे ही (वृत्रं अहन्) मेघ को आघात करता और (अपाम् अर्णवम् निर् औब्जत्) जलों के सागर रूप मेघ को नीचे गिरा देता है अर्थात् प्रचुर वृष्टि करता है वैसे ही (सु-अपाः त्वष्टा) उत्तम प्रजाहित के कर्मों के करने हारा तेजस्वी पुरुष (हिरण्ययम्) प्रजा के हित और उनको अच्छा लगने वाला (सहस्रभृष्टिं) सहस्रों शत्रुसैन्यों को गिरा देने वाला, (सुकृतम्) उत्तम रीति से बने (यत्) जिस (वज्रं) शस्त्रास्त्र बल को (अवर्तयत्) संचालित करता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वह सेनापति या राजा उस सैन्यबल को (निर) नायक के अधीन रखकर (अपांसि) नाना कर्म (कर्तवे) करने के लिये (धत्ते) धारण करता, पुष्ट करता है, उससे ही (वृत्रं अहन्) बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को दण्डित करता है और (अपाम् अर्णवम्) शत्रु सैनिकों के सागर को भी (निर् औब्जत्) सर्वथा नीचे गिरा देता है ।

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥

भा०—(मरुतः) वायुगण (ओजसा) अपने बल या सूर्य के तेज से (अवतं) नीचे भूमि पर स्थित जल को (ऊर्ध्वं नुनुद्रे) ऊपर उठा ले जाते हैं और वे ही (दादृहाणं) बढ़ते हुए (पर्वतम्) मेघ को (वि बिभिदुः) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न कर देते हैं । वे (वाणं) जलों के मेघ समूह को (धमन्तः) कंपाते हुए (सोमस्य पदे) सूर्य वा जल के बल पर (रण्यानि चक्रिरे) संग्राम के सदृश बल युक्त या रमणीय कार्यों को करते हैं वैसे ही (ते मरुतः) ये वीर, विजयेच्छु सैनिक गण (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (अवतम्) नीचे गिरे हुए राष्ट्र को (ऊर्ध्वं नुनुद्रे) ऊंचा

कर उठावें। और (दादृहाणं) बराबर बढ़ते हुए, दृढ़ (पर्वतम्) नाना सामर्थ्यों से युक्त, पर्वत के समान दुर्गम, बीच में बाधा डालने वाले शत्रु को (ओजसा) अपने पराक्रम से (वि बिभिदुः) विविध उपायों से तोड़ फोड़ डालें। वे (सुदानवः) दानशील या उत्तम रीति से शत्रु बल को खण्ड २ कर देने में कुशल (वाणं) बाण आदि शस्त्रास्त्रों को अग्नियुक्त अर्थात् तेज करते हुए और (वाणं धमन्तः) शब्द करने वाले मारू बाजे को बजाते हुए (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष में (रण्यानि) संग्रामोचित नाना कर्मों को (चक्रिरे) करें।

जि॒ह्मं नु॑नुद्रेऽव॒तं तया॑ दि॒शासि॑ञ्च॒न्नुत्सं॒ गोत॑माय तृ॒ष्णजे॑।
आ ग॑च्छन्ती॒मव॑सा चि॒त्रभा॑नवः॒ कामं॒ विप्र॑स्य तर्पयन्त॒ धाम॑भिः॥११

भा०—वायुगण (तृष्णजे गोतमाय) प्यासे किसान के हित के लिये या प्यासे प्रदेशों के लिये (तया दिशा) उसी दिशा से (अवतम्) प्रजा की रक्षा करने वाले (उत्सम्) कूप के समान अगाध जल को धारण करने वाले जलप्रद मेघ को (जिह्मम्) तिरछा, आकाश मार्ग से (नुनुद्रे) उड़ा ले जाते हैं और (असिञ्चन्) जल बरसा देते हैं। वे (चित्रभानवः) अद्भुत कान्तियों से युक्त होकर (ईम् आगच्छन्ति) उस प्रदेश को प्राप्त हो जाते हैं। (विप्रस्य) विविध प्रकारों से भूमियों को जल और अन्नादि से पूर्ण कर देने वाले मेघ के (धामभिः) धारण पोषणकारी जलों से (कामं) कामना युक्त प्रजाजन को (तर्पयन्त) उनकी अभिलाषानुसार खूब तृप्त कर देते हैं। वैसे ही (चित्रभानवः) चित्र विचित्र दीप्ति वाले, आग्नेयादि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित वीरगण (तृष्णजे गोतमाय) और अधिक ऐश्वर्य के अभिलाषी 'गोतम' अर्थात् पुरुष पुंगव, नरश्रेष्ठ राजा की वृद्धि के लिये (तया दिशा) उसी दिशा से अर्थात् विजय करने की रीति से (अवतं) कूप के समान नीच (जिह्मम्) कुटिलगामी, शत्रुजन को (नुनुद्रे) मारें भगावें और (उत्सं) उत्तम मार्ग से जाने वाले भले पुरुषों को (धामभिः) नाना ऐश्वर्यों से वृक्ष

के समान सींच २ कर बढ़ावें। (अवसा) अपने रक्षण, सामर्थ्य और ज्ञानबल से (इम्) इस राजा को (आगच्छन्ति) प्राप्त हों और उसको (विप्रस्य) विद्वान् गण तथा विविध ऐश्वर्यों और तेजों से पूर्ण सूर्य की (धामभिः) किरणों के समान प्रजा को पोषणकारी सामर्थ्यों से (तर्पयन्त) खूब तृप्त करें।

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्॥१२॥१०

भा०—(मरुतः) प्राण गण जैसे (शशमानाय दाशुषे) शम आदि साधना करने वाले पुरुष को (त्रिधातूनि शर्म) शरीर के धारण करने वाले वात, पित्त, कफ इन तीन धातुओं से युक्त सुखों या इनसे बने देहों को वश करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) विद्वानो और वीर पुरुषो ! (वः) तुम्हारे (या) जो (त्रिधातूनि) लोह, सुवर्ण और रजत तीनों धातुओं के बने अथवा वाणी, मन और तीनों का पोषण करने वाले (शर्म) सुखप्रद साधन (सन्ति) हैं उनको तुम लोग (शशमानाय) उत्तम ज्ञानोपदेश करने वाले (दाशुषे) ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुषों के लिये (अधि यच्छत) प्रदान करो। (तानि) वे ही सुख साधन हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! (अस्मभ्यम्) हमें भी (वियन्त) विशेष रूप से प्रदान करो। (वृषणः) सुखों के वर्षक ! आप लोग (नः) हमें (सुवीरम्) वीर पुत्रों और पुरुषों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (धत्त) प्रदान करो। इति दशमो वर्गः ॥

[८६] गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—गायत्री। ५, ६, १० निचृद्। २, ३, ७ पिपीलिकामध्या दशर्चं सूक्तम् ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥१॥

भा०—हे (विमहसः) विशेष तेजों वाले ज्ञानों और प्रभावों से युक्त (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! आप लोग (यस्य क्षये) जिसके घर में

या जिसके आश्रय रह कर (दिवः) पृथिवी, विद्या और विज्ञान की (पाथ) रक्षा करते हो (सः) वह (जनः) मनुष्य (सुगोपातमः) उत्तम रक्षक है ।

युज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥२॥

भा०—हे (यज्ञवाहसः) ज्ञान के श्रवण और प्रवचन को धारण करने और प्राप्त कराने वाले (मरुतः) देह में प्राण के समान, राष्ट्र में जीवन धारण कराने हारो ! आप लोग (यज्ञैः) पूर्व कहे उत्तम २ कर्मों द्वारा (वा) और दूसरे परोपकार कार्यों द्वारा (विप्रस्य) विद्वान् और (मतीनां वा) मननशील पुरुषों के (हवम्) उपदेशों को (शृणुता) श्रवण करो और कराओ ।

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥३॥

भा०—(उत वा) और (यस्य वाजिनः) जिस ज्ञानैश्वर्यं वाले पुरुष के (अनु) अधीन रहकर (विप्रम् अतक्षत) विद्वान् पुरुष को गुरु जन और अधिक तीक्ष्ण बुद्धि वाला विद्वान् बना देते हैं (सः) वह (गोमति व्रजे) ज्ञान वाणियों के मार्ग में तथा इन्द्रियों के ज्ञान करने के मार्ग में (गन्ता) सफलता से जाने वाला हो ।

अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥४

भा०—(बर्हिषि) वृद्धिशील प्रजाजन के निमित्त तथा (दिविष्टिषु) दिव्य उत्तम कर्मों के निमित्त (अस्य वीरस्य) इस वीर्यवान् पराक्रमी पुरुष को (सुतः) अभिषेक द्वारा प्राप्त हुआ (सोमः) राज्यैश्वर्य (उक्थं) उत्तम वचन, (मदः) आनन्द, हर्ष (च) और अन्यान्य गुण भी (शस्यते) प्रशंसा योग्य होते हैं ।

अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः॥५॥११

भा०—(यः) जो (चर्षणीः अभि) सब विद्वानों के प्रति कृपालु है और (सूरं चित्) सूर्य के चारों ओर जिस प्रकार किरणें सूर्य के अधीन रहती हैं उसी प्रकार (विश्वाः) समस्त (भुवः) बलशालिनी भूमिवासिनी (सस्रुषीः) वेग से जाने वाली (इषः) प्रजाएं और सेनाएं (अस्य) इस राष्ट्रपति के आज्ञा-वचनों को (श्रोषन्तु) श्रवण करें। इत्येकादशो वर्गः ॥

पूर्वीभिर्हि द॑दाशि॒म श॒रद्भि॑र्मरुतो व॒यम्। अवो॑भिश्चर्षणी॒नाम् ॥६॥

भा०—(मरुतः) वायुगण (शरद्भिः) शरत् आदि ऋतुओं से जैसे (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं वैसे ही (पूर्वीभिः अवोभिः) पूर्व के विद्वानों से प्राप्त रक्षा-साधनों और ज्ञानों से (वयम्) हम लोग (हि) भी (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के लिये सुख साधन (ददाशिम) दें।

सु॒भगः॒ स प्र॑यज्यवो॒ मरु॑तो अस्तु॒ मर्त्यः॑। यस्य॒ प्रयां॑सि॒ पर्ष॑थ ॥७॥

भा०—(मरुतः प्रयज्यवः) जैसे वायुगण और प्राणगण उत्तम सुखों के दाता होकर (प्रयांसि) अन्न, जल आदि प्रिय पदार्थों को वर्षाते हैं और भूमि निवासी ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं वैसे ही हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! (प्रयज्यवः) उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्य के देने वालो ! आप (यस्य) जिसको (प्रयांसि) अन्न और आत्मा को तृप्त करने वाले ज्ञान आदि (पर्षथ) प्रदान करते हैं (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (सुभगः अस्तु) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी हो।

श॒श॒मा॒नस्य॑ वा नरः॒ स्वेद॑स्य सत्यशवसः। वि॒दा काम॑स्य॒ वेन॑तः ॥८॥

भा०—हे (नरः) नायक पुरुषो ! (सत्यशवसः) सत्य ज्ञान और नित्य बल से युक्त पुरुषो ! (स्वेदस्य) पसीना बहाने वाले, (शशमानस्य) सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाले, (वेनतः) उत्तम कामना वाले पुरुष के (कामस्य) उत्तम संकल्प को (विद) जानो।

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः ६

भा०—हे (सत्यशवसः) सत्य ज्ञान और नित्य बल वाले, हृष्ट पुष्ट पुरुषो ! (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (यूयम्) तुम लोग (तत्) अभिलाषा करने योग्य पुरुषार्थ को (आविष्कर्त) प्रकट करो, और (रक्षः) कामना योग्य पदार्थों की प्राप्ति में विघ्नकारी पुरुषों और बाधक कारणों का (विद्युता) उत्तम प्रकाश युक्त ज्ञान और विशेष दीप्ति वाले आग्नेय शस्त्रास्त्र के प्रयोग से (विध्यत) विनाश करो।

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥१०॥१२॥

भा०—आप लोग अपने ज्ञान सामर्थ्य से (गुह्यं) बुद्धि में स्थित (तमः) अज्ञान रूप अन्धकार को (वि गूहत) विनष्ट करो और (विश्वम् अत्रिणम्) सर्वस्व नाशक कामतृष्णा रूप तामस विकार को (वि यात) विविध उपायों से दूर करो। (यत् उष्मसि) जिस परम ज्ञानमय तेज की हम कामना करें उस (ज्योतिः) उत्तम प्रकाश को (कर्त) प्रकट करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[८७] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ विराड् जगती। ३ जगती। ६ निचृज्जगती। ४ त्रिष्टुप्। व्यूहेन वा जगती।

षड्चं सूक्तम् ॥

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१

भा०—(केचित्) कुछ वीर पुरुष (उस्राः इव) किरणों के समान हों। वे (प्रत्वक्षसः) तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं की खूब काट छांट करने में कुशल (प्रतवसः) सब प्रकार से शक्तिशाली (अवानताः) शत्रु के सामने

कभी न झुकने वाले, (ऋजीषिणः) ऋजु, सरल धर्म युक्त मार्ग में जाने वाले (जुष्टतमासः) राजकार्यों में खूब सेवा करने वाले (अविथुराः) भय से कभी न कांपने वाले (नृतमासः) उत्तम नेता पुरुष (स्तृभिः) विस्तृत राष्ट्र पर आच्छादन, अपना अधिकार या शासन करने वाले, शत्रु नाशक, (अञ्जिभिः) रक्षा, ज्ञान आदि के प्रकाशक, प्रकट चिह्नों और गुणों सहित हों। वे (वि आनज्रे) विविध उपायों से शत्रुओं और बाधक कारणों को उखाड़ फेंकें।

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२॥

भा०—(मरुतः उपह्वरेषु यत् ययिं केन चित् पथा अचिध्वम्) वायुगण कुटिलता से जाने योग्य आकाश भागों में जाते हुए मेघ को किसी भी मार्ग से लाकर संचित कर देते हैं तब (कोशाः चोतन्ति) मेघ जल बरसाते हैं, वायुगण (रथेषु) अपने वेगपूर्वक झकोरों में ही (अर्चते) जलाभिलाषी प्राणिवर्ग के लिये (मधुवर्णम् घृतम् उक्षत) मधुर जल बरसाते हैं। वैसे ही हे (मरुतः) वीरो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (उपह्वरेषु) दुर्गम स्थानों में (वयः इव) पक्षियों के समान (केन चित् पथा) आकाश आदि किसी भी अज्ञात मार्ग से जाकर (ययिम्) संग्रामों में प्राप्त करने योग्य विजयैश्वर्य को (अचिध्वम्) संचय किया करो। (वः) आप लोगों के (रथेषु) रथों पर (कोशा) मेघों के समान (कोशा) शत्रुओं के तूणीर तथा राजा के खजाने (चोतन्ति) बाण और ऐश्वर्य बरसावें और आप लोग (अर्चते) सत्कार पूर्वक रखने वाले स्वामी के लिये (मधुवर्णम्) मधुर जल के समान स्वच्छ (घृतम्) तेज, बल और जल का (आ उक्षतम्) सेवन करो, उसका अभिषेक करो।

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३॥

भा०—(यत्) जब वे वीरगण (शुभे) उत्तम युद्ध के लिये (यामेषु) मार्गों में (युञ्जते) एक साथ गमन करते हैं तब (एषाम्) इनके (अज्मेषु) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले युद्धादि पराक्रमों के अवसरों पर, (विथुरा इव) भय से कांपती हुई स्त्री के समान (भूमिः) भूमि भी (प्र रेजते) मानो भयभीत होकर कांप जाती है। वे (क्रीडयः) युद्धक्रीड़ा के व्यसनी (धुनयः) शत्रुओं को धुन डालने वाले, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित (धूतयः) शत्रु के हृदय में कंपकपी उत्पन्न करने वाले स्वयं अपने (महित्वं) महान् सामर्थ्य को (पनयन्त) अपने कार्यव्यवहार से प्रकट कर देते हैं।

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

भा०—(सः हि) वह पूर्वोक्त (गणः) वीर नायक और विद्वान् का दल (स्वसृत्) स्वयं अपने बल से बढ़ने वाला (पृषदश्वः) मृग समान वेगवान् अश्वों वाला, (युवा) जवान, हृष्ट पुष्ट (अया) इस राष्ट्र का (ईशानः) पूर्ण स्वामी (तविषीभिः) बलवती सेनाओं से (आवृतः) युक्त हो और वह (सत्यः) सज्जनों के प्रति उत्तम व्यवहार वाला, (ऋणयावा) ऋणों को चुकाने वाला, (अनेद्यः) अनिन्दनीय, (गणः) उत्तम गिना जाने योग्य, (वृषा) सुखों का वर्षक बलवान् होकर (अस्याः) इस (धियः) धारण योग्य कर्मों, शक्तियों का (प्र अविता) अच्छी प्रकार रक्षा करने और उनको बतलाने वाला (असि) हो।

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५॥

भा०—(प्रत्नस्य पितुः) प्राचीन, पूर्व के (पितुः) पालक पुरुष के वीर्य से प्राप्त हुए (जन्मना) जन्म से ही हम लोग अपने (नामानि) नामों को (वदामसि) कहा करते हैं। (सोमस्य) उत्पादक के (चक्षसा) गुणों के

देखने से ही (जिह्वा) वाणी भी (नामानि) तदनुरूप व्यवहार योग्य नामों को (प्र जिगाति) कहती है। (शमि) उत्तम यज्ञ आदि के कर्म में (यत्) जब (ऋक्वाणः) वेदमन्त्रों के धारण करने वाले विद्वान् जन भी (ईम् इन्द्रम्) उस परमेश्वर को (आशत) स्तुति प्रार्थना द्वारा प्राप्त होते हैं (आत् इत्) तभी वे (यज्ञियानि नामानि) अपने उपास्य प्रभु के गुणों और तदनुरूप नामों को भी (दधिरे) धारण करते हैं।

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः। ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ६।१३

भा०—जो (श्रियसे) शोभा और राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये (भानुभिः) सूर्य को किरणों के समान राजा के तेज की वृद्धि करने वाले सहायकारी पुरुषों द्वारा (कम्) कर्त्ता, प्रजापति पुरुष को (संमिमिक्षिरे) अच्छी प्रकार उत्तम रज्यपद पर अभिषिक्त करते हैं और जो पुरुष (रश्मिभिः) रासों से अश्वों के समान नायक और राष्ट्र को वश में रखने में कुशल हैं और जो (ऋक्वभिः) ऋचाओं, व्यवस्थाओं, आज्ञाओं और राष्ट्र के राज्यांगों द्वारा (सुखादयः) स्वच्छ पदार्थों का भोग और भोजन करने वाले विद्वान् (इष्मिणः) प्रबल इच्छाशक्ति वाले उत्साही सेना के स्वामी, (अभीरवः) शत्रु से कभी भय न खाने वाले हैं (ते ते ते) वे, वे, वे, क्रम से तीनों प्रकार के व्यक्ति (प्रियस्य) सबको प्रिय लगने वाले, प्रसन्न और तृप्त करने वाले, मनोहर (मारुतस्य) महान् (धाम्नः) पद, सामर्थ्य को (विद्रे) प्राप्त करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[८८] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्दः—१ पंक्तिः। २ भुरिक्पंक्तिः। ५ निचृत्पंक्तिः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृद्बृहती॥ षड्चं सूक्तम्॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः॥१॥

भा०—हे (मरुतः) उत्तम गृहस्थो और गण बना कर रहने वाले पुरुषो ! वायुगण जैसे (ऋष्टिमद्भिः) दीप्ति वाले (अश्वपर्णैः) सूर्य के पालन सामर्थ्यों और गमन वेगों वाले (स्वर्कैः) उत्तम किरणों से युक्त होकर (विद्युन्मद्भिः) बिजलियों वाले मेघों सहित (वर्षिष्ठया इषा) खूब जल वृष्टि से बढ़ी हुई अन्न सम्पत्ति से युक्त आते हैं वैसे ही (मरुतः) हे विद्वान् जन आप भी (विद्युन्मद्भिः) बिजली की दीप्ति से युक्त, (सुअर्कैः) उत्तम विचारित यन्त्रों से बनाये गये (ऋष्टिमद्भिः) चालक खूटियों तथा शस्त्रास्त्रों से युक्त (अश्वपर्णैः) घोड़ों और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा मार्ग में जाने वाले, (रथेभिः) रथों द्वारा (आयात) आया जाया करो। हे (सुमायाः) बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुषो ! (वयः न) पक्षियों के समान (वर्षिष्ठया इषा) अति वृष्टि से उत्पन्न अन्न और बहुत बढ़ी हुई अधीन प्रजा या सेना के साथ (आ पप्तत) शीघ्र गति से आया जाया करो।

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥२॥

भा०—(रुक्मः) तेजस्वी (चित्रः) अद्भुत (स्वधितीवान्) खड्गधर योद्धा (न) जैसे (पव्या) शस्त्र से शत्रु सेना का नाश कर देता है वैसे ही (ते) वे वीर विद्वान् (रथस्य) रथ की (पव्या) चक्रधारा से (भूम) भूमि को (जंघनन्त) पीड़ित करते हैं। (ते) वे (अरुणेभिः) लाल (पिशङ्गैः) पीले (रथतूर्भिः अश्वैः) रथों को वेग से ले जाने वाले अश्वों से (शुभे) शोभा प्राप्त करने के लिये (वरम्) श्रेष्ठ, (कं) सुखकारी राजा को (आयान्ति) प्राप्त होते हैं।

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥३॥

भा०—(न) जैसे लोग (वाशीः) कुल्हाड़े आदि अस्त्रों को (तनूषु अधि) कन्धों पर उठाते और (ऊर्ध्वा वना) ऊंचे २ वृक्षों को (कृणवन्ते)

काट गिराते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर सैनिक लोगो ! (वः तनूषु अधि) आप लोग अपने शरीरों पर (मेधा) शत्रुओं का बध करने वाले (वाशीः) शस्त्रास्त्रों को (श्रिये) राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये धारण करो और (ऊर्ध्वा) ऊंचे उमड़ते हुए (वना) शत्रुसेना के दलों को (कृणवन्ते) काट गिराओ। (सुजाताः) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य में प्रसिद्ध (तुविद्युम्नाः) अति धनाढ्य जन भी (युष्मभ्यम्) तुम लोगों के भरण पोषण और रक्षा के लिये ही (अद्रिम्) अक्षय शस्त्रास्त्र बल को (धनयन्ते) अपना धन बना लेते हैं।

अहा॑नि॒ गृध्राः॒ पर्या व॒ आगु॑रि॒मां धियं॑ वार्का॒र्यां च॑ दे॒वीम्।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॒ गोत॑मासो अ॒र्कैरू॒र्ध्वं नु॑नुद्र उत्स॒धिं पिब॑ध्यै ॥४॥

भा०—(ब्रह्म कृण्वन्तः) वेद का अध्ययन करते हुए (गोतमासः) उत्तम वाणी को धारण करने वाले विद्वान् जन (अर्कैः) उत्तम वेद मन्त्रों द्वारा (पिबध्यै) ज्ञान-रस का पान करने और औरों को कराने के लिये (ऊर्ध्वं) परम (उत्सधिम्) ज्ञानानन्द रसों को कूप के समान धारण करने वाले परमेश्वर को (नुनुद्रे) प्रेरते अर्थात् उसकी उत्तम रीति से स्तुति आराधना करते हैं। विद्वान् जन जैसे (वार्कार्याम् धियम्) जल प्राप्त करने की क्रिया को (परि आ अगुः) सब प्रकार से साधते हैं वैसे ही स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन भी (वार्कार्याम्) दुःखों के वारण करने वाली और वरण योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाली (देवीम्) ज्ञानप्रद, सुखप्रद वेदविद्या का (परि आ आगुः) सब प्रकार से अभ्यास करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (उत्सधि पिबध्यै) उत्तम ज्ञान के धारण करने वाले परम रस को पान करने के लिये और (इमां धियं च) इस ज्ञान कर्ममयी वेद विद्या को प्राप्त करने के लिये (गृध्राः) विद्या के और धन के अभिलाषी पुरुष (अहानि) सब दिनों (वः) तुम लोगों के पास (परि आ आगुः) सब देशों देशों से आ आ कर एकत्र हों और ज्ञान का अभ्यास करें।

एतत्त्यन्न योजनमचेति सुस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः।
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥५॥

भा०—(मरुत:) हे वीर सैनिक गणो ! (एतत्) यह प्रत्यक्ष (योजनम्) विशेष व्यवस्था या कार्य में नियुक्ति (त्यत् न) पूर्व योजन के समान ही (अचेति) जानना चाहिये (यत्) जिसको (वः) तुम लोगों के लिये (गोतमः) तुममें सबसे श्रेष्ठ वह प्रधान सेनापति, विद्वान् (सस्वः) उपदेश करता है जो तुमको (हिरण्य चक्रान्) सुवर्ण के चक्रों और (अयोदंष्ट्रान्) लोह की शस्त्रास्त्र रूप शत्रुनाशकारी दाढ़ों वाले (वराहून्) जंगली शूकरों के समान क्रोधान्ध होकर (विधावतः) विविध दिशाओं में (धावतः) दौड़ते हुओं को (पश्यन्) देखा करता है ।

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥६॥१४॥

भा०—(वाघतः) स्तुतिकर्त्ता पुरुष की (वाणी) वाणी जैसे बांध लेती है वैसे ही हे (मरुतः) देह में प्राणों के समान राष्ट्र के जीवन रूप विद्वानो, वीर सैनिक पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (एषा) यह (स्या) वह नाना प्रकार की (अनुभर्त्री) प्रतिदिन भरण पोषण करने वाली आजीविका ही है जो (वः प्रतिस्तोभति) आप में से प्रत्येक को अपने २ कार्य पर बांध रही है । (स्वधाम् अनु) देह को धारण पोषण करने वाली पिण्डपोषणी आजीविका के (अनु) अनुसार ही वह प्रधान राजा (आसाम्) इन सेनाओं के (गभस्त्योः) बाहुओं को भी (वृथा) अनायास ही (अस्तोभयत्) बांध लेता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[८९] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ७ जगती । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । एकोना वा विराड् जगती । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ६, १० त्रिष्टुप् । ६ स्वराड् बृहती । विराट् पंक्तिर्वा । दशर्चं सूक्तम् ॥.

आ नो॑ भ॒द्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽद॑ब्धासो॒ अप॑रीतास उ॒द्भिदः॑।
दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद्वृ॒धे अस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वेदि॑वे ॥१॥

भा०—(नः) हमारे बीच में जो पुरुष (क्रतवः) क्रिया कुशल और (भद्राः) सुखकारक एवं ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले हैं वे (अदब्धासः) वध करने योग्य नहीं हैं। वे (अपरीतासः) कभी किसी अवस्था में परित्याग या उपेक्षा न किये जावें। वे (उद्भिदः) सदा उत्तम वृक्षों के समान उत्तम कर्मों और फलों को देने वाले होकर (नः) हमें (सदम्) सदा (आ यन्तु) प्राप्त हों। (यथा) जिस कारण से (देवाः) विद्याप्रद और विजयेच्छु पुरुष (दिवे दिवे) प्रति दिन (अप्रायुवः) कभी आयु और जीवन शक्ति को न खोने वाले, दीर्घायु और बलवान् (रक्षितारः) रक्षक होकर (नः वृधे इत् असन्) हमारी वृद्धि के लिये ही हों।

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वानां॑ रा॒तिर॒भि नो॒ नि व॑र्तताम्।
दे॒वानां॑ स॒ख्यमुप॑ सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ आयुः॒ प्र ति॑रन्तु जी॒वसे॑ ॥२॥

भा०—(ऋजूयताम्) सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण और सुख देने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि व ज्ञान (नः) हमें (नि वर्तताम्) सदा प्राप्त हों। (वयम्) हम (देवानाम्) उत्साही, तेजस्वी पुरुषों के (सख्यम्) मित्र भावों को (उप सेदिम) सदा प्राप्त करें। वे (देवाः) विद्वान् जन (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (जीवसे) दीर्घ काल तक जीवन के लिये (प्र तिरन्तु) खूब बढ़ावें। वैसे ही (ऋजूयताम्) ऋतु अनुकूल प्राप्त होने वाले या प्राण बल को धारण करने वाले अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य आदि दिव्यगुण वाले तेजस्वी पदार्थों का (सुमतिः) उत्तम स्तम्भन बल तथा धर्मात्मा विद्वानों की शुभ मति हमें प्राप्त हो, उनकी उत्तम (रातिः) दानशक्ति हमें प्राप्त हो। हम उनकी (सख्यम्) अनुकूलता को प्राप्त करें।

तान्पूर्व॑या नि॒विदा॑ हूमहे व॒यं भगं॑ मि॒त्रमदि॑तिं॒ दक्ष॑म॒स्रिध॑म्।

अर्य॒मणं॒ वरु॑णं॒ सोम॑म॒श्विना॒ सर॑स्वती नः सु॒भगा॒ मय॑स्करत् ॥३॥

भा०—(भगम्) ऐश्वर्यवान्, सुखजनक, (मित्रम्) मरणादि दुःखों से बचाने वाले वैद्य आदि (अदितिम्) कभी नाश, पीड़ा या दुःख न देने योग्य, सदा पूज्य माता, पिता, भूमि और गुरु आदि पूज्य जन, (दक्षम्) कार्यों में चतुर, गुरु और पिता आदि (अस्रिधम्) अहिंसक, (अर्यमणम्) शत्रुओं को वश करने में समर्थ, (वरुणम्) दुष्टों के वारक, (सोमम्) शम दमादि सम्पन्न साधक जन, (अश्विना) गुरु शिष्य तथा स्त्री पुरुष, अग्नि, जल, दिन-रात्रि आदि युगल (तान्) उन सभी की हम (पूर्वया निविदा) अपने से पूर्व के गुरुओं द्वारा पढ़ने, ज्ञान करने योग्य वेदवाणी द्वारा (हूमहे) प्रशंसा करें। (सरस्वती) विदुषी स्त्री और उत्तम ज्ञानों से भरपूर वेदवाणी, ज्ञानवान् परमेश्वर और विद्वान्जन भी (सुभगा) सुखकारी ज्ञान से युक्त होकर (नः) हमें (मयः करत्) सुख प्रदान करें।

तन्नो॒ वातो॑ मयो॒भु वा॑तु भेष॒जं तन्मा॒ता पृ॑थि॒वी तत्पि॒ता द्यौः।
तद्ग्रावा॑णः सोम॒सुतो॑ मयो॒भुव॒स्तद॑श्विना शृणुतं धिष्ण्या यु॒वम् ४

भा०—(वातः) वायु और प्राण (नः) हमें (तत्) नाना (मयोभु) सुखकारक (भेषजम्) रोग दूर करने का सामर्थ्य (वातु) प्राप्त करावें। (माता पृथिवी) माता और माता के समान पृथिवी (तद् भेषजं वातु) रोगनाशक बल दे। (द्यौः पिता) प्रकाशमय सूर्य पिता के समान (तत् भेषजम् वातु) उस रोगनाशक बल को प्राप्त करावे। (सोमसुतः) सोम अर्थात् रोगों को निकाल बाहर कर देने वाले और नाना सुखों और बलों के उत्पादक ओषधियों के रसों को तैयार करने वाले (ग्रावाणः) विद्वान् पुरुष तथा सिलबट्टा, खरल आदि साधन, उपकरण (मयोभुवः) सुखकारी होकर (तत् भेषजम्) नाना प्रकार के दुःखनाशक उपायों को प्राप्त करावें। हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो! माता पिताओ! गुरु शिष्यो! (युवम्) आप लोग (धिष्ण्या) बुद्धिमान् होकर (तत्) दुःखों को दूर करने के साधनों का (शृणुतं) श्रवण करो।

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥५॥१५॥

भा०—(वयम्) हम लोग (जगतः) पशु, पत्ती आदि प्राणधारी और (तस्थुषः) वृक्ष, पर्वत आदि स्थावर संसार के (पतिम्) पालक (धियं जिन्वम्) धारण करने वाले अन्न से सब जीवों को तृप्त करने वाले (तम् ईशानम्) उस स्वामी परमात्मा का (अवसे) ज्ञान और रक्षा को प्राप्त करने के लिये (हूमहे) स्मरण करते हैं। वह (पूषा) सबका पोषक (रक्षिता) दुष्टों से रक्षक, (वायुः) सब प्रजाओं का पालक और (अदब्धः) कभी विनष्ट न होकर (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों और ऐश्वर्यों की (वृधे) वृद्धि और (नः स्वस्तये) सुख और कल्याण के लिये (असत्) हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

स्व॒स्ति न॒ इन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः।
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ अरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥६॥

भा०—(वृद्धश्रवाः) बहुत अधिक ज्ञान और अन्नादि सम्पत्ति का स्वामी (इन्द्रः) आचार्य और परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति दधातु) सुख और कल्याण प्रदान करे। (विश्ववेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी, (पूषा) सबका पोषक प्रभु (नः स्वस्ति दधातु) हमें शरीर पोषण का सुख प्रदान करे। (तार्क्ष्यः) विद्वान्, ज्ञानी या वेग से अन्यत्र जाने हारा शिल्पी (अरिष्टनेमिः) रथ चक्र की न टूटने वाली धारा वाला होकर (नः स्वस्ति दधातु) हमें मार्ग लांघने का सुख प्रदान करे और (तार्क्ष्यः) वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष (अरिष्टनेमिः) दृढ़ हथियारों से युक्त होकर (नः स्वस्ति दधातु) हमें सुख दे। (बृहस्पतिः) वेदवाणी और बड़े राष्ट्र का स्वामी (नः स्वस्ति दधातु) हमें ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य समृद्धि का सुख दे।

पृष॑दश्वा म॒रुतः॒ पृश्नि॑मातरः शुभं॒यावा॑नो वि॒दथे॑षु॒ जग्म॑यः।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७॥

भा०—(पृषदश्वाः पृश्निमातरः मरुतः जग्मयः शुभंयावानः अग्निजिह्वाः अवसा गमन्) जैसे जल सेचन करने वाले मेघों से युक्त वायुगण गति करते हुए लोगों को उत्तम सुख प्राप्त कराते हैं और वे ही अग्नि की ज्वाला से युक्त (देवाः) प्रकाश युक्त होकर (सूरचक्षसः) सूर्य के समान चमकते हुए हमें (अवसा) दीप्ति सहित प्राप्त होते हैं, वैसे ही (देवाः मरुतः) दानशील, ज्ञानदर्शक विद्वान् और वीर पुरुष (पृषदश्वाः) हृष्ट पुष्ट और नाना वर्णों के अश्वादि यानों पर चढ़ कर, (पृश्निमातरः) मातृभूमि से उत्पन्न (शुभंयावानः) प्रजा को सुख और शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाले, (विदथेषु जग्मयः) संग्रामों, सत्संगों में जाने वाले, (अग्निजिह्वाः) अग्नि के समान समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली उपदेशयुक्त वाणी से युक्त, (मनवः) विचारशील (सूरचक्षसः) सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले, अथवा सूर्य, प्राण, अन्न आदि के परम सूक्ष्म तत्वों को देखने और उनको स्पष्ट रीति से वर्णन करने वाले, (विश्वे देवाः) समस्त दानशील और ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञान द्रष्टा पुरुष (इह) इस राष्ट्र में (अवसा) ज्ञान प्रकाश और रक्षण सामर्थ्य सहित (न) हमें (गमन्) प्राप्त हों।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥८॥

भा०—हे (यजत्राः) ईश्वरोपासना करने और विद्या आदि पदार्थों के दाता (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याणकारक वचनों का (शृणुयाम) श्रवण करें। (अक्षभिः) आंखों से (भद्रं पश्येम) कल्याणजनक दृश्य को (पश्येम) देखें। (तुष्टुवांसः) परमेश्वर की स्तुति, उपासना करते हुए और ज्ञानयोग्य पदार्थों का यथार्थ रूप से वर्णन करते हुए, हम लोग (स्थिरैः अङ्गैः) स्थिर अंगों से और (तनूभिः) हृष्ट पुष्ट शरीरों से (यद् आयुः) जो दीर्घ जीवन (देवहितम्) विद्वान् जनों को हितकारी है वह हम भी (अशेम) प्राप्त करें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥६॥

भा०—हे (अन्ति) उत्तम साधनों से प्राण धारण करने और कराने में समर्थ (देवाः) विद्वानो ! और अन्न आदि जीवन दाता पदार्थों ! (अन्ति) जिस जीवन दशा में (शतम् शरदः इत्) सौ वर्ष ही (नः तनूनां) हमारे शरीरों की (जरसं) जीर्ण दशा को (चक्रा) पूर्ण करते हैं और (यत्र) जब (पुत्रासः पितरः भवन्ति) पुत्र भी बड़े होकर गृहस्थ धारण कर बच्चों के पिता (भवन्ति) हो जायं (तत्र) उस दशा तक (गन्तोः) पहुँचने के लिए (मध्या) बीच २ में (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा रीरिषत) मत नष्ट होने दो ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १०।१६

भा०—(द्यौः अदितिः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, नक्षत्रादि, आकाश (अन्तरिक्षम्) और उसमें स्थित वायु ये कभी नाश न होने से 'अदिति' हैं। (माता) पुत्रों को उत्पन्न करने वाली माता नित्य आदर योग्य, कभी पीड़ा या आज्ञा भंग न करने योग्य होने से 'अदिति' है । (पिता सः) वीर्य और विद्या से उत्पन्न करने वाला पालक, जनक और आचार्य ये भी (अदितिः) पीड़ा न देने और आज्ञा उल्लंघन करने योग्य न होने से वे भी 'अदिति' कहाने योग्य हैं। (सः पुत्रः) पिता और पालक जनों को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कष्टों से बचाने वाला पुत्र, शिष्य चाहे वह क्षेत्र सम्बन्ध और विद्या सम्बन्ध से हो वह भी सन्तति व कुल-परम्परा और सम्प्रदायपरम्परा को खण्डित करने हारा न होने से 'अदिति' है । (विश्वेदेवाः) समस्त देव गण तथा सूर्यादि पदार्थ (अदितिः) अविनाशी होने से 'अदिति' कहाते हैं। (पञ्चजनाः अदितिः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचों जन नाश न करने योग्य होने से

'अदिति' हैं। (जातम्) समस्त उत्पन्न पदार्थ कारणरूप से और नाशवान् न होने से 'अदिति' हैं और (जनित्वम् अदितिः) आगे भविष्यत् में भी उत्पन्न होने वाले पदार्थ कारण पदार्थों में अव्यक्त रूप से विद्यमान होने से 'अदिति' कहाते हैं। इति षोडशो वर्गः समाप्तः ॥

[९०] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१-८ गायत्री। १, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्। ३ पिपीलिकामध्या विराड्। ४ विराड्। ५, ६ निचृद् अनुष्टुप्। ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१

भा०—(वरुणः) गुण, कर्म और स्वभाव से श्रेष्ठ, सबसे मुख्य पद के लिये वरण योग्य, (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला, (अर्यमा) शत्रुओं और बाधक दुःखदायी कारणों का नियन्त्रण करने वाला, (देवैः) उत्तम विद्वान् पुरुषों के साथ (सजोषा) समान भाव से प्रीतियुक्त होकर (विद्वान्) विद्वान् पुरुष राजा (नः) हमें (ऋजुनीति) ऋजु, सरल, कुटिलता रहित नीति अर्थात् धर्म मार्ग से (नयतु) सन्मार्ग पर चलावे।

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। व्रता रक्षन्ते विश्वाहा २

भा०—जो लोग (विश्वाहा) नित्य (व्रता) नियत धर्म नियमों का (रक्षन्ते) स्वयं पालन करते और औरों से कराते हैं (ते हि) वे ही वस्तुतः (वस्वः) बसे हुए प्रजाजन और ऐश्वर्य के (वसवानाः) सुख से बसाने और उनकी रक्षा करने में समर्थ होते हैं और (ते) वे (विश्वाहा) सब दिनों (महोभिः) बड़े बड़े गुणों, कर्मों और नाना उपायों द्वारा (अप्रमूराः) असावधानता, मोह, प्रमाद और आलस्य से रहित होकर रहें।

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः ॥३॥

भा०—(ते) वे (अमृताः) यशस्वी, बलवान्, अपराजित, जीवनमुक्त, दीर्घजीवी, प्रजा, पुत्र, शिष्य एवं उत्तराधिकारी आदि परम्परा से सदा बने रहने वाले अधिकारी विद्वान् जन (द्विषः) दुष्ट पुरुषों, खोटे कर्मों और

विचारों को (अपबाधमानाः) दूर करते हुए (अस्मभ्यं) हम (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के लिये (शर्म) सुख (यंसन्) प्रदान करें।

वि नः पथः सुवितार्य चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः ॥४

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, विद्यावान् और शत्रुओं का नाशक (पूषा) सबका पोषक, अन्नदाता और राजा (भगः) उत्तम सेवनीय पदार्थों और गुणों से युक्त परमेश्वर, आचार्य, राजा आदि (मरुतः) और विद्वान् वीर तथा वैश्यादि गण (नः) हमारे (सुविताय) सुखपूर्वक देश देशान्तर में जाने और उत्तम ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये (पथः) मार्गों और नाना उपायों को (वि चियन्तु) निर्धारित करें।

उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमतः ५

भा०—हे (पूषन्) सबके पोषक (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले परमेश्वर! (एवयावः) ज्ञानों को स्वयं प्राप्त करने और औरों को प्राप्त कराने वाले (मरुतः) विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (गो-अग्राः कर्त) उत्तम वेद वाणियों से प्रकाशित होने वाला करो अर्थात् हमारे कर्म और विचार में 'गो-अग्र', वेदवाणी, साक्षी रूप से रहे। इति सप्तदशो वर्गः॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः६

भा०—(ऋतायते) अन्न को प्राप्त करने की इच्छा वाले मानव समाज के लिये (वाताः) वायुगण जैसे (मधु क्षरन्ति) जल बरसाते हैं वैसे (ऋतायते) जिज्ञासु जन के लिये (वाताः) ज्ञानवान् पुरुष (मधु) मधुर ब्रह्म विद्या का (क्षरन्ति) उपदेश दें और जैसे (सिन्धवः) महानदियें अन्न के इच्छुक को नहरों से (मधु क्षरन्ति) जल बहाती हैं वैसे ही (सिन्धवः) ज्ञान के अगाध सागर से अपने साथ शिष्यों को बांधने वाले आचार्य गण सत्य ज्ञान के जिज्ञासु को (मधु क्षरन्ति) मधुर ब्रह्मज्ञानोपदेश प्रदान करते हैं। (ओषधीः) ओषधियां जैसे (नः) हमारे लिये

(माध्वीः) मधुर गुण से युक्त एवं मधुर, सुखजनक स्वास्थ्य और पुष्टि प्रदान करने वाली होती हैं वैसे ही (ओषधीः) तेज और ताप को धारण करने वाले पदार्थ, वीर सेनाएं और परिपक्व ज्ञान वाले जन (नः) हमारे लिये (माध्वीः सन्तु) मधुर ज्ञानप्रद हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७॥

भा०—(नक्तम् मधु) रात्रि का समय हमारे लिये मधुर, सुखकारी हो (उत) और (उषसः) उषा काल हमारे लिये मधुर, सुखकारी हों। (पार्थिवं रजः) पृथिवी की धूलि और पृथिवी पर बसे यह समस्त लोक भी (मधुमत्) मधुर गुण से युक्त आरोग्य-कारक हों। (द्यौः) सूर्य (नः) हमारे (पिता) पालक पिता के समान (मधु अस्तु) सुखकारी, आरोग्यजनक हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ८

भा०—(वनस्पतिः नः मधुमान्) वनस्पति हमारे लिये मधुर रस, फल और छाया से युक्त हों और (सूर्यः नः मधुमान् अस्तु) सूर्य और शरीरगत प्राण हमारे लिये मधुर, सुखदायी, प्रकाश और बल देने वाला हो। (नः) हमारी (गावः) गौ आदि पशु, सूर्य की किरणें, वेद वाणियें और देहगत इन्द्रियें (नः) हमें (माध्वीः भवन्तु) मधुर सुखप्रद हों।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥१८॥

भा०—(नः) हमें (मित्रः) सब का परम स्नेही, परमेश्वर (शं) शान्ति प्रदान करे। (वरुणः) दुःखों का निवारक (शं) शान्तिदायक हो। (अर्यमा नः शं भवतु) न्यायकारी, दुष्टों का नियन्ता शान्तिदायक हो। (बृहस्पतिः) बड़े बड़े लोकों का पालक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु, (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। (उरुक्रमः विष्णुः) बड़े पराक्रम वाला और सर्व-व्यापक परमेश्वर (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[६१] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ स्वराट्पंक्तिः । २ पंक्तिः । १८, २० भुरिक्पंक्तिः । २२ विराट्पंक्तिः । ५ पादनिचृद्गायत्री । ६, ८, ९, ११ निचृद्गायत्री । १०, १२ गायत्री । ७, १३, १४ विराड्गायत्री । १५, १६ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १७ परोष्णिक् । १९, २१, २३ निचृत् त्रिष्टुप् । त्रयोविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वं सोम॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥१॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक परमेश्वर और विद्वान् ! (त्वं) आप (मनीषा) मन की प्रबल इच्छा द्वारा (प्र चिकितः) अच्छी प्रकार जानते और ज्ञान देते हो । (त्वं) आप (रजिष्ठम्) अति ऋजु, सरल (पन्थाम्) मार्ग की ओर (अनु नेषि) ले जाते हो । (तव) आपकी ही (प्रणीती) उत्तम नीति से (न पितरः) हमारे माता पिता के समान स्नेहवान् होकर (धीराः) धीर और कर्मशील बुद्धिमान् पुरुष (देवेषु) विद्वानों के बीच में रहते हुए (रत्नम्) उत्तम ऐश्वर्य और परमसुख को (अभजन्त) प्राप्त करते हैं ।

त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः ।
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑ ॥२॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य, प्रेरक राजन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! (त्वं) तू (क्रतुभिः) उत्तम कर्मों और उत्तम २ ज्ञानों से (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करने हारा और उत्तम ज्ञानवान् (भूः) है । (त्वं) तू (दक्षैः) नाना बलों से (सुदक्षः) उत्तम बलशाली और (विश्ववेदाः) समस्त संसार को जानने हारा (भूः) है । (त्वं) तू (वृषत्वेभिः) समस्त काम्य पदार्थों से और (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (वृषा) मेघ के समान सुखों का वर्षणकारी, (अभवः) हो और तू (नृचक्षाः) समस्त मनुष्यों को देखने हारा अधिष्ठाता होकर (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (द्युम्नी) ऐश्वर्यवान् (अभवः) है ।

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥३॥

भा०—हे राजन्! हे (वरुण) सब दुष्टों का वारक, सबसे वरण योग्य! (ते राज्ञः) तुझ राजा के ही बनाये (व्रतानि) ये सब राज्यपालन के नियम हों। हे (सोम) राजन्! (तव) तेरा (धाम) धारण सामर्थ्य, नाम, जन्म और स्थान तथा यश भी (बृहत्) बहुत बड़ा और (गभीरम्) गम्भीर, सब पर प्रभाव डालने वाला हो। (त्वम्) तू (प्रियः मित्रः न) प्रिय मित्र के समान (शुचिः असि) शुद्ध व्यवहार वाला (असि) हो। और हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! तू (अर्यमा इव) शत्रुओं का दमन करने वाले सेनापति और न्यायकारी धर्माध्यक्ष के समान (दक्षाय्यः) यथार्थ न्याय शासन करने हारा (असि) हो।

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥४॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! हे (सोम) जगत् के उत्पादक परमेश्वर! (ते) तेरे (या) जो (धामानि) जगत् के धारक महान् सामर्थ्य, (दिवि) सूर्य में (या) जो धारण पोषण सामर्थ्य (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (या पर्वतेषु) पर्वतों में, (या ओषधीषु) ओषधियों तथा वनस्पतियों में और (या अप्सु) जो जलों में हैं (तेभिः) उन (विश्वैः) सब सामर्थ्यों से हम पर अनुग्रह करता हुआ (हव्या) देने और ग्रहण करने योग्य समस्त पदार्थों को (प्रति गृभाय) प्रत्येक प्राणी को प्रदान कर, और अपने वश कर।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥५॥१६॥

भा०—हे (सोम) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! (त्वं) तू (सत् पतिः) नित्य कारण और सज्जनों का पालक (असि) है। (त्वं) तू (राजा) सबका प्रकाशक, अधिपति, (उत) और (वृत्रहा) सूर्य के समान अज्ञान आवरण का नाशक है। तू (रुद्रः) सबका कल्याणकारी, सबके सेवने योग्य

और (क्रतुः) ज्ञानवान्, कर्म-सामर्थ्यवान् (असि) है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६

भा०—हे (सोम) राजन् और परमेश्वर! (त्वं च) और आप (नः) हमारे (जीवातुम्) जीवन को (वशः) वश या स्थिर करने वाले, उसके चाहने वाले हो, तब हम (न मरामहे) मृत्यु को प्राप्त न हों। तू (वनस्पतिः) सेवनीय ऐश्वर्यों जीवों और वनों तक का पालक स्वामी और (प्रियस्तोत्रः) प्रिय प्रीतिकारी स्तुति द्वारा उपासना करने योग्य है।

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते। दक्षं दधासि जीवसे ॥७॥

भा०—हे (सोम) सर्वोत्पादक परमेश्वर! सर्वप्रेरक राजन्! (त्वं) तू (महे) महान् (यूने) युवा, बलवान् (ऋतायते) सत्यज्ञान, बल और शासन व्यवस्था को चाहने वाले पुरुष को (भगं) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य (दधासि) धारण कराता है और (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (दक्षं दधासि) बल और सामर्थ्य प्रदान करता है।

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः। न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥८

भा०—हे (सोम) विद्वन् (राजन्) राजन्! परमेश्वर! (त्वं) तू (नः) हमें (विश्वतः) सब प्रकार के (अघायतः) पाप और अत्याचार करने के इच्छुक दुष्ट पुरुषों से (रक्ष) बचा। (त्वावतः) तेरे जैसे बलशाली रक्षक का (सखा) मित्र (न रिष्येत्) कभी नष्ट नहीं हो सकता। वीर्य तथा औषधिरस भी शरीर पर सब प्रकार के आघातकारी रोग आदि से बचावें।

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोऽविता भव।९

भा०—हे (सोम) राजन्, प्रभो! (याः) जो (ते) तेरे (मयोभुवः) सुखजनक (ऊतयः) रक्षा के साधन और ज्ञान (दाशुषे) दानशील पुरुष के हित के लिये (सन्ति) हैं (ताभिः) उनसे तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो।

इमं युज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि। सोम त्वं नो वृधे भव १०।२०

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ, उपासना, कर्म और (इदं वचः) इस स्तुति-वचन को तू (जुजुषाणः) स्वीकार करता हुआ (नः) हमें (उपागहि) प्राप्त हो। तू (इमं यज्ञम्) इस रक्षाकारी प्रजा-पालन के कार्य को और (इदं वचः) इस विद्वान् के धर्मयुक्त वचन अर्थात् शास्त्र को (जुजुषाणः) सेवन या प्रेम से पालन करता हुआ (उप आगहि) हम प्रजाजनों को प्राप्त हो। (त्वं) तू (नः) हमारे (वृधे) बल, ज्ञान और सुख की वृद्धि के लिये (भव) हो। शरीर में शुक्र देह में जीवन धारण रूप यज्ञ और (वचः) विद्याभ्यास के करने में उपयुक्त हो। शरीर की वृद्धि करे। इति विंशो वर्गः ॥

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः। सुमृळीको न आ विश ११

भा०—हे (सोम) सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! (वयम्) हम (वचविदः) स्तुतिवचन कहने में चतुर पुरुष (त्वा) तुझको (गीर्भिः) वाणियों से (वर्धयामः) बढ़ावें। तू (नः) हमें (सुमृळीकः) उत्तम सुखप्रद होकर (आविश) प्राप्त हो। हे (सोम) सावित्री वेद-माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाले ! शिष्य जन ! (वयं वचोविदः) हम विद्या युक्त वाणियों, प्रवचनों को जानने हारे होकर (त्वां) तुझको (गीर्भिः) उत्तम ज्ञानमय वाणियों से (वर्धयामः) बढ़ावें, तुझे अधिक ज्ञानवान् करें, तू (सुमृळीकः) गुरुजनों का उत्तम सुखदायी, प्रिय शिष्य होकर (नः) हमारे पास (आविश) आकर रह।

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव १२

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (गयस्फानः) ऐश्वर्यों और पशुओं को बढ़ाने वाला, (अमीवहा) रोगों के समान दुःखदायी कारणों का नाशक, (वसुवित्) राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनों के लिए ऐश्वर्यों का लाभ कराने वाला, (पुष्टिवर्धनः) अन्न आदि पुष्टिकारक समृद्धि को बढ़ाने

हारा और (नः) हमारा (सुमित्रः) उत्तम मित्र (भव) हो। ओषधि रस सोम, देह में शुक्र (गयस्फानः) प्राणों और अपत्यों का वर्धक, रोगनाशक, पुष्टिकारक और उत्तम रीति से मृत्यु कष्ट से बचाने हारा हो।

सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा। मर्य इव स्व ओक्ये १३

भा०—(यवसेषु) खाने योग्य उत्तम घासों के बीच (नः) जैसे (गावः) गौवें प्रसन्न होती हैं और (मर्यः) पुरुष (इव) जैसे (स्वे ओक्ये) अपने घर में प्रसन्न होता है वैसे ही हे (सोम) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! तू (नः) हमारे (हृदि) हृदय में (रारन्धि) रमण कर, हमारे हृदय में प्रकाशित हो। शुक्र! सोम! (नः दि रारन्धि) हमारे हृदय में हर्ष उत्पन्न करे।

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः। तं दक्षः सचते कविः ॥१४॥

भा०—हे (देव) सर्वप्रकाशक (सोम) ऐश्वर्यवन्, सर्वोत्पादक विद्या-शिक्षक, परमेश्वर, विद्वन्! (यः) जो (मर्त्यः) पुरुष (तव) तेरे (सख्ये) मित्र भाव, सत्संग में रहकर (रारणत्) विद्याभ्यास और स्तुति करता है वह (दक्षः) ज्ञानवान्, क्रियाकुशल और (कविः) क्रान्तदर्शी, परम विद्वान् होकर (तं त्वां) उस तुझ परम पुरुष को ही (सचते) प्राप्त होता है।

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः।
सखा सुशेव एधि नः ॥१५॥२१॥

भा०—हे (सोम) परमेश्वर! राजन्! तथा हे छात्र! तू (अभि-शस्तेः) निन्दा-वचन और घात-प्रतिघात करने वाले दुष्ट पुरुष से (नः उरुष्य) हमारी रक्षा कर। तू (नः) हमारा (सखा) मित्र और (सुशेवः) उत्तम सुखजनक हो। तू (अंहसः) पाप से (नि पाहि) हमारी सदा रक्षा कर। इत्येकविंशो वर्गः॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥१६॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! विद्वन् ! छात्र ! तू (आप्यायस्व) सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो (ते) तुझे (विश्वतः) सब तरफ से (वृष्ण्यम्) वीर्यवान् पुरुषों में होने वाला उत्पादक बल (सम् एतु) प्राप्त हो। तू (वाजस्य) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के (संगथे) प्राप्ति करने में (भव) सहायक और यत्नवान् हो।

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥१७॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति हर्षदायक! (सोम) राजन्! विद्वन्! परमेश्वर! छात्र! शरीर में शुक्र! तू (विश्वेभिः अंशुभिः) अपने सर्वव्यापक ज्ञान आदि गुणों से (आप्यायस्व) खूब वृद्धि को प्राप्त हो। तू (सुश्रवस्तमः) कीर्ति और बल से युक्त होकर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये और (नः) हमारा (सखा भव) मित्र के समान पोषक हो।

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥

भा०—हे (सोम) राजन् (अभिमातिषाहः) चारों ओर से आक्रमण करने वाले शत्रुओं को पराजित करने वाले (ते) तुझे (पयांसि) पुष्टिकारक जल और अन्न रस (सं यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों। (वाजाः सं यन्तु) वेगवान् अश्व, योद्धा तथा सेना-बल (सं यन्तु) एक साथ मिलकर चलें। (वृष्ण्यानि सं यन्तु) समस्त प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर शस्त्रों को वर्षाने वाले, बलवान् पुरुषों के दल बल एक साथ अच्छी प्रकार प्राप्त हों। तू (अमृताय) प्रजा और राष्ट्र के दीर्घ जीवन और स्थिरता के लिये (आप्यायमानः) सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट और वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (धिष्व) विद्या प्रकाश के बल पर, सूर्यवत् ज्ञानवान् पुरुषों का आश्रय लेकर (उत्तमानि श्रवांसि) सर्वश्रेष्ठ श्रवण योग्य ज्ञानोपदेश, अन्नादि ऐश्वर्य तथा श्रवण योग्य यश को (धिष्व) धारण कर।

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥१९॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ते) तेरे (या) जिन (धामानि) तेजों, स्थानों और पदाधिकारों को (हविषा) आदर से प्रदान या स्वीकार करके (यज्ञम्) सब के पूजनीय, प्रजापालक (यजन्ति) तेरा मान आदर करते हैं (ता) वे (विश्वा) समस्त तेज और पदाधिकार या बल (ते) तुझे ही प्राप्त हैं। (गयस्फानः) धन तथा गौ आदि पशुओं का वर्धक, (प्रतरणः) दुःखों से प्रजा को पार उतारने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीरों से युक्त, सेनापति, (परिभू) सब प्रकार से शक्ति और प्रजा का रक्षक हो। वह (अवीरहा) वीर पुरुषों का व्यर्थ नाशक न हो। हे राजन्! तू (नः) हमारे (दुर्यान्) घरों को या द्वारों वाले नगरों में भी (प्र चर) अच्छी प्रकार आ, जा।

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२०॥२२॥

भा०—(यः) जो राष्ट्र (अस्मै) इस राजा को पुष्ट करने के लिये (दाशत्) कर प्रदान करे उसको वह (सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा (धेनुम्) दुधार गौवें, (अर्वन्तम्) वेगवान् अश्व, (कर्मण्यं वीरम्) कर्मकुशल वीर पुरुष, (सादन्यम्) उत्तम गृहस्थ, (विदथ्यम्) ज्ञान, सत्संग, यज्ञ और संग्राम में कुशल तथा (सभेय) सभा में उत्तम वक्ता, (पितृ श्रवणम्) मां बाप के समान प्रजा की प्रार्थनाओं को हित से श्रवण करने वाले अधिकारी (ददाति) प्रदान करता है। इति द्वाविंशो वर्गः॥

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२१॥

भा०—हे (सोम) राजन्! सेनापते! (युत्सु) युद्धों में (अषाळ्हम्) कभी पराजित न होने वाले, (पृतनासु पप्रिं) संग्रामों में या सेनाओं के

बल पर राष्ट्र का पालन करने वाले, (स्वर्षाम् = स्वःसाम्) सुखों के दाता, (वृजनस्य) शत्रु के वर्जने में समर्थ बल का (गोपाम्) रक्षक, (भरेषुजाम्) राज्य के भरण पोषण करने वाले, धनाढ्य वैश्यों और बलशाली क्षत्रिय लोगों के उत्पादक (सुक्षितिम्) उत्तम निवासस्थान और भूमि के स्वामी, (सुश्रवसम्) उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त (जयन्तम् त्वाम्) विजय करते हुए तेरी विजय के साथ २ ही हम भी (अनुमदेम) खूब प्रसन्न हों।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥२२॥

भा०—हे (सोम) जगत् के उत्पादक परमेश्वर! (त्वम्) तू इन (विश्वाः) समस्त (ओषधी) ओषधियों को (अपः) जलों, (गाः) गौ आदि पशुओं तथा मनुष्यों को (अजनयः) उत्पन्न करता है। (त्वम्) तू (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष या आकाश को (आततन्थ) विस्तृत करता है और तू (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) अन्धकार को (वि ववर्थ) विविध प्रकार से दूर करता है।

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ॥२३॥२३

भा०—हे (देव) विजय की कामना करने हारे! (सोम) ऐश्वर्यवन्! (सहसावन्) बलवन्! तू (नः) हमारे (रायः) ऐश्वर्य के (भागम्) सेवन तथा प्राप्त करने योग्य अंश को उद्देश्य करके (मनसा) ज्ञान तथा शत्रु को वश कर लेने में समर्थ, दृढ़ बल से (अभि युध्य) मुकाबले पर लड़। शत्रु (त्वा) तुझे (मा तनत्) पीड़ित न कर सके। तू (ईशिषे) हमारे समस्त ऐश्वर्य का स्वामी है। तू (गविष्टौ) पृथिवी, पशु-सम्पत्ति, इन्द्रियों से भोग्य पदार्थों में (प्रचिकित्स) अच्छी प्रकार विचार करके बाधक शत्रुओं और रोगादि दुःख कारणों को दूर कर। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[९२] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ १-१५ उषा देवता । १६-१८ अश्विनौ ॥ छन्दः—१, २ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराड् जगती । ५, ७, १० विराट् त्रिष्टुप् । ६, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, ९ त्रिष्टुप् । ११ भुरिक्पंक्तिः । १३ निचृत्परोष्णिक् । १४, १५ विराट्परोष्णिक् । १६, १७, १८ परोष्णिक् ।

अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जैसे (केतुम्) सब जगत् का ज्ञान कराने वाले प्रकाश को (अक्रत) उत्पन्न करती हैं और (रजसः) इस महान् लोक के (पूर्वे अर्धे) पहले या पूर्व दिशा के आधे भाग में (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अञ्जते) प्रकट करती हैं व (धृष्णवः) वीर, योद्धा जैसे (आयुधानि इव) अपने हथियारों को अच्छी प्रकार चमका लेते हैं वैसे ही सूर्य को उत्पन्न करने वाली या प्राणियों के जीवनों को मापने वाली उषाएं (गावः) नित्य गमनशील या किरणें (अरुषीः) लाल वर्ण वाली होकर (निष्कृण्वानाः) दिनों को प्रकाशित करती हुईं (प्रतियन्ति) भूमि के प्रत्येक स्थान पर जाती हैं। वैसे ही (एता उ त्याः) ये वे (उषसः) उषा के समान जीवन के पूर्ववयस में वर्त्तमान (उषसः) प्रातःकाल के सूर्य के समान मनोहर एवं (उषसः) अपनी शुद्ध भावनाओं से पापियों को दाह उत्पन्न करने वाली एवं पतिकामना से युक्त स्त्रियें (रजसः) अपने राजस भाव से युक्त जीवन अर्थात् यौवन के (पूर्वे अर्धे) पहले आधे भाग में या पूर्ण समृद्ध काल में (भानुम्) तेजस्वी पुत्र को (अञ्जते) प्रकट करें, उत्पन्न करें (धृष्णवः आयुधानि इव निःकृण्वानाः प्रतियन्ति) प्रगल्भ वीर जन जैसे अपने आयुधों को चमचमाते हुए आगे बढ़ते हैं और (गावः) गौवें जैसे (निःकृण्वानाः) समस्त सुखैश्वर्यों से गृहों को सुशोभित करती हुई आती हैं वैसे ही (मातरः) पुत्रों की उत्पादक माताएं (निष्कृण्वानाः) अपने

गृहों को अच्छी प्रकार सुशोभित करती हुई (अरुषी:) क्रोध आदि से रहित सौम्य स्वभाव होकर (प्रति यन्ति) रहें।

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

भा०—(अरुणाः) अरुण व लाल रंग के (भानव) किरण जैसे (वृथा) आपसे आप (उत्-अपप्तन्) उदय को प्राप्त होते हैं वैसे ही तेजस्वी पुरुष (अरुणाः) नव उदित सूर्य के समान अनुराग से रञ्जित होकर (उत् अपप्तन्) उदय को प्राप्त होते हैं और (स्वायुजः) उत्तम रीति से स्वयं आजु तने वाले, सुशील (गाः) बैलों को जैसे कोई रथवान् (अयुक्षत) रथ में जोड़ता है वैसे ही (सु-आयुजः) उत्तम पुरुषों के साथ योग चाहने वाली (गाः) गमनयोग, (अरुषीः) दीप्तिमती, कन्याओं को विद्वान् लोग (अयुक्षत) योग्य वर से संयुक्त करें। (उषासः) प्रभात वेलाएं जैसे (पूर्वथा) सबसे पूर्व (वयुनानि) ज्ञान (अक्रन्) प्रकट करती हैं वैसे ही (उषासः) यौवन में विद्यमान कन्याएं भी (पूर्वथा) अपने पूर्व काल में (वयुनानि) नाना प्रकार के ज्ञानों का (अक्रन्) सम्पादन करें। (अरुषीः भानुम्) जैसे तेजस्विनी उषाएं सूर्य का आश्रय लेती हैं वैसे ही (अरुषीः) अति तेजस्विनी सौम्यस्वभाव कन्याएं (भानुम्) तेजस्वी पति का (अशिश्रयुः) आश्रय करें।

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—(अपसः) कर्म करने वाले अधीन भृत्यों को जैसे (विष्टिभिः) वेतनों द्वारा (अर्चन्ति) अपने वश करते या उनका सत्कार करते हैं वैसे ही (समानेन योजनेन) समान योग द्वारा अर्थात् गुण, शरीर, बल और विद्या आदि में समान पुरुष के साथ संयुक्त करने से ही (परावतः नारीः) दूर देश से प्राप्त करने योग्य स्त्रियों का (अर्चन्ति) सत्कार करें और

(सुकृते) जो उत्तम क्रियाकुशल (सुदानवे) दानशील या उत्तम रक्षक, (सुन्वते यजमानाय) ओषधि आदि रस का सेवन करने वाले या उत्तम रीति से निषेक करने हारे सुसंगत पति के लिये (इषं) कामना और अन्नादि सुख सम्पदा को (वहन्ती) प्राप्त कराने वाली होती हैं उनका ही सब लोग आदर करते हैं।

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ४

भा०—(नृतूः इव) नाई जैसे केशों को काट देता है वैसे ही (उषा पेशांसि अधिवपते) उषा कृष्ण रूप अन्धकारों को काट डालती है। (उस्रा बर्जहम् इव) उदय होने वाली उषा जैसे प्रकाश के विनाशक घोर अन्धकार को (अप ऊर्णुते) दूर कर देती है और जैसे (उस्रा) गाय (बर्जहम्) दुग्ध देने वाले थन भाग को (अप ऊर्णुते) विशाल रूप में प्रकट करती है वैसे ही नवयुवती भी (वक्षः) वक्षःस्थल को (अपऊर्णुते) प्रकट करती है अर्थात् छाती के उभार को प्रकट करती है। उस समय (विश्वस्मै भुवनाय) सब लोकों के हितार्थ (ज्योतिः कृण्वती) प्रकाश देती हुई उषा के समान वधू भी अपने गुणों का प्रकाश करे। (गावः न व्रजं) गौवें जैसे स्वयं अपने बाड़े में अनायास प्राप्त हो जाती हैं वैसे ही नवयुवतियें भी (व्रजं) योग्य पति को अपने सहज प्रेम से आश्रय रूप में प्राप्त करें। (उषाः) प्रभात की प्रभाएं जैसे (तमः वि आवः) अन्धकार को दूर कर देती हैं वैसे ही वधू भी (तमः) खेद, दुःख और गृह के सूनेपन को (वि आवः) विविध उपायों से दूर कर घर को प्रकाशित करें।

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५॥२४॥

भा०—(अस्याः) इस उषा की (रुशत्) देदीप्यमान कान्ति (प्रति अदर्शि) प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है और वह (वि तिष्ठते) विविध

दिशाओं में फैल जाती है। वह (अभ्वम्) नेत्रादि के सामर्थ्य को विनाश करने वाले (कृष्णम्) काले अन्धकार को (वि बाधते) दूर कर देती है। उसी प्रकार (अस्याः) इस कन्या की (अर्चिः) सत्कार से देखने योग्य उत्तम गुण राशि (प्रति अदर्शि) प्रत्येक को दीखने लगती है। उसकी कीर्ति (वि तिष्ठते) सब देशों में फैल जाती है। वह गुण राशि (अभ्वम् कृष्णं बाधते) बड़े भारी कलंक को भी मिटा देता है। जैसे (स्वरुम्) प्रकाशमान् सूर्य को उषा प्रकट कर देती है वैसे ही (विदथेषु) ज्ञान सत्संगों में जहां अनेक विद्वान् एकत्र हों वहां ही (पेशः न स्वरुं) अपने रूप के समान ही अध्ययन और वाक् पाटव को कन्या (अज्ञन्) प्रकट करे। तब (दिवः दुहिता) उषा जैसे (भानुम् अश्रेत्) सूर्य को प्रकाश से पूर्ण कर देने वाली आकाश का आश्रय लेती है वैसे ही (दिवः दुहिता) कामना युक्त पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली अथवा (दिवः दुहिता) ज्ञानी पुरुष की कन्या (भानुम् अश्रेत्) तेजस्वी ब्रह्मचारी पति का आश्रय ग्रहण करे। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः॥६॥

भा०—(उषा) प्रभात वेला जैसे (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई, अन्धकार को दूर करती हुई, (वयुना कृणोति) समस्त पदार्थों का ज्ञान कराती है, वैसे ही कमनीय कन्या प्रथम वयस में वर्त्तमान रहकर (उच्छन्ती) बाल भाव को दूर करती हुई (वयुना कृणोति) नाना ज्ञानों व कर्मों का सम्पादन करती है। वह (छन्दः न) खुश करने वाले अनुकूल प्रेमी के समान होकर (श्रिये) सौभाग्य के लिये (स्मयते) ईषत् हास करे और (विभाती) विविध गुणों से प्रकाशित होती हुई (सुप्रतीका) सुमुखी होकर (सौमनसाय) शुभचित्तता, उत्तम हृदय या सौहार्द की वृद्धि के लिये (अजीगः) वचन कहे तथा कर्म करे। इस प्रकार हम गृहस्थजन (अस्य

तमसः) इस शोक, दुःख आदि रूप अन्धकार के (पारम् अतारिष्म) पार उतरें।

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७॥

भा०—जैसे 'उषा' (दिवः दुहिता) आकाश और पृथिवी को प्रकाश से पूर्ण करने वाली, (भास्वती) नाना प्रकाशों से युक्त होकर (सूनृतानां नेत्री) उत्तम विचारक योगी जनों के हृदयों में उत्तम २ ज्ञानों तथा वेद वाणियों को प्राप्त कराती है वैसे ही योगी के साधना काल में उत्पन्न हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा भी (दिवः दुहिता) ज्ञान प्रकाश का दोहन करने वाली, (सूनृतानां) सत्य ज्ञानों और वाणियों को (नेत्री) प्रकट करने वाली (भास्वती) ज्योतिष्मती होकर (गोतमेभिः) विद्वान्, वाणीकुशल पुरुषों द्वारा (स्तवे) स्तुति की जाती है।

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८॥

भा०—जैसे उषा (वाजप्रसूता) सूर्य के आगमन से उत्पन्न होती है और (सुदंससा) उत्तम रीति से अन्धकार-नाशक प्रकाश से चमकती है, वैसे ही (या) जो तू (वाजसूता) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली (सुदंससा) उत्तम कर्म और (श्रवसा) उत्तम ज्ञान से (विभासि) शोभित है, उस तेरे द्वारा हे (उषः) प्रभात वेला की सूर्य प्रभा के समान योग्य पति की कामना करने हारी कन्ये! हे (सुभगे) उत्तम सौभाग्यवति! मैं पुरुष (तम्) उस (यशसम्) यशोजनक (सुवीरम्) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, (दासप्रवर्गम्) दास, भृत्यजनों के उत्तम आज्ञाकारी वर्गों वाले अथवा शत्रु नाशक वीर सैनिकों के उत्तम दलों सहित (अश्वबुध्यम्) अश्वारोही सेनाओं को सधाने वाले (बृहन्तम्) बड़े भारी (रयिम्) धन को (अश्याम्) प्राप्त करूं और भोग करूं।

विश्वा॑नि दे॒वी भुव॑नाभि॒चक्ष्या॑ प्रती॒ची चक्षु॑रुर्वि॒या वि भा॑ति ।
विश्वं॑ जी॒वं च॒रसे॑ बो॒धय॑न्ती॒ विश्व॑स्य॒ वाच॑मविदन्मना॒योः ॥९॥

भा०—(देवी) प्रकाशमान सूर्य की प्रभा जैसे (विश्वानि भुवना अभिचक्ष्य) समस्त लोकों को प्रकाशित करके (प्रतीची) पूर्व से, पश्चिम को जाती हुई (उर्विया चक्षुः) बड़े भारी सूर्य से (विभाति) विशेष रूप से प्रकाशित होती है और (विश्वं जीवं) प्राणिमात्र को (चरसे) कार्य व्यवहार करने के लिये (बोधयन्ती) जगाती हुई (विश्वस्य मनायोः) समस्त ज्ञान के इच्छुक पुरुष की (वाचम् अविदत्) वाणी को प्राप्त करती है, वैसे ही (देवी) उत्तम गुणों से युक्त स्त्री (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोकों, पदार्थों को (उर्विया) विशाल ज्ञान से युक्त (चक्षुः) चक्षु द्वारा (अभिचक्ष्य) साक्षात् करके (प्रतीची) साक्षात् सबके सन्मुख (विभाति) विशेष रूप से शोभा को प्राप्त होती है। वह (विश्वं जीवं) समस्त प्राणिमात्र को (चरसे) सत् कर्म के आचरण करने के लिये (बोधयन्ती) ज्ञान प्रदान करती हुई (विश्वस्य मनायोः) ज्ञान के इच्छुक समस्त विद्वान् मनुष्यों की (वाचम्) वाणी को (अविदत्) प्राप्त करे, विद्वानों का उपदेश ग्रहण करे।

पुनः॑पुनर्जा॒यमा॑ना पुरा॒णी स॑मा॒नं वर्ण॑म॒भि शुम्भ॑माना ।
श्व॒घ्नीव॑ कृ॒त्नुर्विज॑ आमिना॒ना मर्त॑स्य दे॒वी ज॒रय॒न्त्यायुः॑ ॥१०॥२५॥

भा०—जैसे (पुनः पुनः जायमाना) प्रतिदिन प्रकट होने वाली, (पुराणी) प्रवाह से नित्य उषा (समानं वर्ण अभि शुम्भमाना) एक समान प्रकाशित रूप प्रकट करती है और (श्वघ्नी इव) कुत्तों की सहायता से मृगों को मारने वाली व्याधिनी के समान (कृत्नुः) पोरु २ काटने वाली या 'बाज' के समान (विजः) भय से व्यथित प्राणियों का (आमिनाना) काल धर्म से विनाश करती हुई (मर्त्तस्य आयुः जरयन्ती) मरणधर्मा प्राणी की आयु को समाप्त कर देती है वैसे ही (देवी) गुणों से प्रकाशित सौभाग्यवती स्त्री, (पुनः पुनः जायमाना) बार २ उत्तम रूपों में प्रकट

होने वाली या (पुनः पुनः जायमाना) बार २ पुत्र प्रसव करती हुई और (समानं वर्णम् अभि शुम्भमाना) अपने समान वर्ण, रूप, गुणों से युक्त पुरुष को या प्रसव द्वारा पुत्र को (अभि) प्राप्त करके (शुम्भमाना) शोभा को प्राप्त होती हुई (विजः) उद्वेग करने वाले बाधक कारणों और शत्रुओं का (श्वघ्नी इव विजः कृत्नुः) पशु पक्षी गणों का वृकी या व्याघ्री के समान (आमिनाना) विनाश करती हुई (पुराणी) पुर, अर्थात् अन्तःपुर में जीवन स्वरूप होकर या (पुराणी) स्वयं वृद्ध होकर (मर्त्तस्य आयुः जरयन्ती) और अपने साथ अपने संगी पति की आयु को भी वृद्धावस्था तक प्राप्त कराती हुई जीवन व्यतीत करे ।

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११॥

भा०—(उषा) सूर्य की प्रातःकालिक प्रभा जैसे (वि ऊर्ण्वती) रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई (दिवः अन्तान् अबोधि) आकाश के दूर दूर तक के भागों को भी प्रकाशित कर देती है, (सनुतः) निरन्तर, (स्वसारम्) प्रकाश के आगमन से आप से आप भाग जाने वाली रात्रि को (अप युयोति) दूर कर देती है और वह (मनुष्या युगानि) मनुष्यों के आयु के वर्षों को काल धर्म से (प्र मिनती) नाश करती हुई (जारस्य चक्षसा योषा) अपने प्रेमी पुरुष के दर्शन से स्त्री के समान मानो प्रसन्न होकर (जारस्य) रात्रि को या उषा काल को अपने उदय से विनाश कर देने वाले सूर्य के (चक्षसा) दर्शन से वह (विभाति) विशेष शोभा से खिल उठती है वैसे ही स्त्री (वि ऊर्ण्वती) दोषों को दूर करती हुई अपने गुणों से (दिवः) ज्ञान प्रकाश की (अन्तान्) परली सीमाओं को (अबोधि) जान ले । (स्वसारं) अपनी भगिनी को (सनुतः) निरन्तर (अप युयोति) अपने से दूर देश में सम्बन्ध करावे । वह स्त्री (मनुष्या युगानि प्र मिनती) मनुष्य के आयु के वर्षों को व्यतीत करती हुई (जारस्य) विद्वान् धर्मोप-

द्रेष्टा पुरुष के (चक्षसा) दर्शन, ज्ञान, सत्संग या कथनोपकथनों द्वारा (विभाति) विशेष शोभा को प्राप्त हो ।

प॒शून्न चि॒त्रा सु॒भगा॑ प्रथा॒ना सिन्धु॒र्न क्षोद॑ उर्वि॒या व्य॑श्वैत् ।
अमि॑नती॒ दैव्या॑नि व्र॒तानि॒ सूर्य॑स्य चेति र॒श्मिभि॑र्दृशा॒ना ॥१२॥

भा०—जैसे (चित्रा) संग्रहणशील वैश्य प्रजा (पशून्) पशुओं को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और जैसे (सिन्धुः क्षोदः न) समुद्र या वेगवती नदी जल को प्राप्त होकर बढ़ती या फैलती है वैसे ही (उर्विया) अधिक तेज को प्राप्त होकर (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवती (चित्रा) सूर्य की प्रातः-प्रभा (प्रथाना) वृद्धि को प्राप्त होती हुई (अश्वैत्) सर्वत्र फैलती है ऐसे ही (चित्रा) सञ्चयशील एवं गुणों से आदर करने योग्य (सुभगा) उत्तम सौभाग्यवती स्त्री (उर्विया) बड़े डील तथा अधिक ज्ञान और तेज से (प्रथाना) बढ़ती हुई अपने ऐश्वर्य यश को बढ़ाती हुई (अश्वैत्) सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है । जैसे प्रातःप्रभा (दैव्यानि व्रतानि अमिनती) परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि नियमों को विनाश न होने देती हुई, व्रत पालक जनों से पालन कराती हुई (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों सहित (दृशाना) देखी जाती और उनसे ही (चेति) जानी जाती है एवं सूर्य किरणों से ही अन्यों को जगत् के पदार्थ दिखाती और उनका ज्ञान कराती है, वैसे ही उत्तम महिला भी (दैव्यानि) परमेश्वर सम्बन्धी, अग्निहोत्रादि और विद्वानों सम्बन्धी बलि-वैश्वदेव, आतिथ्य सत्कार तथा देव अर्थात् पृथिवी आदि पञ्चभूत तथा शरीरस्थ इन्द्रियों के हितकारी परोपकारक जगत् के हित के लिये स्नानादि (व्रतानि) नित्य कृत्यों को (अमिनती) कभी न विनाश करती हुई उनको करने से कभी न चूकती हुई (दैव्यानि व्रतानि) देव अर्थात् अपने प्रिय इच्छुक पति के कार्यों की हानि न करती हुई (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के (रश्मिभिः) ज्ञान प्रकाशों से (दृशाना) तत्वों का दर्शन करती हुई और औरों को दिखाती हुई (चेति) ज्ञान प्राप्त करे और करावे ।

उष॒स्तच्चि॒त्रमा भ॑रा॒स्मभ्यं॑ वाजिनीवति ।

येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥१३॥

भा०—हे (उषः) पति की कामना करने हारी कमनीये कन्ये ! हे (वाजिनीवति) ऐश्वर्य और अन्न की वृद्धि आदि करने में कुशल नववधू ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (चित्रम्) ऐसा उत्तम, संग्रह करने योग्य, धन, ऐश्वर्य और ज्ञान (अस्मभ्यम्) हमें (आभर) प्रदान कर (येन) जिससे हम (तोकं तनयं च) पुत्रों और पौत्रों का भी (धामहे) पालन पोषण करें।

उषो॑ अ॒द्येह गो॑म॒त्यश्वा॑वति विभावरि ।

रे॒वद॒स्मे व्यु॑च्छ सूनृतावति ॥१४॥

भा०—उषा, प्रातः प्रभा किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और गतिमान् या व्यापक तेजस्वी सूर्य से युक्त होने से 'अश्वावती' है। वह विशेष कान्ति से युक्त होने से 'विभावरी' है। वही भक्तों की स्तुतियों से युक्त होने के कारण 'सूनृतावती' होती है। वैसे ही हे (उषः) कान्तिमति ! पति को हृदय से चाहने वाली कमनीये ! हे (गोमति) गृह में उत्तम पशु सम्पदा और देह में उत्तम इन्द्रिय शक्तियों से युक्त ! हे (अश्वावति) अश्व आदि वेगवान् साधन, घोड़े आदि सवारी के पशुओं तथा रथों और अश्वारोहियों की स्वामिनि ! हे (विभावरि) विशेष गुणों से प्रकाशमान, रात्रि के समान शयन आदि का सुख देने वाली ! हे (सूनृतावति) उत्तम ज्ञान वाणी को बोलने हारी सुकण्ठि ! (इह) इस गृहस्थ और (अद्य) इस जीवन काल में (अस्मे) हमें (रेवत्) ऐश्वर्य सम्पन्न गृह सुख (वि उच्छ) विविध प्रकारों से प्रदान कर ।

यु॒क्ष्वा हि वा॑जिनीव॒त्यश्वाँ॑ अ॒द्यारु॒णाँ उ॑षः ।

अथा॑ नो॒ विश्वा॒ सौभ॑गा॒न्या व॑ह ॥१५॥२६॥

भा०—जैसे (उषः) उषा प्रातःकाल के समय उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाली नाना क्रियाओं से युक्त होने से 'वाजिनीवती' है। वह (अरुणान् अश्वान्) लाल घोड़ों के समान लाल वर्ण के प्रकाशों को फैलाती है वैसे ही हे (उषः) कान्तिमती नववधू ! तू (वाजिनीवती) उत्तम ऐश्वर्यजनक मङ्गल क्रियाओं को करने हारी होकर (अरुणान्) लाल वर्ण के या वेरोक चलने वाले (अश्वान्) अश्वों को (युक्ष्व) रथ में लगा और (अरुणान्) स्नेह से युक्त अश्व के समान बलवान् पुरुषों को (युक्ष्व) अपने अधीन भृत्य नियुक्त कर (अथ) और (नः) हमें (विश्वा सौभगानि) समस्त उत्तम ऐश्वर्यों को (आ वह) प्राप्त करा।

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

भा०—हे (अश्विना) एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले वर वधू ! तुम दोनों (दस्रा) विरोधी अपवादों के नाशक एवं गुणों से दर्शनीय ! हे (समनसा) समान चित्त वाले तुम दोनों (अस्मत्) हमारे (वर्तिः अर्वाग्) घर के सामने आकर (गोमत्) गोचर्म से मढ़े या तांत से बंधे (हिरण्यवत्) पीतल आदि धातुओं से सजे (रथं) रथ को (नि यच्छतम्) रोको और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो।

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१७॥

भा०—(अश्विना) दिन रात्रि जैसे (दिवः ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश को (जनाय) मनुष्यों के हित और सुख के लिये (चक्रथुः) सेवन करने योग्य बना देते हैं वैसे ही (यौ) जो आप दोनों (दिवः ज्योतिः श्लोकम्) तेजस्वी गुरु से प्राप्त प्रकाशक वेद वाणी रूप ज्योति का (इत्था) इस प्रकार से (जनाय) समस्त जनों के हित के लिये (चक्रथुः) उपदेश करते

हो (नः) हमें (युवम्) तुम दोनों (न) हमारे कल्याण के लिये (ऊर्जं) उत्तम अन्न, बल को (आ वहतम्) प्राप्त कराओ।

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८॥२७॥

भा०—जैसे सुखप्रद सूर्य और पवन (सोमपीतये) प्रकाश और पदार्थों के उपभोग प्रदान करने के लिये (उषः-बुधः) प्रातः वेला को प्रकट करने वाले किरणों को हमें प्राप्त कराते हैं वैसे ही (देवाः) दान आदि उत्तम गुणों वाले, (मनोभुवा) सुखों के मूल उत्पादक (दस्रा) बाधक कारणों के नाशक (हिरण्यवर्तनी) हित और प्रिय व्यवहार मार्ग में चलने वाले होकर (सोमपीतये) उत्तम पदार्थों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिये (उषर्बुधः) प्रातःकाल की वेला में चेतन होने वाले विद्वानों को (आ वहन्तु) प्राप्त करावें।

[९३] गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ अग्नीषोमौ देवते ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्। २ विराडनुष्टुप्। ३ भुरिगुष्णिक् (अनुष्टुब्गर्भा), व्यूहेन वऽनुष्टुप्। ४ स्वराट् पंक्तिः। ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ८ स्वराट् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप्। ९, १०, ११ गायत्री ॥

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम्।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१॥

भा०—हे (अग्नीषोमौ) अग्ने! विद्वन् और हे (सोम) उत्पादक पितः! शम आदि गुणों से युक्त परीक्षक जनों! आप दोनों (वृषणौ) ज्ञानोपदेशों की वर्षा करने हारे। (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) ग्राह्य वचन को (शृणुतं) श्रवण करो (मे इमं हर्यतं हवं शृणुतम्) कुछ मेरे हित के लिये ग्राह्य, श्रवण योग्य उपदेश का श्रवण कराओ और (सूक्तानि प्रति) वेद के सूक्तों के प्रतिदिन (हर्यतम्) व्याख्यान करने की अभिलाषा करो। (दाशुषे)

अपने सर्वस्व को अर्पण करने वाले शिष्यजन के लिये (मयः) कल्याण-कारक (भवतम्) होओ ।

अग्नी॑षोमा॒ यो अ॒द्य वा॑मि॒दं वचः॑ सप॒र्यति॑ ।
तस्मै॑ धत्तं सु॒वीर्यं॒ गवां॒ पोषं॒ स्वश्व्य॑म् ॥२॥

भा०—हे (अग्निषोमा) आचार्य और विद्वन् ! (वाम्) आप दोनों के (इदं वचः) इस ज्ञानमय वचन का (यः) जो (अद्य) आज और सदा ही (सपर्यति) आदर करे (तस्मै) उसको (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, ब्रह्मचर्य (गवां पोषं) ज्ञानेन्द्रियों का पोषण, (सु-अश्व्यम्) प्राणों और शीघ्र क्रिया करने में चतुर मन आत्मा और कर्मेन्द्रियों के हितकर्म से युक्त बल को (धत्तम्) धारण कराओ ।

अग्नी॑षोमा॒ य आहु॑तिं॒ यो वां॒ दाशा॑द्ध॒विष्कृ॑तिम् ।
स प्र॒जया॑ सु॒वीर्यं॒ विश्व॒मायु॒र्व्य॑श्नवत् ॥३॥

भा०—हे (अग्नीषोमा) अग्ने, वायो ! (यः) जो (वाम्) तुम दोनों के बीच (हविष्कृतिम्) प्रचुर अन्न को उत्पन्न करने वाली (आहुतिं) आहुति (दाशात्) प्रदान करता है (सः) वह (प्रजया) प्रजा सहित (सुवीर्यम्) उत्तम बल से युक्त (विश्वम्) पूर्ण (आयुः) आयु को (वि-अश्नवत्) विविध प्रकार से भोग करे । हे ज्ञानवान् ब्राह्मण ! हे (सोम) सबके आज्ञापक राजन् ! जो आप दोनों के (हविष्कृतिम्) राष्ट्र को वश करने में योग्य बना देने वाली (आहुतिम्) कर देते हैं वे बल और पूर्णायु का भोग करें ।

अग्नी॑षोमा॒ चेति॒ तद्वी॒र्यं॑ वां॒ यदमु॑ष्णीतमव॒सं प॒णिं गाः ।
अवा॑तिरतं॒ बृस॑यस्य॒ शेषोऽवि॑न्दतं॒ ज्योति॒रेकं॑ ब॒हुभ्यः॑ ॥४॥

भा०—हे (अग्नीषोमा) विद्वन् एवं राजन् ! (वां) आप दोनों का (वीर्यम् चेति) वह वीर्य विदित ही है (यत्) कि आप दोनों (अवसम्)

ज्ञान (पणिम्) व्यवहार और (गः) वाणियों को (अमुष्णीतम्) हर लेते हो। तुम दोनों (बृसयस्य) अपने समीप बसने वाले, अन्तेवासी छात्र को माता पिता के हितकारी (शेषः) पुत्र के समान ज्ञान साधना को (अवातिरतम्) दो और (बहुभ्यः) बहुतों के लिये हितकारी (एकम्) एक सूर्य के समान आत्मरूप (ज्योतिः) ज्योति को (अविन्दतम्) प्राप्त कराओ।

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥५॥

भा०—(सक्रतू) एक काल और एक देश में क्रियाशील होकर जैसे प्रकाश और वायु दोनों (दिवि) आकाश या सूर्य के प्रकाश में (रोचनानि धत्तः) नाना रुचिकर कार्यों को धारण करते हैं और (सिन्धून्) जलप्रवाहों को वृष्टि रूप से मेघ में से मुक्त कर देते हैं, वर्षा देते हैं वैसे ही (अग्ने) हे (सोम) शम आदि के शिक्षक व आचार्य तुम दोनों (दिवि) ज्ञान के आधार पर (एतानि रोचनानि) इन नाना रुचिकर विज्ञानों को (सुक्रतू) समान क्रिया और प्रज्ञा वाले होकर (अधत्तम्) धारण करो। (युवं) तुम दोनों (गृभीतान् सिन्धून् इव) मेघ में स्थित जलों के समान (गृभीतान्) बन्धन में बंधे (सिंधून्) प्राण वाले प्राणियों को (अभिशस्तेः) निन्दा योग्य पीड़ा और (अवद्यात्) गर्हणीय पापबन्धन से (समुञ्चतम्) मुक्त करो।

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥६॥२८॥

भा०—(आन्यं) अग्नि और सोम इन दोनों में से अग्नि को जैसे (मातरिश्वा) वायु (दिवः) सूर्य के बल से (आजभार) धारण करता है और (अन्यं) दूसरे आकाशस्थ (सोमम्) मेघ को जैसे (श्येनः) वेगवान् प्रबल वायु का झकोरा (अद्रे परि) पर्वत पर (आमथ्नात्) टकराता है और वे दोनों ही (अग्नीषोमा) अग्नि और सोम (ब्रह्मणा) बड़े भारी बल से

(वावृधाना) बढ़ते हुए (उरु लोकम्) इस महान् दृश्य जगत् को (यज्ञाय) सुसम्बद्ध रहने के लिये (उरुं) बहुत बड़ा (चक्रथुः) बना लेते हैं, वैसे ही (मातरिश्वा) पृथ्वी माता के विजय के निमित्त वेग से जाने हारा पुरुष (दिवः) ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में एक अग्नि ज्ञानवान् के रूप में (जहार) प्राप्त होता है और दूसरा (श्येनः) बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने हारा (अद्रेः) अभेद्य जन समूह में से (अन्यम्) दूसरे सोम, ऐश्वर्यवान् आज्ञापक श्रेष्ठ पुरुष को दूध से मक्खन के समान मथ कर प्राप्त करे। वे दोनों विद्वान् और ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान और ऐश्वर्य से (वावृधाना) बढ़ते हुए (उरुं) इस महान् (लोकम्) लोक को (यज्ञाय) राष्ट्र के बनाने के लिये (चक्रथुः) तैयार करें।

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥७॥

भा०—जैसे (अग्नीषोमा) आग और वायु दोनों मिलकर (प्रस्थितस्य हविषः) प्राप्त हुए चरु आदि खाद्य पदार्थ को (वीतम्) भस्म कर देते हैं और (हर्यतम्) अपने बीच में सूक्ष्म रूप से धारण करके (वृषणा) वर्षणशील होकर (जुषेथाम्) उससे स्वयं तृप्त हो, अन्यों को सुखी करते हैं (सु-अवसा सुशर्मणा भूतम्) अपने उत्तम रक्षा सामर्थ्य से उत्तम सुख देने वाले होकर शान्ति और रोग नाश करते हैं, वैसे ही हे (अग्नीषोमा) अग्ने! ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! हे (सोम) राजन् अथवा आचार्य! आप दोनों (प्रस्थितस्य हविषः) आप के पास प्रस्तुत किये 'हवि' स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (वीतम्) प्राप्त करो। (हर्यतं) उसको चित्त से चाहो और (वृषणा) शिष्यों तथा प्रजाजनों पर ज्ञान और सुखों की वर्षा करने वाले होकर (जुषेथाम्) उन स्वीकृत पदार्थों का सेवन करो। आप दोनों (स्ववसा) अपने उत्तम ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से (हि) निश्चय ही (सुशर्माणा) उत्तम सुख शरण देने वाले (भूतम्) होवो । (अथ) और

(यजमानाय) दानशील पुरुष के लिये (शम्) शान्ति प्राप्त करने और (योः) दुःखों को दूर करने वाले उपाय (धत्तम्) प्रदान करो।

यो अ॒ग्नीषोमा॑ ह॒विषा॑ सप॒र्याद्दे॑व॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ यो घृ॒तेन॑।
तस्य॑ व्र॒तं र॑क्षतं पा॒तमंह॑सो वि॒शे जना॑य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥८॥

भा०—(यः) जो पुरुष (हविषा) संस्कृत 'हवि' अर्थात् चरु से (अग्नीषोमा) अग्नि और वायु दोनों को (सपर्यात्) उनमें उत्तम पदार्थ की आहुति देता है और (यः) जो (देवद्रीचा) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार करने वाले (मनसा) चित्त से युक्त होकर (घृतेन) घृत से और विद्वानों की अर्घ्य, पाद्य आदि जलों से (सपर्यात्) उनका सत्कार करता है वे दोनों (तस्य) उसके (व्रतं) सत्य भाषण, तप, स्वाध्याय आदि नित्य कर्मों का (रक्षतम्) पालन करते हैं और वे दोनों उसको (अंहसः पातम्) ज्वरादि दुःखों से बचाते और (विशे जनाय) प्रजाजन के हित के लिये (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छतम्) देते हैं।

अग्नी॑षोमा॒ सवे॑दसा॒ सहू॑ती वनतं॒ गिरः॑। सं दे॑व॒त्रा ब॑भूवथुः ॥९॥

भा०—(अग्निषोमा) अग्नि और वायु जैसे एक रूप से चरु को ग्रहण करते हैं और पृथिवी आदि पदार्थों पर समान रूप से व्याप जाते हैं वैसे ही ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् मन्त्री और राजा, आचार्य और शिष्य, दोनों (सवेदसा) समान ज्ञान और ऐश्वर्यवान् होकर (सहूती) एक दूसरे के समान, एक साथ ही वर्णन योग्य होकर (गिरः वनतम्) स्तुति वाणियों का सेवन करते हैं वे (देवत्रा) विद्वान् पुरुषों के बीच में (सं बभूवथुः) एक साथ मिलकर ही शक्तिशाली और कार्यसम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

अग्नी॑षोमाव॒नेन॑ वां॒ यो वां॑ घृ॒तेन॒ दाश॑ति। तस्मै॑ दीदयतं बृ॒हत् ॥१०॥

भा०—जैसे (घृतेन अग्नीषोमौ दाशति) घृत और जल के साथ अग्नि और वायु दोनों के बीच ग्राह्य अंश को प्रदान करता है उसके लिये वे

दोनों (बृहत् दीदयतम्) बहुत प्रकाशित करते हैं। वैसे ही हे (अग्नीषोमौ) विद्वन्, हे राजन् ! (यः) जो भी पुरुष (वां) तुम दोनों में किसी को (घृतेन) स्नेह, तेजस्विता या नम्रता से प्रदान करता है (तस्मै) उसको (बृहत्) आप बहुत २ ज्ञान और ऐश्वर्य (दीदयतम्) प्रकाशित करते और प्रदान करते हैं।

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्।
आ यातमुप नः सचा ॥११॥

भा०—हे (अग्नीषोमा) अग्नि और वायु के समान उपकारक स्वभाव वाले विद्वान् पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (नः) हमारे (हव्या) स्वीकार योग्य (इमानि) इन पदार्थों को (जुजोषतम्) प्रेम से स्वीकार करो और (नः) हमें (सचा) सदा एक साथ (आयातम्) प्राप्त होओ।

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२।२६।१४

भा०—(अग्नीषोमा) अग्नि और वायु के समान राष्ट्र का शिक्षण और पालन करने वाले आप दोनों (नः) हमारे (अर्वतः) अश्वों का (पिपृतम्) पालन करो अ र (नः) हमारे (हव्यसूदः) दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली (उस्रियाः) गौवों और अन्नों की उत्पादक भूमियों को (आप्यायन्ताम्) खूब हृष्ट पुष्ट और जल से सेचित करो। (अस्मे) हमारे (मघवत्सु) धनाढ्य पुरुषों के आश्रय पर (बलानि) राष्ट्र के रक्षक सैन्यों का (धत्तम्) पालन करो और (नः अध्वरम्) हमारे प्रजा पालन रूप यज्ञ को (श्रुष्टिमन्तम्) खूब अन्न-समृद्धि से युक्त करो।

[९४] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, १० निचृज्जगती। ९, १२, १३, १४ विराड् जगती। २, ३, १६ त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप्, विराड् वा जगती। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत् त्रिष्टुप्। १५ भुरिक् पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

इमं स्तोम॒मर्ह॑ते जा॒तवे॑दसे॒ रथ॑मिव॒ सं म॑हेमा मनी॒षया॑।
भ॒द्रा हि नः॒ प्रम॑तिरस्य सं॒सद्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१॥

भा०—जैसे (मनीषया) बुद्धि पूर्वक (रथम् इव) वेग से जाने वाले रथ को संचालित और उसका उपयोग करते, उसकी देख भाल और रक्षा करते हैं वैसे ही (अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) समस्त पदार्थों के ज्ञाता विद्वान् और ऐश्वर्यों के स्वामी, धनाढ्य तथा वेदों के उत्पत्ति स्थान परमेश्वर इनके उपदेश, प्रवचन तथा उपासना के लिये (इमं) इस (स्तोमम्) स्तुति को (मनीषया) बुद्धि पूर्वक बड़े विचार से (सं महेम) अच्छी प्रकार करें। (अस्य) इस विद्वान् और ऐश्वर्यवान् की (संसदि) सभा और सत्संग में बुद्धि तथा (हि) निश्चय से (नः) हमें (भद्रा) सुख और कल्याण के देने वाला (प्रमतिः) उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार (अस्य संसदि) परमेश्वर की उपासना में हमें सुखकारिणी उत्कृष्ट मति प्राप्त होती है। हे (अग्ने) ज्ञानवान्! अग्रणी नायक! परमेश्वर (तव सख्ये) तेरे मित्र भाव में रहते हुए (वयम्) हम कभी (मा रिषाम) विनाश को प्राप्त न हों।

यस्मै॒ त्वमा॒यज॑से॒ स सा॑धत्यन॒र्वा क्षे॑ति॒ दध॑ते सु॒वीर्य॑म्।
स तू॑ताव॒ नैन॑मश्नोत्यंह॒तिरग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! परमेश्वर (अनर्वा) बिना अश्व के अग्नि या विद्युत् बल से जैसे रथ चला जाता है वैसे ही (त्वम्) तू (यस्मै) जिसको (आयजसे) थोड़ा सा भी अपना ज्ञान और ऐश्वर्य देता है (सः अनर्वा सधति) वह बिना सहायक के भी सब काम सिद्ध करता है; वह (सुवीर्यम् दधते) उत्तम बल, तेज को धारण करता है। (सः तूताव) वह स्वयं वृद्धि को प्राप्त होता और औरों को भी बढ़ाता है (एवं) उसको (अंहतिः) पाप, बाधा (न अश्नोति) कुछ भी प्राप्त नहीं होता। हे (अग्ने) नायक! परमेश्वर (वयम्) हम (ते सख्ये मा रिषाम) तेरे मित्रभाव में रह कर कभी पीड़ित नहीं होते।

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

भा०—जैसे यज्ञ में अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, वह समस्त यज्ञ कर्मों को साधता है, वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! हम (त्वा) तुझे (समिधे शकेम) प्रतापी बनाने में समर्थ हों । तू (धियः साधय) ज्ञानों और राष्ट्र के कार्यों की साधना कर, उनको प्राप्त कर, अपने वश कर । (त्वे) तेरे आश्रय पर ही (देवाः) विद्वान् पुरुष (आहुतम्) दान किये हुए (हविः) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का (अदन्ति) भोग करते हैं । (त्वे देवाः हविः अदन्ति) तेरे आश्रय पर रहकर देव अर्थात् विजयेच्छु जन अन्न, वेतनादि को भोगते हैं । तू (आदित्यान्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों को और अदिति अर्थात् भूमि माता के पुत्रों, वीर सैनिकों को (आवह) धारण कर । हम भी (तान् उश्मसि हि) उनको ही चाहते हैं । (तव सख्ये मा वयं रिषाम) हम तेरे मित्र भाव में कभी पीड़ा को न प्राप्त हों ।

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४॥

भा०—जैसे यज्ञार्थ अग्नि के लिये हम (इध्मं) ईंधन लाते हैं (हवींषि) चरु पदार्थ तैयार करते हैं (पर्वणा पर्वणा) पर्व, पर्व पर हम उसे चेताते हैं और वह हमारे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के साधनों को उपस्थित करता है वैसे ही (अग्ने) हे ज्ञानवन् नायक ! हम (ते) तेरी वृद्धि और तेज को बढ़ाने के लिये (इध्मं) तेजस्वी होने के साधनों का (भराम) संग्रह करें । (ते) तेरे निमित्त (हवींषि) सब प्रकार के अन्नों और स्वीकार योग्य ऐश्वर्यों को (कृणवाम) उत्पन्न करें । (पर्वणा पर्वणा) प्रत्येक पालन करने और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले साधन और वेदज्ञानमय व्यवस्थापुस्तक के पर्व २ या अध्याय २ से (वयम्) हम (चितयन्तः) ज्ञान प्राप्त करते हुए और तुझे चेताते हुए (तव सख्ये) तेरे मित्र भाव में

रह कर (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों। (जीवातवे) हमारे जीवनों के लिये (धियः) उत्तम २ ज्ञानों और कार्यों को (प्रतरं) खूब अच्छी प्रकार से (साधय) अनुष्ठान कर।

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ५।३०

भा०—(अस्य) इस सभापति, राजा और विद्वान् के राज्य में (विशां गोपाः) प्रजाओं के रक्षक पुरुष (द्विपत् च) दोपाये, भृत्य आदि (यत् उत) और (चतुष्पद्) चौपाये (जन्तवः) सब जन्तु (अक्तुभिः) प्रकट चिह्नों या गुणों सहित होकर (चरन्ति) विचरें। हे (अग्ने) राजन् (चित्रः) तू सत्कार करने योग्य (प्रकेतः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (उषसः महान्) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और गुणों से महान् सामर्थ्य वाला है। (तव सख्ये मा रिषाम) तेरे मित्र भाव में हम कभी पीड़ित न हों। इति त्रिंशो वर्गः॥

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ६

भा०—हे विद्वन्! (त्वम्) तू (अध्वर्युः) हिंसा कर्म से रहित, प्रेम भाव से मिलकर रहने और प्रजापालन के कार्य का संयोजक, और शत्रु से पराजित न होने वाले राष्ट्र का स्वामी है। (उत) तू (पूर्व्यः) सबसे मुख्य (होता) सब अधिकारों और ऐश्वर्यों को ग्रहण करने और वितरण करने हारा (असि) है। तू ही (प्रशास्ता) मुख्य शासक एवं ज्ञानोपदेष्टा है। तू (पोता) राष्ट्र से दुष्ट पुरुषों को दूर करके उसे स्वच्छ, पापाचरणों से रहित करने वाला है। तू (जनुषा) जन्म से ही स्वतःसिद्ध, (पुरोहितः) यज्ञ में ब्रह्मा के समान अग्रणी पद पर स्थापित है। तू (विश्वा आर्त्विज्या) समस्त ऋत्विजों के यज्ञोपयोगी कार्यों को जानने वाले विद्वान् के समान ऋतु अर्थात् सभा के सदस्यों के सुसंगत करने के नियमों को (विद्वान्) जानता हुआ, उनको (धीर) बुद्धिमान् (पुष्यसि) खूब पुष्ट, दृढ़ कर देता है। हे

(अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) ज्ञानवन्! नायक! तेरे मित्रभाव में हम कभी पीड़ित न हों।

यो वि॒श्वतः॑ सु॒प्रती॑कः स॒दृङ्ङसि॑ दू॒रे चि॒त्सन्त॒ळिदि॒वाति॑ रोचसे।
रात्र्या॑श्चि॒दन्धो॒ अति॑ देव पश्य॒स्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥७॥

भा०—अग्नि जैसे (सुप्रतीकः) उत्तम रूपवान् (सदृङ्) सबको एक समान दिखाने हारा (दूरे चित् तडित् इव अति रोचते) दूर रहकर भी विद्युत् के समान खूब चमकता है (रात्र्याः अन्धः चित् अति पश्यति) रात के अन्धकार को पार करके स्वयं देखता अर्थात् दूर तक प्रकाशित करता है वैसे ही (यः) जो विद्वान् (विश्वतः) सब प्रकार से (सुप्रतीकः) उत्तम, सुन्दर मुख या दृढ़ अंग वाला या (सुप्रतीकः) उत्तम प्रतीति या ज्ञान से युक्त, अन्यों को भी उत्तम ज्ञान कराने हारा, (सदृङ्) सबको समान रूप से देखने वाला (दूरे चित् सन्) दूर रहकर भी (तडित् इव) विद्युत् के समान (अति) अधिक (रोचसे) तेजस्वी होकर रहता है। हे (देव) विद्वन्! तू (रात्र्या अन्धः चित्) रात में अन्धकार को (अति) पार कर जाने वाले अग्नि के समान अज्ञानान्धकार को पार करके दूर तक (अति पश्यति) देखता है। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! (तव सख्ये वयं मा रिषाम) हम तेरे मित्रभाव में रहकर कभी पीड़ा और अज्ञान से दुःखी न हों।

पूर्वो॑ देवा भवतु सुन्व॒तो रथो॒ऽस्माकं॒ शंसो॑ अ॒भ्य॑स्तु दू॒ढ्यः॑।
तदा जा॑नीतो॒त पु॑ष्यता॒ वचोऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् और वीर पुरुषो (अस्माकम्) हमारे (सुन्वतः) आज्ञा देने हारे एवं अभिषेक प्राप्त प्रजा का (रथः) रथ (पूर्वः) सबसे मुख्य, शक्ति से पूर्ण (भवत्) हो और (अस्माकम्) हमारा (शंसः) उपदेश और शास्त्र भी (दूढ्यः) अनधिकारी पुरुषों के लिये दुःख से ज्ञान करने योग्य, दुर्गम अथवा (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि और दुष्टाचरण करने वालों को (अभि-अस्तु) पराजय करने वाला हो। हे (देवाः) विद्वानो,

विजयशील सैनिको ! (तत् आजानीत) तुम लोग उसके (वचः) वचन को अच्छी प्रकार जानो। (उत) और भी (पुष्यत) पुष्ट, बलवान् करो। हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक (तव सख्ये वयम् मा रिषाम) तेरे मैत्रीभाव में हम पीड़ित और शत्रु से व्यथित न हों।

व॒धैर्दुः॒शंसाँ॒ अप॑ दू॒ढ्यो॑ जहि दू॒रे वा॒ ये अन्ति॑ वा॒ के चि॑द॒त्रिणः॑ ।
अथा॑ य॒ज्ञाय॑ गृण॒ते सु॒गं कृ॑ध्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥९॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! नायक! तू (दुःशंसान्) दुःखदायी वचनों को कहने और बुरी बात सिखाने वालों को (अधैः) नाना दण्डों से (अप जहि) पीड़ित करके राष्ट्र से दूर कर। (ये) जो लोग (दूरे वा) दूर देश में और (अन्ति वा) समीप में भी (केचित्) कोई भी (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धियों, हीन चरित्रों वाले (अत्रिणः) प्रजा के माल को हड़प जाने वाले हैं उनको दण्डित करके प्रजा से परे हटा (अथ) और (यज्ञाय गृणते) परस्पर सत्संग, ज्ञानोपदेश तथा परमेश्वरोपासना आदि कार्यों की वृद्धि के लिये, (गृणते) स्तुति-चर्चा और उपदेश करने वाले पुरुष के लिये (सुगं कृधि) सुखप्रद साधन उपस्थित कर। हम (तव सख्ये मा रिषाम) तेरे मैत्रीभाव में रहकर कभी दुष्ट पुरुषों द्वारा पीड़ित न हों।

यद॑युक्था अरु॒षा रोहि॑ता॒ रथे॒ वात॑जूता वृष॒भस्ये॑व ते॒ रवः॑ ।
आदि॑न्वसि व॒निनो॑ धू॒मके॑तुनाग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१०॥

भा०—जैसे अग्नि (रथे) वेग से चलने वाले रथ में (अरुषा रोहिता वातजूता अयुक्थाः) दीप्ति से युक्त, दृढ़, वायु के वेग से जाने वाले दो वेगदायक यन्त्रों को सञ्चालित करता है तब (वृषभस्य इव रवः) सांड के समान धुधकारने का सा शब्द होता है, (वनिनः) जल से युक्त अग्नि के (धूमकेतुना) धूम के से झण्डे से वह अग्नि युक्त होता है, इस प्रकार एंजिन द्वारा अग्नि-रथ चलता है। वैसे ही हे (अग्ने) नायक! जब तू (रथे) अपने रथ में (अरुषा) रोष रहित, सुशील (रोहिता) हृष्ट पुष्ट अश्वों को

(अयुक्थाः) जोड़ता है तब (वनिनः) वन अर्थात् सेनासमूह के स्वामी रूप से विद्यमान (ते वृषभस्य इव रवः) तुम श्रेष्ठ पुरुष का बरसने वाले मेघ के समान शब्द गंभीर गर्जना के तुल्य हो। (आत् इत्) तभी तू (धूम-केतुना) शत्रुओं के हृदय में कंपकंपी पैदा कर देने वाले ध्वज से युक्त होकर (इन्वसि) आगे बढ़े। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता में रह कर हम कभी पीड़ित न हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

अध॑ स्व॒नादु॒त बि॑भ्युः पत॒त्रिणो॑ द्र॒प्सा यत्ते॑ यव॒सादो॒ व्यस्थि॑रन्।
सु॒गं तत्ते॑ ताव॒केभ्यो॒ रथे॒भ्योऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥११॥

भा०—जैसे वन में लगे अग्नि के (स्वनात् पतत्रिणः बिभ्युः) चटचटा शब्द से पक्षी भय खाते हैं, (द्रप्साः) द्रुत गति से जाने वाले या वृक्ष-पत्राहारी और (यवसादः) तृणचारी पशु (वि अस्थिरन्) विविध स्थानों में आश्रय के लिये छिपते या व्याकुल हो जाते हैं ऐसे ही (अथ) उसके पश्चात् हे रणनायक! (ते स्वनात्) तेरे भयङ्कर शब्द या रणवाद्य से (पतत्रिणः) पक्षियों के समान भीरु हृदय वाले, रथारोही शत्रु भी (बिभ्युः) भय खाएं और (द्रप्साः) द्रुत गति से जाने वाले (यवसादः) तृणचारी अश्व (वि अस्थिरन्) विशेष रूप से स्थिर होकर रहें। (तत्) तब (तावकेभ्यः) तेरे अधीन रहने वाले (रथेभ्यः) रथारोही, वीर पुरुषों के लिये (सुगम्) सुख प्राप्त हो। हे (अग्ने) नायक! (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्रभाव में हम कभी पीड़ित न हों।

अ॒यं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धाय॑सेऽवया॒तां म॒रुतां॒ हेळो॒ अद्भु॑तः।
मृ॒ळा सु नो॒ भूत्वे॑षां॒ मनः॒ पुन॒रग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१२॥

भा०—जैसे (मित्रस्य वरुणस्य धायसे) सूर्य या दिन के प्रकाश और ताप को वरुण, रात्रि काल की शीतलता को धारण करने के लिये (अव-यातां मरुतां अद्भुतः हेळः) नीचे-ऊपर आने जाने वाले, वातावरण भी आश्चर्यकारी रूप से बना हुआ है और (एषां मनः नः सुभूतु) इनका

स्तम्भन बल हमें सुखकारी होता है वैसे ही (मित्रस्य) स्नेह करने, प्रजा को मृत्यु कष्ट से बचाने वाले और (वरुणस्य) सबसे श्रेष्ठ वरण योग्य, दुष्ट शत्रुओं के वारक राजा और न्यायाधीश के (धायसे) अधिकार-बल और शासन को धारण करने के लिये (अवयाताम्) अधीन होकर कार्यों पर जाने वाले (मरुताम्) मनुष्यों, विद्वानों, सैनिकों और प्रजाओं का (हेडः) यह वेष्टन अर्थात् घेरा डाले रहना, राष्ट्र में जाल के समान फैले रहना, आना जाना और आक्रमण करना भी (अद्भुतः) अति आश्चर्यकारी हो। हे राजन्! तू (नः) हमें (मृळ) सुखी कर और (एषां) इन प्रजाजनों, विद्वानों और वीर पुरुषों का (मनः) चित्त सदा (सु भूतु) उत्तम मार्ग में रहे। (पुनः) और हे (अग्ने) नायक! विद्वन्! (तव सख्ये) तेरे मित्र भाव में (वयम्) हम (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों।

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥

भा०—जैसे (देवानां चारुः देवः) पृथिवी आदि पांचों दिव्य पदार्थों में सबसे अधिक व्यापक, तीव्र गतिशील और श्रेष्ठ प्रकाशवान् अग्नि या विद्युत् है वैसे ही हे (अग्ने) राजन्, परमेश्वर! तू ही (देवानाम्) समस्त तेजस्वी पुरुषों में (देवः) तेजस्वी (असि) है। तू ही (अद्भुतः मित्रः असि) अद्भुत, स्नेहवान् है। तू (वसूनाम् वसुः) देह में बसने वाले गौण वसु आदि प्राणगण में मुख्य आत्मा के समान बसने वाले प्रजाजनों में श्रेष्ठ बसने और उनको बसाने वाला एवं ब्रह्माण्ड में पृथिवी आदि लोकों में सबसे श्रेष्ठ (वसुः) सबमें बसने हारा और सबको बसाने हारा है। तू (अध्वरे) उपासना आदि यज्ञकर्म तथा संग्राम और अन्य दानादि श्रेष्ठ कार्यों में (चारुः) सबमें श्रेष्ठ है। (तव) तेरे (सप्रथस्तमे) अति विस्तृत (शर्मन्) शरणप्रद, सुखकारी आश्रय में (स्याम) हम रहें और (वयं तव सख्ये मा रिषाम) तेरे मित्रभाव में रह कर कभी कष्ट प्राप्त न करें।

तत्ते॑ भ॒द्रं यत्समि॑द्धः॒ स्वे दमे॒ सोमा॑हुतो॒ जर॑से मृळ॒यत्त॑मः।
दधा॑सि॒ रत्नं॒ द्रवि॑णं च दा॒शुषेऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन् (ते) तेरा (तत्) यही कार्य (भद्रम्) कल्याणकारक और सुखकारक है कि (यत्) जो तू (सम् इद्धः) अच्छी प्रकार ज्ञानों और बलों से तेजस्वी होकर (स्वे दमे) अपने गृह, इन्द्रिय दमन और राज्य-शासन में ही (सोमाहुतः) राज्यैश्वर्य और अन्नादि ओषधि रस से परिपुष्ट होकर और (मृडयत्-तमः) प्रजाओं को सबसे अधिक सुख देने वाला हो और तू (जरसे) स्तुति का पात्र बन। तू (दाशुषे) दानशील, कर आदि देने वाले प्रजाजन के हित और रक्षा के लिये (रत्नं) राज्य, उत्तम रत्न (द्रविणं च) श्रेष्ठ ऐश्वर्य और (रत्नं द्रविणं च) आत्मा को रमण कराने वाला आत्मज्ञान (दधासि) धारण कर। हे (अग्ने) राजन्! विद्वन्! (तव सख्ये) तेरी मित्रता में रहते हुए (वयम् मा रिषाम) हम कभी पीड़ित न हों।

यस्मै॒ त्वं सु॑द्रविणो॒ ददा॑शोऽनागा॒स्त्वम॑दिते स॒र्वता॑ता।
यं भ॒द्रेण॒ शव॑सा चो॒दया॑सि प्र॒जाव॑ता॒ राध॑सा॒ ते स्या॑म ॥१५॥

भा०—हे (अदिते)! अखण्ड शासन वाले राजन्! (त्वं) तू (सुद्रविणः) उत्तम ऐश्वर्यवान् है। तू (यस्मै) जिसको (सर्वताता) समस्त कार्यों में (अनागास्त्वस्) पापरहितता, शुद्ध आचरण का (ददाशः) उपदेश देता है और (यं) जिसको तू (शवसा) बल और ज्ञान से (चोदयति) सन्मार्ग में चलाता है वह (प्रजावता) उत्तम पुत्र पौत्रों (राधसा) और ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है। हम भी (ते) तेरे लिये (शवसा) ज्ञान, बल और (प्रजावता राधसा) प्रजा से समृद्ध ऐश्वर्य से युक्त (स्याम) हों।

स त्वम॑ग्ने सौभग॒त्वस्य॑ वि॒द्वान॒स्माक॒मायुः॒ प्र ति॑रे॒ह दे॑व।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥१६॥२२॥६

भा०—हे (अग्ने) ज्ञान प्रकाशक विद्वन्! राजन्! प्रभो! हे (देव) ज्ञानप्रद! विद्या प्रकाशक! (त्वम्) तू (विद्वान्) सब कुछ जानने हारा है। (सः) वह तू (अस्माकम्) हमारे (सौभगत्वस्य) उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामित्व (आयुः) जीवन और ज्ञान (इह) इस लोक, जन्म और राष्ट्र में (प्र तिर) खूब बढ़ा। (नः) हमें (मित्रः) प्राण (वरुणः) अपान तथा दिन और रात्रि, (अदितिः) अविनाशी कारण (सिन्धुः) सागर या नदी (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) आकाश ये सब भी (नः) हमें (तत्) वह परम सुख दें। इति द्वात्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽध्यायः॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[९५] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ औषसः सत्यगुणविशिष्टः, शुद्धोऽग्निर्वा देवता॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप्। ४, ५, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप्। ९ भुरिक् पंक्तिः व्यूहेन त्रिष्टुप् वा॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः॥१॥

भा०—हे (द्वे विरूपे स्वर्थे चरतः) जैसे दो स्त्रियें भिन्न २ रूप रंग वाली अपने शुभ प्रयोजन के निमित्त विचरती हैं, (अन्यान्या वत्सम् उपधापयेते) वे दोनों एक दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती, पालती पोसती हैं और (अन्यस्यां) एक की गोद में (हरिः भवति) मनोहर श्याम रंग का बालक हो और (अन्यस्यां सुवर्चाः शुक्रः ददृशे) दूसरी की गोद में शुक्र, शुद्ध उज्वल वर्ण का बालक हो। वैसे ही (द्वे) दोनों (विरूपे) प्रकाश और अन्धकार से भिन्न २ रूप के दिन और रात्रि (सु-अर्थे) अपने उत्तम जगत् के कल्याण के प्रयोजन से (चरतः) मानो दो स्त्रियों के समान विचरते हैं। वे दोनों (अन्या-अन्या) एक दूसरे के या पृथक् २ अपने २ (वत्सम् उपाधापयेते) चन्द्र और सूर्य दोनों को बालक के समान ही अपना रस प्रदान करके पुष्ट करते हैं। अर्थात् रात्रि के गर्भ से उत्पन्न सूर्य का पोषण

दिन करता है और दिन से उत्पन्न अग्नि का पोषण रात्रि करती है। (अन्यस्याम्) एक में या अपनी जननी दिन वेला में (हरिः) जलों और रसों का हरण करने वाला सूर्य (स्वधावान् भवति) अपनी रश्मियों से जल का धारक होता है। (अन्यस्याम्) और दूसरी रात्रि में (शुक्रः) शुद्ध कान्तिमान् अग्नि या जल ही (सुवर्चाः) उत्तम तेजस्वी होकर (ददृशे) दिखाई देता है।

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२॥

भा०—जैसे (दश युवतयः) दस जवान स्त्रियें (जनेषु विरोचमानं) मनुष्यों में तेजस्वी (तिग्मानीकं) तीक्ष्ण तेज से उज्वल मुख वाले या तीक्ष्ण सैन्य वाले (स्वयशसं) यशस्वी पुरुष को अपने २ पति रूप से (परि नयन्ति) परिणय करती हैं और वे दसों जैसे (अतन्द्रासः) आलस्य रहित होकर (त्वष्टुः) अपने तेजस्वी पति से प्राप्त (विभृत्रम्) विविध उपायों से भरण पोषण किये (गर्भम्) गर्भ को (अतन्द्रासः) अनालस्य होकर (जनयन्त) उत्पन्न करती हैं वैसे ही (दश) ये दश दिशाएं, उनमें बसी प्रजाएं (युवतयः) पृथक् २ रहने से हैं वे दसों (जनेषु) लोगों में (विरोध-मानं) विविध गुणों से प्रकाशमान (तिग्मानीकं) तीक्ष्ण सेना बल से युक्त (स्वयशसं) कीर्त्ति की कामना करने वाले पुरुष को, सूर्य को दिशाओं के समान (सीं परि नयन्ति) सब तरफ से घेर लेतीं उसकी शरण प्राप्त होती हैं और वे (इमं) उस (विभृत्रम्) विविध उपायों से पोषण करने वाले बलवान् पुरुष को (त्वष्टुः गर्भम्) तेजस्वी सैन्यबल को तेजस्वी सूर्य के समान प्रतापी (गर्भम्) वश करने में समर्थ करते हैं और (अतन्द्रासः) आलस्य रहित होकर (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं।

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्विदधावनुष्ठु ॥३॥

भा०—(अस्य) इस नायक के (जाना) प्रजा जनों के हितार्थ (त्रीणि) तीन रूप (परिभूषन्ति) होते हैं। (एकं समुद्रे) एक रूप समुद्र में है अर्थात् वह समुद्र के समान गम्भीर हो। (एकं दिवि) दूसरा महान् आकाश या सूर्य में है अर्थात् वह सूर्य के समान तेजस्वी और आकाश के समान महान् हो। तीसरा (अप्सु) जलों या प्राणों में है अर्थात् वह सबके जीवनों का आधार और शान्तिदायक है। वह तीन ही कार्य करता है जैसे प्रथम, वह (पूर्वाम् दिशम् अनु प्रशासत्) अपने मुख्य दिशा या देश को शासन करे। दूसरे, (पार्थिवानां मध्ये) राजाओं और पृथिवी निवासी प्रजाजनों के बीच में (ऋतून्) मुख्य राजसभा के सदस्यों को (प्र शासत्) अच्छी प्रकार शासन करे। तीसरा (अनुष्ठु) सब काम ठीक २ प्रकार से (वि दधौ) धारण करे।

क इ॒मं वो॑ नि॒ण्यमा चि॑केत व॒त्सो मा॒तॄर्ज॑नयत स्व॒धाभिः॑।
ब॒ह्वी॒नां गर्भो॑ अ॒पसा॑मु॒पस्था॑न्म॒हान्क॒विर्निश्च॑रति स्व॒धावा॑न् ॥४॥

भा०—(इमं) इस (निण्यम्) छुपे रहस्य को (कः) कौन (आचिकेत) जानता है कि (वत्सः) बालक (स्वधाभिः) स्वधाओं से प्राणशक्तियों से (मातृः जनयत) माताओं को पैदा कराता अर्थात् अपने बलों से ही माताओं को प्रसव करने में प्रेरित करता है। (वत्सः) प्राणियों को बसाने वाला सूर्य रूप बालक (स्वधाभिः) अपने धारण सामर्थ्यों, कान्तियों से (मातृः) माता रूप दशों दिशाओं को प्रकट करता है। मेघ रूप वत्स (स्वधाभिः) जलों से (मातृः) समस्त ओषधियों की उत्पादक भूमियों से (जनयत) अन्न उत्पन्न करवाता है। ऐसे ही (वत्सः) सब के बसाने वाला राजा (स्वधाभिः) अन्नों, वेतनों तथा स्वराष्ट्र को धारण, शासन पोषण की शक्तियों से ही (मातृः) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों तथा अपने को राजा बनाने वाली प्रजाओं को (जनयत) प्रकट करता है। मातृ गर्भ में जैसे (गर्भः) गर्भ रूप बालक (बह्वीनाम् अपसाम् उपस्थात्) बहुत से जलों की गोद में से ही प्रकट होता है और सूर्य जैसे (बह्वीनां अपसां उपस्थात् गर्भः) बहुत से जलों अर्थात्

समुद्र में से निकलता प्रतीत होता है और आत्मा जैसे (बह्वीनां अपसां गर्भः) नाना प्राणों के भीतर गर्भ के समान घिरा रह कर उनके बीच में से प्रकट होता है वैसे ही तेजस्वी राजा (बह्वीनाम्) नाना (अपसाम्) आप्त प्रजाओं के बीच (गर्भः) गर्भ के समान घिरा हुआ या उनको अपने वश में ग्रहण करने हारा होकर उनके (उपस्थात्) बीच में से प्रकट होता है। वह (स्वधावान्) अपनी शक्ति से युक्त होकर (महान्) गुणों में महान् और (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (निश्चरति) प्रकट होता है।

आविष्ट्यो॑ वर्धते॒ चारु॑रासु जि॒ह्माना॑मू॒र्ध्वः स्वय॑शा उ॒पस्थे॑।
उ॒भे त्वष्टु॑र्बिभ्यतु॒र्जाय॑मानात्प्रती॒ची सिं॒हं प्रति॑ जोषयेते ॥५॥१॥

भा०—जैसे (आसु उपस्थे) इन गर्भ धारण करने हारी माताओं के भीतर (उपस्थे) गर्भाशय में (आविष्ट्यः) बाद में पीड़ा उत्पन्न करने वाला बालक (वर्धते) वृद्धि को प्राप्त होता है और वह (जिह्मानाम् ऊर्ध्वः) कुटिल आकार की नाड़ियों के ऊपर (स्वयशाः) अपने आत्मा के बल पर या माता के अपने खाये अन्न पर पलता है। (उभे) दोनों माता पिता (त्वष्टुः जायमानात्) उत्पन्न होते हुए पीड़ाजनक या तेजस्वी बालक से (बिभ्यतुः) उस समय भय खाते हैं कि कहीं वह बाहर आता हुआ माता की मृत्यु का कारण न हो। (प्रतीची) वे दोनों उसके प्रत्यक्ष देखने पर (सिंहं) पीड़ा-जनक बालक को ही (प्रति जोषयेते) स्नेह करते हैं। ठीक ऐसे ही (आविः-ष्ट्यः) स्वयं अपने तेजों से प्रकट होने वाला (चारुः) उत्तम राजा (जिह्मा-नाम् ऊर्ध्वः) कुटिल, षड्यन्त्रकारियों के भी ऊपर (स्वयशाः) अपने बल से यशस्वी होता हुआ और (आसु उपस्थे) इन प्रजाजनों के बीच, उनके ही मानो गोद में (वर्धते) वृद्धि को प्राप्त होता है। (जायमानात्) उत्पन्न या प्रकट होते हुए उस (त्वष्टुः) तेजस्वी राजा से (उभे) राजवर्ग, प्रजा वर्ग तथा स्ववर्ग और शत्रुवर्ग सभी (बिभ्यतुः) भय करते हैं और वे (प्रतीची) उसके सन्मुख आकर (सिंहम् प्रति) उस सिंह के समान परा-क्रमी एवं सहनशील और शत्रु हिंसक राजा को (जोषयेते) आदर और

प्रेम से देखते, सेवा करते और आज्ञा का पालन करते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

उ॒भे भ॒द्रे जो॑षयेते॒ न मेने॒ गावो॒ न वा॒श्रा उप॑ तस्थु॒रेवैः।
स दक्षा॑णां दक्ष॑पतिर्बभूवा॒ञ्जन्ति॒ यं द॑क्षिण॒तो ह॒विर्भिः॥६॥

भा०—(भद्रे मेने न) शोभन अंग वाली दो स्त्रियां जैसे एक ही पुरुष को प्रेम करें वैसे मानो (उभे) दोनों पक्षों की प्रजाएं (यं) जिस उत्तम पुरुष को (जोषयेते) प्रेम करती हैं (वाश्राः गावः न) जैसे हंभारती हुई गौवें (एवैः) शीघ्रतापूर्वक गमनों द्वारा अपने बच्चों के पास पहुँचती हैं वैसे ही (गावः) भूमि वासी प्रजाजन भी (यम् उपतस्थुः) जिसके पास प्रेम से पहुँचते हैं और जैसे (हविर्भिः) नाना यज्ञ-सामग्रियों से (दक्षिणतः) दक्षिणायन काल में अथवा दायें हाथ से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं वैसे ही (यं) जिस वीर नायक विद्वान् जन को (हविर्भिः) स्वीकार योग्य उपायों द्वारा (दक्षिणतः) दक्षिण अर्थात् दायें हाथ की ओर (अञ्जन्ति) सुशोभित करते हैं, (सः) वह (दक्षाणाम्) समस्त क्रियाकुशल पुरुषों में से (दक्षपतिः) सबका स्वामी, सबसे बड़ा (बभूव) हो।

उद्यं॑यमीति सवि॒तेव॑ बा॒हू उ॒भे सिचौ॑ यतते भी॒म ऋ॒ञ्जन्।
उच्छु॒क्रमत्क॑मजते सि॒मस्मा॒न्नवा॑ मा॒तृभ्यो॒ वस॑ना जहाति॥७॥

भा०—(सविता इव) सूर्य जैसे (सिचौ) वृष्टि करने वाले वायु और मेघ दोनों को (ऋञ्जन्) अपने वश करता हुआ (उत् यंयमीति) ऊपर उठाता और नियम में रखता है और समस्त भूमण्डल से (अत्कम्) सार भूत, व्यापक (शुक्रम्) जल को ऊपर खींच लेता है और पुनः बरसाकर भूमियों को नये हरे चोले पहना देता है वैसे ही जो सेनानायक (भीमः) शत्रुओं के लिये भयंकर होकर (उभे सिचौ) दोनों पक्षों की शस्त्र-वर्षक सेनाओं को (बाहू) दो बाजुओं के समान (उद् यंयमीति) युद्ध के लिये उद्यत करता है और (ऋञ्जन्) उनको अच्छी प्रकार तैयार करता हुआ (उत् यतते) आक्रमण करने का उद्योग करता है वह (सिमस्मात्) समस्त

राष्ट्र से (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने वाले चुस्त, पराक्रमी (अत्कम्) निरन्तर गतिशील सैन्य बल को (उत्-अजते) उठा लेता है, और (मातृभ्यः) माता के समान अपने शरीर को अर्पण करके रक्षा करने वाली सेनाओं को (नवा वसना) नयी २ पोशाकें (जहाति) प्रदान करता है।

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥८॥

भा०—सूर्य जैसे (गोभिः अद्भिः) किरणों और जलों से युक्त होकर अपने (उत्तरं त्वेषं कृणुते) प्रदीप्त तेज को और उत्कृष्ट कर लेता है और (कविः) दूर तक प्रकाश फेंकने हारा (बुध्नं परि मर्मृज्यते) अन्तरिक्ष को भी स्वच्छ कर देता है तब (देवताता समितिः बभूव) प्रकाशमान् किरणों की एकत्र स्थिति होती है वैसे ही राजा (यत्) जब (सदने) एक ही सभा भवन में (गोभिः) ज्ञानी पुरुषों और (अद्भिः) आप्त जनों सहित (सं पृञ्चानः) समान रूप से संगत होकर भी अपने (त्वेषं रूपं) उज्वल रूप को (उत्तरं) उनसे उत्कृष्ट (कृणुते) बना लेता है (धीः) धारक, व्यवस्थापक (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुष (बुध्नं) सबके आश्रय रूप, सबको एकत्र बांधने वाले मुख्य केन्द्रस्थ पद को (परि मर्मृज्यते) सुशोभित करता है तब (सा) वही (देवताता) विद्वानों की राजकीय (समितिः) सभा (बभूव) बन जाती है।

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९॥

भा०—(महिषस्य) बड़े भारी सूर्य का (ज्रयः) अन्धकार को नाश करने वाला, (विरोचमानं) विशेष रूप से देदीप्यमान, (धाम) तेज जैसे (बुध्नं परि एति) आकाश या अन्तरिक्ष को व्याप लेता है वैसे ही हे (अग्ने) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन्! राजन्! (महिषस्य) बड़े दानशील, (ते) तेरा (ज्रयः) शत्रुओं को हराने वाला, (विरोचमानं) विविध प्रकार की प्रजा को प्रिय लगने वाला (उरु) बड़ा भारी (धाम)

तेज भी (बुध्नम्) सबको बांधने वाले, मुख्य आश्रयरूप भूलोक या राष्ट्र या मुख्य पद को (परि एति) प्राप्त करता है। तू (विश्वेभिः स्वयशोभिः) अपने समस्त यशों से (इद्धः) सूर्य और अग्नि के समान ही खूब तेजस्वी होकर (अदब्धेभिः) स्थायी (पायुभिः) रक्षा प्रबन्धों से (अस्मान् पाहि) हमारी रक्षा कर।

धन्वन्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१०॥

भा०—सूर्य जैसे (धन्वन् स्रोतः कृणुते) अन्तरिक्ष में जल के प्रवाह को मेघ रूप से उत्पन्न करता है अथवा वह (ऊर्मिम्) ऊपर उठने वाले जल-प्रवाह को (गातुम्) दूर तक जाने वाला या भूमि को प्राप्त होने वाला करता है और (ऊर्मिभिः शुक्रैः) ऊपर उठे जलों से ही (क्षाम् नक्षति) पृथिवी को व्याप लेता है और (विश्वा सनानि) समस्त देने योग्य जलों या अन्नों को (जठरेषु) परिपाक योग्य वनस्पतियों में धारण करता और (नवासु प्रसूषु) नयी उत्पन्न होने वाली लताओं में (अन्तः चरति) रस के परिपाक करने वाले तेज रूप से व्यापता है, वैसे ही राजा भी (धन्वन्) मरु भूमियों में (स्रोतः) जल प्रवाह को नहरों के रूप में (कृणुते) बनवावे। वह (गातुम्) मार्ग और भूमि को (ऊर्मिम्) जल तरङ्ग के समान उत्तम बनवावे। (ऊर्मिभिः शुक्रैः) जल-तरंगों या ऊर्ध्व देश में स्थित जलों से (क्षाम् नक्षति) भूमि को सिंचवावे। (जठरेषु) प्राणियों के पेटों में (विश्वा सनानि) सब प्रकार के सब देने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करे। (नवासु) नयी (प्रसूषु) उत्तम भूमियों में, भूवासिनी प्रजाओं में (अन्तः चरति) उनके भीतर विचरे।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११।२

भा०—अग्नि जैसे (समिधा) काष्ठ से बढ़ता हुआ चमकता है वैसे

श्री हे (अग्ने) अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी राजन्! (एवैः) पूर्वोक्त प्रकारों से (नः) हमारे बीच (समिधा) एक साथ तेजस्वी होने के उपाय से (वृधानः) बढ़ता और हम राष्ट्र वासियों को बढ़ाता हुआ (रेवत् श्रवसे) ऐश्वर्य युक्त ज्ञान, वश और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) सूर्य, मेघ, शासन, समुद्र, पृथिवी और प्रकाश ये सब (नः) हमें (तत्) वह ऐश्वर्य (मामहन्ताम्) प्रदान करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[९६] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ द्रविणोदा अग्निः शुद्धोग्निर्वा देवता ॥ छन्दः त्रिष्टुप् ॥ ४ विराट् । ५ निचृत् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥१॥

भा०—(देवाः) विजयेच्छु लोग (द्रविणोदाम्) ऐश्वर्यों के दाता (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को (धारयन्) धारण करें और वे (आपः च) प्राणों, आप्त जनों (मित्रम्) मित्र, बन्धु जनों (धिषणा च) और बुद्धि बल को (साधन्) अपने वश में करें। (सः) वह ऐश्वर्यदाता, वीर पुरुष (प्रत्नथा) पुरातन, अपने से पूर्व के नायकों के समान उनके ही चरणचिह्नों पर चलता हुआ और (सहसा) शत्रुओं का पराजय करने वाले सैन्य बल से (जायमानः) यशस्वी होता हुआ (सद्यः) शीघ्र ही (विश्वा) सब प्रकार के (काव्यानि) विद्वान् कवियों के काव्यमय स्तुति वचनों को (बड्) वस्तुतः (अधत्त) अपने में धारण करे।

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (पूर्वया) ज्ञान से पूर्व और सब संसार से भी पूर्व विद्यमान (निविदा) ज्ञानमय (कव्यता) परम कवि द्वारा

प्रकाशित वाणी से और (आयोः) सनातन चैतन्यमय कारण से (मनूनाम्) मननशील पुरुषों की (इमाः प्रजाः) इन प्रजाओं को (अजनयत्) उत्पन्न करता है। वही (विवस्वता) बसे हुए लोकों के स्वामी रूप (चक्षसा) जगत् प्रकाशक सूर्य से (द्याम्) प्रकाश और (आपः न) सूक्ष्म जलांशों को धारण करता है। उस (द्रविणोदाम्) परमैश्वर्यप्रद (अग्निम्) सबके आगे विद्यमान अनादि सिद्ध परमेश्वर को (देवाः) विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते हैं।

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (तम्) उस (प्रथमं) सबसे प्रथम विद्यमान (यज्ञसाधम्) महान् ब्रह्माण्ड-रूप यज्ञ को वश करने वाले परम पुरुष की (ईडत) उपासना करो। (आरीः) शरण में आने वाली (विशः) प्रजाओं को (ऋञ्जसानम्) उत्तम रीति से समृद्ध करते हुए (ऊर्जः) बल व अन्न से (पुत्रं) उत्पन्न, पुरुष को क्षुधादि मरण से त्राण करने वाले (भरतं) भरणपोषण करने वाले तथा (सृप्रदानुम्) सर्पणशील, व्यापक चेतना या बल को देने वाले (आहुतम्) सर्व पूज्य (द्रविणोदाम्) धनैश्वर्य के दायक परमेश्वर को (देवाः अधारयन्) देवगण धारण करें।

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (मातरिश्वा) आकाश में व्यापक वायु के समान जगत् का निर्माण करने में उपादान रूप प्रकृति के परमाणु २ में व्यापक एवं (मातरिश्वा) ज्ञानकर्त्ता आत्मा के भी भीतर रहकर (पुरुवार-पुष्टिः) बहुत से अभिलाषा योग्य ऐश्वर्यों की सम्पत्ति का दाता (स्वर्वित्) सब सुखों, ज्ञान प्रकाशों को प्राप्त कराने हारा होकर (तनया) पुत्र के लिये माता पिता के समान और शिष्य को आचार्य के समान (गातुम्)

ज्ञानमयी वेद वाणी का (विदत्) ज्ञान कराता है। वह (विशां गोपाः) समस्त प्रजाओं का रक्षक (रोदस्योः) पृथिवी और आकाश का (जनिता) उत्पादक है। (देवाः) विद्वान् उसी (द्रविणोदाम्) ऐश्वर्यों को देने वाले (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को (धारयन्) धारण करते और उसकी स्तुति करते हैं।

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५॥३

भा०—जैसे दो स्त्री पुरुष (समीची आमेम्याने) परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर (एकं शिशुं धापयेते) एक बालक को दुग्ध पान आदि कराते, पालते पोसते हैं और जैसे (नक्तोषासा) रात और दिन (समीची) अच्छे प्रकार संगत होकर (वर्णम् आमेम्याने) एक दूसरे के वर्ण का अर्थात् रूप का नाश करते हुए (एकं शिशुं धापयेते) बीच में स्थित सूर्य को बालक के समान धारण करते हैं और वह (रुक्मः) कान्तिमान् होकर (द्यावाक्षामा) आकाश और भूमि के (अतः विभाति) बीच में चमकता है। (देवाः) किरण उस (द्रविणोदाम्) प्रकाश और जीवन देने वाले सूर्य रूप अग्नि को (धारयन्) धारण करते हैं। वैसे ही दो प्रकार की संस्थाएं, विद्वत्सभा और राजसभा (समीची) परस्पर संगत होकर (वर्णम् आमेम्याने) भेद भाव का नाश करती हुई (एकं) एक (शिशुम्) ज्ञानवान् पुरुष को (धापयेते) पुष्ट करें। (रुक्मः) वह सबको रुचिकर (द्यावाक्षामा) ज्ञानवान् विद्वानों और भूमि के वासी प्रतिनिधियों के (अन्तः) बीच में (विभाति) विशेष रूप से विराजे। (देवाः) विद्वान् पुरुष (द्रविणोदाम्) ज्ञान और ऐश्वर्यों के देने वाले उस (अग्निम्) नायक को व्यवस्थापक के रूप में (धारयान्) धारण करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥६॥

भा०—जो (रायः) समस्त ऐश्वर्यों का (बुध्नः) मूल कारण और (वसूनां) वास करने हारे जीवों और राष्ट्रवासियों को (संगमनः) एक साथ मिलाने हारा, (यज्ञस्य) एक दूसरे से लेन देन के और परस्पर संगति के व्यवहार को बतलाने हारा (वेः) अभिलाषायोग्य पदार्थ का (मन्मसाधनः) इच्छानुरूप रीति से प्राप्त कराने वाला है (एनं अग्निम्) उस नायक (द्रविणोदाम्) ऐश्वर्यप्रद पुरुष को (अमृतत्वं रक्षमाणासः) स्थिर पद या दीर्घजीवन की रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वान् और वीर जन (धारयन्) धारण करते हैं। परमेश्वर (रायः बुध्नः) सब ऐश्वर्यों का आश्रय तथा (बुध्नः) बोध कराने वाला (वसूनां) पृथिवी आदि लोकों का ज्ञान कराने वाला है । वही (यज्ञस्य केतुः) श्रेष्ठ कर्मों का ज्ञान कराता है। वही (वेः मन्म) काम्य कर्मों का ज्ञाता तथा आश्रय है। (अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः) मोक्षपद अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त दशा को प्राप्त हुए विद्वान् जन उसी को (द्रविणोदाम् अग्निम्) ऐश्वर्यप्रद, ज्ञान स्वरूप करके (धारयन्) मानते हैं।

नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥

भा०—(नू च) अब और (पुरा च) पहले भी (रयीणां) समस्त ऐश्वर्यों का (सदनम्) एकमात्र आश्रय (जातस्य च) उत्पन्न हुए कार्य-जगत् के और (जायमानस्य च) पुनः २ उत्पन्न होने वाले संसार के (क्षाम्) एकमात्र आधार (सतः च) अनादि काल से वर्तमान अविनाशी कारण और (भवतः च) वर्तमान में विकार को प्राप्त होने वाले और (भूरेः) व्यापक तथा (च) अन्यान्य बहुत से असंख्य पदार्थों के (गोपाम्) रक्षक, धारक (द्रविणोदाम् अग्निम्) ऐश्वर्यप्रद परमेश्वर को (देवाः

धारयन्) समस्त विद्वान् और दिव्य शक्तियां धारण करती हैं। वह उनमें व्यापक है।

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

भा०—(द्रविणोदाः) ऐश्वर्यों का दाता, राजा और परमेश्वर (तुरस्य) शीघ्र गति करने वाले (द्रविणसः) रथ आदि व पशु आदि का (नः प्र यंसत्) हमें दान दे। वह (सनरस्य प्रयंसत्) परस्पर बांट लेने योग्य स्थावर धन रजतादि प्रदान करे। वह (वीरवतीम् इषम्) वीर पुरुषों से युक्त सेना (नः प्र यंसत्) हमें दे और (नः दीर्घम् आयुः) हमें दीर्घ जीवन (रासते) प्रदान करे।

एवानो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥४

भा०—व्याख्या देखो म० १। सू० ९५। म० ११ ॥ इति चतुर्थो वर्गः ॥

[९७] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्री। १, ७, ८ पिपीलिकामध्यनिचृद्। ३, ६, निचृद्। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् १

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर! (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप शोशुचत्) भस्म करके दूर कीजिये और (नः रयिम्) हमारे प्राण, देह और ऐश्वर्य को (शुशुग्धि) शुद्ध कीजिये। पुनः प्रार्थना है कि (नः पापम्) हमारे पाप को (अप शोशुचत्) भस्म करके दूर कीजिये।

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् २

भा०—हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! हम लोग (सुक्षेत्रिया) उत्तम

क्षेत्र अर्थात् कर्मों के उत्तम बीजरूप संस्कारों के वपन के लिये उत्तम देह और सन्तान वपन के लिये उत्तम स्त्री और अन्न वपन के लिये उत्तम भूमि को प्राप्त करने की इच्छा से, (सुगातुया) उत्तम मार्ग, भूमि, ज्ञान, वाणी और व्यवहार को प्राप्त करने की इच्छा से, (वसूया च) प्राण, प्रजा और ऐश्वर्यों और उत्तम लोकों या निवास के प्राप्त करने की इच्छा से (यजामहे) तेरी उपासना करें। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! आप (नः अघम् अपशोशुचत्) हमारे पाप को भस्म कर डालो।

प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३

भा०—(यत्) जो (अस्माकासः) हमारे (सूरयः च) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष हैं, हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! (एषाम्) उनमें से भी आप ही (भंदिष्ठः) सबसे अधिक प्रजा को सुखकारी और कल्याणकारी हैं। वे सब (प्र प्र जायेरन्) उत्तम रूप से सभापति और सभासद् रूप से मान आदर करें। (नः अघम् अपशोशुचत्) हमारा हिंसा आदि कार्य प्रायश्चित और उपदेश आदि से भस्म कर दूर कर दिया जाय।

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥४

भा०—(यत्) जो (ते) तेरे अधीन रह कर, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सूरयः प्र) विद्वान् जन उत्तम रूप से प्रकट होते हैं वैसे ही (ते) तेरे अधीन रह कर (वयम्) हम लोग भी (प्रजायेमहि) उत्तम बनें। (नः अघम् अप शोशुचत्) हमारे पाप कर्मों को भस्म करके दूर कर।

प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑। अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥५

भा०—(अग्नेः) सूर्य और अग्नि के समान (यत्) जिस (सहस्वतः) बलवान्, विद्वान्, तेजस्वी राजा के भी (भानवः) किरणों और ज्वालाओं के समान तेज और विद्वान् पुरुष (विश्वतः यन्ति) सब ओर को व्यापते हैं वह (नः अघम् अपशोशुचत्) हमारे पापों को दूर करे।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ६

भा०—हे (विश्वतोमुख) सब तरफ, सब बातों में मुखस्थानीय ! तू (हि) क्योंकि (विश्वतः) सब प्रकार से और सबके (परिभूः) ऊपर विराजमान (असि) है, तेरे शासन से (नः अघम् अप शोशुचत्) हमारे समस्त पापाचरण दूर हों।

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ७

भा०—हे (विश्वतोमुख) सब तरफ मुखों वाले (नावा इव) नाव से जैसे नदी को पार किया जाता है वैसे ही तू (द्विषः) शत्रुओं से (अतिपारय) हमें पार कर, उन पर विजयी कर। (नः अघम् अपशोशुचत्) हमारे पापी पुरुष को तथा शत्रु से उत्पन्न दुःख को निवारण कर।

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ८।५

भा०—(सः) वह तू (नावया सिन्धुम् इव) नौका से जैसे महानद को पार किया जाता है वैसे ही (नः) हमें (स्वस्तये) सुख, शान्ति और उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिए (अति पर्ष) पार कर (नः अघम् अप शोशुचत्) हमारे शोक, दुःख और अन्य पापों को दूर कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[९८] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवताः ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् । १ विराट् । ३ निचृत् । तृचं सूक्तम् ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (वैश्वनरस्य) सबके हितकारी विद्वान् , राजा और परमेश्वर की (सुमतौ) शुभ मति, उत्तम ज्ञान और शासन में (स्याम) रहें (हि कम्) क्योंकि वह (राजा) सबका स्वामी होकर (भुवनानाम्) लोकों का (अभिश्रीः) आश्रय करने योग्य है जैसे (इतः) इस कष्ट से

उत्पन्न होकर अग्नि और पूर्व दिशा से उत्पन्न होकर सूर्य (इदं सर्वं) इस समस्त (विश्वम्) विश्व को (विचष्टे) प्रकाशित करता है वैसे ही वह सबका हितकारी राजा और विद्वान् पुरुष (इतः जातः) इस राष्ट्र से ही उत्पन्न होकर (इदं विश्वं) इस समस्त विश्व को (विचष्टे) विशेष रूप से देखता और समस्त ज्ञान को प्रकाशित करता है। ऐसे ही (वैश्वनरः) समस्त नरों का हितकारी पुरुष (सूर्येण) सूर्य के सदृश होकर (यतते) यत्नवान् होता है।

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् २

भा०—(वैश्वानरः) सबका सञ्चालक, नायक, परमेश्वर (दिवि) सूर्य और आकाश में (पृष्टः) व्यापक है, वह (अग्निः) इस संसार के अंग २ में व्यापक होकर (पृथिव्यां पृष्टः) इस समस्त पृथिवी में व्यापक है। वह (पृष्टः) सर्वत्र रसों का सेवन करने हारा होने से (विश्वाः ओषधीः) समस्त ओषधियों में भी (आविवेश) प्रविष्ट है। वह विद्युत् के समान (पृष्टः) वर्षा से जल सेचन करने हारा होकर (सहसा) बल से (अग्निः) समस्त संसार को चला रहा है। (सः) वह (नः) हमें (दिवा नक्तम्) दिन और रात (रिषः) हिंसक शत्रु आदि नाशकारी मृत्यु से (पातु) बचावे।

वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३।६

भा०—हे (वैश्वानर) सब नायकों के स्वामी, सर्वहितकारी ! (तव) तेरा (तत्) वह सामर्थ्य (सत्यम् अस्तु) सदा स्थिर रहे। (अस्मान्) हमें (रायः) ऐश्वर्य और (मघवानः) ऐश्वर्यवान् पालक जन भी (सचन्ताम्) प्राप्त हों। (मित्रः) प्रजा का मित्र (वरुणः)

सर्वश्रेष्ठ (अदितिः) अखण्डनीय विद्वान् और विजयी पुरुष (सिन्धुः) मेघ और सागर (पृथिवी इत द्यौः) पृथिवी और सूर्य सब (नः) हमें (तत्) वह ऐश्वर्य (मामहन्ताम्) प्रदान करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[९९] कश्यपो मरीचिपुत्र ऋषिः ॥ अग्निर्जातवेदा देवता ॥ निचृत् त्रिष्टुप् ।

एकर्चं सूक्तम् ॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१७॥

भा०—हम लोग (जातवेदसे) ऐश्वर्य के स्वामी को पुष्ट करने और ज्ञान-सपन्न आचार्य को प्रसन्न करने के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य का (सुनवाम) लाभ करें। वह (अरातीयतः) शत्रुता का आचरण करने वाले के (वेदः) धन को (निदहाति) सर्वथा भस्म कर दे। वह (नः) हमें (दुर्गाणि) दुर्गम दुःखप्रद कष्टों और (दुरिता) दुर्गतियों से (नावा सिन्धुम् इव) नाव से नदी के समान (अति पर्षत्) पार करे। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१००] वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्वरीष सहदेवभयमानसुराधस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, पङ्क्तिः । २, १३, १७ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्तिः । ६, १०, १६ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४, ११, १८ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८, ९, १२, १४, १५, १९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ व्यूहेन वा सर्वास्त्रिष्टुभः ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

भा०—(मरुत्वान् इन्द्रः) वायु गण से युक्त सूर्य या विद्युत् जैसे (वृष्ण्येभिः) वर्षण करने वाले मेघस्थ जलों से (समोकाः) संयुक्त होकर (वृषा) जल वर्षाने वाला होता है और वह (दिवः पृथिव्याः च

सम्राट्) आकाश और पृथिवी पर अच्छी प्रकार प्रकाश करता है और (सतीनसत्वा) जलों में व्यापक होकर (भरेषु हव्यः) भरण करने वाले जल इत्यादि पदार्थों में प्रकाश और ताप रूप में प्राप्त करने योग्य होकर (नः) हमारी जीवन रक्षा के लिये होता है वैसे ही (यः) जो (वृषा) प्रजा और शत्रु पर मेघ के समान ऐश्वर्यों और शस्त्रास्त्रों की वृष्टि करने में समर्थ और (वृष्ण्येभिः) वीर्यवान् पुरुषों में पराक्रम आदि गुणों से (समोकाः) युक्त होकर (दिवः) आकाश में सूर्य के समान ज्ञान में, (पृथिव्याः) पृथिवी पर स्थित समस्त पदार्थों में और प्रजाजनों के बीच (सम्राट्) महाराजा के समान तेजस्वी और (सतीनसत्वा) आज्ञा देने वाले प्रभु पद पर विराजने वाला (भरेषु) यज्ञों में अग्नि या मुख्य पुरोहित के समान संग्राम में स्वीकार करने योग्य (मरुत्वान्) वायु के समान वेगवान्, वीर सैनिक गणों तथा प्रजाजनों का स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (नः ऊती भवतु) हम राष्ट्रवासियों की रक्षा के लिये हो।

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

भा०—(सूर्यस्य इव) जैसे सूर्य का (यामः) जाने का मार्ग तथा (यामः) अधीन ग्रहों को नियन्त्रण करने का महान् सामर्थ्य (अनाप्तः) अन्य ग्रहों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और जैसे (वृत्रहा) सूर्य का मेघनाशक और (शुष्मः) शोषणकारी ताप (भरेभरे) प्रत्येक अन्नादि पदार्थों में व्यापक है वह (एभिः एवैः वृषन्तमः) अपने प्रकाशों से ही सबसे अधिक जल वर्षण करने वाला होता है, (मरुत्वान् इन्द्रः) वह वायुगण से युक्त सूर्य हमारे जीवनों की रक्षा करने के लिये समर्थ होता है। वैसे ही (यस्य सूर्यस्य इव) जिस तेजस्वी पुरुष का (यामः) याम अर्थात् यम का नियन्ता होने का महान् पद, अधिकार, सामर्थ्य और

(यामः) प्रयाण करने का मार्ग (अनाप्तः) शत्रुओं और अधीनस्थों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सके और (यस्य शुष्मः) जिसका शत्रुओं का संतापजनक पराक्रम (भरेभरे) प्रत्येक संग्राम में (वृत्रहा) बढ़ते हुए शत्रुओं का नाशक हो वह (सखिभिः स्वेभिः) अपने मित्रों सहित (एवैः) अपने प्रयत्नों द्वारा (वृषन्तमः) अति बलवान् होकर (मरुत्वान् इन्द्रः) वायु समान वेग से जाने वाले वीरों तथा विद्वानों का स्वामी, पृथ्वीपति (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो ।

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः) सूर्य के (पन्थासः न) रश्मिगण जैसे (रेतसः दुघानाः) जलों के दाता होते हैं और (शवसा) बल या सामर्थ्य से (अपरि इतः) युक्त या सबसे बढ़ कर (यन्ति) दूर तक जाते हैं वैसे ही (यस्य) जिस महान् राजा के (पन्थानः) नीति के मार्ग (रेतसः) पराक्रम को बढ़ाने वाले और (शवसा) सैन्य-बल से (अपरि इतः) युक्त रहते हैं, वह (तरद्-द्वेषाः) शत्रुओं को पार कर जाने हारा (पौंस्येभिः) बलों से (मरुत्वान् इन्द्रः न ऊती भवतु) वीर सैनिकों और विद्वानों का स्वामी राजा हमारी रक्षा के लिये हो ।

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४॥

भा०—(सः) वह पूर्वोक्त राजा (अङ्गिरोभिः) ज्ञानवान्, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुषों सहित होकर भी उनमें सबसे अधिक ज्ञानी, तेजस्वी और जीवन शक्ति से युक्त (भूत) हो । वह (वृषभिः वृषा भूत) वर्षणकारी मेघों के सहित सूर्य के समान प्रजा पर सुखों का वर्षक हो । वह (सखिभिः सखा सन्) मित्रों के साथ सबसे बढ़ कर मित्र हो

(ऋग्मिभिः ऋग्मी) वेद मन्त्र के ज्ञाता पुरुषों के साथ रह कर उनसे अधिक वेदों का अर्थज्ञ हो । वह (गातुभिः ज्येष्ठः) साम आदि गान करने और उत्तम स्तुति करने हारे भक्तों के साथ रह कर उत्तम सामज्ञ और उत्तम स्तुतिकारी हो । ऐसा (मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु) वीर सैनिकों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी राजा और आचार्य हमारी रक्षा के लिये हो ।

स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥५॥८॥

भा०—(मरुत्वान् इन्द्रः) तीव्र वेग वाले वायुओं सहित विद्युत् जैसे (श्रवस्यानि तूर्वत् न ऊती) अन्नों के उत्पादक जलों को आघात कर वृष्टि द्वारा हम लोगों की प्राणरक्षा के लिये होता है वैसे ही (सः) वह (मरुत्वान्) वायुवेग से जाने वाले सैनिकों का स्वामी, (ऋभ्वा) महान् (इन्द्रः) राजा या सेनापति (सूनुभिः न) पुत्रों के समान प्रिय (रुद्रेभिः) शत्रुओं को रुलाने वाले, भयंकर, (सनीळेभिः) एक ही समान आश्रय या छावनी में रहने वाले वीरों, भटों से (नृषाह्ये) नायक पुरुषों द्वारा विजय करने योग्य संग्राम में (अमित्रान्) शत्रुओं को पराजित करने हारा और (श्रवस्यानि) अन्नादि वेतनों के लिये युद्ध करने वाले शत्रु सैन्यों का (तूर्वन्) विनाश करता हुआ (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥

भा०—जो (मन्युमीः) मन्यु अर्थात् अभिमानयुक्त शत्रु का नाशक होकर (समदनस्य) संग्राम का (कर्त्ता) करने वाला है और जो (अस्मिन्) इस संग्राम के अवसर पर (अस्माकेभिः) हमारे अपने (नृभिः) नायक और वीर पुरुषों के सहाय से (अहन्) शत्रुओं का नाश करता है वही

(सूर्यम् सनत्) सूर्य के प्रकाश के समान न्याय व्यवहार का दाता होकर सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करता है। वही (सत्पतिः) सज्जनों का पालक (पुरुहूतः) प्रजाओं द्वारा स्तुति किया हुआ, वीर पुरुष (मरुत्वान् इन्द्रः) वीर पुरुषों का स्वामी राजा (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो।

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥

भा०—(ऊतयः) रक्षक, वीर, विद्वान् और तेजस्वी पुरुष (तम्) उस पूर्वोक्त वीर पुरुष को (शूरसातौ) शूरवीरों के योग्य संग्रामों में (रणयन्) हर्षित करते, उसकी स्तुति करते हैं। (तम्) ऐसे वीर पुरुष को ही (क्षितयः) पृथ्वी निवासी प्रजागण (क्षेमस्य) अपने रक्षणकार्य करने योग्य धन और जीवन सर्वस्व का (त्राम् कृण्वत) पालक व रक्षक नियत करते हैं। (सः) वह (विश्वस्य करुणस्य) सब प्रकार के अनुग्रह निग्रह आदि में (ईशे) समर्थ है। वह (एकः) अकेला ही (मरुत्वान् इन्द्रः) वीरों का स्वामी होकर (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो।

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८॥

भा०—(उत्सवेषु) हर्ष के अवसरों पर और संग्राम के कालों में (नरः) प्रजाजन, नायक पुरुष और (शवसः) बलों के धारक, सैन्य से (तम्) उसी महारथी की शरण में (अवसे) रक्षा प्राप्त करने के लिये (अप्सन्त) आते हैं और (तम्) उसी वीर पुरुष को वे (धनाय) धन प्राप्त करने के लिये भी प्राप्त होते हैं। (सः) वही (अन्धे तमसि) घोर अन्धकार में भी (ज्योतिः) सूर्य के समान (विदत्) प्रकाश देता

है। वह (मरुत्वान् इन्द्रः) वीर सैनिकों का स्वामी, राजा (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो।

स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९॥

भा०—(सः) वह वीर सेना नायक (व्राधतः चित्) अपने बढ़ते और उमड़ते हुए बड़े २ शत्रुओं को भी (सव्येन) अपनी बाईं भुजा से (यमति) वश करे। (सः) वह (दक्षिणे) दायें हाथ में (कृतानि) अपने पराक्रम से किये विजय आदि कर्म तथा प्राप्त ऐश्वर्यों को और (कृतानि) सिद्ध हस्त सैन्यों को (संगृभीता) अच्छी प्रकार वश करे (सः) वह (कीरिणा चित्) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले बल से (धनानि सनिता) ऐश्वर्यों को प्राप्त करता और अन्यों को प्राप्त कराता है। वह (मरुत्वान् इन्द्रः) वीरों का स्वामी (नः ऊती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो।

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१०॥९॥

भा०—(सः सनिता) वह ऐश्वर्य का दाता तथा स्वामी होकर (रथेभिः) रथों, रथारोही सैनिकों से, (ग्रामेभिः) ग्रामों, जनसमूहों, सैन्यसमूहों, (विश्वाभिः) समस्त (कृष्टिभिः) कृषि प्रजाओं से और (सः) वह (पौंस्येभिः) बलवीर्य पराक्रमों से युक्त होकर (विदे) विजय लाभ के लिये (नु अद्य) अब के समान सदा ही अति शीघ्र (अशस्तीः) असाध्य शत्रुओं को भी (अभिभूः) वश करने हारा हो। वह (मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु) राजा हम प्रजाजनों का रक्षक हो। इति नवमो वर्गः ॥

स ज़ामिभिर्यत्समजा॑ति मीळ्हेऽजा॑मिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तन॑यस्य जेषे मरुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊती ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (सः) वह (पुरुहूतः) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त होकर (जामिभिः) अपने बन्धुवर्गों से (अजामिभिः) अथवा बन्धु बान्धवों से भिन्न वीर पुरुषों से सहायवान् होकर (मीढ़े) संग्राम में (एवैः) तीव्र वेग से जाने वाले वीरों से (जेषे) विजय प्राप्ति के लिए (सम् अजाति) मिलकर शत्रुओं को उखाड़ देता है तब वह (मरुत्वान् इन्द्रः) वीरों का स्वामी (अपां) शरण में आये (नः) हम आप्त प्रजाजनों, (तोकस्य तनयस्य च) पुत्रों और पौत्रों की (ऊती) रक्षा करने के लिये (भवतु) हो।

स व॑ज्रभृद्द॑स्युहा भीम उग्रः स॒हस्र॑चेताः श॒तनी॑थ ऋभ्वा॑।
च॒म्रीषो न शव॑सा पाञ्च॑जन्यो म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊती ॥१२॥

भा०—(नः ऊती) हमारी रक्षा के लिये (सः) वह (मरुत्वान्) वीर सैनिकों और विद्वानों सहित (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (वज्रभृत्) शस्त्रास्त्र का धारण करने वाला, (दस्युहा) प्रजा के नाशक पुरुषों को दण्ड द्वारा विनष्ट करने वाला, (भीमः) दुष्टों के चित्तों में भय उत्पन्न करने वाला, (उग्रः) शत्रुओं के भीतर उद्वेग उत्पन्न करने वाला, (सहस्र-चेताः) सहस्रों विज्ञानों का जानने वाला (शतनीथः) सैकड़ों पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, (ऋभ्वा) भारी सामर्थ्य और सत्य ज्ञान से प्रकाशमान, (शवसा) बल से वह (चम्रीषः न) सेना द्वारा शत्रु नाशक महावीर के समान (पाञ्चजन्यः) पांचों जनों के बीच उन पर शासक रूप से विद्यमान (भवतु) हो।

तस्य॒ वज्रः॑ क्रन्दति॒ स्मत्स्व॒र्षा दि॒वो न त्वे॒षो र॒वथः॒ शिमी॑वान्।
तं स॑चन्ते स॒नय॒स्तं धना॑नि म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊती ॥ १३ ॥

भा०—(तस्य) उसका (स्वर्णः) शत्रुओं को संताप देने वाला, घोर शब्दकारी (स्वथः) महान् घोष करने वाला (वज्रः) अस्त्र समूह (शिमीवान्) शक्तिशाली (स्मत्) खूब (क्रन्दति) गरजे और शत्रुओं को ललकारे। उसका (त्वेषः) तेज (दिवः न त्वेषः) सूर्य समान चमचमाता हो। (तं) उसी को (सनयः) सब ऐश्वर्य व (तं धनानि) उसको सब प्रकार के धन प्राप्त होते हैं। ऐसा (मरुत्वान् इन्द्रः न ऊती भवतु) वीरों का स्वामी हमारी रक्षा के लिये नियुक्त हो।

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥

भा०—(यस्य) जिसका (मानम्) शत्रु नाशक सामर्थ्य और (उक्थम्) आज्ञा-वचन (अजस्रं) निरन्तर बे रोक, अखण्डित होकर (रोदसी) आकाश और भूमि के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की (विश्वतः सीम्) सब तरफ से, (शवसा) बलपूर्वक (परिभुजत्) रक्षा करता है वह (मन्दसानः) स्तुति और हर्ष को प्राप्त होकर (क्रतुभिः) उत्तम २ विज्ञानों से (पारिषत्) प्रजा पालन करे। वह (मरुत्वान्) वीरों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी (इन्द्रः) राजा (नः ऊती भवतु) हमारा रक्षक हो।

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती १५।१०

भा०—(यस्य) जिसकी (देवता) प्रकाश आदि गुणों से युक्त (अन्तम्) परली सीमा को (शवसा) अपने बल सामर्थ्य से (न देवाः) न देव अर्थात् योद्धा गण (न मर्त्ता) न मरने वाले मनुष्य (आपः चन) न आप्त जन (आयुः) प्राप्त कर सकें (सः) वह (त्वक्षसा) शस्त्रास्त्र बल से (क्ष्मः दिवः च) पृथ्वी और आकाश तथा सामान्य प्रजा और राजवर्ग

दोनों से (अतिरिक्त) बढ़ा हुआ (मरुत्वान्) वीरों और विद्वानों का स्वामी (इन्द्रः नः ऊती भवतु) ऐश्वर्यवान् राजा हमारी रक्षा के लिये हो। इति दशमो वर्गः ॥

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥

भा०—(ऋज्राश्वस्य) युद्धकुशल अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामी सेनापति को (नाहुषीषु) सुप्रबद्ध प्रजाओं के बीच में (रोहित्) लाल पोशाक वाली और (श्यावा) श्याम वर्ण के अस्त्र शस्त्रों और (सुमद्-अंशुः) उत्तम साधनों से युक्त (ललामीः) पौरुष युक्त, वीर पुरुषों से बनी (द्युक्षा) विजय कार्य में लगी हुई सेना (धूर्षु) मुख्य २ केन्द्र स्थानों पर (वृषण्वन्तम्) शस्त्र वर्षण करने में समर्थ, बलवान्, (रथं) रथारोही को (बिभ्रती) धारण करती हुई (मन्द्रा) अति वेग से जाने वाली होकर (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (चिकेत) जानी जाती है।

एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (ऋज्राश्वः) वेगवान्, सधे हुए अश्वों का नायक (अम्बरीषः) शब्दविद्या को जानने वाला (सहदेवः) सैनिकों के साथ रहने वाला (भयमानः) शत्रुओं को भय दिलाने वाले और (सुराधाः) उत्तम धनों और वशकारी उपायों का वेत्ता, ये सब विद्वान् और साधना सम्पन्न पुरुष (एतत् त्यत्) इन और उन नवीन और प्राचीन, समीप और दूर के और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, अपने पराये सब प्रकार के (राधः) शत्रु को वश करने के उपायों का (ते वृष्णे) तुझ सेनापति या राजा को (अभि गृणन्ति) उपदेश करें।

दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥

भा०—(पुरुहूतः) बहुत सी प्रजाओं से आदर को प्राप्त होकर राजा (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (दस्यून्) दुष्ट पुरुषों को और (शिम्यून्) लुक छिप कर प्राणियों के प्राणों को शान्त कर देने वाले हत्यारे पुरुषों को (एवैः) आक्रमणों से और (शर्वा) शस्त्र, या बाण के प्रयोग से (नि बर्हीत्) अच्छी प्रकार नाश कर दे और (श्वित्न्येभिः) तेजस्वी और श्वेत वर्ण के चरित्रवान् (सखिभिः) मित्र वर्गों के साथ मिलकर (क्षेत्रं सनत्) भूमि के क्षेत्र का अच्छी प्रकार विभाग करे और (सूर्यं) सूर्य के समान तेजस्वी पद को (सनत्) प्राप्त करे (सुवज्रः) उत्तम वीर्यवान् होकर (अपः) जलों के समान प्रजाजनों को (सनत्) प्राप्त करे ।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११।११

भा०—(विश्वाहा इन्द्रः) विद्याओं को साक्षात् देखने हारा और ऐश्वर्यवान्, शत्रु नाशक, विद्वान् आचार्य और सभाध्यक्ष (नः) हम पर (अधिवक्ता) अध्यक्ष होकर उपदेश करने और आदेश देने वाला (अस्तु) हो। हम लोग (अपरिहृताः) सब प्रकार से कुटिल विचारों और चेष्टाओं से रहित होकर सौम्यभाव से (वाजम्) उत्तम अन्न, ऐश्वर्य, धन आदि उसको (सनुयाम) दें। (तत्) उसको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्) मित्रगण, श्रेष्ठजन, माता, समुद्र, भूमि और आकाश ये सब बढ़ावें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०१] आंगिरस कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृज्जगती । ५, ७ विराड् जगती ॥ २, ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९, ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुषो ! (मन्दिने) आनन्दित करने वाले स्वामी के लिये (पितुमत्) अन्न आदि पालनकारी सामग्री सहित (वचः) वचनों का (प्र अर्चत) आदरपूर्वक प्रयोग करो। हे मनुष्यो ! (यः) जो राजा, सेनापति (ऋजिश्वना) सधे हुए अश्वों से युक्त सैन्यबल से (कृष्णगर्भाः) काले अन्धकार को गर्भ में रखने वाली रात्रियों को जैसे प्रकाश से सूर्य विनष्ट करता है वैसे ही (कृष्णगर्भाः) प्रजापीड़न करने वाले शत्रु को अपने भीतर रखने वाली शत्रु सेनाओं को (निर् = अहन्) अच्छी प्रकार विनाश कर सके, हम (श्रवस्यवः) ऐश्वर्य और यश चाहने वाले पुरुष, उस (वृषणं) बलवान्, शत्रुओं पर शस्त्रों का और प्रजा पर सुखों का मेघ के समान वर्षण करने वाले (वज्रदक्षिणम्) शस्त्रास्त्र बल को अपने दायें हाथ में लिये (मरुत्वन्तं) वीर भटों के स्वामी, राष्ट्रपति को (सख्याय) मित्र भाव के लिये (हवामहे) स्वीकार करें।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

भा०—(यः) जो राष्ट्रपति, वीरपुरुष (जाहृषाणेन) निरन्तर सबको सन्तुष्ट करने और प्रजाओं में हर्ष उत्पन्न करने वाले (मन्युना) क्रोध और बल से (वि अंसं) छावनी वाले शत्रु को (अहन्) विनाश करने में समर्थ हो (यः शम्बरम्) जो वीर पुरुष शस्त्रास्त्र को धारण करने वाले, सुदृढ़ शत्रु को भी (अहन्) विनाश करने में समर्थ हो, जो (अव्रतम्) व्रतों, नियमों और व्यवस्थाओं का न पालन करने वाले (पिप्रुम्) केवल अपना ही पेट पालने और भरने वाले को भी (अहन्) नष्ट करे और (यः) जो (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (अशुषं) अन्य शोषक अर्थात् बलनाशक विरोधी न होने के कारण (शुष्णम्) प्रजाओं का रक्त शोषण करने वाला हो उसको भी (नि अवृणक्) सर्वथा परास्त करे उस

(मरुत्वन्तं) सुभटों सहित वीर पुरुष को हम प्रजाजन (सख्या हवामहे) सखा भाव के लिए स्वीकार करें।

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर का (महत् पौंस्यम्) बड़ा भारी बल (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी दोनों को (सश्चति) व्याप रहा है, (यस्य व्रते) जिसके बनाये नियम में (वरुणः) चन्द्र या वायु चल रहे हैं और (यस्य व्रते सूर्यः) जिसके महान् शासन को सूर्य (सिन्धवः) समुद्रगण और महानदियां भी स्वीकार करती हैं उस (मरुत्वन्तम्) वायुगणों तथा सबके प्राणों के स्वामी परमेश्वर को हम (सख्याय हवामहे) मित्र भाव से स्वीकार करते हैं।

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४

भा०—(यः) जो (वशी) प्रजाओं को वश में रखने में समर्थ, (गोपतिः) पृथिवीपति होकर (अश्वानां) अश्वों और (गवां) गौओं का स्वामी है, (यः) जो (स्थिरः) स्थायी रूप से (कर्मणि कर्मणि) राष्ट्र के प्रत्येक कार्य में (आरितः) प्रस्तुत किया जाता है और (यः) जो (असुन्वत) यज्ञादि कार्य, अभिषेक और विद्याप्राप्ति आदि करने वालों से भिन्न (वीडोः) बलवान् शत्रु का (चित्) भी (वधः) मारने वाला है उस (मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे) प्रबल सैनिक पुरुषों और विद्वानों के स्वामी पुरुष को हम मित्रभाव के लिये स्वीकार करते हैं।

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (जगतः) जंगम (प्राणतः) प्राणधारी

(विश्वस्य) समस्त संसार का (पतिः) पालनकर्ता है, (यः) जो (ब्रह्मणे) महान् सामर्थ्यवान् वेदज्ञ विद्वान् को (प्रथमः) सबसे प्रथम, आद्य गुरु होकर (गः) वेदवाणियों का (अविन्दत्) उपदेश करता है और (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (दस्यून्) सज्जनों और अन्य प्राणियों को नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को (अधरान्) नीचे, दुःखदायी लोकों या जन्मों को (अवातिरत्) पहुँचाता है उस (मरुत्वन्तम्) प्राणधारियों के स्वामी परमेश्वर को हम (सख्याय हवामहे) अपने मित्र भाव के लिये स्वीकार करें।

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ६॥१२

भा०—(यः) जो परमेश्वर (शूरेभिः हव्यः) शूरवीर पुरुषों द्वारा स्तुति करने योग्य है और (यः च भीरुभिः) जो भीरु द्वारा भी प्रार्थना किया जाता है (यः धावद्भिः) जो भागते हुए और जो (जिग्युभिः) विजय करते हुओं से भी (हूयते) प्रेम से स्मरण किया जाता है (यं) जिसको (विश्वा भुवना) समस्त प्राणी (अभि संदधुः) साक्षात् अपने भीतर धारण करते हैं उस (मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे) महान् शक्तियों और समस्त प्राणियों के स्वामी को हम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें।

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥

भा०—जो (विचक्षणः) उत्तम चातुर्य आदि गुणों वाला, विविध विद्याओं तथा प्रजा के शासन कार्यों को देखने हारा, विद्वान् होकर (रुद्राणाम्) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों के (प्रदिशा) उत्तम शासन तथा (रुद्राणां) ज्ञानोपदेष्टा जनों के (प्रदिशा) उत्तम अनु-शासन, या उपदेश से (पृथुज्रयः) बड़े भारी बल को प्राप्त कर लेता है और जैसे (योषा) स्त्री या भेदनीति की वाणी भी (रुद्रेभिः) वीर पुरुषों

की सहायता से बड़ा शत्रु संहारक बल प्रकट कर सकती है वैसे ही जो राजा (रुद्रेभिः) शत्रुओं को रुलाने वाले वीरों की सहायता से (पृथुज्रयः तनुते) अपने महान् राष्ट्र बल को बढ़ा लेता है और जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् और बलवान् (श्रुतं) प्रसिद्ध पुरुष को, (मनीषा श्रुतम्) गुरूपदिष्ट वेद-वचन को बुद्धि के समान (मनीषा अभि अर्चति) स्तुति वाणी साक्षात् स्तुति करती है उस (मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे) वीर पुरुषों के स्वामी पुरुष को हम अपने मित्र भाव के लिये स्वीकार करते हैं।

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥८॥

भा०—हे (मरुत्वः) वीर पुरुषों के अध्यक्ष! (यद् वा) चाहे तू (परमे सधस्थे) सर्वोत्तम स्थान में (यद्वा) या (अवमे) निकृष्ट, अशुद्ध (वृजने) घर या जीवन-दुःखों के दूर करने के वृत्युपाय में (मादयासे) तृप्त होकर रहे तो भी तू (नः) हमारे (अध्वरं आयाहि) यज्ञ या स्थिर राज्य शासन को (आयाहि) प्राप्त हो। (त्वाया) तेरी कामना से या तेरे सहित हम लोग (सत्यराधः) ऐश्वर्य युक्त एवं सत्य आराधना युक्त (हविः) अन्नादि उत्तम पदार्थ (चकृम) प्राप्त करें।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! सेनापते! (त्वाया) तेरे सहित हम (सोमं) ऐश्वर्य को (सु सुम) प्राप्त करें। हे (सुदक्ष) कार्यकुशल! (त्वाया) तेरे साथ मिलकर हम (हविः चकृम) अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करें। हे (ब्रह्मवाहः) बहुत बड़े ऐश्वर्य के धारक! (अध) और हे (नियुत्वः) सेनाओं के स्वामिन्! तू (सगण) अपने गणों, भृत्यजनों और दल बल सहित (मरुद्भि) वीरों और विद्वानों सहित (अस्मिन्

यज्ञे) इस प्रजापालन रूप यज्ञ वा सुव्यवस्थित राष्ट्र में (बर्हिषि) प्रजाजनों या राजसिंहासन पर स्थित होकर (मादयस्व) स्वयं तृप्त हो और औरों को आनन्दित कर ।

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये ते) जो तेरे अधीन (हरिभिः) विद्वान् जन और अश्व, अश्वारोही गण हैं उन सहित तू (मादयस्व) प्रसन्न होकर रह । (शिप्रे) भोजन करने हारा जैसे अपने दोनों जबाड़ों को खोलता है वैसे ही तू भी राष्ट्र के भोग्य पदार्थों के भोग करने और शत्रु राज्यों को बल द्वारा प्राप्त करने के लिये (शिप्रे) दायें बायें की दोनों सेनाओं को (विष्यस्व) विस्तृत कर और (धेने) भोजनकर्ता पुरुष खाते समय जीभ चलाता है वैसे ही राजन् ! राष्ट्र के ऐश्वर्यों के भोग करने के लिये (धेने) रसपान करने वाली जिह्वा के समान प्रजा शासन और शत्रु दमन करने वाली दो प्रकार की वाणियों को प्रकट कर । हे (सुशिप्र) उत्तम सुखप्रद राजन् ! (त्वा) तुझे (हरयः) अश्व और विद्वान् (आ वहन्तु) दूर दूर तक ले जावें । हे (उशन्) प्रजाओं को चाहने वाले उनके प्रिय ! तू (नः) हम प्रजाजनों के (हव्यानि) अन्न आदि भोग्य पदार्थों को और युद्ध आदि राष्ट्र-कार्यों को (प्रति जुष्व) ग्रहण कर ।

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११।१३

भा०—(मरुत्स्तोत्रस्य) वायु के वेगादि गुणों से स्तुति करने योग्य (वृजनस्य) शत्रुओं को वर्जन करने हारे सेनापति के (गोपाः) रक्षक हम लोग (इन्द्रेण) उस शत्रुहन्ता के साथ रहकर ही (वाजम् अनुयाम) संग्राम करें और ऐश्वर्य का लाभ करें । (शेष पूर्ववत्) इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१०२] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, जगती । ३, ५, ८ निचृज्जगती । २, ४, ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥१॥**

भा०—हे प्रभो ! (ते धिषणा) तेरी वाणी और बुद्धि (यत् आनजे) जो ज्ञान और कर्त्तव्य (आनजे) प्रकट करती है (अस्य ते) साक्षात् पूजनीय (इमां) इस (महः महीम्) बड़ी आदरणीय (धियम्) ज्ञान-प्रद और कर्मप्रद वाणी को (स्तोत्रे) स्तुति करने वाले वचन में तथा कर्म में (प्र भरे) धारण करता हूँ । (देवासः) विद्वान् और विजयेच्छु (तम्) उस (सासहिम्) शत्रु पराजयकारी (इन्द्रम्) राजा को (उत्सवे च प्रसवे च) उत्सव तथा शासन के कार्य में या जन्म आदि के अवसर में (शवसा) अपने बल द्वारा (अनु अमदन्) हर्षित करते और स्वयं हर्षित होते हैं ।

**अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२॥**

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के (श्रवः) महान् सामर्थ्य को (सप्त नद्यः) बहने वाली नदियें (द्यावाक्षामा) सूर्य, पृथिवी और (पृथिवी) अन्तरिक्ष सब (वपुः) अपने स्वरूप में (बिभ्रति) धारण कर रहे हैं । हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (अस्मे अभिचक्षे) हमें दिखाने, आंखों से ज्ञान कराने और (श्रद्धे) सत्य ज्ञान को धारण कराने के लिये (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा दोनों प्रकाशमान होकर (वितर्तुरम्) नाना प्रकार से आते जाते हुए (चरतः) गति करते हैं ।

तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३

भा०—हे (मघवन्) परमेश्वर ! (ते) तेरे (यं) जिस (जैत्रं) समस्त दुःखों पर विजय करने वाले (रथं) रसस्वरूप, सबको अपने में रमण करने वाले स्वरूप को (संगमे) अच्छी प्रकार प्राप्त कर लेने पर योगदशा में, हे (पुरुस्तुत) बहुतसी प्रजाजनों से स्तुति करने योग्य ! (आजा) दुःखों को दूर करने वाले, तुझे प्राप्त करने वाले योगकाल में (इन्द्र) परमात्मन् ! हम (अनुमदाम) निरन्तर आनन्द रस का लाभ करते हैं। तू (तं रथं) उसी रसस्वरूप को (सातये) हमें सदा आनन्द लाभ कराने के लिये (प्र अव) प्रकट कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मघवन्) परमेश्वर ! (मनसा त्वायद्भ्यः) मन से तुझे चाहने वाले (नः) हमें तू (शर्म) सुख (यच्छ) प्रदान कर।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४

भा०—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! राजन् ! सेनापते ! (त्वया युजा) तुझ सहायक के साथ मिलकर (वयम्) हम लोग (जयेम) विजय लाभ करें। (भरे-भरे) प्रत्येक संग्राम के अवसर पर (अस्माकम्) हमारे (वृतम्) प्राप्त होने योग्य, ग्राह्य (अंशम्) सेना के टुकड़े को अथवा जन, वस्त्र, शस्त्र, कोश, ऐश्वर्य आदि के हिस्से को तू (उत् अव) उत्तम रीति से सुरक्षित रख। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (वरिवः) धन को (सुगं कृधि) सुगमता से प्राप्त होने योग्य कर और (श त्रूणां) हमारे बाधक शत्रुओं के (वृष्ण्या) बलों को हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (प्र रुज) अच्छी प्रकार तोड़ डाल।

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ५।१४

भा०—हे (धनानां धर्त्तः) समस्त ऐश्वर्यों के धारण कर्ता वीर नायक ! (हि) निश्चय से (त्वा) तुझसे स्पर्द्धा करने वाले (इमे नाना) ये नाना जन भी (विपन्यवः) विविध व्यवहारों में कुशल एवं नाना विद्याओं के प्रवक्ता जन (अपसा) ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य सहित विद्यमान हैं। इन सबमें तु ही (सातये) ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्ति के लिये (अस्माकम्) हमारे (जैत्रं) विजयकारी, मुख्य (रथम्) रथ अर्थात् महारथी पद पर (आतिष्ठ) विराजमान हो (हि) क्योंकि (तव मनः) तेरा चित्त और ज्ञान (निभृतं) खूब अच्छी प्रकार सुरक्षित है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६

भा०—हे राजन् ! सभापते एवं परमेश्वर ! तेरी (बाहू) बाहुएं अर्थात् शक्तियें शत्रुओं को पीड़न करने वाली अगल बगल की सेनाएं (गोजिता) भूमियों का विजय करने वाली हैं और (बाहू) दोनों बाहू अर्थात् छाती का भाग अपने विस्तार और सामर्थ्य से (गोजिता) वृषभ को भी जीतने वाला हो। तू स्वयं (अमित-क्रतुः) अनन्त ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त, (सिमः) सबसे श्रेष्ठ तथा प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा और शत्रुओं को सन्धि आदि से बांधने वाला और (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक काम में (शतम् ऊतीः) सैकड़ों ज्ञान, रक्षण और पराक्रमों वाला (खजंकरः) संग्राम में शत्रुओं का नाशक है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (ओजसा) बल पराक्रम से (अकल्पः) अपने समान किसी को न रखने वाला और (प्रतिमानम्) सबके सामर्थ्य को मापने वाला पैमाना है। (अथ) तुझे उस (सिषासवः) भजन करने हारे भक्त जन एवं शरणार्थी और ऐश्वर्य के इच्छुक सभी (जनाः) जन (विह्वयन्ते) विविध रूपों से स्तुति करते हैं।

उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर॥७॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (ते) तेरा (श्रवः) ज्ञान, ऐश्वर्य, यश (कृष्टिषु) मनुष्यों में (शतात्) सौ से, (उत् रिरिचे) भी अधिक बढ़े। (भूयसः उत् च) और उसमें भी अधिक संख्या वाले पुरुषों से अधिक हो, (सहस्रात् उत् रिरिचे) हजार से भी अधिक हो। (मही) बड़ी भारी, (धिषणा) विद्या, बुद्धि और वाणी, (अमात्रं त्वा) अपरिमित बलशाली तुझको (तित्विषे) अधिक तेजस्वी बनावे। (अध) और हे (पुरन्दर) शत्रुओं के गढ़ों को तोड़ने हारे ! तू (वृत्राणि) मेघों को सूर्य के समान बढ़ते हुए और विपरीत आचरण वाले शत्रुओं को (जिघ्नसे) दण्डित कर।

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (ओजसः) पराक्रम और तेज का कारण (त्रिविष्टिधातु) पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ब्रह्माण्ड के धारक इन तत्वों के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, स्वल्प, अधिक और सम मात्रा में विचित्र या त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय होकर (प्रतिमानम्) प्रत्येक पदार्थ का रचने हारा है। तू (तिस्रः) पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष तीनों को (अति ववक्षिथ) उन सबसे बढ़ कर धारण कर रहा है। हे (नृपते) समस्त जीवों के पालक, तू (त्रीणि रोचना) सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों से (अति ववक्षिथ) महान् है। तू (इदं विश्वं भुवनं) इस समस्त ब्रह्माण्ड को (अति ववक्षिथ) उससे महान् होकर उसे धारण कर रहा है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (जनुषा) स्वभाव से (सनात्) और अनादि काल से (अशत्रुः) शत्रु रहित है।

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥९॥

भा०—हे राजन् ! हम लोग (देवेषु) तेजस्वी पुरुषों और विद्वानों में (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (त्वं) तुझको स्वीकार करें । (त्वं) तू ही (पृतनासु) संग्रामों में (सासहिः) सदा शत्रुओं का पराजय करने हारा (बभूथ) हो । (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा ही (नः) हममें से (उपमन्युम्) प्रत्येक पदार्थ को अति समीप होकर उसका ज्ञान करने वाले (इमं) इस (कारुम्) शिल्पादि के कर्त्ता पुरुष को (प्रसवे) उत्तम २ पदार्थों के उत्पादन कार्य में (पुरः) सबके आगे प्रमुख (कृणोतु) करे और (उद्भिदम् रथम्) जैसे शिल्पी पृथिवी फोड़ कर निकले हुए वृक्ष के काष्ठ को रथ बना देता है वैसे ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, राजा या सेनापति (उद्भिदम्) सबसे उर्ध्वचारी होकर शत्रु सेना को फोड़ने में समर्थ (रथम्) रथ नाम सेनाङ्ग को (प्रसवे) उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने और उत्तम रीति से सेना के प्रशासन कार्य में (पुरः) प्रमुख स्थान पर (कृणोतु) नियत करे ।

त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥

भा०—(मघवन्) शत्रुहन्तः ! सेनापते ! राजन् ! (अर्भेषु) छोटे मोटे तथा (महत्सु च) बड़े २ (आजा) संग्रामों में (त्वं) तू (जिगेथ) विजय प्राप्त कर । तू (धना) ऐश्वर्य को अपने पास ही मत (रुरोधिथ) रोके रखना प्रत्युत प्रजाओं और भृत्यों के उपकार में व्यय कर । (उग्रम्) शत्रुबल के नाश करने में समर्थ (त्वाम्) तुझको हम (अवसे) अपनी रक्षा के लिये आश्रय करके (संशिशीमसि) तुझे खूब तीक्ष्ण और उत्तेजित करें । (अथ) और (नः) हमें हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हवनेषु) युद्ध

आह्वानों में, संग्रामों में और स्वीकार करने योग्य उत्तम कर्मों में (चोदय) प्रेरित कर।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥१५

भा०—व्याख्या देखो म० १। सू० १०० । मन्त्र १९॥ इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१०३] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ४ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ८ त्रिष्टुप्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
त्वमेदमन्याद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! (ते) तेरा (तत्) वह (परमं इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य या सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है जिसको (कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (पुरा) बहुत पहले काल से (पराचैः) अपने दूरदर्शी पारमार्थिक साक्षात्कारों द्वारा (इदम्) 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार यथार्थ रूप से (अधारयन्त) धारण कर रहे हैं। (इदम्) यह ईश्वर का महान् सामर्थ्य (क्षमा) पृथिवी में (अन्यत्) कुछ भिन्न ही प्रकार का है और (दिवि) आकाश या सूर्य में वह सामर्थ्य (अन्यत्) भिन्न प्रकार का है। (समना-इव) प्रेम युक्त चित्त वाली स्त्री जैसे अपने प्रिय पति से जा मिलती है अथवा युद्ध में लड़ती सेना जैसे परसेना से जा भिड़ती है वैसे ही (केतुः) वह परमेश्वर का ज्ञापक, दोनों प्रकार का स्वरूप (समी पृच्यते) परस्पर सुसंगत हो जाता है। पृथिवी में नाना जीव सृष्टि, ओषधि, लता, अन्न, अग्नि इत्यादि सभी पदार्थ हैं। आकाश में सूर्य, वायु, मेघ आदि पर दोनों स्थानों में स्थित ईश्वर के ये महान् सामर्थ्य एक दूसरे के उपकारक होते हैं।

स धा॑रयत्पृथि॒वीं प॒प्रथ॑च्च॒ वज्रे॑ण ह॒त्वा निर॒पः स॑सर्ज ।
अह॒न्नहि॒मभि॑नद्रौहि॒णं व्यह॒न्व्यं॑सं म॒घवा॒ शची॑भिः ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर सूर्य के समान (पृथिवीम्) पृथिवी को (धारयत्) धारण करता है और (पप्रथम् च) उसको विशाल आकार का बनाता है। जैसे (वज्रेण मेघं हत्वा अपः निः ससर्ज) सूर्य विद्युत् या प्रबल वायु से मेघ को आघात करके वृष्टि के जल को उत्पन्न करता है वैसे ही परमेश्वर भी (वज्रेण) विद्युत् के बल से (हत्वा) दो भिन्न २ प्रकार के वायुतत्वों को मिलाकर (अपः) जलों का (निः ससर्ज) निर्माण करता है। (मघवा) सूर्य जैसे (अहिम् अहन्) मेघ को छिन्न-भिन्न करता, (रोहिणम् अभिनत्) रोहिणी नक्षत्र के योग में उत्पन्न मेघ को छिन्न-भिन्न करता और (वि अंसं) विविध कन्धों वाले मेघ का (वि अहन्) विविध प्रकार से नाश करता है वैसे ही परमेश्वर भी (शचीभिः) अपनी बड़ी २ शक्तियों से (अहिम्) महान्, अन्धकारमय जगत् के शरण तत्व, प्रकृति को (अहन्) आघात करता, उसमें प्रविष्ट होता और (रोहिणम्) संसार को प्रकट कर देने वाले महान्, हिरण्यगर्भ रूप अण्ड को (अभिनत्) भेदता है, उसे विभक्त कर नाना लोक बनाता है। (वि-अंसं) विविध पृथिवी आदि पञ्चभूतों रूप स्कन्धों से युक्त या विविध शाखाओं से युक्त, वृक्ष के समान विस्तृत सर्ग को भी (वि अहन्) विविध रूपों में विभक्त करता, विनाश करता या प्रकट करता है।

स जा॒तूभ॑र्मा श्र॒द्दधा॑न॒ ओजः॒ पुरो॑ विभि॒न्दन्न॑चर॒द्वि दासीः॑ ।
वि॒द्वान्व॑ज्रि॒न्दस्य॑वे हे॒तिम॒स्यार्यं॒ सहो॑ वर्धया द्यु॒म्नमि॑न्द्र ॥३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (जातूभर्मा) जगत में उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणियों का पालन पोषण करने हारा (श्रद्दधानः) अपने सत्य

स्वरूप को धारण करने वाला (ओजः) अपने महान् सामर्थ्य से (दासीः पुरः) नाश होने वाली सृष्टियों को और (पुरः) आत्मा के देह-बन्धनों को (विभिन्दन्) विविध प्रकारों से विनाश करता हुआ (वि अचरत्) विशेष रूप से व्याप रहा है। हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन्! (विद्वान्) ज्ञानवन्! तू (दस्यवे) दुष्ट पुरुष के नाश के लिये (हेतिम्) उसके बध का उपाय करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (आर्य) श्रेष्ठ पुरुषों और प्रजापालक स्वामीजनों के, (सहः) शत्रुओं को पराजय करने योग्य बल और (द्युम्नं) ऐश्वर्य की (वर्धय) वृद्धि कर।

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥

भा०—(वज्री) वह शक्तिशाली परमेश्वर (दस्युहत्याय) नाशकारी अज्ञान के नाश के लिये (उप प्रयन्) अति समीप प्राप्त होता हुआ (सूनुः) निश्चय से सबका प्रेरक होकर (श्रवसे) ज्ञान-वृद्धि के लिये (यत् नाम दधे) जिस प्रसिद्ध तेजोमय स्वरूप को धारण करता है वह (तत्) उस अपने (ऊचुषे कीर्तेन्यं) स्तुति करने वाले जन के लिये स्तुति योग्य (नाम) नाम और स्वरूप को (इमा मानुषा युगानि) मनुष्यों के इन कल्पित अनेकों वर्षों तक (बिभ्रत्) धारण कर रहा है।

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय। स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५॥१६॥

भा०—हे मनुष्यो! (अस्य) इस परमेश्वर का (इदं) यह प्रत्यक्ष दीखने वाला (भूरि) बहुत प्रकार का और बहुत अधिक (पुष्टम्) सब का परिपोषक (तत्) वह परम बल (पश्यत) देखो और (वीर्याय) वीर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये (इन्द्रस्य) उस महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा पर (श्रद् धत्तन) श्रद्धा, विश्वास करो। (सः) वह (गाः) गतिमान् समस्त सूर्यादि लोकों में (अविन्दत्) व्याप्त है। (सः) वह (अश्वान्) व्यापक

आकाशादि पदार्थों तथा भोक्ता जीवों को भी (अविन्दत्) अपने वश में किये है। (सः ओषधीः) वह समस्त ओषधि, वनस्पतियों के धारक सूर्य, अग्नि आदि को भी वश करता है। (सः अपः) वह समुद्र, मेघ आदि में स्थित जलों, प्राणों, लिंग शरीरों तथा व्यापक जगत् निर्माता उपादान कारणावयवों व (सः वनानि) भोग और सेवन योग्य समस्त ऐश्वर्यों को वश कर रहा है। इति षोडशो वर्गः ॥

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (शूरः) शूरवीर पुरुष (अयज्वनः) अदानशील, कंजूस, अत्याचारी पुरुषों को (आ-दृत्य) सब प्रकार से भयभीत करके उनसे (परिपन्थी इव) चोर डाकू के समान (वेदः) धन को (विभजन्) छीन (एति) ले जाता है उस (भूरिकर्मणे) राष्ट्र के बहुत अधिक कार्य करने वाले, (सत्य शुष्माय) सत्य के बल से बलवान्, (वृष्णे) सुखों के वर्षक (वृषभाय) नरश्रेष्ठ के लिये हम लोग (सोमम्) ऐश्वर्य (सुनवाम) उत्पन्न करें और (सोमम्) राज्यपद का (सुनवाम) अभिषेक करें।

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते ! (यत्) जिस कारण से तू, (ससन्तं अहिम्) सोता हुआ सांप जैसे बिजली की कड़क से जाग जाता है, वैसे ही (ससन्तम्) सोते हुए, बेखबर पड़े (अहिम्) सांप के समान कुटिल, चढ़ाई करने वाले शत्रु को (वज्रेण) अपने प्रबल शस्त्र-बल से (अबोधयः) अपनी शक्ति का परिचय करा देता है, कि सुधर जाओ नहीं तो कठोर दण्ड पाओगे, (तत्) इसलिये तू (वीर्यम्) अपने बल को (प्र इव चकर्थ) खूब अच्छी प्रकार दृढ़ बनाये रख। (हृषितं पत्नीः) काम अभिलाषा से हृष्ट पुष्ट अपने पति को देख कर जैसे स्त्रियें अधिक प्रसन्न होती हैं वैसे ही

हे राजन् (हर्षितं) अति हर्ष से युक्त (त्वा) तुझको (अनु) प्राप्त करके (पत्नीः) राष्ट्र के पालन करने वाली सेनाएं (वयः च) ज्ञानी पुरुष, वेग से जाने वाले रथी, वीर योधागण (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् और विजिगीषु जन (त्वा अनु अमदन्) तेरे में हर्षित हों।

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शंबरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥८

भा०—सूर्य जैसे (शुष्णं) पृथ्वी पर सूखा डालने वाले (पिप्रुं) जल से भरे हुए (कुयवं) पृथिवी से जौ आदि धान पैदा करने वाले (वृत्रम्) बढ़ते हुए मेघ को और (शम्बरस्य) जल से (पुरः) भरे हुए उसके भागों को (वि अवधीः) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता है वैसे ही हे राजन्! सेनापते! तू (शुष्णं) प्रजा के रक्त शोषण करने वाले (पिप्रुं) अपने पेट और कोश को भरने वाले (कुयवं) कुत्सित अन्न के खाने और अन्यों को देने वाले (वृत्रम्) विघ्नकारी शत्रु को और (शम्बरस्य) नगर को घेरने वाले शत्रु की (पुरः) नगरियों को (यदा) जब (विअवधीः) विविध उपायों से तोड़ता है तब (मित्रः) मित्र राजा (वरुणः) सेनापति (अदितिः) शासनकारी (सिन्धुः) अति वेग से जाने वाला सैन्यदल (पृथिवी) भूमिवासी प्रजाजन और (द्यौः) सूर्य या आकाश के समान विद्वान् जन (नः) हमारी (मामहन्ताम्) वृद्धि करें। इति सप्तदशो वर्गः॥

[१०४] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ पंक्तिः। २, ४, ५ स्वराट् पंक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। ३, ७ त्रिष्टुप्। ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप्॥
नवर्चं सूक्तम्॥

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे॥१॥

भा०—(दोषावस्तोः) दिन और रात (प्रपित्वे) प्राप्त करने योग्य

समीप में (वहीयसः) ढोकर ले जाने में समर्थ (अश्वान्) अश्वों, अश्वारोहियों को रथ तथा युद्धादि कार्य से युक्त करके और (वयः) ज्ञानवान् या वेग से जाने वाले अन्य पदाति सैन्यों को (विमुच्या) छोड़ कर (स्वानः अर्वा न) ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् ज्ञानी पुरुष जैसे अपने आसन पर विराजता है वैसे ही हे (इन्द्र) राजन्! (ते) तेरे (निषदे) विराजने के लिये (योनिः) स्थान, आसन (अकारि) बनाया जावे। तू (तम् आ नि सीद) उस पर विद्वान् या अन्तरिक्ष में गर्जते मेघ के समान विराज अथवा (अश्वान् अवसाय) घोड़ों या अश्वारोही कार्य-कुशल पुरुषों को देश विजय और शासन के लिये छोड़कर आप सिंहासन पर विराजे।

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥२॥

भा०—(त्ये) वे नाना देशवासी (नरः) नायक, मुख्य पुरुष (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा और ज्ञानवान् विद्वान् के पास (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (आ गुः) आवें। वह (नू चित् सद्यः) शीघ्र ही (तान्) उनको (अध्वनः) उत्तम २ मार्गों का (जगम्यात्) उपदेश करे। (देवासः) दानशील, अन्नादि का दाता विद्वान् स्वामी (दासस्य) अपने अधीन सेवक जन के (मन्युम्) क्रोध को (चम्नन्) सदा दूर करता रहे। (ते) वे (नः) हम प्रजाजनों के हितार्थ (सुविताय) उत्तम कार्य में लगाये गये को (वर्णम्) वरण योग्य उत्तम वेतन आदि (आवक्षन्) प्राप्त करावें।

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३॥

भा०—एक पुरुष (केतवेदाः) ऐश्वर्य प्राप्त करके और ज्ञानवान् होकर भी (त्मना) अपने स्वार्थ से (केनम्) चक्र वृद्धि ब्याज आदि द्वारा बढ़े हुए धन और ज्ञान को (अव भरते) नीच उपाय से प्राप्त करता है और नीच कार्य में ज्ञान का उपयोग करता है और दूसरा (त्मना अव भरते)

स्वभावतः नीच उपाय से धनादि हरता है वे दोनों (उदन्) जलाशय में मानों (क्षीरेण स्नातः) जल से व्यर्थ नहाते हैं। दोनों भीतर से मलिन होते हैं। वे दोनों (कुयवस्य) कुत्सित दरिद्र की (योषे इव) स्त्रियां जैसे (शिफायाः प्रवणे) नदी की ढाल में खड़ी अथवा कलहवृत्ति के नीच व्यवहार में पड़कर आपस में लड़ती और नष्ट हो जाती हैं वैसे ही वे दोनों भी नष्ट हो जाते हैं।

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥

भा०—(उपरस्य) मेघ के समान प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य देने वाले (आयोः) सब प्रजाओं को परस्पर मिलाये रखने वाले पुरुषों का (नाभिः) केन्द्र या आश्रय होकर राजा (युयोप) सबको मोहित करता है। वह (शूरः) शूरवीर होकर समुद्र के समान (पूर्वाभिः) समृद्ध प्रजाओं के साथ (राष्टि) राज्य करता और प्रकाशित होता है। (प्र तिरते) खूब अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है। जैसे (पयः हिन्वानाः) जल बहाती हुई उमड़ती नदियां (उदभिः) जलों से समुद्र को (भरन्ते) भर देती हैं वैसे ही उस समुद्र समान पुरुष को (अञ्जसी) नाना उत्तम गुणों से युक्त (कुलिशी) कुलिश अर्थात् शस्त्रास्त्र से राष्ट्र की रक्षा करने वाली और (वीरपत्नी) वीर नायक को अपने पालक रूप से धारण करने वाली प्रजाएं (पयःहिन्वानाः) बल की वृद्धि करती हुई समुद्र को जल से भरने के समान ऐश्वर्यों से (भरन्ते) पूर्ण कर देती हैं।

प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्पपी परा दाः ॥५॥१८

भा०—(नीथा दस्योः सदनम् ओकः न) मार्ग जैसे भवन के रूप में बने डाकू के घर तक जाता है ठीक वैसे ही (यत्) जो (स्या) वह (नीथा) न्यायसरणि या आप्त प्रजा (प्रति आदर्श) दीख रही है वह एक

मार्ग के समान (दस्योः ओकः न सदनं) डाकू के घर को ही अपना शरण सा (जानती) जानती हुई (अच्छा गात्) प्राप्त हो सकती है। अर्थात् प्रजा न्याय के लिये डाकुओं के गढ़ को राजसभा सा जान कर उसमें प्रवेश कर सकती है। फलतः प्रजा भी बुरे राजा को अच्छा जान कर उसके अधीन हो जाती है। (अध) तब हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (चर्कृतात् इत्) स्थिर रूप से निर्धारित किये धर्म-मार्ग से (नः) हमें ले चल और (निःपपी मघा इव) स्त्री-भोग का व्यसनी जैसे स्त्री व्यसन में ही धन नाश कर डालता है वैसे ही तू (नः) हमें (मा परा दाः) अपने व्यसनों के कारण हमारा विनाश मत कर।

स त्वं न॑ इन्द्र॒ सूर्ये॒ सो अ॒प्स्व॑नागा॒स्त्व आ भ॑ज जीवशं॒से।
मान्त॑रां भुज॒मा री॑रिषो नः॒ श्रद्धि॑तं ते मह॒त इ॑न्द्रि॒याय॑॥ ६॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (त्वं) तू (नः) हमारे बीच में (जीवशंसे सूर्ये) जीवन प्रदान करने से स्तुतियोग्य सूर्य के समान जीवनप्रद पद पर (आ भज) प्राप्त हो। (सः) तू (अप्सु) प्रजाओं के बीच (जीवशंसे अनगास्त्वे) सब प्राणियों से स्तुति करने योग्य पापाचरण से रहित रहने में (आभज) लगा रह। (अन्तराम्) अपने राष्ट्र के भीतर रमण करने वाली (भुजम्) तेरा पालन करने वाली प्रजा को भी अपनी अन्तःपुर की भोक्तव्य स्त्री के समान (मा आरीरिषः) थोड़ा भी पीड़ित मत कर। (ते) तेरे (महते) बड़े भारी (इन्द्रियाय) सामर्थ्य और अधिकार के लिये (नः) हमारे (श्रद्धितम्) सदा आदर भाव बने रहें।

अधा॑ मन्ये॒ श्रत्ते॑ अस्मा अधायि॒ वृषा॑ चोदस्व मह॒ते धना॑य।
मा नो॒ अकृ॑ते पुरुहूत॒ योना॒विन्द्र॒ क्षुध्य॑द्भ्यो वय॑ आसु॒तिं दाः॥७॥

भा०—हे (पुरुहूत) अनेक प्रजाओं से सत्कार करने योग्य राजन्! (अध) मैं भी (ते अस्मै) तेरा (मन्ये) मान करता हूँ। (ते) तेरे कार्य और वचन (श्रत् अधायि) सत्य और आदर योग्य माने जायं। तू (वृषा)

सब सुखों को वर्षाने हारा, मेघ के समान उदार होकर (महते धनाय) बड़े भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (चोदस्व) हमें प्रेरित कर। हे राजन् (नः) हमें (अकृते योनौ) वे बने, बिन सजे, टूटे फूटे, ढहे घर में (मा दाः) मत रख और (नः क्षुध्यद्भ्यः) हम में से भूख से पीड़ित जनों को (वयः) अन्न और (आसुतिम्) दूध आदि पान करने योग्य पदार्थ (दाः) प्रदान कर।

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः।
आ॒ण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॒न्मा नः॒ पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! (नः) हमें (मा वधीः) मत मार। (नः मा परा दाः) हमें त्याग मत। (नः) हमारे (प्रिया भोजनानि) प्रिय भोगने योग्य वस्तुओं को (मा प्र मोषीः) मत चुरा। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (शक्र) शक्तिशालिन्! (नः आण्डा) हमारे गर्भगत सन्तानों को (मा निर्भेत्) मत विनष्ट होने दे। दुःखित मत कर। (नः) हमारे (सहजानुषाणि) सहोदर (पात्रा) कच्चे पात्रों के समान बल वाले, असमर्थ, पालन करने योग्य बालकों को (मा भेत्) मत विनष्ट कर अर्थात् गर्भगत और कच्ची उमर के बच्चों की रक्षा कर।

अ॒र्वाङेहि॒ सोम॑कामं त्वाहुर॒यं सु॒तस्तस्य॑ पिबा॒ मदा॑य।
उ॒रु॒व्यचा॑ ज॒ठर॒ आ वृ॑षस्व पि॒तेव॑ नः शृणुहि हू॒यमा॑नः ॥९॥२१॥

भा०—हे राजन्! तू (अर्वाङ् एहि) प्रजा के साक्षात् कार्य-व्यवहार में आगे आ (त्वा) तुझे विद्वान् (सोमकामं आहुः) ऐश्वर्य का इच्छुक कहते हैं। (अयं सुतः) यह अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य है। (तस्य) उसको (मदाय) प्रजा के हर्ष और आनन्द प्राप्त करने के लिये (पिब) प्राप्त कर। तू (उरुव्यचाः) विशाल और विविध ज्ञानों और सामर्थ्यों से युक्त होकर (जठरे) उदर में दुग्ध आदि के समान (जठरे) अपने उत्पन्न होने के स्थान राष्ट्र में ही (आ वृषस्व) बलवान् होकर रह। (नः) हमारे (पिता

इव) पालक के समान (हूयमानः) आदर पूर्वक बुलाया जाकर (नः शृणुहि) हमारी प्रार्थनाओं को सुन।

[१०५] आप्त्याख्रित ऋषिः, आङ्गिरसः कुत्सो वा ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, २, १६, १७, निचृत्पंक्तिः । ३, ४, ६, ६, १५, १८ विराट् पंक्तिः । ८, १० स्वराट् पंक्तिः । ११, १४ पंक्तिः । ५ निचृद् बृहती । ७ भुरिग्बृहती । १३ महाबृहती । १९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥१

भा०—(चन्द्रमाः) चन्द्र (अप्सु अन्तरा) जलों के मध्य अर्थात् जलमय (दिवि) आकाश से (सुपर्णः) उत्तम रश्मियों से युक्त होकर (धावते) गति करता है। हे ज्ञानी पुरुषो ! आकाश में (विद्युतः) विशेष दीप्तियें वा किरणें (हिरण्यनेमयः) सुवर्ण के समान धार वाली होकर भी (वः) तुम लोगों के (पदं) ज्ञान को (न विन्दन्ति) गोचर नहीं होतीं। हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी तुम दोनों (मे) मुझ ज्ञानेच्छु पुरुष को (अस्य) इस उक्त रहस्य का (वित्तम्) ज्ञान प्राप्त कराओ।

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२॥

भा०—जैसे (अर्थिनः) धनेच्छु (अर्थम् इत् उ) धन को (आयुवते) प्राप्त होते हैं (वा उ) वैसे ही (जाया) स्त्री (पतिम्) पति को (आ युवते) प्राप्त होकर प्रसन्न होती है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर जैसे (वृष्ण्यं पयः) पुष्टिकारक वीर्य का (तुञ्जाते) एक दूसरे को प्रदान करते और लेते हैं वैसे ही धन और धनाभिलाषी दोनों (वृष्ण्यं पयः) सुखवर्षक, पुष्टिकारक अन्नादि लेते और देते हैं। ऐसे ही पृथ्वी और सूर्य, राजा और प्रजा भी मिलकर (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) वर्षण योग्य जल तथा बलवान् पुरुषों के

योग्य सामर्थ्य का परस्पर आदान प्रदान करते और जैसे भूमि सूर्य से प्रकाश (परिदाय) लेकर उसको अपना (रसं दुहे) जल प्रदान करती है, स्त्री जैसे आश्रय, वस्त्र, अन्न और हृदय-प्रेम आदि लेकर पति को (रसं दुहे) अति सुख देती है और गौ जैसे (परिदाय) घास आदि खाकर (रसं दुहे) क्षीर दोहन करती है, वैसे ही प्रजा या भूमि भी (परिदाय) राजा के बल पराक्रम को लेकर (रसं दुहे) सारमय बहुमूल्य ऐश्वर्य प्रदान करती है। हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान स्त्री पुरुषो, राजा और प्रजाओ! तुम (मे) मेरे (अस्य) इस प्रकार के कथन का रहस्य (वित्तम्) जानो ॥

मो षु दे॑वा अ॒दः स्व॑१॒॑र॑व॑ पादि दि॒वस्परि॑।
मा सो॒म्यस्य॑ शं॒भुवः॒ शूने॑ भूम॒ कदा॑ च॒न वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥३॥

भा०—हे (देवाः) विद्वानो और विजयाभिलाषी पुरुषो! (अदः) वह परला (स्वः) सूय समान तेजस्वी राजा तथा पारलौकिक सुख, (दिवः परि) आकाश में परे विद्यमान सूर्य के समान ही (दिवः परि) ज्ञान प्रकाश के उत्तर काल में में होता है। वह (मो अव पादि) कभी नीचे न गिरे। (सोमस्य) ऐश्वर्य के योग्य (शंभुवः) शान्ति देने वाले राजा के (अव) विपरीत हम प्रजाजन (कदाचन मा भूम) कभी न हों। हे (रोदसी) राजा प्रजावर्गो! तथा गुरु शिष्यो! (मे अस्य वित्तम्) मेरे इस उपदेश युक्त वचन को जानो ।

य॒ज्ञं पृ॑च्छाम्यव॒मं स तद्दू॒तो वि वो॑चति।
क्व॑ ऋ॒तं पू॒र्व्यं ग॒तं कस्तद्बि॑भर्ति॒ नूत॑नो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥४॥

भा०—शिष्य कहता है हे विद्वान् गुरो! मैं (अवमम्) उत्तम रक्षा साधनों से सम्पन्न (यज्ञम्) सब ऐश्वर्यों के दाता, सर्व पूजनीय, परमेश्वर को लक्ष्य करके (पृच्छामि) प्रश्न करता हूँ। (सः) वह तू (इतः) परिचर्या करने योग्य आचार्य रूप होकर राजा का संदेश दूत जैसे खोज २ कर, गहरी २ बातें बतलाता है वैसे ही आप (विवोचित) विशेष ज्ञानों का

विविध प्रकार से उपदेश करते हैं। (पूर्व्यं) पर्व ऋषियों से प्राप्त (ऋतं) वेद का सत्य ज्ञान (क गतम्) कहां है और (नूतनः) नये वर्तमान के ज्ञान को (कः) कौन नया विद्वान् (तत्) उस ज्ञान को (बिभर्ति) धारण करता है। (रोदसी) उपदेश करने और लेने हारे गुरु शिष्य (मे अस्य) मेरे उपदेश किये इस प्रकार के प्रश्नों का (वित्तम्) ज्ञान सम्पादन करें। (ऋतं) मूल सत्य कारण अब कहां गया और उस को कौनसा नूतन कारण धारण करता है इस बात को (रोदसी) आकाश और पृथिवी ही जानते हैं।

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५॥२०

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो और पृथिव्यादि लोको ! (ये) जो (अमी) पृथिवी आदि लोक (दिवः रोचने) सूर्य के प्रकाश में (त्रिषु) तीनों कालों और तीनों लोकों में (आ स्थन) प्रत्यक्ष विद्यमान हैं (वः) तुम्हारा (ऋतं कत्) मूल कारण, आदि प्रवर्तक बल कहां है ? (अनृतं कत्) उस प्रवर्त्तक बल से भिन्न 'अनृत' अर्थात् जड़, प्रकृति अब (कत्) कहां है ? (वः) तुम्हारी (प्रत्ना) अनादि काल से चली आई (आहुतिः) उत्पन्न करने वाली, पुनः अपने में समा लेने वाली शक्ति (कत्) कहां है ? हे (रोदसी) गुरु शिष्य दोनों (मे अस्य वित्तं) मुझ विद्वान् से इस तत्व का ज्ञान प्राप्त करो। इति विंशो वर्गः ॥

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम्।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६॥

भा०—(वः) तुम्हारे (ऋतस्य) मूल सत् कारण, सत्य ज्ञान और बल को मेघ के समान (धर्णसिः) धारण करने वाला (कत्) कहां है ? (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का (चक्षणं) साक्षात् दर्शन (कत्) कैसा है ? (अर्यम्णः) सूर्य के समान नियन्ता परमेश्वर को (दूढ्यः) कठिनता से

चिन्तना करने योग्य, (कत् महः पथा) किस महान् उपदेशमय मार्ग से बुद्धि के अगम्य पदार्थों को (अतिक्रामेम) प्राप्त करें ? शेष पूर्ववत् ।

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७॥

भा०—(अहं) मैं जीव (सः) वही (अस्मि) हूँ (यः) जो (पुरा) पूर्व काल में, इस देह से पूर्व भी विद्यमान रहा और (सुते) इस उत्पन्न जगत् में या (सुते) इस देह के उत्पन्न हो जाने पर अब (कानि चित्) कुछ पदों या वाक्यों का (वदामि) उच्चारण करता हूँ । (वृकः तृष्णजं मृगं न) भेड़िया जैसे प्यासे मृग को जा पकड़ता है, उसकी प्यास लगी की लगी रह जाती है और व्याघ्र उसके प्राण अपहरण कर लेता है ठीक वैसे ही (तं मा) उसी मुझ जीव को (आध्यः व्यन्ति) मानसी व्यथाएं, चिन्ताएं और देह के रोग आदि (व्यन्ति) आ घेरती हैं । (वित्तं मे) इत्यादि पूर्ववत् ।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः । मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों के स्वामिन् ! प्रभो ! (पर्शवः) पास रहने वाली (सपत्नीः) बहुत सी स्त्रियां जैसे अपने दरिद्र पति को बहुत कष्ट देती हैं वैसे ही (पर्शवः) ग्राह्य विषयों तक पहुँचने वाली इन्द्रियां (अभितः) सब तरफ (मा) मुझ जीव को (सं तपन्ति) संताप उत्पन्न करती हैं । (मूषः शिश्ना न) मूषक जैसे बिना धुले माड़ी आदि से मढ़े सूतों को खा जाता है वैसे ही (आध्यः) मानस चिन्ता और शारीरिक रोग (ते स्तोतारं) तेरी स्तुति करने हारे (मा व्यदन्ति) मुझे खाये जाते हैं । (वित्तं मे०) इत्यादि पूर्ववत् ।

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

भा०—(ये) जो (अमी) ये (सप्त) सात या सर्पणशील, निरन्तर गति करने हारे (रश्मयः) सूर्य किरणों के समान फैलने वाले और अश्व की रासों के समान देह को वश करने वाले सप्त प्राण हैं (तत्र) उनके आश्रय (मे नाभिः) मेरी नाभि या सुप्रबन्ध (आतता) व्याप्त है। (आप्त्यः) आप्तजनों में श्रेष्ठ या आत्मा ही (त्रितः) सब अज्ञान बन्धनों को पार करके (तत्) उस परम ज्ञान रहस्य को (वेद) जान लेता है। (सः) वही (जामित्वाय) परम बन्धुता को प्राप्त करने के लिये (रेभति) परमेश्वर की स्तुति करता है। हे (रोदसी) स्त्री पुरुषो! गुरु शिष्यो! आप (मे) मुझ आत्मा के इस रहस्य को (वित्तम्) जानो।

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी १०।२१

भा०—(उक्षणः मध्ये दिवः) आकाश के बीच में जैसे वर्षा वाले मेघ विराजते हैं वैसे ही (अमी ये) वे जो (पञ्च) पांच (उक्षणः) सुखों के देने वाले (महः दिवः) महान् ज्ञानप्रकाश वाले आकाश के समान विशाल हृदयाकाश के (मध्ये) बीच (तस्थुः) स्थित पांच प्राण हैं वे (सध्रीचीनाः) एक साथ मिलकर रहने वालों के समान होकर (नि ववृतुः) नित्य रहते हैं। यही बात (देवत्रा) विद्वान् पुरुषों को (प्रवाच्यम्) उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है। (वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत्)

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ११

भा०—(दिवः मध्ये सुपर्णाः) जैसे आकाश में किरणें (आरोधने) किसी रुकावट के आ जाने पर (आसते) उसी पर पड़ती हैं, ऐसे ही (ते) वे सूर्य की किरणें (पथः तन्तरम्) क्रान्तिमार्गों पर गति करते हुए चन्द्र को भी प्राप्त होती हैं और वे ही सूर्य की किरणें (यह्वतीःअपः) विशाल समुद्र के जलों पर भी पड़ती हैं और चन्द्र को प्रकाशित करती हैं। वैसे

ही (एते सुपर्णाः) ये पालन पोषण करने के साधनों वाले, उत्तम ज्ञान युक्त विद्वान् और उत्तम यान साधन रथों वाले वीरजन (दिवः आरोधने) विजयेच्छु पर राजा के (आरोधने) रोकने के निमित्त (मध्ये आसते) बीच ही में आ खड़े हों। (ते) वे (पथः तरन्तम्) मार्गों पर जाते हुए (वृकं) चोर पुरुष को (सेधन्ति) पकड़ लेवें और (यह्वतीः अपः तरन्तं) प्रजाओं के भीतर जाते हुए या बड़ी २ नदियों को तैरते हुए (वृकं) चोर पुरुष को भी (सेधन्ति) पकड़ें। हे प्रजाजनो और गुरु शिष्यो! आप (रोदसी) राज प्रजावर्गों के विषय में यही व्यवहार जानो।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी १२

भा०—जैसे (सिन्धवः) नदियें (ऋतम्) जल बहाती हैं और (सूर्यः) सूर्य (सत्यं तातान) सबको साक्षात् दीखने वाला अपना प्रकाश सबके हित के लिये फैला देता है, वैसे ही हे (देवासः) विद्या दाता विद्वान् पुरुषो और जिज्ञासु शिष्यो! आप लोग (तत्) उस परम (नव्यम्) अति स्तुत्य, सद्यः प्राप्त (हितम्) सबके हितकारी (उक्थ्यम्) वेदमन्त्रों में विद्यमान (सुप्रवाचनम्) उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य (सत्यं ऋतम्) सत्य वेद ज्ञान को (अर्षन्ति) सबको ग्रहण कराओ। हे (रोदसी) स्त्री पुरुषो! (मे अस्य वित्तम्) मेरे इस उपदेश का ज्ञान करो।

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम्।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी १३

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (तव) तेरा (त्यत्) वह ज्ञान करने योग्य (उक्थ्यम्) उत्तम विद्यमान ज्ञान (देवेषु) ज्ञान की कामना करने हारे शिष्यों और विद्वानों में भी (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य (अस्ति) है। (सत्तः) तू उच्च आसन पर विराज कर उनके अज्ञान आदि दोषों को नाश करने में समर्थ और (विदुस्तरः) अधिक विद्वान् होकर (मनुष्वत्)

मननशील विद्वानों से युक्त होकर (नः) हममें से (देवान्) धन देने में समर्थ तथा ज्ञान के जिज्ञासु शिष्य जनों को (आ यक्षि) सब प्रकार के ज्ञानों का लाभ करा। (वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत्)

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी १४

भा०—(सत्तः) उच्च आसन पर विराजमान दुःखों का नाशक (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों का स्वामी (होता) सब ऐश्वर्यों का दाता (विदुस्तरः) अन्यों से अधिक विद्वान् होकर (अग्निः) नायक और आचार्य (देवान्) विद्वानों, धन और ज्ञान के अभिलाषी पुरुषों को (हव्या) ग्रहण योग्य अन्न और ज्ञानों को (सुपूदति) प्रदान करे। वह (देवः) स्वयं विद्वान् सूर्य के समान (देवेषु) अन्य विद्या के अभिलाषी जनों के बीच (मेधिरः) मेधावी होकर रहे। (वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत्)।

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी १५ २२

भा०—जो (वरुणः) दुःखों का वारक वीर नायक, राजा, परमेश्वर और विद्वान् (ब्रह्म) ऐश्वर्य, ब्रह्म ज्ञान तथा दृढ़ रक्षण आदि कार्य (कृणोति) सम्पादन करता है (तम्) उस (गातुविदम्) वेद वाणी के ज्ञाता श्रेष्ठ मार्ग के बतलाने वाले और पृथ्वी के स्वामी की हम (ईमहे) याचना उपासना करें। वह (नव्यं) स्तुति-योग्य, नव शिक्षित सदा प्रसन्न होकर (हृदा) हृदय से विचार २ कर (मतिं) ज्ञान को (वि ऊर्णोति) विविध प्रकारों से प्रकट करे। (ऋतं) उसका उपदेश सत्य (जायताम्) हो। और (नव्यः ऋतं जायताम्) नवीन शिष्य उस सत्य ज्ञान को प्राप्त करे। (वित्तं मे०) शेष इत्यादि पूर्ववत्।

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी १६

भा०—(दिवि आदित्यः) आकाश में जैसे सूर्य है वैसे ही (यः) जो (असौ) वह परम उत्कृष्ट (पन्थाः) मार्ग मुमुक्षु और जिज्ञासु जनों को प्राप्त करने योग्य (आदित्यः) सबके स्वीकारने योग्य अखण्ड ब्रह्म से उत्पन्न (दिवि) ज्ञान-प्रकाश के प्राप्त करने के लिये (प्रवाच्यम् कृतः) प्रवचन द्वारा उपदेश किया जाता है, हे (देवा) विद्वान् पुरुषो! (सः) वह महान् ज्ञान व वेद प्रतिपादित मार्ग (अतिक्रमे न) उल्लंघन योग्य नहीं है। हे (मर्त्तासः) मरणशील पुरुषो! तुम लोग (तं न पश्यथ) उसको नहीं देख रहे हो। आओ उसके साक्षात् करने का यत्न करो। (वित्तं मे०) इत्यादि पूर्ववत्।

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी १७

भा०—(त्रितः) तीनों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों में फंसा हुआ पुरुष (कूपं अवहितः) मानो कूएं में गिरे मनुष्य के समान ही (देवान्) उत्तम विद्वान् दयाशील पुरुषों को (ऊतये) अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये (हवते) पुकारता है। (बृहस्पतिः) वेद वाणी का तथा बड़े भारी ब्रह्माण्ड का स्वामी, प्रभु परमेश्वर और वह (अंहूरणात्) चारों तरफ से आघात करने वाले कष्टों और पापों से बचाने के लिये (उरु) बड़ा यत्न (कृण्वन्) करता हुआ (तत्) उसकी पुकार को गुरु के समान (शुश्राव) श्रवण करता है। (शेष पूर्ववत्)

अरुणो मासकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी १८

भा०—(अरुणः मासकृत वृकः पथा यन्तं ददर्श) जैसे लाल रंग का मांसखोर बाघ मार्ग से जाते पुरुष को देखे और (पृष्ठ्यामयी तष्टाइव निचाय्य उत् जिहीते) पीठ में थकान अनुभव करने वाले बढ़ाई के समान झुक कर उस पर जा पड़ता है और जैसे (मासकृत्) मासों का विभाग

करने वाला (अरुणः) आकाश मार्ग से जाने वाला (वृकः) चन्द्र (पथायन्तं) आकाशस्थ क्रान्ति मार्ग से जाते हुए सूर्य को (ददर्श हि) देखता है। (तष्टा इव पृष्ट्यामयी) बढ़ई जैसे झुक कर काम करता करता पीठ में पीड़ा अनुभव करने लगता है और वह (निचाय्य इत् जिहीति) बार २ बैठ २ कर पुनः उठता है वैसे ही चन्द्र भी (पृष्ट्यामयी) बार २ कलाकार या धनुषाकार कुबड़े के समान हो २ कर (निचाय्य) और अमावस्या काल में लुप्त होकर बार २ (उत् जिहीते) उदित होता है।

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १९।२३।१५

भा०—(एना) इस (आङ्गूषेण) उपदेष्टा विद्वान् तथा दिये उपदेश से (वयम्) हम (सर्व वीराः) सब प्रकार के वीर पुरुषों और बलवान् प्राणों से युक्त होकर (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान् स्वामी तथा आचार्य के अधीन रह कर (वृजने) विरोधी शत्रु और भीतरी काम आदि दुर्व्यवहारों को दूर करने वाले बल को प्राप्त करने में (अभि स्याम) सदा तैयार रहें। शेष पूर्ववत्। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चदशोऽनुवाकः ॥

[१०६] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ६ जगती। ७, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे। रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥१॥

भा०—हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा, आचार्य, विद्युत्, सूर्य (मित्रं) मरण भय से बचाने वाले प्राण, मित्रजन (वरुणम्) दुःखों के वारक तथा समुद्र (अग्निम्) अग्नि, विद्युत् आदि तत्वज्ञानी विद्वान् तथा नायक जन और (मारुतं शर्धः) विद्वानों, वीरभटों तथा अन्यान्य वायुओं और प्राणों के (शर्धः) बल, शत्रुघातक सैन्य को (अदितिम्) पिता,

माता, आचार्य तथा मूल उत्पादक कारण, शत्रुघातक सैन्य तथा परब्रह्म आदि अन्य अखण्ड शक्ति वाले तत्वों और पूज्य पुरुषों को (ऊतये) अपनी रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये (हवामहे) स्वीकार करें। (सुदानवः) उत्तम दानशील या रक्षाकारी पुरुष जैसे (दुर्गात् रथं न) विषम स्थानों से रथ को बचा ले जाते हैं वैसे ही (वसवः) प्रजाओं को सुख से बसाने वाले और विद्यादि उत्तम गुणों में रहने वाले पुरुष (नः) हमारी (विश्वस्मात्) सब प्रकार के (अंहसः) पापों से (निः पिपर्तन) रक्षा करें।

त आ॑दि॒त्या आ ग॑ता स॒र्वता॑तये भू॒त दे॑वा वृत्र॒तूर्ये॑षु श॒म्भुवः॑ ।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥२॥

भा०—(आदित्याः) जैसे सूर्य की किरणें, अग्नि आदि तत्व (देवाः) तेज से युक्त एवं बल के देने वाले होकर (वृत्रतूर्येषु) मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों के नाश करने के कार्यों में शान्तिजनक होते हैं वैसे ही हे (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी, राष्ट्र के मुख्य कार्यों को अपने हाथ में लेने वाले (देवाः) विजयार्थी और दानशील पुरुषो ! आप लोग (आ गत) आओ और (वृत्रतूर्येषु) बढ़ते शत्रुओं के नाशकारी संग्रामों में (सर्वतातये) सब प्राणियों और प्रजाओं के कल्याण के लिये (शम्भुवः भूत) शान्ति उत्पन्न करने वाले रहो। (रथं न दुर्गात्० इत्यादि) विषम भूमियों में रथ को बचाकर ले जाने वाले सारथियों के समान आप लोग हम लोगों को सब प्रकार के पापाचारों से बचाते रहो।

अव॑न्तु नः पि॒तरः॑ सुप्रवाच॒ना उ॒त दे॒वी दे॒वपु॑त्रे ऋता॒वृधा॑ ।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥३॥

भा०—(नः) हमारी (सुप्रवाचनाः) उत्तम प्रवचन करने में कुशल (पितरः) पालक पिता माता और गुरुजन (अवन्तु) रक्षा करें और ज्ञान दें (उत) और (देवपुत्रे) विद्वान्, तेजस्वी किरणों और रत्नादि पदार्थों के समान पुत्रों को उत्पन्न करने वाले (ऋतावृधा) स्वच्छ जलों के समान

ज्ञानों और आचरणों की वृद्धि करने वाले (देवी) अन्नादि के देने वाले, भूमि और सूर्य के समान पुष्टि और शिक्षा के देने और ज्ञान प्रकाशक माता, पिता दोनों (न; आवतम्) हमारी रक्षा करें। वे सब (वसवः सुदानवः) सुखकारी जल वृष्टि करने वाले, सूर्यादि लोकों के समान प्रजाओं को सुख से बसाने वाले जन हम लोगों को विषम स्थान से रथ के सारथी के समान पापाचरणों से बचावें।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥४॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में हम लोग (नराशंसं) नायक वीर पुरुषों से स्तुति योग्य तथा मनुष्यों के शासक (वाजिनं) ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न बलवान् (क्षयद्-वीरम्) शत्रुनाशकारी वीरों के स्वामी और उनका आश्रय (पूषणम्) सबके पोषक पुरुष को (वाजयन्) विशेष ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हुए हम (सुम्नैः) सुखजनक साधनों से युक्त उसकी (ईमहे) याचना करते हैं। शेष पूर्ववत्।

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शंयोर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥५॥

भा०—हे (बृहस्पते) वेदवाणी एवं बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन् और ब्रह्मांड के स्वामिन् परमेश्वर! (ते) तेरा (यत्) जो तेज (मनुर्हितम्) मनुष्यों का हितकारी (शं) शान्तिदायक और (योः) दुःख विनाशक, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके देने वाला है उसे (नः) हमारे लिये (सदम् इत्) सदा ही (सुगं कृधि) सुखदायक कर। हम (तत्) उसे ही (ईमहे) चाहते हैं। शेष पूर्ववत्।

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६॥

भा०—(कुत्सः) विद्युत् (ऋषिः) वेग से जाने वाली होकर (काटे) कूप आदि गहरे स्थान में (निबाढः) गिरता हुआ (वृत्रहणम्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले (शचीपतिम्) कर्मों के पालक (इन्द्रम्) जलों के भीतर उनको फाड़ने में समर्थ तेज को (अह्वत्) प्रकट करता है। ऐसे ही (कुत्सः) विद्युत् आदि विद्याओं का प्रकट करने वाला विद्वान् (निबाढः) निरन्तर ज्ञानवान् होकर (ऋषिः) मन्त्रार्थों का साक्षात् करने वाला होकर (काटे) कूप आदि गिर जाने के विषम स्थान में (वृत्रहणं) अज्ञानान्धकार के नाशक (शचीपतिम्) सब कर्म सामर्थ्यों और वाणियों के पालक (इन्द्रम्) ज्ञान और धन के स्वामी परमेश्वर और नायक पुरुष को (ऊतये) रक्षा तथा ज्ञान वृद्धि के लिये (अह्वत्) पुकारता है। शेष पूर्ववत्।

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ७२४

भा०—(अदितिः देवी) प्रकाश देने वाली, अविनाशी, नित्य ज्ञान को देने वाली विद्या, माता और आचार्य आदि (नः) हमें (देवैः) दिव्य ज्ञानों, गुणों और सामर्थ्यों सहित (नि पातु) पालन करे। (त्राता देवः) त्राण करने वाला रक्षक, राजा, विद्वान् और परमेश्वर (त्रायताम्) हमारा पालन करे। शेष पूर्ववत्। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१०७] कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवत मृळयन्तः।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत्॥ १॥

भा०—(देवानां) विद्वानों का (यज्ञः) विद्या दान और (देवानां यज्ञः) दानशील पुरुषों का अन्न, धन आदि देना और (देवानां यज्ञः)

परस्पर मिलना तथा दिव्य पदार्थों का परस्पर संयोग और उत्तम शिल्प आदि (सुम्नम्) सुख (प्रति एति) प्राप्त कराता है । हे (आदित्यासः) अखण्ड ब्रह्म शक्ति और राजशक्ति के धारक पुरुषो ! आप लोग (मृड-यन्तः) सबको सुखी करते (भवत) रहो । (या) जो (वः) आप लोगों की (सुमतिः) शुभमति और ज्ञानशक्ति (वरिवोवित्तरा) उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली हैं वह (अंहोः चित्) विद्वान् को तथा दरिद्र पुरुष को भी (अर्वाची) सदा नये से नये रूप में प्रकट होकर (आ अवृत्यात्) प्राप्त हो ।

उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥

भा०—(अङ्गिरसां) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के (सामभिः) संगीतों द्वारा (स्तूयमानाः) स्तुति या (सामभिः) उत्तम वचनों द्वारा आदर पूर्वक प्रार्थना किये जाकर (देवाः) विद्वान् और विजयी पुरुष सूर्य की किरणों के समान (अवसा) अपने रक्षण सामर्थ्यों सहित (नः उप गमन्तु) हमें प्राप्त हों । ऐसे ही आदरपूर्वक प्रार्थित (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (इन्द्रियैः) अपने ऐश्वर्यों सहित और (मारुतः) वीरगण (मरुद्भिः) अपने सहयोगी विद्वानों सहित (अदितिः) सूर्य और पृथिवी (आदित्यैः) किरणों के समान आचार्य और राजा आदि पुरुषों, शिष्यों और भृत्यों सहित (नः) हमें (शर्म) सुख (यंसत्) प्रदान करे ।

तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ३।२५

भा०—(इन्द्रः) राजा, सेनापति, (वरुणः) सब दुःखों का वारक (अग्निः) नायक तथा ज्ञानी पुरुष (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता और न्यायकारी पुरुष (सविता) उत्पादक माता पिता, धर्ममार्ग का प्रेरक

आचार्य ये सब (तत्, तत्, तत्, तत्) वे नाना प्रकार के (चनः)ऐश्वर्य, अन्न, सद्वचन, सुख, शिक्षण आदि (धात्) प्रदान करें। इत्यादि पूर्ववत्। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१०८] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ८, १२ निचृत त्रिष्टुप्। २, ३, ६, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ६, १०, १३ त्रिष्टुप् ॥ ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

य इ॑न्द्राग्नी चि॒त्रत॑मो॒ रथो॑ वाम॒भि विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि॒ चष्टे॑।
तेना या॑तं स॒रथं॑ तस्थि॒वांसाथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि के समान अमात्य और राजन् ! (यः) जो (वाम्) आप दोनों का (चित्रतमः) अति अद्भुत (रथः) विजयी रथ या राष्ट्र शासन का काम (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोकों (अभिचष्टे) दीखता और प्रकाश से चमकाता है (तेन) उस रूप से आप दोनों (सरथं) एक ही रथ पर महारथी और सारथी के समान (तस्थिवांसा) बैठे हुए (आयातम्) हमें प्राप्त होओ (अथ) और (सुतस्य) उत्पन्न हुए (सोमस्य) अन्नादि भोग्य पदार्थ तथा ऐश्वर्य का (पिबतम्) पान करो उपभोग करो।

याव॑दि॒दं भुव॑नं॒ विश्व॒मस्त्यु॑रु॒व्यचा॑ वरि॒मता॑ ग॒भीर॑म्।
ता॑वाँ अ॒यं पात॑वे॒ सोमो॑ अ॒स्त्वर॑मिन्द्राग्नी॒ मन॑से यु॒वभ्या॑म् ॥२॥

भा०—(इदं) यह (विश्वम् भुवनम्) समस्त भुवन (यावत्) जितना विस्तृत है और जितना वह (उरुव्यचा) बहुत विस्तृत (वरिमता) विशालता से (गभीरम्) गम्भीर है (तावान्) उतना ही (अयं) यह (सोमः) राष्ट्र भी (इन्द्राग्नी) हे सूर्य और वायु, राजन् और सेनापते ! (युवभ्यां) तुम दोनों के (मनसे) चित्त के सन्तोष, ज्ञान, (पातवे) पालन और भोग करने के लिये (अरम् अस्तु) बहुत अधिक हो।

चक्राथे हि सध्र्य१ङ् नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्॥३॥

भा०—(इन्द्राग्नी वृष्णः सोमस्य वृषणा आवृषेथाम्) सूर्य और वायु से मिलकर मेघ जल की वर्षा कर देते हैं, अपना नाम, जन्म, स्वरूप आदि सब प्रजाओं के सुख के लिये समर्पित कर देते हैं वैसे ही (तौ इन्द्राग्नी) राष्ट्र में वे दोनों इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और नायक विद्वान् पुरुष (सध्रीचीना) एक साथ मिलकर अपने (नाम) शत्रुओं को झुका डालने वाले बल को (सध्र्यङ्) मिलकर (भद्रं) प्रजा के सुखदायी रूप में (चक्राथे) कर देते हैं। (उत हि) वे दोनों (वृत्रहणा) मेघ को सूर्य और वायु के समान, बढ़ते हुए शत्रु को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे दोनों (सध्र्यञ्चा) एक साथ मिले हुए ही (वृषणा) बलवान् एवं प्रजाओं पर सुख और शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों को बरसाने में समर्थ होकर (निषद्य) अपने आसनों पर विराज कर ज्ञानोपदेश करते हुए (वृष्णः सोमस्य) सब सुखों के दाता सोम अर्थात् ऐश्वर्य की (वृषेथाम्) वृद्धि कर देते हैं।

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम्॥४॥

भा०—(समिद्धेषु अग्निषु) यज्ञ में अग्नियों के प्रज्वलित हो जाने पर चरुओं को (आनजाना) घृतों से मिलाते हुए (यतस्रुचा) स्रुत को हाथ में पकड़ते हुए (उ बर्हिः तिस्तिराणा) कुश आसन बिछाते हुए अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों तीव्र सोम रसों से सबके लिये सुखित भाव के हो जाते हैं वैसे ही (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष, राजा और मन्त्री, या वायु और अग्नि के समान सेनापति और राजा दोनों (अग्निषु समिद्धेषु) अग्नियों के समान तेजस्वी नायकों के खूब उत्तेजित हो जाने पर (आनजाना) गुणों का प्रकाश करते हुए

(यतस्रुचा) बाहुओं के समान सेनाओं, राष्ट्र के स्त्री पुरुषों, भूमियों, वाणी और प्रजा को नियम में बद्ध करके (ऊ) साथ ही (बर्हिः) विस्तृत शास्त्र प्रजाजन को (तिस्तिराणा) खूब विस्तृत करते हुए (तीव्रैः) शत्रुओं के प्रति वेग से जाने वाले (सोमैः) सोम्य गुण वाले, उत्तम पदों पर (परिषिक्तेभिः) अभिषिक्त हुए नायकों सहित (सौमनसाय) प्रजा के चित्तानुरंजन के लिये (अर्वाक् आयातम्) हमारे प्रति आवें।

यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ५।२६

भा०—हे (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि के समान उपकारक स्वामी भृत्य, राजा और मन्त्री, क्षत्र ब्रह्म एवं स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यानि वीर्याणि) जिन सामर्थ्यों को, (यानि रूपाणि) सुन्दर पदार्थों या रुचिकर कार्यों को (उत) और (यानि वृष्ण्यानि) पुरुषार्थ युक्त और सुखवर्षक कार्यों को (चक्रथुः) प्रकट करें और (वां) आप दोनों (या) जो (प्रत्नानि) चिरस्थायी (शिवानि) शुभ (सख्यानि) मित्रता के कार्य हैं (तेभिः) उन सबसे युक्त होकर (सुतस्य) तैयार किये हुए (सोमस्य) ओषधि रसों, अन्न और शारीरिक बल आदि का (पिबतम्) उपभोग करो।

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥६॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! मैं (वां) तुम दोनों को (वृणानः) यज्ञ में पुरोहितों के समान वरण करता हुआ, कार्य कुशल जानकर (यत्) जो कुछ भी (अब्रवम्) कहूँ (अयं) यह (सोमः) ज्ञानोपदेश (नः) हममें से (असुरैः) केवल प्राणों में रमण करने वाले ज्ञान रहित पुरुषों को (विहव्यः) विविध प्रकार से ग्रहण कर ज्ञानवान् होना चाहिये। हे (इन्द्राग्नी) स्त्री पुरुषो ! आप (तां) उस (सत्याम्) सत्य (श्रद्धा) श्रद्धा को (अभि

आयातम्) प्राप्त होओ (अथ) और (सुतस्य सोमस्य) प्राप्त ज्ञान और उससे प्राप्त सांसारिक पदार्थों का सुख (पिबतम्) प्राप्त करो।

यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जिससे हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुषो ! आप (स्वे दुरोणे) अपने घर में, (मदथः) प्रसन्न रहते हो (यत्) जिस कारण से (ब्रह्मणि) ब्राह्मणों के बीच में (राजनि) और राजा की सभा में (यजत्रा) आदर प्राप्त करने वाले हो (अतः) इस कारण से ही आप (वृषणौ) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारे होकर (आयातम् हि) आओ और (सुतस्य सोमस्य पिबतम्) राष्ट्रैश्वर्य तथा शासक पद का उपभोग करो।

यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषुः स्थः।
अतः परि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥८॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) क्योंकि (यदुषु) यम नियमों में निष्ठ पुरुषों में (तुर्वशेषु) शत्रुओं के नाशक धर्मार्थ-काम-मोक्ष चारों के अभिलाषी, हिंसक दुष्ट पुरुषों के वश करने वाले पुरुषों में, (द्रुह्युषु) धनाभिलाषा से एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने वाले पुरुषों में, (अनुषु) प्राणप्रद पदार्थ अन्नादि देने वाले पुरुषों में और (पुरुषु) सबको विद्यादि से पूर्ण करने वाले उच्च कोटि के पुरुषों में (स्थः) आदर पूर्वक रहते हो (अतः) इससे समस्त सुखों और ज्ञानों के वर्धक होकर आप दोनों (परि आयातम्) सर्वत्र आओ जाओ और (सुतस्य सोमस्य पिबतम्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों का उपभोग करो।

यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥

यदि॑न्द्राग्नी पर॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्या॑मव॒मस्या॑मु॒त स्थः।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१०॥

भा०—(यत्) जिस कारण से (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् के समान न्यायाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष (अवमस्याम्) उत्तम गुण से रहित (मध्यमस्यां) मध्यम गुण वाली और (परमस्यां) उत्तम गुणों वाली तीनों प्रकार की (पृथिव्यां) पृथिवी में अधिकार, मान और सत्कार पूर्वक (स्थः) रहते हैं (अतः०) उसी से वे दोनों सब प्रजा को सुखप्रद होकर प्राप्त हों और प्राप्त ऐश्वर्य का भोग करें ॥ ९ ॥

भा०—(यदिन्द्राग्नी०) इत्यादि पूर्ववत्। पूर्व मन्त्र में अवम, मध्यम, परम इस क्रम से पृथिवी के विशेषण हैं। दूसरे मन्त्र में परम, मध्यम और अवम इस क्रम से विशेषण हैं। वायु और अग्नियों की स्थिति और क्रम दोनों प्रकार की जाननी चाहिये, एक भूमि से अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से आकाश में जाने वाले और दूसरे आकाश से मध्यम अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से पृथिवी को आने वाले ये दो प्रकार के वायु और अग्नियों का वर्णन है। उसी प्रकार चढ़ते और उतरते क्रम से योग्य विद्वान् अधिकारियों का भी वर्णन समझना चाहिये।

यदि॑न्द्राग्नी दि॒वि ष्ठो यत्पृ॑थि॒व्यां यत्पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥११॥

भा०—(यत्) क्योंकि (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि ये दोनों (दिवि ष्ठः) सूर्य (यत् पृथिव्याम्) पृथिवी (पर्वतेषु) पर्वतों (औषधीषु) ओषधियों और (अप्सु) जलों में भी विद्यमान हैं, वे दोनों इसी कारण से सुखों के दाता होकर सर्वव्याप्त हैं। वे दोनों (सुतस्य सोमस्य पिबतम्) उत्पादित अन्नादि रस में भी रहते हैं। शेष पूर्ववत्।

यदि॑न्द्राग्नी॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दये॑थे।

अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२॥

भा०—(यत्) जिस कारण से (उद् इता) ऊपर की तरफ गये हुए (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि दोनों (सूर्यस्य) सूर्य (दिवः) और अन्तरिक्ष के बीच में (स्वधया) जल के साथ युक्त होकर स्वयं तृप्त होते और (मादयेथे) सब प्राणियों को सुखकारी होते हैं (अतः) इसी से वे दोनों (वृषणौ) जलों के वर्षणकारी होते हैं। ऐसे ही (सूर्यस्य दिवः मध्ये) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश देने वाले पुरुष के ज्ञान प्रकाश में रहकर उदय को प्राप्त होने वाले इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी पुरुष (स्वधया) अपने शरीर को धारण करने वाली आजीविका या अन्न से तृप्त हों। पुनः (सुतस्य सोमस्य०) प्राप्त वीर्य, ऐश्वर्य आदि गृहस्थोचित पदार्थों का भोग करें।

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः१३।२७

भा०—(एवा) इस प्रकार से (सुतस्य) ऐश्वर्य का भोग करते हुए (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त प्रकार के विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् स्त्री पुरुष (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (विश्वा धनानि) समस्त धनों को (सं जयतं) अच्छी प्रकार विजय करें। शेष पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[१०६] १-८ कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अख्यं मनसा वस्व इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे आचार्य, शिक्षक ! हे राजन्, विद्वन् ! (वस्वः इच्छन्) उत्तम से उत्तम ऐश्वर्यों को चाहता हुआ (ज्ञासः) ज्ञानवान् या ज्ञातिगण (वा) और (सजातान्) एक समाज और कुल में उत्पन्न हुए

लोगों को मैं (मनसा) अपने हृदय से (वि अख्यं) विविध उपदेश दूँ। (युवत्) आप दोनों से (अन्या) कोई और दूसरा पुरुष (मह्यं) मेरे लिये (प्रमतिः) और अधिक उत्तम ज्ञानवान् और बुद्धिमान् (न अस्ति) नहीं है। (सः) वह मैं (वां) आप दोनों की (वाजयन्तीम्) ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली (धियम्) बुद्धि और कर्म को (अतक्षम्) करूँ।

अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्॥२॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि के समान जीवनप्रद और ज्ञानप्रद पिता और आचार्य ! (विजामातुः) विपरीत गुणों वाला गुणहीन जमाई कन्या को प्राप्त करने के लिये अधिक धन व्यय करता है (उत वा) और (स्यालात्) अपना अति निकट सम्बन्धी अपनी स्त्री का भाई अर्थात् साला भी भगिनी के प्रेम से उत्तम जमाई को प्रसन्न रखने के लिये बहुत सा धन प्रदान करता है (घ) परन्तु उन दोनों से भी (भूरिदावत्तरा) कहीं बहुत अधिक ऐश्वर्यों के दाता (वां) आप दोनों को मैं (अश्रवं) सुनता हूँ। (अथ) मैं (सोमस्य) समस्त ऐश्वर्य के उत्तम दान प्राप्त करने के लिये (युवभ्याम्) आप दोनों के लिए (नव्यम्) नवीन, उत्तम (स्तोमम्) स्तुति (जनयामि) प्रकट करता हूँ।

मा छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे॥३॥

भा०—हम लोग (पितृणां) पालक माता पिता, गुरु, आचार्य तथा अन्य पालक जनों के (रश्मीन्) प्रजा तन्तुओं, शिष्यों, उनकी नियत की हुई मर्यादाओं तथा उनके प्रकाशित विज्ञान किरणों का (मा छेद्म) कभी विनाश न करें। (इति) इस बात की शुभ कामनाएं करते हुए और (पितृणां) पूर्वोक्त पालक गुरु जनों के (शक्तीः) नाना प्रकार के सामर्थ्यों

को (अनुयच्छमानाः) समस्त लोकों के प्रकृति अनुकूल उनको सुख पहुं-चाने के लिये व्यवस्थित करते हुए और अन्यों को देते हुए (वृषणः) वीर्यवान् पुरुष मेघों के समान दानशील होकर (इन्द्राग्निभ्याम्) पवन-विद्युत् से मेघों के समान ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी विद्वान् पुरुषों से युक्त होकर (धिषणायाः) बुद्धि और वाणी के (उपस्थे) समीप उसके आश्रय होकर (कम्) सुख का (मदन्ति) लाभ करते हैं, क्योंकि (ता) वे दोनों ही (अद्री) मेघों के समान उदार सुखों के वर्षक एवं (अद्री) पर्वत के समान दृढ़ स्वभाव के हैं।

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥४॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि के समान सर्वोपकारी जीवन और ज्ञान के दाता तेजस्वी गुरुजनो! (देवी) दिव्य गुणों से प्रकाशमान (धिषणा) बुद्धि ही (उशती) अभिलाषा युक्त प्रियतमा स्त्री के समान (युवाभ्याम्) आप दोनों के (मदाय) हर्ष के लिये (सोमम्) सब प्रकार के आनन्द रस तथा ऐश्वर्यों और योग्य विद्यार्थी को (सुनोति) उत्पन्न करती है। (ता) वे आप दोनों (अश्विना) सूर्य चन्द्र तथा स्त्री पुरुषों के समान मिलकर (भद्रहस्ता) सर्व दुःखकारी शत्रु और कष्टों के नाशक उपायों और (सुपाणी) उत्तम व्यवहारों से युक्त होकर (आधावतम्) प्राप्त होओ। (अप्सु) समस्त प्रजाओं में, जलों में जल के समान (मधुना) अपने मधुर स्वभाव तथा ज्ञान से (आ पृङ्क्तम्) खूब मिल जाओ। (देवी उशती) कामनायुक्त स्त्री, पिता और आचार्य के सुख और हर्ष के लिये ही पुत्र उत्पन्न करती है। वैसे ही (देवी धिषणा) उत्तम विद्या भी "सोम" अर्थात् शिष्य को उत्पन्न करती है।

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५॥२८॥

भा०—(इन्द्राग्नी) विद्युत् और आग दोनों को मैं (वसुनः विभागे) जल के फाड़ने के कार्यों में (तवस्तमा) बहुत अधिक बल वाला (शुश्रव) सुनता हूँ। उन दोनों के इस क्रियात्मक विज्ञान को मैं गुरुमुख से श्रवण करूँ। (तौ) वे दोनों (अस्मिन्) इस प्रत्यक्ष (बर्हिषि) बढ़ने योग्य (यज्ञे) शिल्पादि मन्त्रों और वैज्ञानिक कार्यों में (सुतस्य) बनाये गये पदार्थ रथ आदि में (आसद्य) बैठ कर (मादयेथां) अति हर्ष प्रदान करते हैं।

प्र चर्षणिभ्यः पृतना हवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या॥६॥

भा०—(इन्द्राग्नी) उक्त वायु और अग्नि दोनों के समान गुण वाले पूर्वोक्त जन (पृतना हवेषु) सैन्यों द्वारा किये जाने वाले युद्धों में (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (चर्षणिभ्यः) समस्त मनुष्यों से बढ़ जाते हैं। वे (पृथिव्याः प्र) अपने पराक्रम और सामर्थ्य से पृथिवी से भी बढ़ जाते हैं। (दिवः च प्र) वे दोनों अपने पराक्रम से सूर्य से भी अधिक हों। वेग में वे दोनों (सिन्धुभ्यः प्र) नदी प्रवाहों से भी अधिक हों। गम्भीरता और गुरुता में (गिरिभ्यः प्र) पर्वतों से भी अधिक बड़े हों। (विश्वा अन्या भुवना अति) वे समस्त भुवनों और उत्पन्न होने वाले पदार्थों से गुणों में अधिक हों।

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन्॥७॥

भा०—ये (सूर्यस्य रश्मयः) सूर्य की रश्मियां ही हैं (येभिः) जिनसे (पितरः सपित्वं आसन्) समस्त जीवों के पालक ओषधिगण, तथा कृषक गण समान रूप से अन्नादि खाद्य फल उत्पन्न करते हैं वैसे ही (ते) वे ही (इमे नु) ये (सूर्यस्य रश्मयः) सूर्य की रश्मियों के समान ज्ञान के प्रकाश हैं (येभिः) जिनके साथ मिलकर (नः) हमारे (पितरः) गुरुजन

(सपित्वम् आसन्) समान आदर प्राप्त करते हैं। (तेभिः) उनके आश्रय पर ही रहे। हे (इन्द्राग्नी) सूर्य समान तेजस्विन् अग्नि समान प्रकाशक आप दोनों भद्र पुरुषो! (वज्रबाहू) बल तथा शस्त्र शक्ति को वश में रखते हुए (अस्मान् आ भरतम्) हमें खूब समृद्ध करो। (नः शिक्षतम्) हमें शिक्षा दो और (शचीभिः) उत्तम कर्मों और ज्ञानों से (अवतम्) रक्षा करो।

पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८ २९

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! आप दोनों (पुरंदरा) शत्रु गढ़ों को तोड़ने हारे, (वज्रहस्ता) शत्रु के निवारक शस्त्रास्त्र बल तथा विज्ञान को अपने में धारण करने वाले होकर (अस्मान्) हमारे (भरेषु) यज्ञों और संग्रामों में (अवतम्) रक्षा करो। शेष पूर्ववत्। एकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

[११०] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ३, ७, विराट् जगती। ६, ८ निचृज्जगती। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। नवर्चं सूक्तम् ॥

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१॥

भा०—(मे) मेरा (अपः) उत्तम ज्ञान और कर्म (ततम्) विस्तृत होकर (पुनः) फिर (तत् उ) पूर्ववत् (तायते) अधीन द्रव्यों और शिष्यों की रक्षा करता है, (स्वादिष्ठा) अति स्वादयुक्त (धीतिः) रसधारा के समान ज्ञानधारा (उचथाय) प्रवचन अर्थात् उपदेश के लिये अथवा शिष्य के हितार्थं (शस्यते) उपदेश की जाती है (अयं) यह आश्चर्यकारी विद्वान् (विश्वदेव्यः) समस्त रत्नों से भरे (समुद्रः) समुद्र के समान (विश्वदेव्यः)

गुणों और विद्या प्रकाशों से पूर्ण है। हे (ऋभवः) वेद से सुशोभित होने वाले विद्वान् पुरुषो! आप लोग (स्वाहा कृतस्य) उत्तम उपदेश-प्रद वाणी द्वारा उपदेश किये गये ज्ञान रस से (सम् तृप्णुत उ) अच्छी प्रकार तृप्त होओ और अन्यों को भी तृप्त करो।

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अपाकाः) पाक यज्ञों के न करने हारे विद्वान् पुरुषो! (प्राञ्चः) कम उमर के लोगों की अपेक्षा अधिक प्राचीन, वृद्ध तथा (प्राञ्चः) आगे, ऊंचे मान योग्य पदों पर जाने वाले (केचित्) कुछ एक (मम आपयः) मेरे प्रिय आप्त बन्धु होकर आप लोग (आभोगयं) समस्त जीवों की रक्षा करने में सर्वश्रेष्ठ बल और ज्ञान की इच्छा करते हो तो (ऐतन) आओ, आगे बढ़ो। (चरितस्य भूमना सौधन्वनासः यथा सवितुः गृहम् गच्छन्ति) जैसे अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले वायु के महान् बल से प्रेरित होकर सूर्य के अधीन रहते हैं और (सौधन्वनासः चरितस्य भूमना दाशुषः सवितुः गृहम्) जैसे उत्तम धनुर्धारी पुरुष अपने पराक्रम की अधिकता से सूर्य के समान तेजस्वी दानशील राजा, अमात्य या सेनापति के स्थान को प्राप्त होते हैं (सौधन्वनासः) उत्तम ज्ञान करने योग्य विज्ञान से युक्त होकर ब्रह्मचारीगण जैसे समावर्त्तन के बाद (सवितुः गृहम्) अपने पिता के घर में आ जाते हैं वैसे ही आप ज्ञानवान् पुरुष भी (दाशुषः) ज्ञानैश्वर्यों, के देने वाले आचार्य के समान ज्ञान के सूर्य (सवितुः) जगत् के उत्पादक परमेश्वर के (गृहम्) शरण को (आगच्छत) प्राप्त हो।

सौधन्वनासः—सु-धन्वन्। रिविधायि गत्यर्थः (भ्वादिः) अतः कनिन्। धन्वेति अन्तरिक्षनामसु पदनामसु च पठ्यते।

तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन।

त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (सविता) सूर्य जैसे (अमृतत्वम्) अन्न और प्राण को (आसुवत्) देता है (श्रवयन्तः) अन्न कामना करते हुए कृषक खेत जाते हैं और (असुरस्य) प्राणों के पोषण में रत प्राणी के (भक्षणं चमसम्) खाने योग्य अन्न को खेत में बो बोकर (एकं सन्तं चतुर्वयम् अकृण्वत) एक गुना अनाज को चौगुना कर लेते हैं वैसे ही (सविता) आचार्य, ज्ञानों का उत्पादक, विद्वान् और परमेश्वर (वः) आप लोगों को (तत्) वह (अगोह्य) कभी न छिपने योग्य सूर्य के प्रकाश के समान उज्ज्वल (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप, आत्म तत्व और ज्ञान (आसुवत्) प्रदान करे (यत्) जिससे (श्रवयन्तः) गुरुमुखों द्वारा श्रवण करने और अन्यों को श्रवण कराने की इच्छा करते हुए (आ ऐतन) आगे बढो और हम जिज्ञासु गृहस्थों के पास आओ। (चमसं चित्) अन्न के समान ग्रहण करने योग्य, पवित्र (त्यं) इस (असुरस्य) प्राणों में रमण करने वाले प्राणायाम के अभ्यासी पुरुष के (भक्षणम्) प्राप्त करने योग्य जीवनसुख या ज्ञान को (एकं सन्तं) एक से (चतुर्वयम्) चौगुना (आकृणुत) करो। (१) अपने बल को बढ़ाओ और जीवन की १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्ष तक की करने का यत्न करो। (२) (एकं सन्तं) एक ही ज्ञान को (चतुर्वयम् = चतुर्धा व्याप्तम्) चार प्रकार से करके अध्ययन करो, एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋग्, यजु, साम, अथर्व रूप से अध्ययन करो। (३) (एकं सन्तं चतुर्वयम्) एक ही जीवन रूप यज्ञ को चार आश्रम भेद से ४ भागों में बांट दो। (४) (एकं सन्तं) एक ही जीवन को धर्मार्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों से युक्त करो।

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः॥४॥

भा०—(वाघतः) ज्ञान विज्ञानों से युक्त वाणी के धारक (मर्तासः)

मरणशील (सन्तः) होकर भी (ऋभवः) ज्ञान से प्रकाशित (सौधन्वनाः) उत्तम कोटि के ब्रह्मज्ञानी पुरुष (शमी विष्ट्वी) शान्तिदायक कर्मों का आचरण करके (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप मोक्ष को (आनशुः) प्राप्त करते हैं और वे (सूरचक्षसः) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (संवत्सरे) वर्ष में सूर्य के समान ही (धीतिभिः) ज्ञानों और नाना कार्यों से नाना सुखों को (सम् अपृच्यन्त) प्राप्त करते हैं।

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम्।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥३०॥

भा०—जैसे (श्रवः इच्छमानाः) अन्न के इच्छुक किसान (तेजनेन क्षेत्रम् इव) तीखी फाली से खेत बनाते हैं और (ऋभवः) शिल्पी लोग (उपमं नाधमानाः) नमूने के समान दूसरा पात्र बनाने की इच्छा करते हुए (एकं पात्रम्) एक बर्त्तन को (तेजनेन विममुः) सींक के बने पैमाने से माप लेते या (तेजनेन) तीक्ष्ण छेनी आदि से गढ़ कर बना लेते हैं वैसे ही (अमर्त्येषु) नित्य पदार्थों में (श्रव इच्छमानाः) श्रवण, गुरूपदेश अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए (उपस्तुताः) उसके समीप पहुँच कर उसका साक्षात् कर वर्णन करने वाले (ऋभवः) विद्वान् पुरुष (उपमं) उन अविनाशी पदार्थों के सदृश उपमान को (नाधमानाः) दृष्टान्त के रूप में चाहते हुए (तेजनेन) तीक्ष्ण ज्ञान से उसका (विममुः) विशिष्ट ज्ञान करते हैं और पूर्वोक्त पात्र के समान ही (उपमं नाधमानाः) सदृश धर्मों वाले दृष्टान्त को चाहते हुए (जेहमानम्) प्रयत्नशील (एकं) एक अद्वितीय देह में चक्षु आदि प्राणों से भिन्न (पात्रं) पालक आत्मा को और ब्रह्माण्ड में (जेहमानं) सब के सञ्चालक (एकं पात्रं) जगत् के पालक अद्वितीय परमेश्वर को (विममुः) विविध प्रकारों से ज्ञान करते हैं।

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥६॥

भा०—(ऋभवः) प्रकाशमान् किरणें जैसे (वाजम्) पृथिवी आदि लोकों पर (अरुहन्) अन्नों को उत्पन्न करती हैं, वे (दिवः रजः) आकाशस्थ लोकों तक भी प्राप्त होती हैं और (ये) जो (तरणित्वा) शीघ्र ही, (अस्य) इस जगत् को (पितुः) जीवनप्रद पदार्थ प्राप्त कराते हैं और जो (अन्तरिक्षस्य) अन्तरिक्ष में स्थित रहकर (नृभ्यः) मनुष्यों के हित (स्रुचा इव) स्रुच् से जैसे घृत अग्नि पर दिया जाता है वैसे ही (घृतं सश्चिरे) जल की वर्षा करते हैं, हम उन किरणों के ज्ञान के लिये (विद्मना) ज्ञानपूर्वक (मनीषाम्) अपनी बुद्धि को (आ जुहवाम) लगावें ।

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७॥

भा०—(नः) हमारा (इन्द्रः) राजा और सेनापति एवं आचार्य (ऋभुः) तेज से सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले और सत्य से प्रकाशित होकर (नवीयान्) सदा नये से नये उत्तम विचारों वाला हो। वह (ऋभुः) विद्वान् ही (वाजेभिः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों, संग्रामों और (वसुभिः) चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं (वसुः) सबको बसाने वाला, उनमें तेजस्वी होकर बसने वाला और (ददिः) सुखों का दाता हो। हे (देवाः) विद्वान् और विजयेच्छु पुरुषो ! (युष्माकं अवसा) आप लोगों के ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से (प्रिये अहनि) आप लोगों के प्रिय दिवस में हम लोग (असुन्वताम्) ऐश्वर्य और अभिषेकादि के विरोधी शत्रुओं की (पृत्सुतीः) सेनाओं के (अभितिष्ठेम) मुकाबले पर डटें । उनको जीतें।

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितरा कृणोतन ॥८॥

भा०—हे (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो ! जैसे शिल्पी लोग (चर्मणः गाम् निर्अपिंशत) चाम की गाय को भी अपने उत्तम क्रिया कौशल से वास्तविक गाय के समान रूपवान्

बना देते हैं वैसे ही आप भी (चर्मणः) उत्तम आचरण द्वारा (गाम्) वेद वाणी को (निर् अपिंशत) सब प्रकार से अङ्ग २ से क्रियासमृद्ध करो। (वत्सेन मातरम्) गोपाल जैसे बछड़े से उसकी माता को या लोग बच्चे से उसकी माता को मिला देते हैं वैसे ही आप लोग भी (वत्सेन) विद्याओं का उपदेश करने हारे विद्वान् से (स्वपस्यया) उत्तम ज्ञान, वेदारम्भ आदि संस्कार द्वारा (मातरम्) ज्ञानकुशल विद्यार्थी को (पुनः सम् असृजत) बार २ संयुक्त करो। (वत्सेन) मन से (मातरं पुनः असृजत) परमात्मा को संयुक्त करो; (वत्सेन मातरं पुनः सम् असृजत) अन्तेवासी शिष्य से उपदेशकारी आचार्य को युक्त करो; (वत्सेन मातरं) बसने वाले जीव से सब जगत् के मापक, निर्माता परमेश्वर को (स्वपस्यया) उत्तम योग क्रिया द्वारा युक्त करो। हे (सौधन्वनासः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (स्वपस्यया) ऊत्तम कर्माचरण से ही (जिव्री) दीर्घजीवन से युक्त या जराजीर्ण (पितरौ) माता पिता दोनों को (युवानौ) युवा (अकृणोतन) करो।

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ९।३१

भा०—हे (इन्द्रः) आचार्य ! तू (ऋभुमान्) विद्यावान् सत्यज्ञान से प्रकाशित विद्वानों का स्वामी होकर (वाजसातौ) ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त (नः) हमें (वाजेभिः) अपने ज्ञानों सहित (आविड्ढि) प्राप्त हो और (चित्रम् राधः) संग्रह करने योग्य ज्ञान को (आ दर्षि) प्रदान कर। (२) उसी प्रकार (ऋभुमान्) तेजस्वी पुरुषों से युक्त राजा सूर्य के समान होकर संग्राम के कार्य में (वाजेभिः) वीर्यवान् पुरुषो, वेगवान् अश्वों से हमें प्राप्त हो और हमें अद्भुत संग्रह योग्य ऐश्वर्य प्रदान करे। शेष पूर्ववत् इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[१११] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१–४ जगती। ५ त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तक्षुन्रथं सुवृतं विद्मनापसुस्तक्षुन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयुस्तक्षन्वुत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥

भा०—(विद्मनापसः) विज्ञान सहित क्रिया उत्पन्न करने में कुशल पुरुष (सुवृतं रथं) सुख से जाने वाले रथ को (तक्षन्) बनावें । वे ही (वृषण्वसू) उत्तम प्रबन्ध से युक्त अन्य कल पुर्जों के धारक, (इन्द्रवाहा) बिजली के धारक (हरी) रथ को वेग से दूर ले जाने में समर्थ दो यन्त्रों को भी (तक्षन्) बनावें । (ऋभवः) ज्ञानवान् पुरुष (पितृभ्याम्) पालक माता पिताओं के सुख के लिये (युवद् वयः तक्षन्) अपनी जवानी की उमर को उनकी सेवा योग्य बनावें और (ऋभवः) ज्ञानवान् पुरुष (वत्साय) बच्चों को पालने के लिये (मातरं) माता को (सचाभुवम्) सदा साथ रहने में समर्थ और शक्ति से युक्त बनावें ।

आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (वयः) जीवन को (यज्ञाय) वैदिक यज्ञ या पूर्णायु रूप यज्ञ प्राप्त करने के लिये (ऋभुमत्) सत्य ज्ञान के प्रकाश से युक्त (आतक्षत) करो और (क्रत्वे) उत्तम ज्ञान और (दक्षाय) बल की प्राप्ति के लिये (सुप्रजावतीम्) उत्तम सुखजनक प्रिय सन्तानों से युक्त (इषम्) अन्नादि समृद्धि को (आतक्षत) सब प्रकार से तैयार करो (यथा) जिससे हम (सर्ववीरया विशा) सब प्रकार के शत्रुओं को कंपा देने वाले वीरों से युक्त प्रजा से संयुक्त होकर (सुक्षयाम) सुख से रहें और (नः) हमारा (तत् इन्द्रियम्) वह बल और ऐश्वर्य (शर्धाय) शत्रुनाशक बल की वृद्धि के लिये (सुधासथ) अच्छी प्रकार सुख से धारण करो ।

आ तक्षत सातिमुस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥३॥

भा०—हे (ऋभवः) विद्वान् और धनाढ्य पुरुषो ! आप लोग (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सातिम्) उत्तम भोग योग्य पदार्थ (आतक्षत) बनाओ। हे (नरः) नायक पुरुषो आप (रथाय) रथ और (अर्वते) अश्व प्राप्त करने के लिये (सातिं आतक्षत) भोग योग्य धन पैदा करो। (जामिम्) बन्धु और (अजामिम्) उससे भिन्न शत्रु को भी (पृतनासु) संग्रामों में (सक्षणिम्) जीत लेने वाले ((जैत्रीं) विजय दाता (नः सातिं) हमारे धन सामग्री का (विश्वहा) सब दिन सब कोई (सं महेत) आदर करे।

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतयं ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४॥

भा०—(ऊतये) ज्ञान और रक्षा के लिये मैं (ऋभुक्षणम्) सत्य से प्रकाशमान विद्वान् पुरुषों के बसाने वाले, तेजस्वी पद पर विराजमान आचार्य और राजा को (इन्द्रम्) 'इन्द्र' (आहुवे) स्वीकार करता और कहता हूँ। (सोमपीतये) ऐश्वर्य के लिये (ऋभून्) अति बल से और सत्य से प्रकाशित शक्तिशाली और विद्वान् पुरुषों को (वाजान्) बलवान् ऐश्वर्यवान् और (मरुतः) वायु के समान बलवान् विद्वान् रूप से (आहुवे) प्राप्त करूं। (उभा) दोनों (मित्रा वरुणा) स्नेही मित्र और सर्व श्रेष्ठ (अश्विना) अश्वारोही राजा और सेनापति, देह में प्राण और अपान और गृह में दोनों स्त्री पुरुष (ते) वे सब (नः) हम लोगों को (सातये) सुखों को प्राप्त करने (धिये) ज्ञान और कर्मों के सम्पादन करने और (जिषे) शत्रुओं का विजय करने के लिये (हिन्वन्तु) प्रेरित करें।

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥३२॥

भा०—(ऋभुः) सत्य से प्रकाशित होने वाला तेजस्वी पुरुष

(भराय) यज्ञ और संग्राम करने के लिये (सं शिशातु) शत्रुओं का नाश करे और (अस्मान् संशिशातु) हमें खूब तीक्ष्ण करे । (समर्यजित्) संग्रामों का विजय करने हारा पुरुष (वाजः) बलवान् होकर (अस्मान्) हमारी (अविष्टु) रक्षा करे । शेष पूर्ववत् । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[११२] कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ द्वितीयस्य अग्निः शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, १३, १५, १७, १८, २०, २१, २२ निचृज्जगती । ४, ८, ९, ११, १२, १४, १६, २३ जगती । १९ विराड् जगती । ३, ५, २४, विराट् त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । २५ त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं धर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥

भा०— मैं (द्यावापृथिवी) भूमि, सूर्य के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों का (ईळे) वर्णन करता हूँ । (पूर्वचित्तये इष्टये धर्मं सुरुचं अग्निम्) प्रथम चयन की हुई इष्टि अर्थात् योग साधन के लिये जैसे प्रदीप्त अग्नि को यजमान और उसकी पत्नी दोनों प्राप्त करते हैं वैसे ही (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजावर्ग दोनों (पूर्वचित्तये) पूर्व के विद्वानों और विजयशील राजाओं द्वारा सञ्चित ज्ञान और ऐश्वर्य को (इष्टये) प्राप्त करने के लिये (यामन्) शत्रु पर प्रयाण करने के कार्य में (यामन् अग्निम्) अन्धकार में दीपक के समान (पूर्वचित्तये) पहले ही से समस्त बातों के जान लेने के लिये (धर्मम्) तेजस्वी (सुरुचं) प्रजा के अच्छा लगने वाले कान्तिमान्, (अग्निम्) नायक पुरुष को प्राप्त करते हैं। (अश्विना) हे राजा प्रजावर्गो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (याभिः ऊतिभिः) जिन रक्षाओं के निमित्त या जिन रक्षा साधनों से युक्त होकर (भरे) संग्राम में (अंशाय) अपने भाग को प्राप्त करने के लिये (कारम्) कार्यकुशल पुरुष को (जिन्वथः) सुप्रसन्न करते और उसकी

शरण जाते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षा साधनों से आप दोनों (सु आगतम्) अच्छी प्रकार आओ ।

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२॥

भा०—(सुभराः) उत्तम रीति से ज्ञान के धारक (असश्चत) विषय भोगादि में आसक्त न होने वाले त्यागी पुरुष (मन्तवे) ज्ञान प्राप्त करने के लिये (वचसं न) जैसे ज्ञान के उत्तम प्रवक्ता के पास (आतस्थुः) उपस्थित होते हैं वैसे ही (सुभराः) उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाले (असश्चतः) कहीं भी आश्रय न पाते हुए प्रजाजन (दानाय) शत्रुओं के नाश करने और ऐश्वर्य के दान लेने के लिये (युवोः) तुम दोनों के (रथम्) विजयशील रथ-बल पर (आतस्थुः) आश्रय प्राप्त करते हैं । उस समय हे (अश्विना) राष्ट्र के भोक्ता दो मुख्य अधिकारियो, राजा अमात्य, राजा सेनापति आप दोनों (याभिः) जिन रक्षा आदि उपायों से (इष्टये कर्मन्) परस्पर की संगति के कार्य में (धियः अवथः) धारण करने योग्य प्रजाओं की रक्षा करते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं उपायों से (सु आ गतम् ऊ) हमें प्रसन्नता से प्राप्त होवो ।

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३॥

भा०—(दिव्यस्य अमृतस्य प्रशासने मज्मना विशां क्षयथः) उस तेजस्वी, आत्मा के उत्तम शासन में जैसे प्रजाओं-देहों में प्राण और अपान दोनों रहते हैं (अस्वं धेनुं पिन्वथः) और अन्यों से न प्रेरित होने वाली वाणी को बलवान् बनाते हैं वैसे ही हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों भी (दिव्यस्य) ज्ञानप्रकाश में कुशल (अमृतस्य) अमर अविनाशी परमेश्वर के (प्रशासने) उत्तम शासन में (मज्मना) बलपूर्वक (विशां क्षयथः) प्रजाओं के बीच निवास करो । ऐसे ही हे राजा रानी, राजा

सेनापति आदि युगलो ! आप दोनों भी (दिव्यस्य) राजसभा में कुशल (अमृतस्य) दीर्घजीवी, अमर सबके उत्तम शासन या आदेश के भीतर (तासां विशां) उन प्रजाओं के हित के लिये (क्षयथः) उनमें निवास करो। आप दोनों (अस्वं) अयोग्य पुरुषों से शासन न होने योग्य अन्नादि रत्नों को दान करने वाली भूमि का (याभिः पिन्वथः) नाना ऐश्वर्यों से सेचन करते हो, उसको पुष्ट करते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षादि उपायों से आप (आसुतम्) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥४॥

भा०—(परिज्मा) जैसे सर्वत्र सब पदार्थों को उथल पुथल करने में समर्थ वायु (तनयस्य) अपने से उत्पन्न अग्नि के (मज्मना) बल से (द्विमाता) पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाला और (तूर्षु) वेगवान् पदार्थों में (तरणिः) सबसे अधिक शीघ्रगामी (विभूषति) होकर रहता है, वैसे ही (परिज्मा) सब तरफ आक्रमण करने हारा पुरुष अपने (तनयस्य) राज्य-प्रसारक सैन्य के (मज्मना) बल से (द्विमाता) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों पर शासनकारी या (द्विमाता) माता पिता दोनों का आदर करने वाला और (तूर्षु) हिंसाकारी शत्रुओं पर (तरणिः) वेग से आक्रमण करने वाला तेजस्वी होकर (याभिः) जिन नाना रक्षादि व्यवहारों से (विभूषति) विशेष शोभा को धारण करता है और (याभिः) जिन उत्तम उपायों से (त्रिमन्तुः सन्) कर्म, उपासना और विज्ञान इन तीनों की विद्या अर्थात् त्रैविद्या, वेदों को जानने वाला अथवा अरि, मित्र और उदासीन तीनों को वश करने वाला (विचक्षणः) कुशल, विद्वान् (अभवत्) होता है (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं उपायों सहित हे (अश्विनौ) अश्विगणो हमारे समीप (आगतम्) आओ।

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे। याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥५॥

भा०—हे (अश्विना) आचार्य और शिक्षक पुरुषो ! माता, पिता और योग्य स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (याभिः ऊतिभिः) जिन रक्षा उपायों और ज्ञान-वाणियों से (रेभम्) स्तुतिशील, (निवृतम्) सब प्रकार से अपनाये हुए, विनीत, (सितम्) शुद्धाचारी, (वन्दनम्) अभिवादनशील पुत्र और शिष्य को (स्वः दृशे) परमेश्वर या परम सुख का दर्शन करने के लिये (उत् ऐरयतम्) उत्तम पद की ओर प्रेरणा करते हैं और (याभिः) जिन ज्ञान, रक्षा आदि उपायों से (सिषासन्तं कण्वं) ज्ञानवान् और ऐश्वर्य के इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष को (प्र आवतम्) और आगे बढ़ाते हो, (ताभिः ऊतिभिः सु आगतम्) उन उपायों से हमें भी प्राप्त होवो । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

याभि॒रन्त॑कं॒ जस॑मान॒मार॑णे भु॒ज्युं याभि॑रव्य॒थिभि॑र्जिजि॒न्वथुः॑ ।
याभिः॑ क॒र्कन्धुं॑ व॒य्यं॑ च॒ जिन्व॑थ॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ६

भा०—(आरणे) आमने सामने शत्रु सेना के आ जाने पर होने वाले युद्ध में (जसमानं) शत्रु पर आघात करने वाले (अन्तकम्) प्रजा के दुःखों और शत्रुओं का अन्त कर देने वाले पुरुष को (याभिः) जिन उपायों से और (भुज्युम्) प्रजा के पालक, ऐश्वर्य के भोक्ता सम्पन्न पुरुष को (याभिः अव्यथिभिः) जिन पीड़ा से बचाने वाले उपायों से (जिजिन्वथुः) प्रसन्न, सन्तुष्ट करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (कर्कन्धुम्) शिल्पियों को भृति आदि द्वारा बांधने वाले, बड़े एंजिनियर और (वय्यं च) वस्त्रादि बनाने वालों को (जिन्वथः) सन्तुष्ट करते हो (ताभिः ऊतिभिः अश्विना आगतम्) हे राजप्रजावर्गो ! आप दोनों उन उपायों से परस्पर उपकारक होवो ।

याभिः॑ शु॒चन्तिं॑ ध॒न॒सां सु॑षं॒सदं॑ त॒प्तं घ॒र्मम॑ो॒म्याव॑न्त॒मत्र॑ये ।
याभिः॒ पृश्नि॑गुं पुरु॒कुत्स॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ७

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! राजा और विद्वान् जनो ! (याभिः)

जिन उपायों से (शुचन्तिम्) प्रजाजनों के हृदयों को और नगरों के निवास भूमि को पवित्र करने और प्रकाश से जगमगा देने वाले जनों को (धनसां) ऐश्वर्यों के दाता (सुसंसदम्) उत्तम सभा के अध्यक्ष को, (तप्तं) सन्तप्त पुरुष को और (घर्मम्) तेजस्वी पुरुष को (अत्रये) राष्ट्र में बसने वाले जन के हित के लिये (अवतम्) सब प्रकार से सुरक्षित करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (पृश्निगुम्) नाना प्रकार की गौओं के पालक या अन्तरिक्ष में जाने वाले वैमानिक वर्ग और (पुरुकुत्सम्) नाना शस्त्रास्त्रों के स्वामी, शस्त्रागार के रक्षक वर्गों की (आ अवतम्) रक्षा करते हो (ताभिः आगनम्) उन सब उपायों सहित तुम दोनों हमें प्राप्त होवो।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८

भा०—(याभिः) जिन रक्षा आदि उपायों से (शचीभिः) शक्तिशाली सेना और उत्तम कर्मों से हे (वृषणा) समस्त सुखों के वर्षक सभा-सेनाध्यक्षो! आप दोनों (परावृजम्) धर्ममार्ग से पराङ्मुख (अन्धम्) चक्षुहीन, अज्ञानी पुरुष को (चक्षसे) सम्यग् दर्शन के योग्य (प्र कृथः) अच्छी प्रकार बना देते हो और (याभिः) जिन (शचीभिः) उत्तम कर्मों से (श्रोणं) पंगु, लंगड़े को (एतवे) चलने में (प्र कृथः) समर्थ कर देते हो और जिन शक्तियों से आप दोनों (ग्रसिताम्) ठगों की शिकार बनी (वर्त्तिकाम्) बटेरी के समान अति दीन प्रजा को छुड़ाते हो (ताभिः) उन २ उपायों से युक्त आप दोनों (आ गतम्) हमें भी प्राप्त होइये।

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ९

भा०—(याभिः) जिन विज्ञान आदि उपायों व प्रयोगों से (मधुमन्तम्) अन्न और जल से बने (सिन्धुम्) गतिशील प्राण का (असश्चतं)

ज्ञान करते हो और अन्यों को उसका अनुभव कराते हो आप दोनों (अजरौ) स्वयं जीर्ण न होकर प्राण अपान रूप से (याभिः) जिन उपायों से (वसिष्ठं) सब प्राणों में मुख्य रूप से बसने वाले आत्मा को (अजिन्वतम्) बल देते हो और (याभिः) जिन उपायों से आप दोनों (कुत्सं) बलशाली (श्रुतं अर्यम्) शास्त्रों के सुनने वाले, विद्वान् वेदोपदेश के स्वामी (नर्यं) सब लोगों के हितकारी पुरुष के समान (कुत्सं) वाणी और (श्रुतर्यं) श्रोत्र के स्वामी और (नर्यं) शरीर के नायक आत्मा की (आ अवतं) रक्षा करते हो (ताभिः) उन उपायों से (अश्विना) हे प्राण और अपान हमारे पास (सु आगतम्) आओ, हमें ज्ञान प्राप्त कराओ ।

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १०।३४

भा०—हे (अश्विना) शिल्पी जनो ! (याभिः) जिस विज्ञान से (धनसाम्) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली (अथर्व्यम्) अमर (विश्पलाम्) प्रजा पालक को अपने ऊपर प्रभु स्वीकार करने वाली, विशाल सेना या सेनापति को (सहस्रमीढ़े) सहस्रों सुखों और ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले (आजौ) संग्राम में (अजिन्वतम्) तृप्त करते हो और (याभिः) जिन उपायों और क्रियाओं सहित (वशम्) राष्ट्र पर वश करने वाले (अश्व्यं) अश्व सेनाओं के स्वामी (प्रेणिम्) सेनापति को (आ अवतम्) प्राप्त होते हो (ताभिः) उन सहित ही हमें भी प्राप्त होवो । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ११

भा०—हे (सुदानू) उत्तम दाता विद्वान् शिल्पियो ! (याभिः) जिन उपायों व साधनों से (औशिजाय) विद्वान् पुरुष की सन्तानों, (वणिजे) वैश्य प्रजावर्ग और (दीर्घ श्रवसे) दीर्घ काल तक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाले धनादि के स्वामी के हित के लिये (कोशः)

मेघ समान राजा और विद्वान् गुरु का धन और ज्ञान का आश्रय कोश (मधु) मधुर जल के समान ज्ञान और सुख का (क्षरति) वर्षण करता है और (याभिः) जिन साधनों सहित आप दोनों (कक्षीवन्तं स्तोतारं) सहायकों से युक्त विद्वान् पुरुष को प्राप्त हैं उनके सहित हमें भी प्राप्त होइये ।

याभी रसां क्षोदसोद्गः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १२

भा०—(याभिः) जिन (ऊतिभिः) विज्ञान युक्त साधनों से (रसाम्) पृथ्वी तथा नदी को (उद्गः क्षोदसा) जल के प्रवाह से (पिपिन्वथुः) आप दोनों पूर्ण कर देते हो और (याभिः) जिन विज्ञान साधनों से (अनश्वम्) बिना घोड़े के (रथम्) रथ को (जिषे) विजय करने के लिये (आ अवतम्) यन्त्रादि साधनों से अच्छी प्रकार चला देते हो (त्रिशोकः) तीनों भुवनों में तेजस्वी, गुण, कर्म, स्वभाव तीनों में उज्ज्वल पुरुष अथवा अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों तेजों को जानने हारे वैज्ञानिक (याभिः) जिन उपायों से (उस्रियाः) ऊपर जाने वाली जलधाराओं, किरणों और विद्युत की धाराओं को (उद् आजतम्) उठाने में समर्थ होते हैं (ताभिः नः सुआगतम्) उन साधनों सहित हमें प्राप्त होवो ।

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१३॥

भा०—(याभिः) जिन उपायों से (मंधातारम्) ज्ञान के धारक (सूर्यम्) सूर्य समान तेजस्वी पुरुष को (परियाथः) प्राप्त होते हो या जिन उपायों से (मंधातारम् = इमंधातारम्) इस समस्त विश्व के धारक (सूर्यम्) सूर्य का और जिन उपायों से (क्षैत्रपत्येषु) खेतों, जीवों के उत्पादक स्थावर जंगम की उत्पादक भूमियों का ज्ञान करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (भरद्-वाजम्) अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम

तीनों को प्राप्त होने वाले कृषिज्ञ, वणिक् और योद्धा पुरुष को (आ अवतम्) प्राप्त होते हो (ताभिः०) उन साधनों से आप दोनों मुख्य और गौण शिल्पी आदि विद्वान् हमें भली प्रकार प्राप्त हों।

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शंबरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१४

भा०—(याभिः ऊतिभिः) जिन रक्षा साधनों से आप दोनों (शम्ब-रहत्ये) मेघ को आघात कर छिन्न भिन्न कर देने वाले सूर्य और वायु के समान (शम्बर-हत्ये) प्रजा की सुख शान्ति के नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के कार्य में (महाम्) बड़े भारी (अतिथिग्वम्) अतिथि जनों के आश्रय और उनके प्रेम और सत्कार से प्राप्त होने वाले (कशोजुवं) उनको अर्घपाद्य आदि जलों द्वारा तृप्त करने वाले और प्रजा को भी कूप आदि द्वारा मेघों के समान तृप्त करने वाले, (दिवोदासं) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश के दाता और धारक पुरुष को (आ अवतम्) प्राप्त होते हो। (पूर्भिद्ये) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने आदि कार्य में (याभिः) जिन साधनों से (त्रसद्-दस्युम्) दुष्टों के हराने वाले वीर पुरुषों को (आ अवतम्) प्राप्त होते हो (ताभिः) इन साधनों से हमें भी प्राप्त होवो।

याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १५।३५

भा०—(याभिः ऊतिभिः) जिन रक्षा साधनों से (वम्रं) वैद्यजन वमन करने वाले और (विपिपानं) विविध ओषधादि रसों के पालक पुरुष की रक्षा करते हैं वैसे ही (उपस्तुतम्) उत्तम गुणों से युक्त प्रशंसित (वम्रं विपिमानं) वमन अर्थात् प्राप्त ज्ञान को अन्यों के प्रति उपदेश करने वाले गुरु और ज्ञान-रस का पान करने वाले शिष्य की रक्षा करते हो और (याभिः) जिन साधनों से (कलिं) ज्ञानवान् (वित्तजानिम्) नव-वधू को प्राप्त करने वाले पुरुष को (वित्तजानिम्) धन को अपनी

स्त्री के समान पालने वाले धनाढ्य पुरुष की रक्षा करते हो (उत) और (याभिः) जिन उपायों से (व्यश्वम्) अश्व के मर जाने पर केवल रथ वाले, असहाय (व्यश्वम्) विविध अश्वों के स्वामी और (पृथिम्) विस्तृत राष्ट्र के स्वामी की (दुव्यस्यथः) परिचर्या करते हो, (ताभिः०) उन साधनों से हमें भी प्राप्त होवो । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

याभि॒र्नरा श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभि॑: पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथु॑: ।
याभि॒: शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥१६॥

भा०—(याभिः) जिन रक्षा के उपायों सहित (नरा) हे नायक पुरुषो ! आप दोनों (शयवे) सुख से सोते हुए प्रजाजन और (शयवे) सबको सुख से शयन कराने वाले राजवर्ग को (अत्रये) त्रिविध दुखों से रहित और इस राष्ट्र में शासक रूप से विद्यमान (मनवे) मननशील पुरुष और राजा को (गातुम्) जाने के मार्ग, विज्ञान, भूमि आदि (ईषथुः) प्राप्त कराते हो । (याभिः) जिन उपायों से (शारीः) बाणों की पंक्तियों और शत्रुहन्ता सेनाओं को (स्यूमरश्मये) किरणों से ओत प्रोत और प्रजाओं के शासन मर्यादाओं को बांधने वाले शासक पुरुष की रक्षा और राष्ट्र हित के लिये (आ अवतम्) शत्रुओं की तरफ चलाते हो, उन साधनों से हमें भी प्राप्त होवो ।

याभि॒: पठ॑र्वा॒ जठ॑रस्य म॒ज्मना॒ग्निर्नादी॑देच्चि॒त इ॒द्धो अज्म॒न्ना ।
याभि॒: शर्या॑त॒मव॑थो महाध॒ने ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥१७॥

भा०—(याभिः) जिन रक्षा के उपायों से (जठरस्य) भुक्त पदार्थों को भीतर धारण करने वाले पेट की (अग्निः) सब कुछ पचा लेने वाली आग के समान सब भुक्त अर्थात् अधीन देशों को (मज्मना) अपने महान् बल से (आदीदेत्) चमकाता है और जिन साधनों से युक्त होकर (चितः इद्धः अग्निः न) सञ्चित काष्ठों में लगे और भड़के हुए चिताग्नि के समान जलते हुए (अज्मन्) संग्राम में वीर भटों को अपने तेज से भस्म

करने वाला (पठर्वा) पठनशील विद्यार्थियों को प्राप्त करने वाले आचार्य और (पठर्वा) वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति (आ) आगे बढ़ता है और (याभिः) जिन साधनों से (महाधने) संग्राम में (शर्यातम्) हिंसक पुरुषों पर चढ़ाई करने वाले शस्त्रास्त्रों सहित आक्रमण करने वाले सेनापति की (अवथः) रक्षा करते हो (ताभिः०) उन सहित तुम दोनों नायक पुरुष हमें भी प्राप्त होवो ! पठर्वा—पतद् अर्वा। पृषोदरादित्वात् साधुः । ठत्वं छान्दसम् । पठतो ऋच्छति वा ।

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १८

भा०—हे (अंगिर:) विद्वन् ! (मनसा) ज्ञानपूर्वक तू अन्यों को ज्ञान करा । हे (अश्विना) सेनाध्यक्ष और सैनिको ! आप (याभिः) जिन उपायों और रक्षा-साधनों से (निरण्यथः) युद्ध करने में समर्थ होते हो और जिन से आप दोनों (गो-अर्णसः विवरे) सूर्य की किरणों के प्रकाश और जल को प्रकट करने में सूर्य और विद्युत् के समान तथा (गो-अर्णसः) ज्ञान वाणियों को विशद ज्ञान करने कराने के लिये गुरु शिष्य के समान पृथिवी के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (अग्रं गच्छथः) मुख्य पद पर या संग्राम भूमि में आगे बढ़ते हो । (याभिः) जिन साधनों से (मनुम्) मननशील या शत्रुओं के रोकने में समर्थ, मुख्य युद्ध विद्या के ज्ञाता (शूरम्) शूरवीर सेनापति को (इषा) प्रेरने योग्य सेना आदि बल से (सम् आ अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षा-साधनों सहित (आ गतम्) हमें प्राप्त होवो ।

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १९

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (याभिः) जिन (ऊतिभिः) उत्तम रक्षा-साधनों से (वि मदाय) विविध आनन्द प्राप्ति के

लिये (पत्नीः) पतियों के साथ यज्ञ द्वारा संयोग करने वाली पत्नी जनों को (नि ऊहथुः) गृहस्थ में प्रवेश कराते हो, (याभिः) जिन उपायों से (अरुणीः) ब्रह्मचारिणी कन्याओं को (अशिक्षतम्) शिक्षा देते हो और (याभिः) जिन उपायों से (सुदासे) उत्तम दानशील पुरुष को (सुदेव्यम्) उत्तम देने योग्य ज्ञान और द्रव्य (ऊहः) प्राप्तथु कराते हो (ताभिः) उन उपायों से आप दोनों हमें (आ गतम्) प्राप्त होवो ।

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २०।३६

भा०—हे (अश्विना) दो मुख्य अधिकारियो ! (याभिः) जिन रक्षा साधनों से (ददाशुषे) नित्य ज्ञान और द्रव्य के दाता प्रजाजन और विद्वान् के हित के लिये (शंताती भवथः) सुखकारक होते हो और (याभिः भुज्युम् अवथः) जिन साधनों से सुख ऐश्वर्य के भोक्ता पालक पुरुष की रक्षा करते हो, (याभिः अध्रिगुम्) जिनसे पृथ्वी के स्वामी राजा की रक्षा करते हो और (ऋतस्तुभम्) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष और सत्य ज्ञान और अन्न के धारण करने वाली (ओम्यावतीम्) रक्षणशील पुरुषों की उत्तम विद्या से युक्त (सुभराम्) उत्तम रीति से प्रजा के भरण पोषण करने वाली नीति की रक्षा करते हो (ताभिः उ आ गतम्) उन उपायों से आप हमें प्राप्त होवें । इति षटत्रिंशो वर्गः ॥

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २१

भा०—(याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से आप (कृशानुम्) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति पुरुष को (असने) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के संग्राम आदि कार्य में (दुवस्यथः) परिचर्या करते हो, और (जवे) वेग के संग्राम और शीघ्र गमन आदि कार्य में (याभिः) जिन उपायों से (यूनः) जवान पुरुषों (अर्वन्तम्) वेगवान् अश्वों और अश्वा-

रोही दल की (आवतम्) रक्षा करते हो और (यत्) जिन उपायों से (सरड्भ्यः) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों को (सरड्भ्यः मधु) मधु मक्षिकाओं को मधु के समान उनको स्थिर रूप से बांधे रखने वाले (प्रियं मधु) प्रिय अन्न (भरथः) प्रदान करते हो (ताभिः) उन उपायों से (आगतम्) हमें प्राप्त होवो ।

याभि॒र्नरं॑ गोषु॒युधं॑ नृ॒षाह्ये॒ क्षेत्र॑स्य सा॒ता तन॑यस्य॒ जिन्व॑थः ।
याभी॒ रथाँ॒ अव॑थो॒ याभि॒रर्व॑त॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् २२

भा०—हे (अश्विना) मुख्य पुरुषो ! आप दोनों (याभिः) जिन उपायों से (नृषाह्ये) नायक वीर पुरुषों से विजय करने योग्य (साता) संग्राम में (गोषुयुधम्) भूमियों के विजय के लिये युद्ध करने वाले (नरं) वीर नायक पुरुष को बढ़ाते हो और जिन से (क्षेत्रस्य तनयस्य साता) खेत के समान सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री और पुत्र के लाभ करने के निमित्त (नरं) पुरुष को (जिन्वथः) प्रसन्न और शक्तिशाली करते हो (याभिः रथान् अवथः) जिन से हमारे रथों (याभिः अर्वतः) अश्वों, अश्वारोही और रथारोही पुरुषों की (अवथः) रक्षा करते हो (ताभिः आगतम्) उन्हीं सब साधनों से हमें प्राप्त होवो ।

याभिः॒ कुत्स॑मार्जुने॒यं श॑तक्रतू॒ प्र तु॒र्वीतिं॒ प्र च॑ द॒भीति॒माव॑तम् ।
याभि॑र्ध्व॒सन्तिं॑ पुरु॒षन्ति॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् २३

भा०—(याभिः) जिन साधनों से (आर्जुनेयम्) ऐश्वर्य के अर्जन करने और शत्रु का मुकाबला करने वाले सेनाध्यक्ष के (कुत्सम्) सेना-बल की आप दोनों (शतक्रतू) सैकड़ों प्रज्ञाओं, कर्मों से युक्त होकर (आवतम्) रक्षा करते हो और जिन उपायों से (तुर्वीतम्) शत्रु के नाशक (दभीतिम् च) और शत्रुहन्ता की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो (याभिः) जिन उपायों से (ध्वसन्तिम्) शत्रु के नगरों

को ध्वंस करने वाले (पुरु-सन्तिम्) बहुत ऐश्वर्य देने वाले की रक्षा करते हो (ताभिः) उन उपायों से (आगतम्) हमें प्राप्त होवो ।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो या दो मुख्य पुरुषो ! सभा-सेनाध्यक्षो ! आप (अस्मे) हमारे हित के लिये (अप्नस्वतीम् वाचम्) उत्तम कर्म का उपदेश करने वाली वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। हे (दस्रा) शत्रु विनाशक मुख्य पुरुषो ! हे (वृषणा) सुखों के वर्षक पुरुषो ! आप दोनों हमारे लिये (अप्नस्वतीम् मनीषाम्) उत्तम कर्मों का उपदेश करने वाली बुद्धि या प्रेरणा को करो । (वां) तुम दोनों को मैं (अद्यूत्ये) अन्धकारमय मार्ग में (अवसे) प्रकाश करने के लिये और (अद्यूत्ये अवसे) द्यूत आदि छल कपट के व्यवहार से रहित धर्ममार्ग में गमन कराने के लिये (नि ह्वये) नित्य बुलाता हूँ । (नः) हमें (वाजसातौ वृधे च) ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम के विजय कार्य में वृद्धि करने के लिये (भवतम्) होवो ।

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५॥३७॥७

भा०—हे (अश्विना) दो मुख्य पुरुषो ! आप हमारी (द्युभिः अक्तुभिः) सब दिनों और रातों में (अस्मान् अरिष्टेभिः) हमें न नाश करने योग्य, कल्याणकारी, (सौभगेभिः) उत्तम २ ऐश्वर्यों से (परिपातम्) सब प्रकार से रक्षा करो । (शेष पूर्ववत्) इति सप्तत्रिंशो वर्गः ।।

इति सप्तमोऽध्यायः ।

अथाष्टमोऽध्यायः

[११३] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ उषा देवता । द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि ॥ छन्दः—१, ३, ६, १२, १७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ७, १८–२० विराट् त्रिष्टुप् । २, ५ स्वराट् पंक्तिः । ४, ८, १०, ११, १५, १६ भुरिक् पंक्तिः । १३, १४ निचृत्पंक्तिः । विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

भा०—(यथा) जैसे (प्रसूता) पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री (सवितुः) पुत्रोत्पादक पुरुष के (सवाय) पुत्र के उत्पन्न करने के लिये (योनिम् आरैक्) गर्भाशय को रिक्त करती है । और (उषसे) कामना योग्य पति के बसने के लिये (योनिम् आरैक्) गृह को बनाती है और जैसे (रात्री) रात्रि (सवितुः सवाय) सूर्य के उदय होने के लिये और (उषसे) उषाकाल के लिये (योनिम्) स्थान (आरैक्) प्रकट करती है, वैसे ही (प्रसूता) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली (रात्री) समस्त जीवों को रमण कराने वाली, प्रलय दशा (सवितुः) सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर के (सवाय) ऐश्वर्य को प्रकट करने के लिये और (एवा) वैसे ही (उषसे) दिन में सन्धि वेला के समान सर्ग और प्रलय के बीच के सन्धि वेला को प्रकट करने के लिये भी (योनिम् आरैक्) आश्रय रूप काल को प्रकट करती है और जैसे (ज्योतिषां ज्योतिः) समस्त तेजस्वी पदार्थों में उत्तम तेजस्वी सूर्य (आगात्) उदय होता है (चित्रः) चिद् रूप में रमण करने वाला (प्रकेतः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (बिभ्वा) महान् परमेश्वर के साथ मिलकर (अजनिष्ट) आनन्द से युक्त हो जाता है (इदं श्रेष्ठं) यह साक्षात् सर्वश्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः) सब ज्योतियों में परम ज्योति, प्रकाश-स्वरूप ब्रह्म (आगात्) प्रकट होता है ।

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

भा०—(रुशद्-वत्सा रुशती) लाल बछड़े वाली लाल गाय या (श्वेत्या) श्वेत वर्ण की गौ के समान (रुशत्-वत्सा) देदीप्यमान सूर्य रूप बछड़े को साथ लिये हुए (रुशती) लाल आभा वाली (श्वेत्या) उषा (आगात्) आती है और फिर (अस्याः सदनानि) इसी के स्थानों पर (कृष्णा उ) काली वर्ण वाली गौ के समान काली रात्रि भी (आरैक्) आती है या (कृष्णा) काली रात्रि (अस्याः सदनानि) उसके लिये स्थान (आरैक्) त्यागती अर्थात् प्रदान करती है और दिन रात्रि दोनों (समान बन्धू) समान पद के स्नेह से बन्धे हुए दो सहोदर भाई, मित्र या बहनों के समान रहती हुई (अमृते) कभी नाश न होने वाली (अनूची) एक दूसरे के पीछे आती हुईं (द्यावा) सूर्य और चन्द्र नक्षत्रादि प्रकाशों से प्रकाशित होती हुईं, (आमिनाने) एक दूसरे को दूर हटाती हुईं (वर्णं चरतः) अपना २ स्वरूप प्रकट करती हैं ।

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

भा०—(स्वस्रोः) दो बहनों या दो भाई बहनों के समान एक साथ विचरने वाले (नक्तोषासा) दिन और रात्रि दोनों का (अध्वा) मार्ग (समान) एकसा और (अनन्त) अनन्त है । वे दोनों (देवशिष्टे) गुरु से अनुशासित दो शिष्यों के समान, प्रकाशमान सूर्य से शासित होकर (अन्या-अन्या चरतः) एक दूसरे के पीछे होकर चलते हैं । वे दोनों (सुमेके) सुन्दर अंगों वाले भाई बहनों के समान (न मेथेते) परस्पर संग भी नहीं करते, (न तस्थतुः) एक स्थान पर ठहरते भी नहीं । वे दोनों (समनसा) एक समान चित्त वाले दो मित्रों के समान होकर भी (विरूपे) एक दूसरे से भिन्नतम और प्रकाश स्वरूप हैं ।

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४॥

भा०—(भास्वती) कान्तिवाली, (सूनृतानां नेत्री) उत्तम ज्ञान, यश और ऐश्वर्य की (नेत्री) प्राप्त कराने वाली (चित्रा) विविध कान्तियों से युक्त एवं पूजनीय विदुषी के समान प्रतीत होती है। जो (नः) हमारे लिये (दुरः) गृह के द्वारों के समान दुःखों के वारक साधनों को (वि आवः) विशेष रूप से प्रकट करती है, वह (जगत् प्रार्प्य) जगत् को हमारे अर्पण करके (नः) हमें (रायः) ऐश्वर्य (वि अख्यत्) प्रकाशित करती है और (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (अजीगः) अपने भीतर ले लेती है।

जिह्मश्ये३ चरितवे मघोन्याभोगयं इष्टये राय उ त्वं।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५॥१॥

भा०—(उषा) पापों को भस्म करने वाली (मघोनी) उषा किसी को (जिह्मश्ये) टेढ़े मेढ़े सोने के लिये, (चरितवे) किसी को उठकर काम पर जाने के लिये और किसी को (आभोगये) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करने, किसी को (इष्टये) यज्ञ दान करने, (त्वं उ राये) किसी को धन प्राप्त करने के लिये और (दभ्रं) अति सूक्ष्म पदार्थों को देखने वाले अध्यात्म साधकों को (उर्विया) उस महान् परमेश्वर का (विचक्षे) साक्षात् कराने के लिये (विश्वा भुवना) समस्त लोकों को (अजीगः) प्रकट करती है। इति प्रथमो वर्गः ॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥

भा०—(उषा) प्रभात (त्वं क्षत्राय) एक को धन, राज्यैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वं श्रवसे) एक को ज्ञान प्राप्त करने के लिये (त्वं महीयै

इष्टये) एक को बड़े भारी यज्ञ करने के लिये (त्वं अर्थम् इत्यै इव) और एक को धनादि प्राप्त करने के लिये और (विसदृशा जीविता) नाना प्रकार के जीवनोपायों को (अभिप्रचक्षे) प्रकट करने के लिये (विश्वा भुवनानि अजीगः) समस्त उत्पन्न पदार्थों और लोकों को प्रकट करती है।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७॥

भा०—(एषा) यह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान उषा, (शुक्रवासाः) उजले वस्त्रों को धारण करने वाली (युवतिः) युवती स्त्री के समान (शुक्रवासाः) शुद्ध प्रकाश को धारण करती हुई (वि उच्छन्ती) विविध प्रकाशों को प्रकट करती हुई (प्रति अदर्शि) दिखाई देती है। वह (विश्वस्य पार्थिवस्य वस्वः) समस्त पृथ्वी के ऐश्वर्य की (ईशाना) स्वामिनी सी है। हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्य वाली विदुषी के समान प्रभात वेले! तू (अद्य इह) आज इस जगत् में (वि उच्छ) विविध गुणों के समान प्रकाशों को प्रकट कर।

परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

भा०—यह (उषा) (परायतीनां) पूर्व की गुजरी हुई उषाओं के (पाथः अनु एति) मार्ग का अनुसरण करती है और (शश्वतीनां) अनन्त काल तक (आयतीनां) आगे आने वाली उषाओं में से (प्रथमा) सबसे पहली है। वह (वि-उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (जीवम्) संसार को (उत् ईरयन्ती) जगाती हुई (कंचन मृतम्) मानो किसी भी मरे मुरदे पुरुष को (बोधयन्ती इव) चेतन करती हुई सी प्रकट होती है।

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजागस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥

भा०—(उषः) हे उषः ! (या) जो तू (समिधे) अच्छी प्रकार प्रकाशित करने के लिये (अग्निं) अग्नि अर्थात् सूर्य को (चकर्थ) उत्पन्न करती है, (सूर्यस्य चक्षसा) सूर्य के प्रकाश से (यत्) जो तू (वि-आवः) विविध पदार्थों को प्रकट करती है (यत्) और जो तू (मानुषान् यक्ष्यमाणान्) यज्ञ करने वाले मनुष्यों को (अजीगः) व्यापती उनको प्रेरित करती है (तत्) वह तू (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में (भद्रम् अप्नः चकृषे) सुखकारी उत्तम कार्य करती है।

कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान्।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥१०॥२॥

भा०—(याः उषाः) जो उषाएं (वि ऊषुः) प्रकट हुईं और (याः च) जो (नूनं) अभी तक (वि उच्छान्) प्रकट हो रही हैं वे सब (कियति समया आभवाति) कितने काल तक ही रहती हैं ? अर्थात् उनका स्थितिकाल दीर्घ नहीं होता। यह उषा भी (वावशाना) दीप्तिमती होकर (पूर्वाः अनु) पूर्व की उषाओं के समान ही (कृपते) प्रकट होती है और (प्र दीध्याना) अच्छी प्रकार गुण रूप किरणों से चमकती हुई (अन्याभिः) आगे आने वाली अन्य उषायों से (जोषम् एति) अनुकरण की जाती है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११॥

भा०—(ये) जो (मर्त्यासः) मनुष्य (पूर्वतराम्) पूर्व प्रकट होने वाली (उच्छन्तीम्) खिलती हुई (उषसम्) उषा को (अपश्यन्) देखते हैं (ते ईयुः) वे सुख को प्राप्त होते हैं। (ये अपरीषु) जो आगे आने वाली उषाओं में भी (पूर्वतराम् पश्यान्) पूर्व की खिली उषा को देखें (ते यन्ति) वे भी सुख को प्राप्त होते हैं। (अस्माभिः उ नु) हमें भी वह (प्रतिचक्ष्या अभूत्) प्रत्यक्ष साक्षात् हो। हम भी सुख को प्राप्त हों।

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान तेज और कान्ति को धारण करनेवाली उत्तम स्त्री ! तू (यावयद्-द्वेषाः) समस्त अप्रीतिकारक कर्मों को दूर करती हुई (ऋतपाः) सत्य का पालन करने वाली (ऋतेजाः) सत्य और ऐश्वर्य के निमित्त गुणों में विख्यात होने वाली (सुम्नावरी) उत्तम सुखों को देने वाली और (सूनृता) उत्तम शुभ वाणियों को (ईरयन्ती) उच्चारण करती हुई (देववीतिम्) विद्वानों की उपदिष्ट विशेष नीति धारण करने योग्य यज्ञोपवीत आदि चिन्ह को (बिभ्रती) धारण करती हुई (इह अद्य) यहां, इस गृह में आज (श्रेष्ठतमा) सबसे उत्तम स्त्री होकर (वि-उच्छ) प्रकट हो ।

शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३॥

भा०—(उषा) कमनीय गुणों से युक्त उषा के समान (देवी) उत्तम गुणों से युक्त स्त्री (शश्वत्) निरन्तर (पुरा) पहले के समान (वि उवास) विविध गुणों को प्रकट करे और सुख पूर्वक निवास करे (अथो) और वह (अद्य) अब भी (मघोनी) ऐश्वर्य से युक्त होकर (इदं वि आवः) इस लोक तथा पतिगृह को प्रकाशित करे । (अथो) वह (उत्तरान् द्यून् अनु वि उच्छात्) आगे आने वाले दिनों में भी विशेष गुणों को प्रकाशित करे और (अजरा अमृता) आयु की हानि न करती हुई मृत्यु के दुःखों से रहित होकर अपने को अमृत जानती हुई (स्वधाभिः) स्वयं धारण किये धर्मों तथा 'स्व' अर्थात् शरीर के धारक अन्न आदि पदार्थों सहित (चरति) जीवन सुख प्राप्त करे ।

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥

भा०—(उषा) उषा जैसे (दिवः) सूर्य की (अञ्जिभिः) किरणों से (आतासु) दिशाओं में (वि अद्यौत्) विशेष रूप से प्रकाश करती है वैसे ही कमनीय स्त्री भी (दिवः अञ्जिभिः) अपने तेजस्वी पति के विशेष गुणों से (आतासु) समस्त क्रियाओं और विद्याओं में विशेष रूप से चमके। (देवी) प्रकाश करने वाली उषा जैसे (कृष्णां निर्णिजम्) रात्रि के अन्धकारमय रूप को (अप आवः) दूर कर देती है या (कृष्णाम् अप) रात्री को दूर करके (निर्णिजम् आवः) सब पदार्थों के उज्ज्वल रूप को प्रकट करती है वैसे ही (देवी) उत्तम स्त्री भी (कृष्णाम्) राजस, तामस मलिनता को दूर करके (निर्णिजं आवः) अपने शुद्ध कान्तिमय सुन्दर रूप को प्रकट करे। (उषा अरुणेभिः अश्वैः प्रबोधयन्ती) उषा जैसे अरुण किरणों से सब को जगाती हुई (सुयुजा रथेन) उत्तम सहयोगी आदित्य के साथ (याति) गमन करती है वैसे ही कमनीय गुणों से युक्त कन्या भी (अरुणेभिः) अपने अनुराग युक्त गुणों से (प्रबोधयन्ती) सब को उत्तम ज्ञान कराती हुई और (अरुणेभिः अश्वैः सुयुजा रथेन याति) लाल घोड़ों सहित जुते हुए रथ से तथा अनुराग युक्त उत्तम सहयोगी पति से युक्त होकर (याति) संसार-मार्ग में यात्रा करे।

आ वहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५॥३॥

भा०—(उषा) उषा जैसे (पोष्या वार्याणि) पोषण व वृद्धि करने योग्य ऐश्वर्यों को (आवहन्ती) लाती हुई (चेकिताना) सबको जगाती हुई (चित्रं) आश्चर्यजनक (केतु) प्रकाश (कृणुते) करती है और वह (ईयुषीणां शश्वतीनां) अनादि काल से आने वाली समस्त उषाओं की (उपमा) उपमा अर्थात् उनके समान धर्मों को धारण करती हुई और (विभातीनां) विशेष सूर्य की दीप्ति से युक्त आगामी उषाओं में (प्रथमा) प्रथम होकर (वि अश्वैत्) व्याप्त होती है वैसे ही (पोष्या वार्याणि आवहन्ती) पोषण योग्य

ऐश्वर्यों को सब प्रकार से धारण करती हुई (चेकिताना) स्वयं ज्ञान लाभ करती हुई (चित्रं केतुं कृणुते) आश्चर्यजनक ज्ञान प्रकट करे। वह (शश्वतीनां ईयुषीणाम् उपमा) बहुत सी पूर्वकाल की उत्पन्न सच्चरित्र स्त्रियों के समान गुणों को धारण करने वाली हो और (विभातीनां प्रथमा) विशेष चमकती हुई स्त्रियों में श्रेष्ठ होकर (वि अश्वैत्) विविध प्रकार से विख्यात हो। इति तृतीयो वर्गः ॥

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (उत् ईर्ध्वम्) उठो! आलस्य छोड़ कर उन्नति मार्ग पर चलो। प्रभात काल में (नः) हमें (असुः जीवः) शरीर का सञ्चालन करने वाला जीवात्मा (आगात्) प्राप्त होता है अर्थात् वह पुनः सोने के बाद जागृत रूप में प्रकट होता है। (तमः) अन्धकार, मोह (अपगात्) दूर हटता है और (ज्योतिः) प्रकाशमान् सूर्य (आ एति) आगे बढ़ा चला जाता है। वह उषा (सूर्याय) सूर्य के (यातवे) गमन करने के लिये (पन्थाम् आरैक्) मार्ग छोड़ती जाती है। हम भी (अगन्म) उसे प्राप्त हों (यत्र) जहां विद्वान् जन (आयुः प्रतिरन्त) जीवन की वृद्धि करते हैं।

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७॥

भा०—(विभातीः) विशेष दीप्ति वाली उषाओं के आने पर (वह्निः) ज्ञानों को धारण करने वाला (रेभः) विद्वान् (स्तवानः) स्तुति करता हुआ (स्यूमना) एक दूसरे से सम्बद्ध और उत्तम ज्ञानों से ओत प्रोत (वाचः) वेद वाणियों को (उत् इयर्ति) प्रकट करता है वैसे ही (उषसः विभातीः) विशेष दीप्ति से युक्त प्रभातों में नित्य ही (वह्निः रेभः स्तवानः) स्त्री को विवाहने वाला पुरुष विद्वान् होकर गुणों का वर्णन करता हुआ

(स्यूमना वाचः इयर्ति) सुखजनक वाणियों को बोला करे। (मघोनी) उषा जैसे (गृणते) स्तुति करने वाले के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करती है वैसे ही हे उत्तम स्त्री! तू भी (मघोनी) ऐश्वर्यवती होकर (गृणते) सुखकर प्रीति युक्त वचन कहने वाले पति के सुख के लिये (अद्य) आज दिन (तत् उच्छ) वह २ नाना प्रकार के गुण प्रकट कर और (अस्मे) हमारे सुख के लिये (प्रजावत्) उत्तम सन्तति से युक्त (आयुः) जीवन और अन्नादि को (निदिदीहि) प्रकाशित कर।

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८॥

भा०—(दाशुषे मर्त्याय) अपने को उपासना में भगवान् के प्रति अर्पण कर देने वाले पुरुष के हित के लिये (याः) जो (गोमतीः उषसः) किरणों से युक्त उषाएं (सर्ववीराः) सब प्राणों से युक्त या सबों को प्रेरित करने हारी होकर (वि उच्छन्ति) प्रकट होती हैं और उसके दुःखों को दूर करती हैं, (ताः) उन (अश्वदाः) व्यापक प्राण को देने वाली उषाओं को (वायोः इव) वायु या प्राण के समान (सूनृतानाम्) उत्तम स्तुति वाणियों के (उदर्के) उच्चारण करते २ सूर्य के उदय हो जाने पर (सोम सुत्वा) परमेश्वर का उपासक (अश्नवत्) भोग करे अर्थात् प्राणायाम, स्तुति तथा मन्त्रोच्चारण करते २ ध्यानी पुरुष को प्रभात वेला में सूर्योदय हो जावे और इस प्रकार वह उषाओं का सुख प्राप्त करे।

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९॥

भा०—यह उषा (देवानाम्) सूर्य की किरणों को (माता) प्रथम प्रकट करने वाली है और वह (अदितेः) सूर्य का (अनीकम्) मुख है। वह (यज्ञस्य) सूर्य का (केतुः) झण्डे के समान ज्ञापन करने वाली है। वह (ब्रह्मणे) परमेश्वर की (प्रशस्ति कृत्) उत्तम स्तुतियों को प्रकट करती

है। वह सबसे वरण करने और सेवन करने योग्य होने से 'विश्ववारा' है। इसी प्रकार हे (विश्ववारे) सबसे वरण करने योग्य, सब सुखों को चाहने वाली स्त्रि! तू (देवानाम् माता) विद्वान् पुत्रों की माता हो। (अदितेः अनीकम्) पुत्र की सेना के समान रक्षक और माता और पिता दोनों का मुख अर्थात् दोनों में मुख्य हो। तू (यज्ञस्य) गृहस्थ रूप यज्ञ की (केतुः) चेताने वाली (बृहती) गुणों में विशाल और सुखों की वृद्धि करने हारी होकर (विभाहि) प्रकट हो। तू (ब्रह्मणे) विद्वान् तथा परमेश्वर के लिये (प्रशस्तिकृत्) स्तुति युक्त वचन कहने वाली (नः व्युच्छः) हमारे दुःखों को दूर कर और (नः) हमें (जने जनय) समस्त जनों में प्रसिद्ध कर।

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २०।४

भा०—(उषसः) प्रभात बेलाएं जैसे (ईजानाय) यज्ञ करने वाले (शशमानाय) स्तुतिशील पुरुष के सुख के लिये (चित्रम् अप्नः) अद्भुत रूप, उत्तम स्तुति योग्य कर्म को और (भद्रम्) सुख और कल्याणजनक ज्ञान को (वहन्ति) प्राप्त करती हैं वैसे ही (उषसः) कामनानुकूल स्त्रियां (ईजानाय) अपना संग करने वाले (शशमानाय) प्रशंसित पुरुष के लिये (चित्रम्) आश्चर्यजनक (अप्नः) पुत्र, (भद्रम्) कल्याण और सुखमय जीवन को (वहन्ति) प्राप्त करती हैं। शेष पूर्ववत्। इति चतुर्थो वर्गः॥

[११४] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ रुद्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३, ६, ८, ९ विराड् जगती च। १०, ४, ५, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् निचृत् त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥१॥

भा०—(रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले, ज्ञान का उपदेश करने वाले तथा ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी, (तवसे) बलवान् (कपर्दिने) केश जटा वाले

पूर्ण युवा (क्षयद् वीराय) दोषनाशक वीर पुरुषों के स्वामी या शत्रुओं के नाशक वीर गणों के स्वामी, राजा के गुण वर्णन के लिये हम (इमाः मतीः) इन मनन योग्य ज्ञान-वाणियों को (प्र भरामहे) धारण करते हैं जिससे (द्विपदे चतुष्पदे) दोपायों और चौपायों के सुख के लिये (शम् असत्) कल्याण हो और (अस्मिन् ग्रामे) इस ग्राम या जनपद में (विश्वं) सब कोई (पुष्टं) हृष्ट पुष्ट और (अनातुरम्) रोग आदि से कभी पीड़ित न हो।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२॥

भा०—हे (रुद्र) शत्रुओं को रुलाने वाले ! अध्यात्म ज्ञान के उपदेश देने हारे ! आचार्य ! अविद्या आदि के नाशक ! प्रभो ! (नः मृड) हमें सुखी कर। (उत) और (नः) हमें (मयः कृधि) ब्रह्मानन्द प्रदान कर। (क्षयद्वीराय) शत्रु सेना के वीरों के नाश करने वाले (ते) तेरा (नमसा) अन्न, बल, पदाधिकार, आदर द्वारा (विधेम) हम सत्कार करें। (मनुः) मननशील (पिता) पालक राजा हमें (यत्) जो कुछ भी (शं) शान्तिदायक और (योः च) दुःखों का नाशक साधन (आयेजे) प्रदान करता है हम (तत्) उसका (अश्याम) औषधि के समान उपयोग करें। हे (रुद्र) दुःखों को भगाने हारे ! हम (तव) तेरी उत्तम (प्रणीतिषु) नीतियों में चलें।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३॥

भा०—हे (रुद्र) रुद्र ! उपदेशों के दाता ! हे (मीढ्वः) सुखों के वर्षक ! हम लोग (क्षयद्-वीरस्य) वीर पुरुषों को बसाने वाले (ते) तेरी (सुमतिं) शुभ मति को (देवयज्याय) विद्वान् पुरुषों के सत्संग द्वारा (अश्याम) प्राप्त करें। तू (अस्माकम्) हमारी (विशः) प्रजाओं को (सुम्नयन्) सुखी करता हुआ (इत्) ही (आचर) विचरण कर। हम

(अरिष्टवीराः) अहिंसित वीर पुरुषों और पुत्रों के साथ (ते हविः आजुहवाम) तेरे लिये अन्न आदि कर प्रदान करें।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४॥

भा०—(वयं) हम लोग (त्वेषं) न्याय और तेज से देदीप्यमान (यज्ञसाधम्) युद्ध विजयी और प्रजापालन रूप कर्म के साधक (वंकुम्) अति कुटिल, शत्रुओं से कभी पराजित न होने हारे (कविम्) दूरदर्शी पुरुष को (नि ह्वयामहे) अपने सुख दुःख आदि निवेदन करें। वह (दैव्यम्) विद्वानों के (हेळः) क्रोध अथवा अनादर आदि करने वाले पुरुषों को (अस्मत् आरे अस्यतु) हमसे दूर करे। (वयम्) हम (अस्य) इस शत्रुरोधक वीर पुरुष की (सुमतिम्) धर्मानुकूल प्रज्ञा और बल को प्राप्त हों।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५॥५॥

भा०—ज्ञान, न्याय तथा तेज से प्रकाशित व्यवहार से (वराहम्) श्रेष्ठ गुणों का उपदेश करने वाले मेघ के समान निष्पक्षपात और उत्तम सात्विक आहार करने हारे (अरुषं) रोष रोहित, तेजस्वी (कपर्दिनम्) जटिल, विद्वान् अथवा मुकुटधारी, (त्वेषं) सूर्य के समान दीप्तिमान्, (रूपं) सुन्दर रूपवान् पुरुष को (निह्वयामहे) आदरपूर्वक निवेदन करें। वह (हस्ते) अपने हाथ में वैद्य के समान (वार्याणि भेषजा) रोगों के समान शत्रुओं का वारण करने वाले साधनों, स्वीकार योग्य ऐश्वर्यों और उत्तम उपायों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अस्मभ्यम्) हमें (शर्म, वर्म) सुख, कवच, (छर्दिः) गृह और शस्त्रास्त्र साधन (यंसत्) प्रदान करे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

भा०—(पित्रे वचः यथा वर्धनम्) पिता का आशीर्वचन जैसे पुत्रों को बढ़ाने हारा होता है वैसे ही हे (अमृत) मरणादि क्लेश से रहित ज्ञानवन्! (पित्रे) पालक (रुद्राय) गुरु का (इदं वचः) यह वचन (मरुतां वर्धनम्) वायु के समान बलवान् शिष्यों को बढ़ाने वाला (उच्यते) कहा जाता है। हे विद्वन्! (नः त्मने) हमारे आत्मा (तोकाय) पुत्र और (तनयाय) पौत्र आदि के सुख के लिये (स्वादोः स्वादीयः) स्वादु से भी स्वादु, (मर्त्तभोजनं रास्व) मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर और (नः मृड) हमें सुखी कर।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने वाले! राजन् एवं रोगों को दूर करने वाले वैद्य! तू (नः) हमारे में से (महान्तम्) विद्या और बल में बड़े का (मा वधीः) विनाश मत कर। (नः अर्भकं मा वधीः) हममें से छोटे बालक को मत विनष्ट होने दे। (नः उक्षन्तं मा वधीः) हममें से वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष को नष्ट मत कर। (नः उक्षितम् मावधीः) हममें से जो जीव निषेक द्वारा गर्भाशय में स्थित है उनको नष्ट मत होने दे। (नः पितरं उत मातरम मा वधीः) हमारे पिता और माता को मत मार। (नः) हमारे (प्रियाः तन्वः) प्रिय शरीरों को (मा रीरिषः) मत पीड़ित होने दे।

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने हारे राजन्! तू (नः) हमारे (तोके तनये) पुत्र और पौत्र आदि संतति पर (मा रीरिषः) हिंसा का प्रयोग

मत कर। (नः आयौ मा) हमारे जीवन पर आघात मत कर। (नः गोषु, नः अश्वेषु मा रीरिषः) हमारी गौओं और हमारे घोड़ों पर भी हिंसा का प्रयोग मत कर। (भामितः) मन्यु वाला उत्साही तू (नः) हममें से (वीरान्) वीरों को (मा वधीः) मत मार। हम (हविष्मन्तः) उत्तम कर तथा कर्मों वाले होकर (त्वाम् सदम् इत्) तुझसे सदा ही (हवामहे) यह प्रार्थना करते हैं।

उप॑ ते॒ स्तोमा॑न्पशु॒पा इ॒वाक॑रं॒ रास्वा॑ पितर्मरुतां सु॒म्नम॒स्मे।
भ॒द्रा हि ते॑ सुम॒तिर्मृ॑ळ॒यत्त॒माथा॑ व॒यमव॒ इत्ते॑ वृणीमहे ॥ ९ ॥

भा०—(पशुपाः इव) पशुओं का पालक ग्वाला जैसे समस्त दुग्ध आदि पदार्थ तथा पशुसमूहों को भी स्वामी को ही देता है ऐसे ही हे (पितः) पालक राजन्! गुरो! (ते) तेरे ही लिये (स्तोमान्) इन स्तुति-वचनों तथा ग्राह्य पदार्थों को मैं (उप अकरम्) समर्पित करता हूँ। हे (मरुतां पितः) विद्वानों के पालक राजन्! शिष्यों के पालक गुरो! तू (अस्मे) हमें (सुम्नन्) सुखकारक ज्ञान और ऐश्वर्य (रास्व) दे। (ते सु-मतिः) तेरी शुभ मति (भद्रा) कल्याणकारक और (मृडयत्-तमा) सबसे अधिक सुखजनक है (अथ) और इसी कारण (वयम्) हम लोग (तव अवः) तेरी रक्षा और ज्ञानैश्वर्य को (इत्) ही (वृणीमहे) चाहते हैं।

आ॒रे ते॑ गो॒घ्नमु॒त पू॑रुष॒घ्नं क्षय॑द्वीर सु॒म्नम॒स्मे ते॑ अस्तु।
मृ॒ळा च॑ नो॒ अधि॑ च ब्रूहि दे॒वाधा॑ च नः॒ शर्म॑ यच्छ द्वि॒बर्हाः॑ ॥१०॥

भा०—हे (क्षयद्-वीर) वीरों को अपने आश्रय में बसाने हारे! (ते) तेरे राष्ट्र में रहने वाले (गोघ्नम्) गाय आदि पशु के हत्यारे पुरुष को तू (आरे) दूर कर। (अस्मे ते) इस प्रकार अपने दोनों को (सुम्नं अस्तु) सुख प्राप्त हो। हे (देव) प्रजा को सुख देने वाले राजन्! तू (नः मृड) हमें सुखी कर। (अधि ब्रूहि च) गुरु के समान सर्वोपरि शासक होकर उपदेश कर। (अध) तू (द्विबर्हाः) ऐहिक और पारमार्थिक दोनों

सुखों का वर्धक या ज्ञान कर्म दोनों का स्वामी होकर (नः च) हमें भी (शर्म यच्छ) सुख दे।

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११।६

भा०—(अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान के इच्छुक हम लोग (अस्मै) इस शरणप्रद और ज्ञानप्रद राजा और आचार्य के मान के लिये सदा (नमः अवोचाम) सत्कार सूचक पद 'नमस्ते' आदि का उच्चारण करें। (मरुत्वान्) विद्वान् वीर पुरुषों और ज्ञानेच्छु शिष्यों का स्वामी (रुद्रः) दुष्टों का रोदनकारी राजा और उपदेष्टा आचार्य (नः हवं शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने। शेष पूर्ववत् ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[११५] कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ सूर्यो देवता: ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ षड्‌चं सूक्तम् ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जैसे (देवानाम्) किरणों का (अनीकम्) समूह रूप है, वह (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चित्रं चक्षुः) मित्र अर्थात् वायु, प्राण, वरुण अर्थात् मेघ या जल और अग्नि इन सबको आश्चर्य रूप से दिखाने वाला, चक्षु के समान (उत् अगात्) सबका साक्षी रूप सा होकर उदय को प्राप्त होता है और वह (द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं) आकाश, पृथिवी और वायुमण्डल को प्रकाश से पूर देता है और (जगतः तस्थुषः च आत्मा) जंगम और स्थावर दोनों के जीवन के समान है।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥

भा०—(मर्यः रोचमानां देवीं योषां न) विवाह काल में जैसे पुरुष अपनी रुचि की स्त्री के (पश्चात् अभि एति) पीछे २ चलता है वैसे ही (रोचमानां) कान्ति वाली (उषसं देवीं) प्रकाशमयी उषा के (पश्चात्) पीछे २ (सूर्यः अभि एति) सूर्य भी चलता है। (यत्रा) जिसके आश्रय पर (देवयन्तः नरः) नाना सुखों की कामना करने वाले विद्वान् (भद्राय) कल्याणकारी पुरुष के हाथ (भद्रम्) उसको सुखकारी स्त्री रूप ऐश्वर्य (प्रति) प्रदान करके (युगानि) युग अर्थात् जोड़े (वितन्वते) बना देते हैं।

भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रितः॒ सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनुमा॒द्या॑सः ।
न॒म॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थुः॒ परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति स॒द्यः ॥३॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य की (हरितः) नील या श्याम वर्ण की (अश्वाः) किरणें (भद्राः) विशेष ज्वरादि नाशक होने से प्राणियों को सुखकारक होती हैं और (चित्राः) चित्र विचित्र वर्ण वाली (एतग्वाः) शबल वर्ण अर्थात् रक्त नील पीतादि वर्ण की मिश्रित किरण भी (अनुमाद्यासः) उक्त नील वर्ण की किरणों के अनुसार ही प्राणियों को अधिक हर्षोत्पादक होती हैं। वे (नमस्यन्तः) नीचे झुकती हुई (दिवः) पृथिवी और आकाश के (पृष्ठम् आ अस्थुः) पृष्ठ पर सब तरफ पड़ती हैं वे ही (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी पर सर्वत्र (सद्यः यन्ति) शीघ्र फैल जाती हैं।

तत्सूर्य॑स्य दे॒व॒त्वं तन्म॑हि॒त्वं म॒ध्या कर्तो॒र्वित॑तं॒ सं ज॑भार ।
य॒देदयु॑क्त ह॒रितः॑ स॒धस्था॒दाद्रात्री॒ वास॑स्तनुते सि॒मस्मै॑ ॥ ४ ॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य का जैसे (तत् देवत्वं तत् महित्वम्) स्वतः प्रकाशित होकर अन्यों को प्रकाश देना और महान् सामर्थ्य वाला होना यही उसका (तत्) अनुपम देवत्व और महत्व है। वह (कर्त्तोः मध्या) लोक व्यवहार के कार्यों के चलते रहने पर भी बीच में (विततं संजभार) अपने विस्तृत प्रकाश को संहार कर लेता है। (यदा इत्) सूर्य जब भी (सधस्थात्) एक ही स्थान से (हरितः अयुक्त) किरणें फैलाता है और दिन

को प्रकट करता है और (आत्) बाद में (रात्री) रात्रिकाल (सिमस्मै वासः तनुते) सब पर अपना काले वस्त्र के समान अन्धकार रूप आवरण फैला देता है वैसे ही (सूर्यस्य) सबके प्रेरक परमेश्वर का (देवत्वम्) देवत्व भी (तत्) बड़ा अलौकिक है और (महित्वं तत्) उसका महान् सामर्थ्य भी अलौकिक है कि (कर्त्तोः मध्या) बनाये हुए इस जगत् के बीच में (विततं) विस्तृत इस लोक का भी (संजभार) संहार कर देता है। (यदा इत्) जब वह एक तरफ (हरितः) अन्धकार को दूर करने वाले प्रकाशमान सूर्यों को (अयुक्त) स्थापित करता है तो भी दूसरी ओर (आत्) अनन्तर (रात्री) महाप्रलय रात्रि (सिमस्मै) समस्त जगत् पर पुनः सबको आवरण करने वाले अन्धकार को भी फैला देती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥

भा०—(मित्रस्य) वायु (वरुणस्य) आकाश को आवरण करने वाले वरुण अर्थात् मेघ को (अभिचक्षे) दिखाने या प्रकट करने के लिये (सूर्यः) सूर्य जैसे (द्योः उपस्थे) आकाश में स्थित होकर (रूपं कृणुते) अपने तेजोमय रूप को प्रकट करता है वैसे ही (सूर्यः) सबका प्रेरक और उत्पादक परमेश्वर (मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे) मित्र अर्थात् मरण से त्राण करने वाली जीवन या सृष्टि और वरुण अर्थात् वारण करने वाले मृत्यु या प्रलय को प्रकट करने के लिये (रूपं कृणुते) अपने तेज को प्रकट करता है। (अस्य) इस परमेश्वर का सूर्य के समान (रुशत्) देदीप्यमान (पाजः) चिन्मय सामर्थ्य भी (अनन्तम्) निःसीम है। (अन्यत्) रात्रि के अन्धकार के समान (कृष्णम्) काला या सबको आकर्षण करने वाला संहारक बल भी (अनन्तम्) अनन्त है। जिसको (हरितः) सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से गति करनेवाली उसकी शक्तियां (सं भरन्ति) धारण करती हैं।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥७॥१६

भा०—(अद्य) आज हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! आप (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय के समान हृदय में परमेश्वर के ज्ञानोदय हो जाने पर (अवद्यात्) निन्दनीय (अंहसः) पाप से भी (निः पिपृत) सर्वथा मुक्त हो जाओ । शेष पूर्ववत् । इति सप्तमो वर्गः ॥ इति षोडशोऽनुवाकः ॥

[११६] कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १०, २२, २३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १८, २०, २४, २५ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ७, २१ त्रिष्टुप् । ६, १६, १९ भुरिक् पंक्तिः । ११ पंक्तिः । १७ स्वराट् पंक्तिः । पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः । यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥

भा०—(नासत्याभ्याम्) जिनका विज्ञान कभी असत्य न हो ऐसे सत्य विज्ञान वाले प्रमुख शिल्पियों के उपकार के लिये मैं राजा (स्तोमान्) मार्ग में आये पर्वत आदि बाधक पदार्थों तथा (स्तोमान्) शत्रु-समूहों को (बर्हिः इव) घास के समान (प्र वृञ्जे) काट गिराऊँ और (अभ्रिया इव वातः) वायु जैसे मेघस्थ जलों को प्रेरता है, वैसे ही मैं (स्तोमान् इयर्मि) जन-समूहों को अपनी आज्ञा के बल पर चलाऊँ । (यौ) जो वे दोनों सत्य विज्ञान वाले (अर्भगाय) ऐश्वर्यवान् (विमदाय) विशेष हर्षोत्पादक युवा पुरुष के लिये (जायां) उसकी स्त्री को (सेनाजुवा) सेना को अपने साथ संचालन करने वाले (रथेन) रथ से (नि ऊहतुः) सुरक्षित रूप से ले जाते हैं ।

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना । तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

भा०—हे (नासत्या) सेना के नासिका या प्रमुख स्थान पर स्थित, असत्य न देखने वाले चक्षुओं के समान अध्यक्ष पुरुषो ! आप दोनों (वीडुपत्मभिः) बलवान् चक्रों वाले (आशुहेमभिः) शीघ्र गतिशील रथों से (वा) और (देवानां) युद्ध-विजिगीषु पुरुषों की (जूतिभिः) वेगवती सेनाओं से (शाशदाना) शत्रु सेनाओं को छिन्न भिन्न करते हो। (तत्) तब (रासभः) घोर गर्जनाकारी तोप आदि यन्त्र (यमस्य) सर्व नियामक राजा के (प्रधने आजा) प्रचुर धन देने वाले संग्राम में (सहस्रम् जिगाय) सहस्रों को विजय करे।

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे र॒यिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥

भा०—(कश्चित् ममृवान्) जैसे कोई मरता हुआ पुरुष अपने जीवन की रक्षा के लिये (रयिम् अव अहाः) धन का त्याग करदे, उस समय जैसे दो नाविक (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) जलों पर चलने वाली और (अपोदकाभिः) पानी को भीतर न जाने देने वाली नावों से पार उतार देते हैं वैसे ही (तुग्रः) शत्रु हिंसक पुरुष भी रण में (ममृवान्) मरने मारने पर उतारू होकर (भुज्युम्) अपने भोक्ता या पालक (रयिम्) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को (उद-मेघे) समुद्र के समान संकट दशा में त्याग देता है। ऐसी दशा में (अश्विना) शीघ्रगामी अश्वों और रथों के स्वामी अध्यक्ष जन (तम्) उसको (आत्मन्वतीभिः) अपने आत्मिक बल और मन्त्रणा युक्त (नौभिः) वाणियों रूप नावों से (ऊहथुः) उठा लें, संकट से पार करें।

ति॒स्रः क्षप॒स्त्रिरहा॑ति॒व्रज॑द्भि॒र्नास॑त्या भु॒ज्युमू॑हथुः पत॒ङ्गैः।
स॒मु॒द्रस्य॒ धन्व॑न्नार्द्रस्य॑ पा॒रे त्रि॒भी रथैः श॒तप॑द्भिः षळश्वैः ॥४॥

भा०—(तिस्रः क्षपः) तीन रात और (त्रिः अहा) तीन रात लगातार (अति व्रजद्भिः) अति वेग से चलने वाले (पतङ्गैः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले (शतपद्भिः) सैकड़ों चरणों वाले और (षड् अश्वैः) छः अश्व

अर्थात् वेगवान् यन्त्र कलाओं से युक्त (त्रिभिः रथैः) समुद्र, रेता और कीचड़ तीनों प्रकार की भूमियों में अथवा जल, स्थल और अन्तरिक्ष पर चलने वाले (त्रिभिः) तीनों प्रकार के (रथैः) रथों से (नासत्या) सदा सत्य विज्ञान वाले दो विद्वान् (भुज्युम्) समस्त राष्ट्र के पालक और भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वर्य को (समुद्रस्य) समुद्र (धन्वन्) रेगिस्तान और अन्तरिक्ष के तथा (आर्द्रस्य) जल से युक्त कीचड़ वाले स्थल के (परि) पार (ऊहथुः) पहुंचाया करें।

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५॥८॥

भा०—(यत्) जो (अश्विनौ) विद्यावान्, शिल्पवान् पुरुष (शतारित्राम्) सैकड़ों चक्षुओं वाली (नावम् आतस्थिवांसम्) नाव पर बैठे हुए (भुज्युम्) ऐश्वर्य के भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वर्य को (अस्तं ऊहथुः) घर लाते हैं (तत्) वे वस्तुतः (अनारम्भणे) अवलम्बन रहित (अनास्थाने) आश्रय के स्थल से रहित और (अग्रभणे) सहायता के लिये भी जहां कुछ पकड़ा न जा सके ऐसे (समुद्रे) समुद्र में (अवीरयेथाम्) पराक्रम करते हैं। इत्यष्टमो वर्गः ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथों के सञ्चालन करने में कुशल शिल्पियो! तुम दोनों (अघाश्वाय) कभी न मरने वाले अश्व के स्वामी, राजा को (यम् श्वेतं अश्वम्) जो श्वेत, अति बलशाली मार्गगामी साधन (ददथुः) देते हो (तत् शश्वत् इत्) वह सदाकाल के लिये (स्वस्ति) कल्याणदायक हो, वह (वां) तुम दोनों का (महि) बहुत बड़ा (कीर्त्तेन्यम्) कीर्त्तिजनक (दात्रं भूत्) दान है। उसी से (वाजी) वेग से जाने वाला साधन (पैद्वः) सुख से स्थानान्तर पहुँचने में समर्थ होता है और (सदम् इत्) सदा ही

(अर्यः हव्यः) वणिग् जन या स्वामी ग्राह्य पदार्थों को लेने में समर्थ होता है।

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम्।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७॥

भा०—हे (नरा) सन्मार्ग पर ले जाने वाले विद्वान् पुरुषो! (युवं) आप दोनों (स्तुवते) विद्याभ्यास करने वाले (पज्रियाय) ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान (कक्षीवते) अश्व के समान कसे कसाये कक्ष में यज्ञोपवीत धारण करने वाले शिष्य को (पुरन्धिम्) बहुत अधिक ज्ञान धारण करने में समर्थ बुद्धि का (अरदतम्) प्रदान करते हो। हे दोनों नायक पुरुषो! (अश्वस्य शफात् इव) घोड़े के खुर के आकार के बने (वृष्णः) मेघ के समान जल नीचे बरसाने वाले (कारोतरात्) कारोतर अर्थात् छलने से (सुरायाः) जल के समान सुख शान्ति और आनन्द देने वाली विद्या रूप रस के (शतं कुम्भान्) सैकड़ों कलसे (असिञ्चतम्) सेचन करो, अर्थात् उसे विद्या स्नातक और व्रतस्नातक करो। ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम से शिक्षा प्राप्त करने वाले गुरुजन बहुत ज्ञान दें और बाद में सहस्र-धारा स्नान के लिये अश्व के खुराकार छनने से जल के शतघटों से राज्याभिषेक के समान अभिषेक कराकर विद्यास्नातक और व्रतस्नातक बनावें।

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) आकाश और पृथिवी या दिन रात्रि तुम दोनों मिलकर (हिमेन) शीतल जल से (अग्निम्) अग्नि और (हिमेन घ्रंसम्) शीतल जल से ही दिन के परिताप को वृष्टि द्वारा (अवारयेथाम्) निवारण करते हो। तुम दोनों ही कारण क्रम से (अस्मै) इस प्राणि-वर्ग को (पितुमतीम्) अन्न से युक्त (ऊर्जम्) बल, पराक्रम और सम्पत्ति (अधत्तम्) प्रदान करते हो। (ऋबीसे) पृथ्वी पर (अवनीतम्) नीचे गिरे हुए

(सर्वगणम्) सब प्रकार के भूख से पीड़ित (अत्रिम्) भोक्ता जीवगण को और भोगने योग्य अन्नादि ओषधिगण को (उत् निन्यथुः) ऊपर उठाते हो।

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य॥ ९॥

भा०—हे (नासत्या) सत्य विज्ञान के नियमों से युक्त सूर्य और वायु तुम दोनों (उच्चा बुध्नम्) ऊपर आकाश में मूल आधार वाले, (अवतम्) सबके रक्षा करने वाले मेघ को (परानुदेथाम्) दूर दूर तक ले जाते हो और उसको (जिह्मबारम्) तिरछे जल वाला (चक्रथु) बना देते हो। (तृष्यते) प्यासे प्राणी वर्ग और ओषधि वर्ग को (पायनाय) पिलाने के लिये और (गोतमस्य) पृथिवी के स्वामी के (सहस्राय राये) अनेक ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिये (आपः न क्षरन्) अनेक जल धाराएं भी फूट निकलती हैं।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम्॥ १०॥ ९॥

भा०—(च्यवानात्) युद्ध से भाग जाने वाले भीरु से (द्रापिम् इव) जैसे सेनापति कवच छुड़ा लेता है वैसे ही हे (नासत्या) सत्य नियमों के व्यवस्थापक राष्ट्र और दो नायक विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (जुजुरुषः) आयु समाप्त करने वाले वृद्ध (च्यवानात्) संसार भोगते हुए मरणोन्मुख पुरुष से (वव्रिम्) विभाग करने योग्य धन को (प्र मुञ्चतम्) मरने से पूर्व ही छुड़ा कर अगले आने वाले सन्तान को प्रदान करो। (जहितस्य आयुः) त्यागी पुरुष के (आयुः) जीवन को (प्र तिरतम्) उत्तम रीति से बढ़ाओ। हे (दस्रा) दुःखों के नाशक तुम दोनों (कनीनाम्) उस पुरुष की कन्याओं के लिये योग्य (पतिम्) पति का (अकृणुतम्) प्रबन्ध करो। इति नवमो वर्गः॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

भा०—हे (नरा) विद्वान् स्त्री पुरुषो! तुम (नासत्या) परस्पर कभी असत्याचरण न करते हुए (दर्शतात्) सुन्दर स्त्री रूप से (वन्दनाय) स्तुति योग्य पुत्र लाभ के लिये (यत् अपगूढम् निधिम् इव) खूब गहरे छिपे जिस खजाने को (उत् ऊपथुः) वपन कर प्राप्त करते हो (तत्) वह (वां) तुम दोनों का (शंस्यं) प्रशंसा योग्य, (अभिष्टिमत्) उत्तम एषणा से युक्त (वरूथम्) दुःखों से बचाने वाला श्रेष्ठ, (राध्यम्) प्राप्त करने योग्य धन के समान हो।

तद्वां नरा सनये दंसं उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२॥

भा०—हे (नरा) सन्मार्ग में ले जाने वाले उपदेशक और अध्यापक जनो! (तन्यतुः) घोर शब्दकारी विद्युत् जैसे वृष्टि को प्रकट करती है वैसेही मैं (दध्यङ् आथर्वणः) धारणयोग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त राजा, किसी प्रकार की भी हिंसा न करने वाले शमादि युक्त मां बाप और प्रजापालक गुरुओं का शिष्य होकर (वां) आप दोनों स्त्री पुरुष वर्गों को (सनये) ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये (अश्वस्य शीर्ष्णा) अश्व सैन्य या भोक्ता राजा होने के प्रमुख अधिकार से (उग्रम् दंसः) अति उग्र, पापनाशक ज्ञान और दण्ड प्रयोग का भी (आविष्कृणोमि) उपयोग करूं। (यत्) जैसे (दध्यङ्) ज्ञान का धारक (अथर्वणः) अथर्ववेद का ज्ञाता विद्वान् (वाम्) तुम दोनों को (अश्वस्य शीर्ष्णा) सकल विज्ञानों में पारंगत आचार्य के (शीर्ष्णा) मुख्य पद से (मधु) मधुर ज्ञान का (प्र उवाच) प्रवचन करता है अर्थात् प्रशान्त, वेदविद् विद्वान् जिस प्रकार प्रमुख होकर ज्ञान प्रदान करे उसी प्रकार राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये राजा अपने दण्ड आदि उग्र कर्म को भी मेघ के समान निष्पक्षपात होकर

(अश्वस्य शीर्ष्णा) अश्व बल तथा राष्ट्र में व्यापक, भोक्ता राजा होने के मुख्य बल से करे।

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वालो और हे मुख पर नासिका के समान यशस्वी, मुख्य पद पर विराजमान! (वां) आपको (करा) कार्यकुशल (पुरुभुजा) प्रजाओं के पालने और बहुत सी भुजाओं अर्थात् योद्धा वीर जनों सहित बलवान् जानकर (पुरन्धिः) पुर की रक्षा करने वाली संस्था (महे यामन्) बड़े युद्ध यात्रा के काल में (अजोहवीत्) बुलाती और (करः) मुख्य कार्यकर्त्ता रूप में स्वीकार करती है। आप (शासुः इव) गुरु के उपदेश के समान अथवा शासक राजा के समान ही (वध्रिमत्याः) बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न उस राजसभा के (तत्) शासन को (श्रुतं) श्रवण करो। हे (अश्विनौ) अश्व बल के स्वामी, आप उसको (हिरण्यहस्तम्) हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब रूप में अवस्थित बल के स्वामी तेजस्वी पुरुष को आश्रय रूप से (अदत्तम्) प्रदान करो।

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४॥

भा०—हे (नरा) नायक और (नासत्या) कभी असत्य मार्ग पर न जाने वाले प्रमुख पुरुषो! जैसे (वर्त्तिकाम्) बार २ आने वाली उषा को (वृकस्य) घेर लेने वाले अन्धकार के मुख से छुड़ाकर (विचक्षे) पदार्थों के प्रकाश करने वाले सूर्य को प्रकट करते हो और जैसे कोई नर नारी भेड़ियों के मुख से बटेरी को छुड़ाकर किसी दयाशील की रेख देख में उसे रख दे वैसे ही (युवम्) तुम दोनों (वृकस्य) भेड़िये के समान पीठ पीछे से आक्रमण करने वाले डाकू लोगों के (आस्नः) प्रजा के खा

जाने वाले सुख अर्थात् अत्याचार से (अभीके) परस्पर प्रतिद्वन्दिता के अवसर पर, व (वर्तिकाम्) नाना वृत्तियों और उद्योगों से गुजर करने वाली, बटेरी के समान निर्बल प्रजा को (अमुमुक्तम्) सदा छुड़ाते रहो। (उतो) और हे (पुरुभुजा) बहुतों को पालने और भोगने में समर्थ (युवं) आप दोनों (विचक्षे) विविध न्याय व्यवहारों को देखने के लिये अध्यक्ष पद पर कृपा करने वाले और समर्थ (कविम्) प्रज्ञावान् पुरुष को (अकृतम्) नियुक्त करो।

च॒रित्रं॒ हि वेरि॒वाच्छे॑दि प॒र्णमा॒जा खेल॑स्य॒ परि॑तक्म्यायाम्।
स॒द्यो जङ्घा॒माय॑सीं वि॒श्पला॑यै॒ धने॑ हि॒ते सर्त॑वे॒ प्रत्य॑धत्तम् ॥१५॥१०

भा०—(परितक्म्यायाम्) रात्रि या अज्ञान दशा में, (खेलस्य) भोग विलास की क्रीड़ा करने वाले राजा का (चरित्रम्) शील और चरित्र या आगे बढ़ने वाला कदम (वेः इव पर्णम्) पक्षी के पंख के समान (अच्छेदि) कट जाता है। उस समय हे विद्वान् पुरुषो! आप दोनों (विश्पलायै) प्रजावर्ग की पालन करने वाली नीति की रक्षा के लिये (धने हिते) ऐश्वर्य प्राप्ति, प्रजाहित के निमित्त और (सर्तवे) आगे बढ़ने के लिये (सद्यः) शीघ्र ही (आयसीं जंघाम्) लोहे के समान शत्रु मारक सशस्त्र सेना को (प्रति अधत्तम्) संयोजित करो। इति दशमो वर्गः॥

श॒तं मे॒षान्वृ॒क्ये॑ चक्षदा॒नमृ॒ज्राश्वं॒ तं पि॒तान्धं॑ च॑कार।
तस्मा॑ अ॒क्षी ना॑सत्या वि॒चक्ष॒ आध॑त्तं दस्रा भिषजावन॒र्वन् ॥१६॥

भा०—जो (पिता) प्रजा के मां बाप के समान राजा (वृक्ये) चोर सरकार बनाये और उसे दृढ़ रखने के लिये (शतं मेषान्) सैकड़ों प्रतिस्पर्द्धी विद्वान् सभासदों को भी (चक्षदानं) शासन करने में समर्थ (ऋजाश्वम्) सरल स्वभाव के पुरुष को (अन्धम् चकार) अन्धकार में रक्खे तो (नासत्या) सदा सत्य व्यवहार के करने वाले मुख्य नायक पुरुष (दस्रा भिषजौ) दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाशक वैद्यों के समान (अनर्वन्

तस्मै) उस ज्ञानरहित को (अक्षी अधत्तम्) राजव्यवहार को देखने वाली आंखें प्रदान करें जिससे प्रजा का नाश न हो।

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७॥

भा०—(दुहिता अर्वता कार्ष्म इव) कन्या जैसे विवाह काल में विद्वान् पुरुष के साथ पीढ़े या रथ पर बैठती है ठीक वैसे ही (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान उषा (अर्वता) गतिशील सूर्य के प्रकाश के साथ (जयन्ती) अन्धकार पर विजय पाती हुई (वां रथं अतिष्ठत्) हे दिन रात्रि ! तुम्हारे रमणीय रूप पर विराजती है। ऐसे ही हे (नासत्या) अपने मुख्य स्थान पर विराजने वाले दो प्रमुख पुरुषो ! सर्वाज्ञापक राजा के समस्त मनोरथों और बल को पूर्ण करने वाली (जयन्ती) विजयशील सेना (अर्वता) अश्व के सैन्य से युक्त होकर भी (वां) तुम दोनों के (रथं) रथ नामक सैन्य पर (अतिष्ठत्) आश्रित रहती है। (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् और योद्धा जन (हृद्भिः) हृदयों से (अनु अमन्यन्त) आप दोनों को अनुमति दें। आप दोनों (श्रिया) शोभा या लक्ष्मी से (सचेथे) युक्त होकर रहो।

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व सेना के स्वामी दो मुख्य सेनापति और सैन्यवर्गो ! आप दोनों (यद्) जब (दिवोदासाय) युद्ध की कामना करने और शत्रु के नाशक के लिये और (भरद्वाजाय) पुष्ट और वेगवान् योद्धाओं के स्वामी के लिये (हयन्ता) वेग से जाते हुए (रेवत्) ऐश्वर्य से युक्त (वर्त्तिः) गृह या व्यवहार पद को प्राप्त होते हो तब (वां) तुम दोनों को (सचनः) परस्पर आश्रित (रथः) रथ (वृषभः) मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला और (शिंशुमारः च) दुष्ट शत्रुओं का नाशक

होकर (युक्ता वां) परस्पर संयुक्त हुए आप दोनों को (उवाह) धारण करता है।

रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यपालक प्रमुख राज पुरुषो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (रयिम्) ऐश्वर्य (सुक्षत्रम्) उत्तम क्षात्रबल, (सु-अपत्यम्) उत्तम सन्तान, (आयुः) दीर्घ जीवन और अन्न (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य बल (वहन्ता) धारण करते हुए (समनसा) और एक दूसरे से समान चित्त वाले होकर (भागं) अपने सेवनयोग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाले (जह्नावीम्) शत्रुओं पर हथियार छोड़ने वाले सेनापति की, या वेतन भृति आदि देने वाले राजा की सेना को देखने भालने के लिये (वाजैः) वेगवान् अश्वों और भृत्यों सहित (अह्नः त्रिः उप अयातम्) दिन में तीन २ बार आवें।

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२०॥११॥

भा०—हे (नासत्या) दो प्रमुख नायको ! आप (जाहुषं) प्रयाण योग्य स्थान को (विश्वतः सीम्) सब ओर से (परिविष्टम्) घेर लेओ और (सुगेभिः) सुख से गमनयोग्य (रजोभिः) मार्गों से अपने सैन्य को (नक्तम्) रातों रात (ऊहथुः) ले जाओ। (विभिन्दुना) विविध प्रकार से (पर्वतान्) पर्वतों के समान अचल शत्रुओं को भी भेद डालने वाले (रथेन) रथ सैन्य से युक्त होकर (अजरयू) शत्रुओं के बल की हानि करते हुए (अयातम्) प्रयाण करो।

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

भा०—(अश्विना) हे शीघ्रगामी सैन्य के प्रमुख नायको ! तुम दोनों (सहस्रा सनये) हजारों सुखों के दाता ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (एकस्याः वस्तोः) एक २ दिन के (रणाय) युद्ध के लिये (वशम् आ अवतम्) सर्व नियामक और जितेन्द्रिय पुरुष को सुरक्षित रक्खो। (इन्द्रवन्तौ) ऐश्वर्यवान् राजा के बल से बढ़ कर (वृषणा) अस्त्रों की शत्रुओं पर वर्षा करते हुए (दुच्छुनाः) दुःखदायी (पृथुश्रवसः) विशाल ऐश्वर्यवाली (अरातीः) अदानशील शत्रु सेनाओं का (निर् अहतम्) अच्छी प्रकार नाश करो।

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥

भा०—(चित्) जैसे (नीचात्) नीचे (अवतात्) कूप से भी (पातवे) पीने के लिये (वाः उच्चा) जल ऊपर निकाल लिया जाता है वैसे ही (शरस्य) हिंसा के व्यसनी (नीचात्) निकृष्ट कोटि के पुरुष के (अवतात्) रक्षण सामर्थ्य से भी (पातवे) प्रजा पालन के लिये (वाः) शत्रुओं का वारण (चक्रथुः) करो। वैसे ही (आर्चत्कस्य) पूज्य, विद्वान् पुरुष के (उच्चा) उत्कृष्ट कोटि के (अवतात्) ज्ञान रक्षण सामर्थ्य रूप (अवतात्) मेघ से (वाः चक्रथुः) जल के समान शान्तिदायक, दुःखवारक ज्ञान प्राप्त करो। हे (नासत्या) प्रमुख नायको ! (चित्) जैसे (शयवे स्तर्यम्) सोने वाले के लिये बिस्तर बिछाया जाता है वैसे ही (जसुरये) शत्रु नाशक के लिये (शचीभिः) अपनी सेना बल पर (स्तर्यम्) विस्तृत (गाम्) भूमि को (पिप्यथुः) बढ़ाओ, प्रदान करो।

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥

भा०—हे (नासत्या) सत्य ज्ञान और व्यवहार वाले विद्वान् पुरुषो ! आप (अवस्यते) अपने रक्षण और ज्ञानेच्छु (स्तुवते) स्तुतिशील (कृष्णि-

याय) सब के चित्तों के आकर्षक या दुःखों के विनाश करने में समर्थ (ऋजूयते) धर्म मार्ग पर चलने हारे (विश्वकाय) सर्व हितकारी पुरुष के (दर्शनाय) व्यवहारों को यथार्थ रूप से देखने के लिये (शचीभिः) अपनी शक्तियों और ज्ञान वाणियों द्वारा (विष्णाप्वम्) ज्ञानशील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान (नष्टं पशुं न) खोये हुए पशु के समान (ददथुः) प्रदान करो।

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्व१न्तः।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥

भा०—(सोमम्) सोम रस को यज्ञ पात्र में से जैसे आहुति देने वाला (स्रुवेण) स्रुवा से ऊपर उठा लेता है वैसे ही सेना और सभा के दोनों नायक (रेभम्) आज्ञापक ऐश्वर्य से सम्पन्न, (सोमम्) राजा को (अशिवेन) अमङ्गलकारी पाप से (अवनद्धं) बंधे हुए (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के बीच अपने कार्यों में (श्नथितम्) शिथिल हुए (उदनि) जल में (विप्रुतम्) बढ़ते हुए नाव के समान (विप्रुतम्) विप्लव अर्थात् धर्म नाश में प्रवृत्त (प्रवृक्तम्) सन्मार्ग से विचलित हुए राजा को (दश रात्रीः नवद्यून्) दस रात्रि और नौ दिन में (उत् निन्यथुः) उन्नत करें अर्थात् उसको इतने दिन का अवसर उठने के लिये दें।

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५॥१२॥

भा०—हे (अश्विनौ) नायको एवं स्त्री पुरुषो ! मैं (अस्य पतिः) इस राष्ट्र, गृह और देह का पालक राजा (वां दंसांसि) आपके कर्त्तव्यों का (अवोचम्) वर्णन करता हूँ। मैं (सुगवः) सुखप्रद, इत्तम भूमि गौ आदि सम्पत्ति का स्वामी (सुवीरः) उत्तम पुत्रों और वीर भृत्यों का स्वामी (स्याम्) होऊं। (उत) और (पश्यन्) चक्षुओं से देखता हुआ और (दीर्घम् आयुः अश्नुवन्) दीर्घायु का भोग करता हुआ मैं (अस्तम् इव)

गृह के समान (जरिमाणं) बुढ़ापे की दशा को अर्थात् पूर्णायु (जगन्याम्) प्राप्त होऊं । इति द्वादशो वर्गः ॥

[११७] कक्षीवान् ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् पंक्तिः । ६, २२ विराट् पंक्तिः । २१, २५, ११ भुरिक् पंक्तिः । २, ४, ७, १२, १६, १७, १८, १९ निचृत त्रिष्टुप् । ८, ९, १०, १३–१५, २०, २३ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, २४, त्रिष्टुप् । पंचाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) मनस्वी, या राजा रानी ! (मध्वः) मधुर अन्न तथा (सोमस्य) औषधि रस के समान ऐश्वर्य के (मदाय) आनन्द लाभ तथा दमन करने के लिये (प्रत्न) अति वृद्ध (होता) 'होता' नामक योग्य पुरुषों को योग्य कार्याधिकार सौंपने हारा विद्वान् पुरुष (वाम्) आप दोनों के प्रति (आ विवासते) सब बात खोल कर कहता है । आपका (बर्हिष्मती रातिः) दान प्रजा के सुख को बढ़ाने वाला हो, (गीः) और आप दोनों की वाणी (विश्रिता) विविध विद्वानों तथा अधिकारी वर्गों द्वारा सेवन योग्य हो । हे (नासत्या) आप दोनों (वाजैः) ऐश्वर्यों सहित हमें (इषा) सेना, अन्नादि समृद्धि सहित (उप यातम्) प्राप्त होवो ।

यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

भा०—हे (नरा अश्विना) नायक विद्वान् जनो ! (यः) जो (वाम्) आप दोनों का (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अधिक वेग वाला (रथः) युद्ध क्रीडा करने वाला (स्वश्वः) उत्तम अश्वों से युक्त रथ (विशः) प्रजाओं को (आजिगाति) प्राप्त होता है और (येन) जिससे आप दोनों (सुकृतः) शुभ कर्म करने वाले के (दुरोणं) घर तक (गच्छथः) जाते हो (तेन) उस ही रथ से (अस्मभ्यं) हमारे (वर्त्तिः) गृह पर भी (यातम्) आया करो ।

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे (नरा) नायक पुरुषो या राजदम्पती ! आप दोनों (ऋबीसात्) प्रकाशरहित (अंहसः) पाप, अज्ञान से (ऋषिम्) वेदज्ञ (पाञ्चजन्यम्) पांचों जन ब्राह्मण आदि चार वर्ण तथा तद्-बाह्य इन सब मनुष्य मात्र के हितकारी, (अत्रिम्) विविध तापों और बन्धनों से रहित पुरुष को (गणेन सह) उनके गण सहित (मुञ्चथः) बन्धन से छुड़ाओ। आप (अशिवस्य दस्योः) अमङ्गल जनक (दस्योः) प्रजानाशक दुष्ट पुरुष के (मायाः) कपटजालों को (मिनन्ता) नाश करते हुए (अनुपूर्वम्) पूर्व के सत् सिद्धान्तों के अनुकूल (वृषणा) बलवान् होकर (चोदयन्ता) प्रेरित करें ।

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥

भा०—हे (वृषणा अश्विना) सुखों के वर्षक विद्वान् स्त्री पुरुषो एवं मुख्य अधिकारियो ! (दुरेवैः) दुर्गम मार्गों के अनवरत चलने आदि से पीड़ित (विप्रुतं) भगे हुए (गूढं अश्वं न) छुपे हुए अश्व को जैसे यत्न से आश्वासन पूर्वक खोजकर युक्ति से रथ आदि में पुनः लगाते हैं वैसे ही (गूढं) अति गंभीर (ऋषिम्) ज्ञान के द्रष्टा, (विप्रुतम्) विविध ज्ञानों में निष्णात, (अप्सु रेभम्) कार्यों और ज्ञानों में या आप्त जनों के बीच विद्वान् आचार्य (तं) उत्तम पुरुष को (दंसोभिः) विविध कार्यों से (संरिणीथः) प्राप्त करो । (वां) आप लोगों के प्रति (पूर्व्या) पूर्व के विद्वानों के (कृतानि) किये ज्ञानोपदेश (न जूर्यन्ति) नष्ट नहीं होते ।

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३॥

भा०—हे (दस्रा) दुष्ट पुरुषों के नाशक (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो एवं प्रमुख नायको ! (सुषुप्वांसं न) सोते हुए पुरुष को जिस प्रकार जगा के खड़ा कर दिया जाता है उसी प्रकार (निर्ऋतेः उपस्थे) भूमि की पीठ पर मानो सोते हुए (निखातम्) उसमें गड़े हुए, मिट्टी के नीचे पड़े अन्न को (उद् ऊपथुः) बीज वपन द्वारा उगाओ। (तमसि क्षियन्तं) अन्धकार में छुपे हुए (सूर्यं न) सूर्य के समान तेजस् या चेतना, आयु और जीवन देने वाले अन्न को उत्पन्न करो। (निखातं दर्शतं) भीतर गड़े, दर्शनीय (रुक्मं न) दीप्तियुक्त सुवर्ण को जैसे (शुभे) शरीर भूषा के लिये खना जाता है वैसे ही देह में दीप्ति को उत्पन्न करने वाले अन्न को भूमि से प्राप्त करो।

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

भा०—हे (नासत्या नरा) असत्याचरण से रहित सभा सेनाध्यक्षो ! उत्तम स्त्री पुरुषो ! (पज्रियेण) ज्ञान करने योग्य, शास्त्रों में विद्वान् (कक्षीवता) उत्तम नियम व्यवस्था में बद्ध पुरुष, (वां) तुम दोनों को (तत् शंस्यम्) उस ज्ञान का उपदेश करे जिससे (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) अश्व या अश्व सेना के (शफाद) वेगवान् शत्रु शमनकारी आक्रमण से ही (जनाय) राष्ट्रवासी जन के सुख के लिये (परिज्मन्) मार्ग २ में (मधूनां) मधुर सुखकारी पदार्थों के (शतं कुम्भान्) जलों के घटों के समान सैकड़ों पात्र (आसिञ्चतम्) आप दोनों प्रदान करो।

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७॥

भा०—(नरा) हे नायक पुरुषो ! (युवं) आप (स्तुवते) यथार्थ उपदेश करने में समर्थ, (कृष्णियाय) बीज वपन के समान शिष्य-भूमियों में ज्ञान वपन करने में कुशल (विश्वकाय) सर्वोपकारक पुरुष को (विष्णाप्वं) विशेष स्नातक पद (ददथुः) प्रदान करो। हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री

पुरुषो ! आप लोग (पितृ-सदे) पिता के आश्रय पर रहने वाली (घोषायै) विकृत शब्द न करने वाली, विदुषी स्त्री के लिये (दुरोणे) गृह बसाने के निमित्त (जूर्यन्त्या) जरावस्था तक पहुँचने के लिये (पतिम्) योग्य पालक पुरुष (अदत्तम्) प्रदान करो।

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषणा) सुखों के वर्षण करने हारे, (अश्विना) प्रमुख राज्य के भोक्ता पुरुषो ! आप दोनों (श्यावाय) ज्ञानवान् पुरुष को (रुशतीम्) दीप्ति से युक्त विद्या का (अदत्तम्) दान करो। (क्षोणस्य उपदेश करने वाले अध्यापक या एक स्थान में गुरु के अधीन रह कर विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारी, (कण्वाय) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (महः) महान् सामर्थ्य प्रदान करो। (यत्) जो आप दोनों (नार्षदाय) नायक तथा प्रजा के पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजने वाले अध्यक्ष और आचार्य को (प्रवाच्यम्) प्रवचन करने योग्य (कृतम्) सुसम्पन्न (श्रवः) ज्ञान और यश (अधि अधत्तम्) प्रदान करते हो (वां तत्) वह भी तुम दोनों का ही श्रेष्ठ काम है।

पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् शिल्पियो ! (पुरू) बहुत से (वर्पांसि) रूपों या पदार्थों को (दधाना) बनाते हुए आप (पेदवे) दूर जाने के लिये (सहस्रसाम्) अति बल को धारण करने वाले, (वाजिनम्) वेगवान्, (अप्रतीतम्) अदृश्य, अतुल्य बल, (अहिहनम्) आगे आने वाली रोक [पिस्टन] पर धक्का मारने वाले (श्रवस्यम्) श्रवण करने योग्य, शब्दकारी (तरुत्रम्) दूर तक पहुँचा देने वाले, (आशुम्) शीघ्रगामी (अश्वम्) अश्व अर्थात् अग्नि से चलने वाली गाड़ी या यान को (ऊहथुः) भगाओ।

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् १०।१४

भा०—हे (सुदानू) उत्तम दानशील (अश्विनौ) ऐश्वर्यों के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों के (एतानि) ये (श्रवस्या) सब कार्य प्रशंसा योग्य अथवा यशोजनक वेदोक्त ज्ञान के अनुसार हों । (रोदस्योः सदनं ब्रह्म) सूर्य और पृथिवी का एक मात्र आश्रय वह महान् परम ब्रह्म ही (आङ्गूषम्) समस्त विद्याओं का विज्ञापक गुरु है । (रोदस्योः) परस्पर उपदेश लेने और देने वाले और एक दूसरे के ऊपर आश्रित सूर्य पृथिवी के समान गुरु शिष्य और स्त्री पुरुष इन दोनों के (सदनम्) सब कार्यों का आश्रय भी (ब्रह्म) वही परमेश्वर और ज्ञानमय वेद (आङ्गूषम्) सब विज्ञानों का ज्ञान कराने हारा है । हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) क्योंकि (पज्रासः) ज्ञानवान् पुरुष ही (वां) आप दोनों को उस (ब्रह्म वाजं) परम ब्रह्म और वेद का ज्ञान (हवन्ते) उपदेश करते हैं अतः आप दोनों (विदुषे) विद्वान् पुरुषों को देने के लिये (इषा च) अन्न आदि इच्छानुकूल पदार्थों के साथ (यातम्) प्राप्त होवो (च) और (वाजम्) ज्ञान प्राप्त करो और अन्न का दान करो ॥१४॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्या रिणीतम् ॥११॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (भुरणा) पालन पोषण करने में समर्थ (सूनोः) पुत्र के (मानेन) समान (गृणाना) उपदेश किये जाकर (विप्राय) ज्ञानवान् पुरुष को (वाजं रदन्ता) अन्न देते हुए, (अगस्त्ये) ज्ञान देने में कुशल पुरुष के आश्रय रह कर (ब्रह्मणा) वेद और ब्रह्मचर्य द्वारा (वावृधाना) बढ़ते हुए, (नासत्या) कभी असत्याचरण न करते हुए (विश्पलां) प्रजा वर्ग का पालन करने वाली नीति को (सम् रिणीतम्) अच्छी प्रकार चलाओ ।

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कुलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

भा०—हे (दिवः) ज्ञान विज्ञान युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान, (काव्यस्य) परमेश्वर के रचे हुए वेदमय ज्ञान को (नपाता) कभी नष्ट न करते हुए (वृषणा) बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ युवा (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सुस्तुतिं यन्ता) उत्तम स्तुति या कीर्त्ति को प्राप्त करते हुए (हिरण्यस्य) सुवर्ण से भरे (निखातं कलशम् इव) गड़े हुए कलशे के समान (कुह शयुत्रा) किस शयन स्थान पर (शयुत्रा) शयन करते हुए (दशमे अहन्) दसवें दिन (हिरण्यस्य) हित और रमण योग्य, एवं आत्मा (निखातं) गुप्त रूप से छुपे (कलशं) षोडसकला युक्त आत्मा रूप बीज को (उद् ऊपथुः) उत्तम रूप से बीज वपन करते हो। रजो दर्शन से दसवें दिन अर्थात् स्नान से पांचवीं रात्रि गर्भाधान करने पर सन्तान अति उत्तम होती है। किस आश्रय में ? यह प्रश्न है। गृहस्थ में। यह उत्तर है।

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के समान हृष्ट पुष्ट युवा स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (च्यवानं) ज्ञान प्राप्त करने वाले (जरन्तम्) उपदेश प्राप्त करते हुए बालक को (शचीभिः) विद्या और कर्मों के उपदेशों से (युवानं चक्रथुः) युवा करो। तब (नासत्या) हे सदा सत्य स्वभाव के स्त्री पुरुषो ! (सूर्यस्य दुहिता) उत्तम तेजस्वी उत्पादक पिता की पुत्री (युवोः) तुम दोनों के बीच में (श्रिया सह) अति शोभा सहित (रथं) रमण योग्य पति को (अवृणीत) वरण करे।

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निःसमुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ! (युवाना) बलवान् और परस्पर संगत होकर (तुग्राय) शत्रुओं के नाशक, बल सम्पादन योग्य पुत्र उत्पन्न करने के लिये (पूर्व्येभिः) पूर्व के विद्वानों से उपदेश किये (एवैः) उपायों से (पुनर्मन्यौ अभवतम्) पुनः परस्पर सम्मत होवो और (युवं) तुम दोनों (अर्णसः समुद्रात्) जल से भरे समुद्र से (भुज्युम्) भोग योग्य रत्नादि ऐश्वर्य या परस्पर के सुख को (विभिः) विमानों और गतिशील नौका आदि साधनों से और (ऋज्रेभिः अश्वैः) सधे हुए सुशील अश्वों से (निऊहथुः) देश देशान्तर ले जाया करो ।

अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५।१५॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! एक दूसरे के हृदय में व्यापक ! एक दूसरे के सुखों के भोग करने हारे (वां) तुम दोनों में से (प्रोढः) प्रत्येक विवाहित पुरुष (अव्यथिः) बिना व्यथा या पीड़ा के ही (समुद्रं जगन्वान्) संसार रूपी समुद्र से पार जाने हारा है । वह (प्रोढः) उत्तम रीति से गृहस्थ का भार उठाने में समर्थ होकर ही (तौग्र्यः) पालन करने योग्य पुत्रों को उत्पन्न करने में समर्थ होकर (अजोहवीत्) आहुति करे, वीर्याधान करे । तब दोनों (वृषणा) वीर्य निषेक करने और धारण करने में बलवान् होकर (मनोजवसा) मन के वेग से जाने वाले (रथेन) रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ या परस्पर के सुख से (सु-युजा) उत्तम रीति से युक्त होकर (स्वस्ति) कुशलपूर्वक (तम्) उस गृहस्थ कार्य का (निर् ऊहथुः) निर्वाह करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) सेना और सभा के अध्यक्ष पुरुषो ! (वृकस्य आस्नः) भेड़िये के मुख से जैसे कोई दयालु पुरुष बटेरी को छुड़ा दे वैसे

ही भेड़िये के स्वभाव वाले प्रजाभक्षक शासक के (आस्नः) मुख या भक्षण करने वाले उपायों से आप दोनों (यत्) जब २ भी प्रजागण को (अमुञ्चतम्) छुड़ाते हो तब २ वह प्रजा (वर्तिका) सुख से व्यवहार और व्यापार से रहने वाली आप दोनों को (अजोहवीत्) उत्तम नामों से पुकारती है। आप दोनों (जयुषा) विजयशील रथादि साधन से (अद्रेः सानु) पर्वत के शिखर के समान ऊंचे से ऊंचे पद तक (वि ययथुः) विशेष प्रकार से पहुंचते हो। तब (विश्वाचः) सब तरफ फैली शत्रु सेना के (जातम्) रक्खे पदार्थों के (विषेण) विष के समान घातक और दूषक पदार्थ से (विष्वाचः) विविध दिशाओं में फैले प्रजाजन को बचाते हो और (जातम्) प्रत्येक पदार्थ या बच्चे २ तक को (विषेण) अपने व्यापक राज्य प्रबन्ध से (अहतम्) प्राप्त होते हो।

शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७॥

भा०—(अशिवेन पित्रा) जैसे अमङ्गलकारी पिता (पित्रा) प्रजापालक राजा द्वारा (तमः प्रणीतम्) अपने घोर अन्धकार को दूर करता है, (वृक्ये) विविध फोड़ फाड़ करने वाली एवं चोर स्वभाव की राजसभा के निमित्त (शतं मेषान्) सौ प्रतिस्पर्धी विद्वानों या आयु के १०० वर्षों को शेरनी के लिये सौ भेड़ों के समान (मामहानम्) बलि देने वाले राजा को हे (अश्विनौ) मुख्य अध्यक्ष जनो ! आप दोनों (अक्षी) दो आंखें प्रदान करो और (अन्धाय) आंख से अन्धे पुरुष को (विचक्षे) देखने के लिये (ज्योतिः) सूर्य और चन्द्र की सूर्यातप और चन्द्रातप दोनों के समान शान्तिदायक ज्ञान और सन्तापजनक दण्ड व्यवस्था करने वाले और उन दोनों को दो आंखों के समान दो अध्यक्ष (अक्षी चक्रथुः) प्रदान करो। (ऋज्राश्वे) ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग में जाने वाले धर्मात्मा राजा के अधीन (आधत्तम्) रक्खो।

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् पुरुषो ! (वृषणा) प्रजा पर सुखों के वर्षक (नरा) नायको ! (इति) इस प्रकार से (अन्धाय) अन्धे राज्यकर्त्ता पुरुष को ही जो राज व्यवस्था (शुनम्) सुख और (भरम्) प्रजा के भरण पोषण का कार्य (अह्वयत्) करने को कहती है (सा) वही (वृकीः) भेड़िया या बाघ के समान प्रजा का नाश करने वाली होती है । इसलिये (ऋज्राश्वः) ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर चलने वाले जितेन्द्रिय राजा सदा (जारः) सूर्य के समान (कनीनः) दीप्तिमान् होकर (शतम् एकं च) १०१ वर्षों तक (चक्षदानः) प्रकाशमान, तेजस्वी रहकर प्रजा को (शुनम्) सुख और (भरम्) उसके भरण पोषण (अह्वयत्) करने के लिये आज्ञाएं देवे । मेष राशि का भोग करना सूर्य का एक वर्ष भोगना कहाता है। इसी कारण १०० या १०१ मेष का १०० या १०१ वर्ष ही ग्रहण करना उचित है।

मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) गृहस्थ के सुखों को भोगने वाले स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनो की (मही ऊतिः) बड़ी भारी रक्षणशक्ति (मयोभू) प्रजा को सुख देने वाली होती है। आप दोनों (धिष्ण्या) बुद्धिमान् होकर (स्राम) त्रुटिभाग को (सं रिणीथः) सुसंगत किया करो (अथ) और (पुरन्धिः) राष्ट्र या नगर को धारण करने वाला एवं प्रज्ञा वाला राजा या विद्वान् (इदं) इस प्रकार (अह्वयत्) उपदेश करे कि (युवाम्) आप दोनों (अवोभिः) अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्यों से (सम् आगच्छतम) सुसंगत होकर रहो।

अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०॥१६

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् और प्रमुख स्त्री पुरुषो एवं (दस्रा) दुष्ट पुरुषों के नाशक लोगो ! आप (शयवे) सोने वाले अर्थात् राज्य कार्य में प्रमाद करने वाले राजा के लिये (अधेनुं) दूध न देने वाली (स्तर्यं) वन्ध्या गौ के समान भोग्य पदार्थों के न देने वाली (स्तर्यं) प्रसवघातिनी या राजद्रोहिणी, (विषक्ताम्) विरुद्ध मार्ग में या विद्रोह में लगी (गाम्) पृथिवी, राष्ट्रभूमि या सेना को (अपिन्वतम्) नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न करो। (विमदाय जायाम् इव) विशेष हर्ष से युक्त पुमान् पुरुष के गृहस्थ धर्म के लिये जैसे जाया अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री को उससे विवाहित कर दिया जाता है वैसे ही (योषाम्) सेवन योग्य भूमि को भी (शचीभिः) नाना शक्तियों से वश करके (पुरु-मित्रस्य) बहुत से मित्र राजाओं से सहायवान राजा के अधीन (नि ऊहथुः) नियम पूर्वक प्राप्त कराओ।

यवं॒ वृके॑णाश्विना॒ वप॒न्तेषं॑ दु॒हन्ता॒ मनु॑षाय दस्रा।
अ॒भि दस्युं॒ बकु॑रेणा॒ धम॑न्तो॒रु ज्योति॑श्चक्रथु॒रार्या॑य ॥ २१ ॥

भा०—पूर्वोक्त रूप से फल न देने वाली राष्ट्रभूमि को समृद्ध करने का उपाय बतलाते हैं—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो एवं प्रमुख अधिकारियो ! आप (वृकेण) भूमि को विशेष रूप से खोदने वाले हल यन्त्र से भूमि को खन कर (यवं) यव आदि धान्य (वपन्ता) बोते हुए, (मनुषाय) मनुष्य वर्ग के खाने पीने के लिये (इषं) इच्छानुरूप अन्न और वृष्टि जल को प्रदान करते हुए और (बकुरेण) तेजोमय आग्नेयास्त्र से (दस्युं) प्रजा के नाश करने वाले, दुष्ट डाकू वर्ग को (अभिधमन्ता) सब प्रकार से संताप देते हुए, (आर्याय) श्रेष्ठ प्रजा वर्ग के हित के लिये (ज्योतिः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को शासक (चक्रथुः) बनाओ।

आ॒थ॒र्व॒णाया॑श्विना दधी॒चेऽश्व्यं॒ शिरः॒ प्रत्यै॑रयतम्।
स वां॒ मधु॒ प्र वो॑चदृता॒यन्त्वा॒ष्ट्रं यद्द॑स्रावपिक॒क्ष्यं॑ वाम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व सेना और विद्वत्सभा के स्वामी और अध्यक्ष ! आप दोनों (आथर्वणाय) अहिंसक और शान्तिविधायक प्रजापति के पद पर कार्य करने वाले, (दधीचे) राष्ट्र को धारण करने में समर्थ, बलवान् पुरुष को ही (अश्व्यं शिरः) अश्व सेना और राष्ट्र का मुख्य पद (प्रति ऐरयतम्) प्रदान करो। हे (दस्रा) शत्रुहन्ता ! (सः) वह मुख्य पुरुष (ऋतायन्) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ (वां) आप दोनों को (त्वष्ट्रं) शिल्पियों से बनाये गये (मधु) मधुर एवं शत्रुओं का पीड़न और स्तम्भन करने वाला बल या ज्ञान (प्रवोचत्) प्राप्त कराता है और (यत्) जितना भी (अपिकक्ष्यं) कक्षाओं में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ज्ञान है उसका भी उपदेश करता है।

सदा॑ कवी सुम॒तिमा च॑के वां॒ विश्वा॒ धियो॑ अश्विना॒ प्राव॑तं मे।
अ॒स्मे र॒यिं ना॑सत्या बृ॒हन्त॑मपत्य॒साचं॒ श्रुत्यं॑ रराथाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (कवी) दूरदर्शी विद्वानो और विदुषी स्त्री पुरुषो ! मैं (वाम्) आप दोनों की (सुमतिम्) शुभ कर्मानुकूल मति, ज्ञान और अनुमति को (आ चके) प्राप्त करूँ। (मे) मुझे (विश्वा धियः) समस्त कर्मों और ज्ञानों को आप लोग (प्र अवतम्) प्रदान करें। हे (नासत्या) सत्य व्यवहारशील स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मे) हमें (अपत्य साचं) पुत्र पौत्रादि को प्राप्त होने वाले (बृहन्तम्) बड़े भारी (श्रुत्यम्) श्रवण द्वारा प्राप्त होने योग्य वेदज्ञानमय (रयिम्) ऐश्वर्य का (रराथाम्) प्रदान करें।

हिर॑ण्यहस्तमश्विना॒ ररा॑णा पु॒त्रं न॑रा वध्रिम॒त्या अ॑दत्तम्।
त्रिधा॑ ह॒ श्याव॑मश्विना॒ विक॑स्तमु॒ज्जीव॑स॒ ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) विद्वानो और विदुषी स्त्री पुरुषो ! आप राष्ट्र को (वध्रिमत्या) बढ़ती हुई विद्या के (पुत्रं) पुत्र अर्थात् उसके पालन, अभ्यास और सेवन करने वाला, (हिरण्यहस्तम्) ऐश्वर्य को अपने हाथ में या

वश में करने हारा शिष्य या पुत्र (अदत्तम्) प्रदान करो। हे (नरा) मार्गदर्शी विद्वान नायक जनो ! हे (सुदानू) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारो ! (त्रिधा) मन, वाणी, काय तीनों प्रकार से (विकस्तम्) विशेष विकास को प्राप्त होने वाले (श्यावं) विद्वान् पुरुष को (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (उद् ऐरयतम्) उत्तम शिक्षा दो या उत्तम पद पर स्थापित करो।

एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन्।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२५।१७

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो, सभा-सेनाध्यक्षो ! (एतानि) ये नाना प्रकार के (वीर्याणि) वीर जनों के योग्य बल और वीर्य द्वारा साधने योग्य, (पूर्व्याणि) पूर्व के विद्वानों तथा सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर या वेद द्वारा प्रतिपादित जो ज्ञान या बल है जिनको (आयवः) विद्वान् जन (प्र अवोचन्) शिष्यों को उपदेश किया करें। हे (वृषणा) सुखों के वर्षक पुरुषो ! हम लोग (सुवीरासः) उत्तम पुत्रों, प्राणों और पुरुषों से सहायवान् होकर (ब्रह्म कृणवन्तः) ऐश्वर्य और वेद ज्ञान का सम्पादन करते हुए (विदथम्) विज्ञान का (आवदेम) सर्वत्र उपदेश करें।

[११८] कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् पंक्तिः । २, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८, विराट् त्रिष्टुप् ।

एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥

भा०—(अश्विना) हे प्रमुख पुरुषो ! (वां) आप का वह (रथः) रथ (श्येनपत्वा) बाज के समान वेग से जाने हारा, (स्ववान्) भृत्यों से युक्त, (सुमृडीकः) उत्तम रीति से सुखप्रद होकर (अर्वाङ् आयातु) सदा हमारे पास आवे जावे। (यः) जो (त्रिबन्धुरः) तीन स्थानों पर बन्धा

हुआ (वातरंहाः) वायु के वेग से जाने हारा होकर (मर्त्यस्य मनसः जवीयान्) मनुष्य के मन से भी अधिक वेग से जाने हारा है।

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् शिल्पी जनो! आप (त्रिबन्धुरेण) तीन प्रकार के बन्धनों वा (त्रिवृता) तीन प्रकार के आवरणों से युक्त, (त्रिचक्रेण) तीन कला युक्त चक्रों से युक्त, (सुवृता) उत्तम मनुष्यों, गतियों या शृङ्गारों से युक्त, (रथेन) रथ से (अर्वाक् आयातम्) भूमि के ऊपर नीचे, समीप और दूर आया जाया करो। आप दोनों (नः) हमारी (गाः पिन्वतम्) गौओं या भूमियों को जल से सींचा करो। (अर्वतः जिन्वतम्) अश्वों की वृद्धि करो। (अस्मे वीरम्) हमारे वीर जनों और पुत्र जन को (वर्धयतम्) खूब बढ़ाओ।

प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) विदुषी वा विद्वान् स्त्री पुरुषो! (दस्रौ) दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाशक (प्रवद्-यामना) उत्तम मार्ग और उत्तम चाल से चलने वाले (सुवृता) उत्तम सुख साधनों से युक्त (रथेन) रथ और रमण साधनों से युक्त होकर भी (अद्रेः) पर्वत के समान उत्तम और उन्नत पद पर जाते हुए (इमं श्लोकं शृणुतम्) इस वेद वाणी का श्रवण किया करो। (अङ्ग अश्विना) हे प्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो! (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (पुराजाः विप्रासः) पूर्व काल में उत्पन्न विद्वान्, पूर्व पुरुष, (किम् अवर्त्तिम् आहुः) क्या कुछ असम्भव या कुछ निन्दनीय वाणी कहते रहे? नहीं, कुछ भी नहीं।

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् शिल्पीजनो ! आप दोनों को (रथे युक्तासः) रथ में लगे हुए (आशवः) शीघ्रगामी (पतङ्गाः) सूर्य के समान दीप्ति वाले (श्येनासः) श्येन पक्षी के समान युद्ध भूमि में झपट कर दौड़ने वाले, सरपट घोड़े या विद्युत् आदि यन्त्र (वहन्तु) दूर देश में पहुँचावे। (ये) जो (अप्तुरः) अन्तरिक्षों और जलों में वेग से जाने वाले (गृध्राः) गीध के समान लम्बे पक्ष वाले और लम्बी उड़ान लगाने वाले (प्रयः अभि) उत्तम गन्तव्य स्थान या ठिकाने तक (वहन्ति) ले जाते हैं।

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५॥१८॥

भा०—हे (नरा) नायक पुरुषो ! (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की कन्या उषा के समान कान्तिमती और सूर्य के समान नायक की कामनाओं को पूर्ण करने हारी (जुष्ट्वी) ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई (युवतिः) युवती स्त्री (वां) तुम दोनों के बने (रथम्) रथ पर (आ अतिष्ठत्) प्रथम बैठे । (वाम्) तुम दोनों को (वपुषः) बड़े २ डील वाले (अरुषाः) किरणों के समान लाल रंग के बड़े तेजस्वी (वयः) गतिशील (पतंगाः) घोड़े (वाम्) तुम दोनों को (परिवहन्तु) ढो ले जावें ।

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

भा०—(वृषणा) नाना सुख प्रदाता एवं निषेक करने हारे माता पिता जनो ! आप लोग (दंसनाभिः) उत्तम आचरणों से (वन्दनम्) स्तुति करने हारे पुत्र या शिष्य को (उत् ऐरतम्) ऊपर उठाओ । हे (दस्रा) अन्धकार और दुर्गुणों को नाश करने हारे आप दोनों (शचीभिः) उत्तम वाणियों, शक्तियों और कर्मों द्वारा (रेभम्) अध्ययनशील शिष्य को (उत् ऐरतम्) उत्तम पद पर प्राप्त कराओ और (समुद्रात्) यात्री को जहाजी जैसे समुद्र से पार उतार देता है वैसे ही (तौग्र्यम्) पालने

योग्य पुत्रादि हितकारी पिता आदि को भी (निः पारयथः) निर्विघ्न पार करो। और (युवानं) युवा पुरुष को (च्यवानं चक्रथुः) इस लोक से छोड़ कर जाने वाला वृद्ध दीर्घायु करो।

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम्।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

भा०—(अश्विना) हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! नायको! आप (अवनीताय) विनय से अपने अधीन सन्मार्ग पर ले जाने योग्य, उपनीत, (अत्रये) माता पिता, भाई तीनों सम्बन्धियों से रहित शिष्य को (तप्तम्) तप से प्राप्त होने योग्य (ओमानम्) रक्षा, ज्ञान और तेजदायक (ऊर्जम्) पराक्रम, वीर्य और ब्रह्मचर्य को (अधत्तम्) धारण कराओ और (युवं) तुम दोनों (अपिरिप्ताय) खूब लिप्त, विषय तृष्णा में फंसे हुए (कण्वाय) विद्वान् पुरुष को (सुस्तुतिं जुजुषाणा) उत्तम स्तुति को स्वीकार करते हुए (चक्षुः प्रति अधत्तम्) शास्त्र रूप चक्षु (प्रति अधत्तम्) प्रदान करो।

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो एवं नायक! आप (शयवे) अज्ञान निद्रा में सोने वाले और (नाधिताय) प्रार्थनाशील (पूर्व्याय) पूर्व शुभ संस्कारों से युक्त पुरुष के लिए (धेनुम्) वेद वाणी को (अपिन्वतम्) कामधेनु के समान ज्ञान-रस देने वाली बना देते हो और (अंहसः) पापाचार से (वर्त्तिकाम्) उद्योग आदि से निर्वाह करने वाली प्रजा को (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ और (विश्पलायाः) प्रजाओं के पालन करने की नीति को (जंघां) दुष्टों के हनन करने की शक्ति (अधत्तम्) प्रदान करो।

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम्।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (पेद्वे) विजयार्थ जाने हारे पुरुष को (श्वेतम्) तेजस्वी (इन्द्रजूतम्) विद्युत् द्वारा चलने वाला, (अहिहनम्) आगे आये शत्रु को मारने वाला, (जोहूत्रम्) संग्राम में शत्रुओं को ललकारने वाला (अर्यः) शत्रु को (अभिभूतम्) पराजित करने वाला (उग्रम्) भयजनक, (सहस्रसाम्) सहस्रों ऐश्वर्यों का दाता, (वृषणम्) शत्रुओं पर शरों की और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला (विड्वङ्गम्) दृढ़ अङ्गों वाला (अश्वम्) पृथ्वी राज्य के भोगने, पालने और उसे व्याप लेने में समर्थ सैन्य बल (अदत्तम्) प्रदान करो।

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०॥

भा०—हे (सुजाता) विख्यात (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (नरा) सन्मार्ग पर चलाने हारे नायक पुरुषो ! हम लोग (नाधमानाः) ऐश्वर्य की याचना करते हुए, (ता वां) उन प्रसिद्ध आप दोनों को (सु अवसे) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये (हवामहे) अपना प्रमुख स्वीकार करते हैं। आप लोग (गिरः जुषाणा) ज्ञान-वाणियों का सेवन करते हुए (वसुमता रथेन) ऐश्वर्य से पूर्ण रथ या रमण साधनों से (सुविताय) ऐश्वर्य की वृद्धि करने और उत्तम मार्ग में ले जाने के लिये (नः उपयातम्) हमें प्राप्त होवें।

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥११॥१९॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने हारे ! (अश्विना) ऐश्वर्य के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! एवं नायक जनो ! (वाम्) आप दोनों को मैं (सजोषाः) सप्रेम (रातहव्यः) अन्न और उत्तम स्वीकार योग्य वचनों को प्रदान कर (शश्वत्तमायाः उषसः) अनादि काल से चली आने वाली

उषा के (व्युष्टौ) खिल जाने पर प्रातः समय (हवे) नमस्कार करता हूँ और बुलाता हूँ। आप दोनों (श्येनस्य जवसा) बाज पक्षी के समान वेग से (अस्मे) हमारे गृह पर (नूतनेव) नये रथ से (आयातम्) आइये।

[११९] १–१० कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृज्जगती। ३, ७, १७ जगती। ८ विराड् जगती। २, ५, ९ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! मैं (वां) आप दोनों के (पुरुमायं) बहुत सी आश्चर्यकारी घटनाओं को करने वाले (मनोजुवं) मन के समान वेग से जाने वाले, (जीराश्वं) अति वेगवान् अश्व से युक्त, (यज्ञियं) यज्ञ योग्य देश में जाने वाले, (सहस्रकेतुम्) सहस्रों ध्वजा से युक्त, (वनिनं) सेवन योग्य ऐश्वर्यों से पूर्ण, (शतद्वसुम्) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाले, (श्रुष्टीवानम्) शीघ्र गतियों से जाने वाले, (वरिवोधाम्) धनैश्वर्य के धारण और प्रदान करने वाले, (रथम्) रथ के समान इस रमण करने के साधन स्वरूप देह का (प्रयः अभि) उत्कृष्ट गमन को लक्ष्य करके (हुवे) वर्णन करता हूँ।

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो! (प्र यामन्) रथ के उत्तम मार्ग में जैसे रथ की (ऊर्ध्वा धीतिः अधायि) ऊंची स्थिति रक्खी जाती है वैसे ही (अस्य) इस देह और आत्मा के (धीतिः) धारण पोषण का कार्य (प्रयामन्) उत्तम मोक्ष मार्ग में जाने के लिये (प्रति अधायि) प्रतिक्षण रक्खा जावे और जैसे (दिशः सम् अयन्त) रथ पर सवार होने से शीघ्र ही दिशाएं या दूर देश भी प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही (अस्य शस्मन्) इसको शासन करने के निमित्त (दिशः) उपदेश करने वाले गुरु-

जन (आ सम् अयन्त) भली प्रकार प्राप्त हों। मैं जिज्ञासु पुरुष (धर्मं) गुरु से प्राप्त, उज्ज्वल ज्ञानरस का मेघ से गिरते जल के समान (स्वदामि) उत्तम रीति से उपभोग करूं। (ऊतयः) हमें ज्ञान प्रदाता और रक्षक जन (प्रतियन्ति) प्रतिक्षण प्राप्त हों और (वाम्) दोनों के (रथम्) रमण करने योग्य रथ के समान गृहस्थ आश्रम को (ऊर्जानी) अन्न सम्पत्ति और पराक्रम शक्ति (आ अरुहत्) सब तरफ से प्राप्त हो।

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (मिथः पस्पृधानासः) परस्पर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए, युद्ध विजय के लिये यत्नशील होकर (मखाः) आदरणीय, (अमिताः) अपरिमित (जायवः) विजयशील वीर पुरुष (शुभे रणे) रण में या रमणीय उत्सव आदि के अवसर पर (सम् अग्मत) एकत्र होते हैं और (यत्) जब हे (अश्विना) विद्वान् नायको वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (वरं) श्रेष्ठ (सूरिम्) विद्वान्, धार्मिक तथा प्रतिष्ठित पुरुष को (आवहथः) प्राप्त होते हो तब (प्रवणे) उत्तम रीति से सेवने योग्य रण-स्थल और सभा भवन में भी (युवोः अह) आप दोनों के ही (रथः) उत्तम रथ (चेकिते) विशेष रूप से युद्ध आदि विद्या में कुशल जाने जाते हैं।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्य१ न्दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥४॥

भा०—हे (वृषणा) प्रजा पर सुखों और शत्रु पर शरों की वर्षा में कुशल नायको! (युवं) आप दोनों (विभिः) विद्वानों और अश्वारोहियों से युक्त (भुज्युं) सबके पालक और (भुरमाणं) सबके भरण करने हारे नायक को (स्वयुक्तिभिः) अपने उपायों से (पितृभ्यः) पालक जनों के हित के लिये (नि वहन्ता) विशेष रूप से अपने ऊपर धारण करते हुए (विजेन्यम्) विशेष जय प्राप्त कराने वाले (वर्त्तिः) प्रयत्न (यासिष्टं) करें।

क्योंकि (दिवोदासाय) ज्ञान प्रकाश देने वाले पुरुष के लिये (वाम्) आप दोनों की (महि अवः चेति) बड़ी भारी रक्षा समझी जाती है।

युवोर॑श्विना वपु॑षे युवायुजं॒ रथं॒ वाणी॑ येमतुरस्य शर्ध्य॑म्। आ वां॑ पति॒त्वं स॒ख्याय॑ ज॒ग्मुषी॒ योषा॑ वृणीत॒ जेन्या॑ यु॒वां पती॑ ॥५।२०॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो! (युवोः) आप दोनों के ही (युवायुजं) परस्पर प्रेम और इच्छापूर्वक मिलकर एक हो जाने वाले, (शर्ध्यम्) बलपूर्वक धारण करने योग्य, (रथम्) आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ को (अस्य वाणी) इस गृहस्थ तत्व के विषय में उपदेश करने में कुशल आचार्य और पुरोहित तुम दोनों को (वपुषे) उत्तम रीति से बीजवपन द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिये (येमतुः) विवाहित करते हैं। (वां) तुम दोनों का इस गृहस्थ में (पतित्वम्) स्वामित्व समान रूप से हो। इस कार्य में (सख्याय जग्मुषी) हे पुरुष तेरे सखा भाव में जाने वाली, तेरा मित्र होकर रहने वाली (जेन्या योषा) पुरुष के हृदय को जीतने वाली अथवा सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ वधू ही (अवृणीत) वरण करे। तब (युवां) तुम दोनों (पती) एक दूसरे के पति पत्नी होकर रहो।

युवं रेभं परि॑षूतेरुरुष्यथो हि॒मेन॑ घ॒र्मं परि॑ तप्त॒मत्र॑ये।
युवं श॒योर॑व॒सं पि॑प्यथु॒र्गवि॒ प्र दी॒र्घेण॒ वन्द॑नस्ता॒र्यायु॑षा ॥६॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! (युवं) आप दोनों (रेभं) उत्पन्न होते ही रोने वाले बालक को (परिसूतेः) प्रसव क्रिया के भी पूर्व से ही (उरुष्यथः) खूब रक्षा करो और (अत्रये) इस लोक में आये नव बालक के (परितप्तम्) ज्वर आदि दुःख को (हिमेन धर्मम्) शीतल जल या छाया से घाम के समान दूर करो। (युवं) आप दोनों स्त्री पुरुष (शयोः गवि) शयनशील शिशु की इन्द्रियों में अथवा (गवि) गाय के समान दूध पिलाने वाली उसकी उत्पादक माता में (अवसं) बालक की रक्षा करने वाले दूध की (पिप्यथुः) वृद्धि करो और (वन्दनः) स्तुत्य गुणों से युक्त,

अभिवादनशील बालक (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ जीवन से (प्र तारि) युक्त होकर बड़ा हो।

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७॥

भा०—(जरण्यया = चरण्यया युक्तं रथं न) जैसे उत्तम गति से जाने वाले रथ को प्राप्त कर (दस्रा) शत्रुओं के नाशक रथी और सारथी दोनों (सम् इन्वथः) परस्पर मिलकर दूर देश तक चले जाते हैं ऐसे ही हे (दस्रा) दर्शनीय रूप वाले एवं एक दूसरे के दुःखों को दूर करने वाले स्त्री पुरुषो ! (करणा) कार्य में कुशल होकर (जरण्यया) उपदेश योग्य वेदवाणी से युक्त (वन्दनं) नित्याभिवादन योग्य (निर्ऋतं) निरन्तर सत्य के उपदेष्टा विद्यावृद्ध पुरुष का संसार की दूर की यात्रा पार करने के लिये (सम् इन्वथः) सत्संग करो। आप लोग (क्षेत्रात्) उत्पत्ति स्थान गर्भाशय से बालक के समान (विप्रम्) विविध विद्याओं में पूर्ण शिष्य को (आजनथः) उत्पन्न करो और (विपन्यया) विशेष स्तुति योग्य वाणी से (वाम्) तुम दोनों को (दंसना विधते) नाना कर्मों का उपदेश करने वाले विद्वान् की प्रतिष्ठा (प्रभुवत्) अच्छी प्रकार प्राप्त हो।

अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम्।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग (स्वस्य पितुः) अपने पालक माता पिता के (त्यजसा) त्याग से (निबाधितम्) खिन्न एवं (कृपमाणं) आप दोनों की स्तुति या विद्याध्ययन करते हुए बालक या शिष्य को (अगच्छतम्) प्राप्त करें। (इतः) इस विद्वान् तपस्वी पुरुष से ही (अह) निश्चय से (युवोः) तुम दोनों को (स्वः वतीः) सुखदायिनी (चित्राः) आश्चर्यजनक (ऊतीः) उपाय और (अभीष्टयः) अभीष्ट सिद्धियें भी (अभीके अभवन्) प्राप्त हों।

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो ! जैसे (मदे) हर्ष में मस्त होकर (मक्षिका) मधुमक्षिका (रपत्) कूंजती हैं वैसे ही (औशिजः) तेजस्वी परमेश्वर या आचार्य का पुत्र या शिष्य, साधक विद्वान्, (सोमस्य) ज्ञान और आनन्द रस के (मदे) परम हर्ष या (सोमस्य मदे = दमे) ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य के दमन में सावधान होकर (वां) तुम दोनों को (मधुमत्) मधुर ज्ञान का (रपत्) व्यक्त वाणी द्वारा उपदेश करे और आप से आप (मधुमत्) अन्नादि पदार्थ (हुवन्यति) प्राप्त करे। (युवं) आप दोनों वर्ग (दधीचः) सकल विद्याओं को धारण करने वाले शिष्यों को प्राप्त होने योग्य, आचार्य उपदेष्टा के (मनः) मनन करने योग्य ज्ञान का (आविवासथः) सब प्रकार से सेवन करो (अथ) और वह (वाम् प्रति) तुम दोनों के प्रति (अश्व्यं शिरः) विद्या से युक्त मस्तक के समान उन्नत और मुख्य पद प्राप्त करके (वदत्) उपदेश करे।

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१०॥२१

भा०—हे स्त्री पुरुषो, राज प्रजावर्गो, (अश्विना) नायक पुरुषो ! आप (पेदवे) उच्चतम आसन को प्राप्त करने वाले राजा और प्राप्त हुए राष्ट्र के हित के लिये (पुरुवारम्) बहुत से प्रजाजनों से वरण योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाले, (स्पृधां) प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के (तरुतारम्) पार पहुँचा देने वाले, (श्वेतम्) अति वेग से आक्रमण करने वाले, (शर्यैः अभिद्युम्) शत्रु हिंसक बाणादि अस्त्र शस्त्रों को चलाने में कुशल, वीर योद्धाओं से, किरणों से सूर्य के समान तेजस्वी योद्धा (पृतनासु दुस्तरं) संग्रामों में पराजित न होने वाले, (चर्षणीसहम्) शत्रु मनुष्यों का पराजय करने में समर्थ, (इन्द्रम् इव) बलशाली राष्ट्र-

पति या सूर्य के समान ही (चर्कृत्यम्) शासन-कार्य या अन्धकार को दूर करने में कुशल पुरुष या सैन्य वर्ग को (दुवस्यथः) प्रदान करो।

इन समस्त अश्वि-सूक्तों में अध्यात्म तथा ईश्वरोपासनापरक रहस्यों को विस्तार भय से नहीं दर्शाया है। उनको कहीं २ दिखाये संकेतों से ही जान लेना चाहिये ॥ इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१२०] औशिक्पुत्रः कक्षीवानृषिः ॥ आश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। २ भुरिग्गायत्री। १० गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री। ३ स्वराट् ककुबुष्णिक्। ५ आर्ष्युष्णिक्। ६ विराडार्ष्युष्णिक्। ८ भुरिगुष्णिक्। ४ आर्ष्यनुष्टुप्। ७ स्वराडार्ष्यनुष्टुप्। ९ भुरिगनुष्टुप्। द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

का रा॑ध॒द्धोत्रा॑श्विना वां॒ को वां॒ जोष॑ उ॒भयोः॑।
क॒था वि॑धा॒त्यप्र॑चेताः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) पति-पत्नी भाव से रहने वाले स्त्री पुरुषो! (उभयोः जोषे) दोनों के परस्पर प्रेम व्यवहार में (वाम्) तुम दोनों में से (का) कौन है जो (होत्रा) अपने को सब प्रकार से समर्पण करती हुई (राधत्) कार्य सिद्ध करती है और (कः) कौन है जो (होत्रा) सर्वात्मना स्वीकार करने वाला होकर (राधत्) कार्य साधता है? इस बात का खूब ज्ञान सम्पादन करो क्योंकि (वां) तुम दोनों में से (अप्रचेताः) कोई भी ज्ञानरहित मूढ़ होकर (कथा विधाति) परस्पर का गृहस्थ कार्य करने में असमर्थ हो सकता है। इसलिये गृहस्थ के दोनों अंगों को अपने २ कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिये।

वि॒द्वांसा॒विद्दुरः॑ पृच्छे॒दवि॑द्वानि॒त्थाप॑रो अ॒चेताः॑।
नू चि॒न्नु मर्ते॒ अक्रौ॑ ॥ २ ॥

भा० —(अविद्वान्) अविद्वान्, या शूद्र भृत्य (विद्वांसौ इत्) विद्वान्, जानकार स्त्री पुरुषों से जाकर (दुरः पृच्छेत्) जैसे बड़े महल

के दरवाजे पूछता है वैसे ही नाजानकार मूर्ख पुरुष (विद्वांसौ इत्) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर उन से ही देहबन्धन से मुक्त होने के (दुरः) द्वारों को (पृच्छेत्) पूछे। ऐसे ही सेनाध्यक्षों से ही नाजानकार दुर्ग और व्यूहों के द्वारों को या शत्रु के वारण करने के उपायों को पूछे। (इत्था) इस प्रकार से (अपरः) जो पर या उत्कृष्ट नहीं, वह जीव पर अर्थात् उत्कृष्ट परमेश्वर की अपेक्षा अपर है और आत्मा की अपेक्षा अपर देहादि भी (अचेताः) चेतना और ज्ञान से रहित है। (नू चित् नु) ठीक ऐसे ही (अक्रौ मर्त्ते) क्रिया में अकुशल पुरुषसमूह में भी समझना चाहिये कि क्रिया का जानने वाला पुरुष विद्वान् और अकुशल अविद्वान् होता है।

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

भा०—हम (ता) उन दोनों (विद्वांसा) विद्वान् पुरुषों को (हवामहे) आदरपूर्वक स्वीकार करें और (ता) वे आप दोनों ही (अद्य) आज, अब और नित्य (नः) हमें (मन्म) मनन योग्य ज्ञान का (वोचेतम्) उपदेश करें। (युवाकुः) तुम दोनों का प्रिय पुरुष या उपदेष्टा (दयमानः) सब पर दयालु होकर (प्र अर्चात्) तुम दोनों का सत्कार करे।

वि पृच्छामि पाक्याउ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

भा०—हे (दस्रा) दुःखहर्त्ता ! आप दोनों (पाक्या) परिपक्व विज्ञान वालों से ही मैं इस (अद्भुतस्य) आश्चर्यकारी (वषट्कृतस्य) वषट्कार, यज्ञ-आहुति या आदान प्रतिदान, सृष्टिगत सर्ग और प्रलय के विषय में, (विपृच्छामि) विविध प्रश्न पूछता हूँ। (युवं) आप दोनों (सह्यसः) सहनशील और (रभ्यसः) अति वेगवान् (नः) हम सबकी (पातं च) रक्षा करो।

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—(यः) जो वाणी (भृगवाणे घोषे वा) भृगु अर्थात् इन्द्रियों के धारण और दमन करने वाले सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के तुल्य आचरण वाले, (घोषे) वेद जो उत्तम प्रभुवाक्य रूप से विद्यमान सर्वोपरि मान्य है उससे मैं भी (प्रशोभे) सुशोभित होऊँ और (यया वाचा) जिस वाणी से हे विद्वान् पुरुषो ! (पज्रियः) उत्तम ज्ञानों और प्राप्तव्य परमपद के प्राप्त करने में कुशल (इषयुः न विद्वान्) बाण चलाने में सिद्धहस्त पुरुष के समान अपने उद्देश्य तक पहुँचने वाला (विद्वान्) विद्वान् (वाम् यजति) आप दोनों का सत्संग करता है उससे भी मैं (प्र शोभे) खूब सुशोभित होऊं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (शुभस्पती) तेजस्वी उत्तम ज्ञान के पालक, ज्ञानवर्धक, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (तकवानस्य) विद्यावान् पुरुष का (श्रुतम्) श्रवण योग्य (गायत्रम्) गायन करने वाले की नित्य अज्ञानपूर्वक कुपथ में पड़ जाने से रक्षा करने हारे, (आक्षी) आंखों के समान मार्ग दिखाने वाले (अहंचित् हि) मैं भी (वाम्) आप दोनों के ज्ञान को (आदन्) प्राप्त करूँ ।

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वसू) राष्ट्र और घर को बसाने वाले नायको और स्त्री पुरुषो ! (युवं हि) निश्चय से आप दोनों (महः रन्) बड़े पूजनीय ज्ञान, रक्षा और ऐश्वर्य के दाता (आस्तम्) होवो । (वा) और (यत् युवं) जो आप दोनों (निर् अततंसतम्) हमें सब प्रकार से विद्या आदि शुभ गुणों और आभूषणादि से भी अलंकृत करते हो (ता) वे आप दोनों (नः सुगोपा स्यातम्) हमारे उत्तम रक्षक होवो । (नः) हमें (अघायोः) हम पर

पापाचार हत्या आदि अपराध करने वाले (वृकात्) भेड़िये के समान छल से आक्रमण करने वाले दुष्ट पुरुष से (पातम्) रक्षा करो ।

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो मा कुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः । स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥

भा०—हे राज्यकर्त्ता, विद्वान्, स्त्री पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (कस्मै) किसी भी (अमित्रिणे) मित्र से रहित, सबके शत्रु, पुरुष के स्वार्थ के लिये (मा अभिधातम्) कभी न धरें या उसको हमारा पता न करें । (नः) हमारे (गृहेभ्यः) घरों से (धेनवः) दुधार गौवें (अकुत्र) अन्यत्र कहीं, संकट स्थान में (मा गुः) न जावें और (स्तनाभुजः) स्तनों द्वारा बछड़ों और बच्चों के पालने वाली गौवें और माताएं (अशिश्वीः) शिशु रहित (मा) न हों ।

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै । इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषों एवं नायको ! (युवाकु) दुःखों को दूर और सुखों को प्राप्त करने के लिये और (मित्रधितये) मित्रजनों के पालन करने के लिये ये सब गौएं, भूमियें और माताएं (दुहीयन्) अपना दूध, अन्न और स्नेह हमें देती हैं । आप दोनों भी हमें (नः) हमारे (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि और (वाजवत्यै) अन्नादि देने वाली भूमि को प्राप्त और सदुपयोग करने के लिये (मिमीतम्) ज्ञान का उपदेश करें और (नः) हमें (धेनुमत्यै इषे च) गौओं से पूर्ण अन्न समृद्धि प्राप्त करने के लिये (नः मिमीतम्) सदा प्रेरणा देते रहो ।

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥

भा०—(अश्विनोः) शिल्प विद्याओं में कुशल तथा (वाजिनीवतोः) बलवती, वेगवती क्रिया के उत्पन्न करने में कुशल शिल्पियों के बनाये

(अनश्वं रथम्) बिना अश्व के चलने वाले रथ, विमान, मोटर गाड़ी आदि रमण करने योग्य आनन्दप्रद यानों को मैं, राजा और प्रजावर्ग (असनम्) प्राप्त करें। (तेन) उस यान आदि ऐश्वर्य से (अहं) मैं (भूरि) बहुत अधिक (चाकन) तेजस्वी होऊं ।

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥११॥

भा०—हे (समह) आदर सत्कार से युक्त विद्वन् ! (अयम्) यह (सुखः) सुखदायक (रथः) रमण करने, आनन्द विहार करने योग्य और वेग से जाने वाला रथ है । वह (जनान् अनु) अन्य जनों तक भी (ऊह्यते) पहुँचाया जाता है अर्थात् उसमें बैठ कर अन्यों तक पहुँचा जाता है । अथवा— उसमें विराजे पति पत्नी या वर वधू (जनान् अनु ऊह्यते) अन्यों जनों तक पहुँचाए जाते हैं । ऐसा ही एक रथ (सोमपेयम्) जिससे ऐश्वर्य का, सुखप्रद रसपान के समान उपभोग हो सके (मा तनु) मुझे भी बना दो ।

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

भा०—(अध) और मैं (स्वप्नस्य) निद्राशील आलसी तथा (अभुञ्जतः रेवतः च) स्वयं ऐश्वर्य का भोग और अन्यों का पालन न करने वाले धनवान् पुरुष इन दोनों से (निः विदे) उदासीन हूँ, दोनों को निरुपयोगी, निकम्मा समझता हूँ क्योंकि (ता उभा) वे दोनों (बस्रि) शीघ्र ही या सुखनाशक होने से (नश्यतः) स्वयं नष्ट हो जाते हैं । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥ इति सप्तदशोऽनुवाकः ॥

[१२१] औशिजः कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पंक्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

कद्रित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड् विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥

भा०—(नॄन्) समस्त मनुष्यों और नायकों का (पात्रम्) पालक राजा (तुरण्यन्) त्वरावान् उत्सुक होकर (देवयतां अङ्गिरसाम्) राजा को हृदय से चाहने वाले विद्वान् पुरुषों की (गिरः) वाणियों और उपदेशों को (इत्था) इस प्रकार से (कत्) कब श्रवण करे ? [उत्तर] (यत्) जब (यजत्रः) सत्संग करने वाला स्वामी (हर्म्यस्य इव) बड़े महल के समान (विशः) प्रजाओं के (अध्वरे) पालन रूप उत्तम कार्य में (प्र आनड्) प्रतिष्ठा प्राप्त करे और (उरु क्रंसते) बहुत ऊंचे पद पर कदम बढ़ावे ।

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

भा०—जैसे (ऋभुः) तेजस्वी सूर्य (द्यां स्तम्भीत्) आकाशस्थ पिण्डों को आकर्षण बल से थामता है और (गोः) पृथिवी पर (वाजाय) अन्न की उत्पत्ति के लिये (द्रविणं) ऐश्वर्य रूप से (धरुणम्) प्राणियों के जीवन धारक जल को (प्रुषायत्) मेघ द्वारा बरसाता है वैसे ही (ऋभुः नरः) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से चमकने वाला पुरुष (द्यां स्तम्भीत्) तेजस्वी पुरुषों की राजसभा को वश करे । (वाजाय) ऐश्वर्य की वृद्धि और संग्रामों के विजय के लिये (द्रविणम् प्रुषायद्) धन को मेघ के समान भृत्यों पर बरसा दे (महिषः) महान् शक्ति वाला सूर्य जैसे (स्वजाम्) अपने ही से उत्पन्न होने वाली (व्राम्) वरण-योग्य कन्या के समान उषा को (अनु चक्षत) प्रकाशित करता है और उसके बाद स्वयं भी प्रकट होता है ऐसे ही (महिषः) पृथ्वी के विशाल राज्य का भोक्ता नृपति भी (स्वजां) अपने सामर्थ्य या प्रभुत्व से प्रकट होने वाली, (व्रां) अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा को (अनुचक्षत) अपने अनुकूल देखे । जैसे

(अश्वस्य मेनाम्) सूर्य के व्यापक प्रकाश को नाश करने वाली, (गोः) भूमि की (मातरं) माता के समान पालन करने वाली और अन्धकारमय गोद में लेने वाली रात्रि को (परि चक्षत) अपने पीछे छोड़ जाता है वैसे ही राजा भी (अश्वस्य) समृद्ध राष्ट्र और राष्ट्रपति के (मेनाम्) शासन सेना या मान्य करने योग्य व्यवस्था को (गोः) समस्त पृथ्वी के (परि) ऊपर (मातरम्) माता के समान राष्ट्र का पालन और रक्षा करने वाला (परिचक्षत) नियत करता है ।

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

भा०—(राट्) सूर्य जैसे (पूर्व्यम्) पूर्व दिशा में प्रकट होने वाले (हवम्) देने योग्य प्रकाश को देता और (अरुणीः नक्षत्) प्रकाशमान् उषाओं को व्यापता है वैसे ही जो तेजस्वी पुरुष (पूर्व्यम् हवम्) पूर्व के विद्वानों से दिये और उपदेश किये गये (हवम्) देने और आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य न्याय और ज्ञान को प्रकट करता और (अरुणीः) सबके चित्त को लुभाने वाली उत्तम धार्मिक नीतियों को (नक्षत्) वर्तता है और जो (तुरः) शीघ्रकारी, वायु के समान वेग से शत्रु पर जाने वाला (अनु द्यून्) सब दिनों (नियुतं वज्रं नक्षत्) बड़े प्रबल वज्र के समान स्थिर और सुदृढ़ शस्त्रास्त्र बल को तीक्ष्ण करके शत्रु पर प्रहार करता है और (चतुष्पदे) चौपाये पशुओं तथा (नर्याय) साधारण मनुष्यों के बीच नायकों के और (द्विपादे) दोपाये भृत्य आदि सेवक जनों के हित के लिये (द्यां तस्तम्भद्) सूर्य के प्रकाश के समान न्याय और विद्या के प्रकाश तथा राजसभा और विद्वत्सभा को स्थापित करता है वही (अंगिरसां विशा) अग्नियों के बीच सूर्य के समान तेजस्वी वीर पुरुषों में और प्रजागण में (राट्) सम्राट बनने योग्य है ।

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जैसे (अपीवृतम्) अन्धकार से आवृत (उस्रियाणाम् स्वर्यं अनीकम्) तेजस्वी, तापदायक रश्मियों के समूह को (ऋताय दाः) प्रकाश और वृष्टि जल के प्रयोजन से भूमि पर फैलाता है वैसे ही राष्ट्रपति (अस्य) इस प्रजाजन के हर्ष (मदे = दमे) दमन और शासन के निमित्त और (ऋताय) सत्य के प्रकाश, ऐश्वर्य और अन्नादि की वृद्धि के लिये (अपीवृतम्) सुखों से युक्त (उस्रियाणां) शासन वाणियों के (स्वर्यं) उपदेश प्रद, (अनीकम्) समूह को और (अपीवृतम्) सुरक्षित, (उस्रियाणां) उत्तम वेग से जाने वाली सेनाओं के (स्वर्यं अनीकम्) शत्रुओं को तापदायी सैन्य बल को (दाः) राष्ट्र को प्रदान करता है और जैसे (त्रिककुप्) तीनों लोकों में श्रेष्ठ सूर्य (प्रसर्गे निवर्त्तत्) अपने प्रकाश को प्रकट करके अन्धकार को दूर करता है और जैसे (त्रिककुप्) माता पिता और आचार्य इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वेदत्रयी का विद्वान्, आचार्य (प्रसर्गे) अपने उत्कृष्ट सर्ग विद्योपदेश काल में संशय युक्त अज्ञान को दूर करता है वैसे ही (यत् ह) जो पुरुष निश्चय से (प्रसर्गे) अपने उत्तम राष्ट्र के बनाने के कार्य में युद्धादि में (त्रिककुप्) शत्रु, मित्र, उदासीन अथवा प्रज्ञा, उत्साह और प्रभुत्व तीनों में श्रेष्ठ होकर (मानुषस्य द्रुहः) मनुष्यों के द्रोहकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करता है वही (दुरः अवः) सुख समृद्धि के द्वारों को घर के द्वारों के समान खोल देता है ।

तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥५॥२४॥

भा०—(यत्) जैसे (भुरण्यू) भरण करने वाले (पितरौ) माता पिता (तुरणे) अधीर बालक के लिये (सुरेतः) उत्तम वीर्योत्पादक (पयः) दूध और (राधः) धन (अनीताम्) प्राप्त कराते हैं, वैसे ही हे राजन्

(पितरौ) राष्ट्र के पालक मां बाप के समान राजा-प्रजावर्ग या सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष (भुरण्यू) राष्ट्र के और तेरे भरण करने में समर्थ होकर (तुरणे) क्षिप्रकारी और शत्रुओं के नाश करने में समर्थ (तुभ्यम्) तु राजा की पुष्टि के लिये (सुरेतः) उत्तम जल से युक्त (पयः) पुष्टिकारक अन्न (सुरेतः पयः) वीर्यवर्धक दुग्ध और (राधः) धनैश्वर्य (अनीताम्) प्राप्त करावें। (यत्) जैसे गो पालक या विद्वान् जन (सबर्दुघायाः) सर्व-पोषक, दूध देने वाली (उस्रियायाः) गौ के (शुचि पयः) शुद्ध, पवित्र दूध को (आ अयजन्त) सब तरफ से ले लेते हैं और उससे यज्ञ करते हैं वैसे ही वे विद्वान् जन (सबर्दुघायाः) समस्त प्रजा को समान रूप से भरण करने वाले अन्न को दोहन करने वाली (उस्रियायाः) मातृ भूमि के (पयः) पुष्टिकारक अन्न के समान (शुचि रेक्णः) शुद्ध ईमानदारी से प्राप्त धन को (ते) तेरे हित के लिये (आ अयजन्त) स्वीकार करें। इति चतु-र्विंशो वर्गः ॥

अध॒ प्र ज॑ज्ञे त॒रणि॑र्ममत्तु॒ प्र रो॑च्य॒स्या उ॒षसो॒ न सूरः॑ ।
इन्दु॒र्येभि॒राष्ट॒ स्वेदु॑हव्यैः स्रु॒वेण॑ सि॒ञ्चञ्ज॒रणा॒भि धाम॑ ॥ ६ ॥

भा०—(उषसः सूरः न) उषा के समीप सूर्य जैसे अति अधिक प्रकाश के सहित (प्ररोचि) प्रकाशित होता है वैसे ही राजा (अस्याः) इस (उषसः) शत्रु को संताप देने वाली सेना तथा गुणों से युक्त प्रजा और भूसम्पत्ति के योग से (तरणिः) सब दुःखों से स्वयं पार होने और अन्यों को पार करने हारा होकर (प्र जज्ञे) उत्तम रीति से प्रसिद्ध, (प्र ममत्तु) खूब प्रसन्न, (प्र रोचि) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। वह (इन्दुः) ऐश्वर्य-वान् होकर (येभिः) जिन (स्व-इंदु-हव्यैः) अपने तेजः सामर्थ्यों, ऐश्वर्यों को दाता सहयोगियों के साथ (आष्ट) राज्यैश्वर्य का भोग करता है उन्हीं के बल से (स्रुवेण) स्रुवा से (सिञ्चन्) सिंचे यज्ञाग्नि के समान और (स्रुवेण) इस प्रजाजन से (अभिषिञ्चन्) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ

(धाम) राष्ट्र को धारण करने वाले तेज और बल, राजैश्वर्य का भी (आष्ट) भोग करे और (जरणा) स्तुत्य कर्मों और ऐश्वर्यों को (आष्ट) प्राप्त करे।

स्वि॒ध्मा यद्व॒नधि॑तिरप॒स्यात्सूरो॑ अध्व॒रे परि॒ रोध॑ना गोः।
यद्ध॑ प्र॒भासि॒ कृत्व्याँ॒ अनु॒ द्यूनन॑र्विशे प॒श्विषे॑ तु॒राय॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यद्) जैसे (सूरः) सूर्य (स्विध्मा) उत्तम दीप्ति वाला (वनधितिः) सेवन करने योग्य वृष्टि-जलों को धारण करने में समर्थ होकर (अध्वरे) अन्तरिक्ष में (परि) सब ओर (गोः) रश्मिसमूह का (रोधना) निरोधन अथवा (गोः) पृथ्वी के स्तम्भन आदि (अपस्यात्) कार्य करता है और जिस प्रकार (सूरः) विद्वान् पुरुष (स्विध्मा) उत्तम तेजस्वी होकर (वनधितिः) भजन योग्य एकमात्र प्रभु को ही अपने हृदय में धारण करता हुआ (गोः) इन्द्रियगण के (रोधना) नाना संयम के कार्यों को (परि अपस्यात्) अच्छी प्रकार करता है वैसे ही (सूरः) सूर्य समान तेजस्वी राजा भी (स्विध्मा) उत्तम दीप्ति युक्त अग्नि के समान सुतीक्ष्ण और (वनधितिः) वन अर्थात् सेवन योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला होकर (गोः) भूमि के (अध्वरे) हिंसा रहित प्रजापालन के कार्य में (रोधना) संयम करने के उपायों को (परि अपस्यात्) अच्छी प्रकार अनुष्ठान करे और जैसे (सूरः) सूर्य (अनु द्यून्) दिन प्रतिदिन, निरन्तर (कृत्व्यान् अनु) उत्तम, अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाश किरणों से (प्रभासि) चमकता है वैसे ही हे विद्वान् पुरुष ! आप भी प्रतिदिन (कृत्व्यान् अनु) अपने कर्त्तव्य कर्मों के अनुरूप ही (प्रभासि) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो और (अनर्विशे) गाड़ी आदि से नगर में प्रवेश करने वाले, (पश्विषे) पशुओं को चाहने वाले और (तुराय) वेग से यानादि से जाने वाले के लिये (प्रभासि) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो।

अ॒ष्टा म॒हो दि॒व आ॒दो॒ हरी॑ इ॒ह द्यु॑म्ना॒साह॑म॒भि यो॑धा॒न उत्स॑म्।
हरिं॒ यत्ते॑ म॒न्दिनं॑ दु॒क्षन्वृ॒धे गोर॑भस॒मद्रि॑भिर्वा॒ताप्य॑म् ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (महः दिवः) महान् आकाश या प्रकाश का (अष्टा) भोक्ता सूर्य (उत्सम् अभि योधानः) जल बरसाने वाले मेघ के समान युद्ध करता हुआ (हरी आदः) अपने प्रकाश और ताप को अपने वश रखता है वैसे ही हे राजन्! तू (महः दिवः) बड़े भारी तेज, विद्वत्सभा या विजयशालिनी सेना का (अष्टा) भोक्ता, वीर सभापति और सेनापति (इह) इस राष्ट्र में या संग्राम में (उत्सं) ऊपर उठते हुए, (द्युम्नासाहम्) ऐश्वर्य को विजय करते हुए शत्रु के (अभि योधानः) मुकाबले पर युद्ध करते हुए (हरी आदः) रथ के दोनों अश्वों को अपने वश कर और (यत्) जैसे याज्ञिक लोग (वाताप्यम्) प्राण के बल से प्राप्त करने योग्य, (मन्दिनं हरिम्) तृप्ति करने वाले, हर्षोत्पादक, हरे सोमोषधि रस को (गोरभसम्) गौ के दूध से मिश्रित करके (अद्रिभिः) प्रस्तरों से (दुक्षन्) कूटकर रस प्राप्त करते हैं वैसे ही हे सेनापते, राजन्! (ते वृधे) तेरी वृद्धि के लिये वे वीर गण (मन्दिनं) अति प्रसन्न करने वाले (हरिं) वेगवान् (वाताप्यम्) वायु वेग से प्राप्त होने वाले शीघ्रगामी, (गोरभसम्) सेनापति के आज्ञा पर ही वेग से जाने वाले (हरिम्) अश्वबल को (अद्रिभिः) मेघों के समान शस्त्रास्त्रवर्षी पुरुषों द्वारा अथवा (अद्रिभिः) अभेद्य पर्वतों के समान अचल महारथियों द्वारा (दुक्षन्) दोहते हैं।

त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्तयो॒ गोर्दि॒वो अश्मा॑न॒मुप॑नीत॒मृभ्वा॑ ।
कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत व॒न्वञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒यासि॑ व॒धैः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! सेनापते! जैसे सूर्य (गोः दिवः अश्मानम्) आकाश और पृथिवी पर व्यापने वाले, (उपनीतं) अपने समीप आये मेघ को (ऋभ्वा) बहुत वेगवान् वायु से खूब चलाता है वैसे ही तू भी (ऋभ्वा) विज्ञानवान् शिल्पी से (उपनीतं) प्राप्त कराये हुए (अश्मानम्) शिला के समान अभेद्य और (आयसं) लोह के बने शस्त्रास्त्र को (गोः दिवः) भूमि और आकाश के बीच (प्रतिवर्तयः) चला (दिवः अश्मानम्) अर्थात्

भूमि और विजयलक्ष्मी के लाभ कराने वाले (आयसं) फौलाद के बने शस्त्रास्त्र समूह को (प्रति) शत्रुओं के प्रति (वर्त्तयः) चला। हे (पुरुहूत) बहुत से शत्रुओं से ललकारे जाने वाले सेनापते! (कुत्साय) जल-वृष्टि के लिये जैसे सूर्य (शुष्णम्) पृथ्वी पर के जल को सुखा देने वाले ताप को (वन्वन्) धारण करता हुआ (अनन्तैः) असंख्य किरणों से प्रकाशित होता है वैसे ही हे तू (कुत्साय) काट गिरा देने योग्य शत्रुओं को नाश करने के लिये (शुष्णम् वन्वन्) शत्रु के शोषणकारी बल को धारण करता हुआ (अनन्तैः वधैः) असंख्य शस्त्रों और वीर भटों के साथ (परि यासि) प्रयाण कर।

पुरा यत्सूर॒स्तम॑सो॒ अपी॑ते॒स्तम॑द्रिवः फलि॒गं हे॒तिम॑स्य। शुष्ण॑स्य चि॒त्परि॑हितं॒ यदोजो॑ दि॒वस्परि॒ सुग्र॑थितं॒ तदादः॑ ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—(यत्) जैसे (तमसः अपीतेः) अन्धकार का नाश कर देने से (सूरः) सूर्य (फलिगान् आदः) मेघ को भी छिन्न-भिन्न करता है और (शुष्णस्य) मेघ का (यत् ओजः दिवः परि) जो ओज आकाश या सूर्य पर (सुग्रथितम्) दृढ़ता से बंध कर उसे ढक लेता है (तत् आदः) उसको भी छिन्न-भिन्न करता है वैसे ही (अद्रिवः) पर्वतों से युक्त भूमि के स्वामिन् और पर्वत के समान अचल दुर्भेद्य सैन्यबल से युक्त एवं वज्र के धारक! राजन्! सेनापते! तू (पुरा) पहले के समान ही (सूरः) विद्वान् और सैन्य का सञ्चालक होकर (तमसः) प्रजा को कष्टदायी, (अपीतेः) नाशकारी (अस्य) शत्रु दल के (तम्) उस (फलिगम् हेतिम्) फल वाले शस्त्र को (आ अदः) छिन्न-भिन्न कर और (शुष्णस्य) प्रजा के पोषणकारी शत्रु का (यत्) जो (दिवः परि) भूमि पर (परिहितं) फैला हुआ (ओजः) तेज, पराक्रम जो (सुग्रथितम्) अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित हो। (तत्) उसको भी (आ अदः) सब प्रकार से छिन्न-भिन्न कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन्।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥ ११ ॥

भा०—जैसे (द्यावाक्षामा) आकाश और पृथिवी दोनों (मही) विशाल (पाजसी) बलवती और (अचक्रे) स्थिर, स्वतः कार्य करने में असमर्थ भी सूर्य के प्रकाश कार्य में प्रसन्न और तृप्त हो जाते हैं वैसे ही हे वीर राजन्! (द्यावाक्षामा) राजवर्ग और भूमि-समान आश्रय रूप प्रजावर्ग! दोनों (मही) बड़े (पाजसी) बलवान् और चरणों के समान आश्रय स्वरूप (अचक्रे) चक्ररहित रथ के समान शिथिल एवं स्वतः अपनी शक्ति से रहित होकर (कर्मन्) राज्यपालन और शत्रु उच्छेद के काम में (त्वाम् मदताम्) तेरे साथ २ प्रसन्न हों। हे राजन्! जैसे (आशयानं वृत्रं) चारों तरफ फैले हुए और सूर्य को घेरने वाले (वराहुम्) मेघ को, सूर्य (महः वज्रेण) बड़े भारी अन्धकारवारक प्रकाश या विद्युत् से (सिरासु) नदी धाराओं में (सिष्वपः) सुला देता है अर्थात् जल रूप से बरसा देता है वैसे ही (त्वं) तू (आशयानं) अपने राष्ट्र के चारों ओर घेरा डाले हुए, (वृत्रम्) और बढ़ते हुए (वराहुम्) श्रेष्ठ, धार्मिक व्यवहारों और जनों के नाशकारी शत्रुदल को (सिरासु) शरीर की मर्म नाड़ियों का आघात करने वाले (महः) बड़े प्रबल (वज्रेण) शस्त्रास्त्र से (सिष्वपः) सुला दे।

त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान्।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! जैसे सूर्य (नॄन्) शरीर संचालक प्राणों की रक्षा करता और (वहिष्ठान्) शरीर को वहन या धारण करने वाले (वातस्य सुयुजः) वायु के साथ उत्तम रीति से संयुक्त हुए प्राणों पर (अवः) वश करता है वैसे ही (नर्यः) समस्त नायकों और प्रजावासी पुरुषों का हितकारी होकर (यान् नॄन्) जिन नायक पुरुषों को (अवः)

सुरक्षित रखता है तू उन्हीं (वहिष्ठान्) राष्ट्र-कार्यों का अच्छी प्रकार वहन करने वाले (वातस्य सुयुज) वायु या प्राण के उत्तम गुणों के धारक उनके उत्तम साथियों और वेगवान् अश्वों के समान राष्ट्र के राज्यरूप रथ के संचालक पुरुषों पर, अश्वों पर सारथी के समान (तिष्ठ) विराज और (वन्दिनं) सबके हर्षदायक (वृत्रहणं) शत्रुनाशक (पार्यम्) संग्राम से पार उतारने वाले (वज्रम्) शत्रु के वर्जन या धारण करने में समर्थ (यं) जिस शस्त्रास्त्र या सैन्य बल को (काव्यः) मेधावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र व शिष्य (उशनाः) सर्व वशीकार में समर्थ, वशी पुरुष (ते) तुझको (दात्) प्रदान करता है, उपदेश करता है, तू उसको (ततक्ष) सदा तीक्ष्ण कर, उसको सदा तैयार रख।

त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून्॥ १३॥

भा०—(सूरः) सूर्य जैसे (हरितः रामयः) अपनी किरणों को फेंकता और (हरितः रामयः) उनके द्वारा समस्त दिशाओं को रमण कराता, सुखी और हर्षित करता है और (हरितः रामयः) हरे वृक्ष लता आदि को रमणीय, अर्थात् हरा भरा करता है, वैसे ही हे राजन्! तू भी (सूरः) सबका प्रेरक होकर (हरितः नॄन् रामयः) वेगवान् अश्वों, प्रजाओं और वायु के समान आक्रमणकारी वीर नायकों और भटों को सञ्चालित कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (एतशः चक्रं न) सूर्य जैसे चक्र अर्थात् समस्त ज्योतिश्चक्र या ग्रहचक्र को (भरत् = हरत्) धारण करता, सञ्चालित करता और व्यापता है और (एतशः चक्रं न) वेगवान्, बलवान् अश्व जैसे रथ के चक्र को धारता और ले जाता है वैसे ही (अयम्) यह राजा (चक्रम् भरत्) राष्ट्ररूपी चक्र के कार्यकर्तृगण को पालित, पोषित और सञ्चालित करे और (चक्रम् भरत्) द्वादश राजचक्र को अपने शौर्य, वीर्य और नीति द्वारा धारण करे, सञ्चालित करे। हे ऐश्वर्यवन्! जैसे

मनुष्य जीवन के ९० वर्ष रूपी नाव से पार करने योग्य बड़ी नदियों के (पारं प्र-अस्यति) पार मनुष्यों को डाल देता है और उनको (अयज्यून्) यज्ञ करने में या वृद्धावस्था से अशक्त कर देता है वैसे ही हे राजन्! तू शत्रुओं को (नाव्यानां नवतिं) नाव से पार करने योग्य बड़ी बड़ी ९० नदियों के भी (पारं) पार (प्र अस्य) मार भगा। अथवा-(नाव्यानां पारं) नाव से तरने योग्य नदियों के पार (नवतिं) नौका को (प्र-अस्य) अच्छी प्रकार चलवा। अथवा—(नाव्यानां) प्रेरणा योग्य सेनाओं के (पारं) पालन करने में समर्थ (नवतिं) उत्तम आज्ञापक पुरुष को (प्र-अस्य) उत्तम पद पर स्थापित कर। हे राजन्! तू (अयज्यून्) अदानशील, कर आदि न देने वाले तथा सन्धि द्वारा मेल न रखने वाले शत्रुओं को (कर्तम् अपि अवर्तयः) कूएं या गहरे गढ़ों में रख अथवा (कर्तम्) काट २ कर उनका (अपि अवर्तयः) विनाश कर।

'नवतिं नाव्यानाम्'—णु स्तुतौ इत्यतो डौ प्रत्यय औणादिकः। नौः। तस्मात् अतिरौणादिकोन वतिः। नौति स्तौति, उपदिशति, प्रेरयति, स्तूयते उपदिश्यते, प्रेर्यते वा इति नौः, नवतिश्च। तेषु साधुः नाव्यस्तेषाम् नाव्यानाम्। अथवा नावा तार्या नाव्या नद्यः, तासाम्।

त्वं नो॑ अ॒स्या इ॑न्द्र दु॒र्हणा॑याः पा॒हि व॑ज्रिवो दुरि॒ताद॒भीके॑।
प्र नो॒ वाजा॑न्र॒थ्यो॒३॒॑ अश्व॑बुध्यानि॒षे य॑न्धि॒ श्रव॑से सू॒नृता॑यै ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वज्रिवः) उत्तम शत्रुवारक नीति और साम आदि उपायों के स्वामिन्! राजन्! परमेश्वर! (त्वं) तू (नः) हमें (अस्याः) इस (अभीके) संग्राम में भी (दुर्हणायाः) कठिनता से नाश योग्य शत्रुसेना या दारिद्र्य आदि विपत्ति से और (दुरितात्) दुर्गति से (पाहि) बचा और (रथ्यः) रथारोहियों में महारथी होकर (नः) तू हमारे (अश्वबुध्यान्) सूर्य के आश्रय पर होने वाले अन्नों को मेघ के समान, अश्व सैन्य के आश्रय पर प्राप्त होने वाले (वाजान्) ऐश्वर्यों तथा संग्रामों

को (श्रवसे) कीर्त्ति, ऐश्वर्य और (सूनृताय) उत्तम अन्नादि समृद्धि, वाणी तथा धन प्राप्ति के लिये (प्र यन्धि) अच्छी प्रकार प्रदान कर।

मा सा ते॑ अ॒स्मत्सु॑म॒तिर्वि द॑स॒द्वाज॑प्रमहः॒ समिषो॑ वरन्त। आ भ॑ज मघव॒न्गोष्व॒र्यो मंहि॑ष्ठास्ते सध॒माद॑ः स्याम ॥१५॥२६॥८॥

भा०—(सा ते) वह तेरी कृपा से प्राप्त हुई (सुमतिः) शुभ, ज्ञानमय मति (अस्मत्) हमसे (मा) कभी न (विदसत्) विनष्ट हो। हे (वाजप्रमहः) अन्नों और ऐश्वर्यों को देने वाले (मघवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् और परमेश्वर! (इषः) हमारी कामनाएं और इष्ट प्रजाएं भी तुझे (सं वरन्त) एकत्र होकर वरण करें। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (अर्यः) सबका स्वामी है। तू (नः) हमें (गोषु) भूमियों, उत्तम वाणियों और इन्द्रियगणों के आश्रय पर (आ भज) उत्तम २ सुख दे। (ते) तेरी कृपा से हम सब (मंहिष्ठाः) अति दानशील और वृद्धिशील होकर (सधमादः) एक साथ आनन्द से रहने और अन्नादि से तृप्त होने वाले (स्याम) होवें। इति षड्विंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति प्रथमोऽष्टकः

इति प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डित जयदेवशर्म-विरचिते, ऋग्वेदस्यालोकभाष्ये प्रथमोऽष्टकः समाप्तः ॥

BACKLIST

JANE'S YEARBOOKS CURRENTLY AVAILABLE

E'S FIGHTING SHIPS -87

by Captain John Moore (Ret'd)

its 89th year of publication, this book is d as the only definitive annual publication ld. It provides comprehensive and accurate ation on the world's 150 navies.

106 0827 4 **Available**

6mm. 800pp.

ustrated throughout.

Price: **£69**

'S INFANTRY PONS 1986-87

by Ian V. Hogg

ed as the most comprehensive reference of major infantry equipment in service vide, Jane's Infantry Weapons offers concise tailed information on all portable weapons use.

106 0829 2 **Available**

16mm. 950pp.

ustrated throughout.

Price: **£68.50**

E'S AVIONICS 1986-87

by Stephen Broadbent

Avionics contains detailed technical and ercial information on the developments, cations and operational capabilities of n electronics.

106 0830 6 **Available**

16mm. 550pp.

ustrated throughout.

Price: **£65**

E'S AIRPORT UIPMENT 1986-87

by David Rider

nique guide gives details of the latest equip- used in the operation of airports within categories – air traffic control, aircraft enance and fuelling, emergency services and nal and apron equipment.

7106 0831 4 **Available**

216mm. 800pp.

llustrated throughout.

Price: £72

JANE'S WORLD RA 1986-87

Edited by Geoffrey Freeman Allen

The only fully illustrated company- guide to the world's railway supply includes detailed information on m their products, sales and personnel

ISBN 7106 0834 9 **Available**

318 x 216mm. 870pp.

Fully illustrated throughout.

JANE'S WEAPON SY 1986-87

Edited by Ronald T. Pretty

This yearbook is a guide to the wor infantry portable weapon systems a ing defensive systems.

ISBN 7106 0832 2 **Available**

318 x 216mm. 1000pp.

Fully illustrated throughout.

JANE'S ARMOUR & ARTILLERY 1986-87

Edited by Christopher F. Foss

Now in its 7th year of publication, th details all the armoured fighing veh crewed guns in current service and worldwide.

ISBN 7106 0833 0 **Available**

318 x 216mm. 930pp.

Fully illustrated throughout.

JANE'S ALL THE WO AIRCRAFT 1986-87

Edited by John W. R. Taylor

Acknowledged as the world's stand work and now in its 77th year of pu All the World's Aircraft is essential anyone involved in the aerospace i

ISBN 7106 0835 7 **Available**

318 x 216mm. 1000pp.

Fully illustrated throughout.

ISBN
8702 1
8702 1
8702 1
8607 9
8702 1
9159 2
8607 9
8702 1
8607 9
8448 1
8448 1
8702 1
8702 1
8702 1
8702 1
8702 1
8702 1
8702 1
8607 9
8702 1
8702 1
8702 1
7106 0
9304 0
9004 9
8702 1
8702 1
8702 1
8702 1
9202 7
8702 1
8702 1
8702 1
8607 9
8607 9
8747 4
8747 4
8747 4
8702 1
7106 0
7106 0
7106 0
7106 0
7106 0
7106 0
8702 1
7106 0
702 1

JANE'S TECHNICAL AND REFERENCE TITLES

FOR AIR
AT

ok for aeronautical engineering
ther aerospace professionals
oduction to the theory and
d the design of current and
aircraft. An introduction to
mics is followed by chapters
ach of the main airframe
wing, air intake, fuselage, tail-
aust and aft-body.

6 2 **February 1987**
224 pp. Cased.
d with photographs
ngs. Price: **£20**

DESIGN FOR AIR COMBAT
Ray Whitford

MILITARY
GY IN SPACE
son

e intelligent layman, this is a
Soviet military space effort from
in the early 1950s to the spy
satellite systems of today.
nical and political issues are
readily understandable form.
clude a glossary and the full
or arms-control treaties.

1 **April 1987**
20pp. Cased.
photographs and line drawings. Price: **£20**

SOVIET MILITARY STRATEGY IN SPACE
Nicholas L. Johnson

Al
Ko
Ko
Ko
Kr
Kr
Ku
La
Le
Sc
Le
Le
Le
Le
Lla
Lo
Lo
Lo
Lo
Lu
M

AUTHOR INDEX